ओ३म्

वाल्मीकि रामायण

आर्यटीका

(द्वितीय भाग)

टीकाकार :

पं० आर्यमुनि जी

प्रकाशक :

साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

ओ३म्

वाल्मीकि-रामायण

आर्यटीका

(द्वितीय भाग)

टीकाकार :

पं० आर्यमुनि जी

प्रकाशक :

हरयाणा साहित्य संस्थान

गुरुकुल झज्जर (रोहतक)

प्रकाशक:-
हरयाणा साहित्य संस्थान
गुरुकुल झज्जर, रोहतक
दूरभाष: २०४४

मूल्य:- १६० रुपये

मुद्रक:-
वेदव्रत शास्त्री
आचार्य ऑफसेट प्रेस
गोहाना रोड, रोहतक
फोन:- 72874

ओ३म्

बाल्मीकिरामायणार्य्यटीका की

भूमिका

दोहा

रामायण के लेख को, लिख गये कवि अनेक।
बाल्मीकि सम नहीं लही, राम कथा की टेक॥

चौपाई

बाल्मीकि आदि कवि माना * राम चरित जिन सरस बखाना॥
भाव भरे शुभ नाना रूपा * राव रंक हरषहिं पढ़ भूपा॥
सुखद अलङ्कृति निकसत ऐसे * विकसित कुसुम बसन्तहिं जैसे॥
बीर भयानक करुणा भारी * वर्षित ऐस मेघ जिमि वारी॥
पूर्ण पुरुष राम की गाथा * सुनकर कविजन नावत माथा॥
बाल्मीक मुनि की यह रीती * लिखि वही जु राम तनु बीती॥
अन्य कवि भरें नाना रंगा * प्रौढ़ मोह जिमि जरें पतंगा॥
कोउक रामहिं ब्रह्म बतावे * जो अनेक ब्रह्माण्ड उपावे॥
रावण दशकन्धर परधाना * लिया उठाय कलाश महाना॥
बालक कर कन्दुक गहे जैसे * लिया उठाय गिरीवर तैसे॥
इमि अनेक विधि गाथा गावें * मिथ्या कथा अनेक बतावें॥
झूठ कथा सुन उपजा दाहू * कहो असत्य रुचे कहुं काहू॥

बाल्मीकि भाषा जब होई * तब मिथ्या मग चले न कोई ॥
अस जिय धार बनाई टीका * वैदिक भाव भरा सब हिय का ॥
तुलसीदास आदि कवि जोई * भाव पुराणिक भर गये सोई ॥
मुख्य कथा कई स्थल में त्यागी * केवल भये राम अनुरागी ॥
रामचरित अद्भुत था जोई * कहुं कहुं छोड़ दिया उन सोई ॥
गो स्वामी तुलसी जग माहीं * बहुश्रुत भये झूठ कछु नाहीं ॥
सुन रामायण कथा अनेका * तुलसी उर महा भयउ विवेका ॥
पढ़ा चरित तुलसी का जब ही * यह मति भई हमारी तब ही ॥
जा में यह स्पष्ट लिख दीना * था तुलसी श्रोता परवीना ॥
राम मर्म नहिं याते चीन्हा * कहुं कहुं अर्थवाद भर दीना ॥
राम महत्त्व जगत में जोई * बाल्मीकि मुनि लिख गये सोई ॥
धर्म धुरन्धर दृढ़ व्रतधारी * राम समान कोउ सदाचारी ॥
हुआ न होवनहार सुआना * जिन पितु बचन वेद सम माना ॥
शम दम सद्गुण गेह महाना * राम भये भूमे अभिरामा ॥
सद्गुण सरित चहें तिंह ऐसे * सलिल सरित सर सिन्धु जैसे ॥
अम्भोनिधि सम अतल अगाधा * हिमगिरिसमसदाअटलअबाधा ॥
सौर्य्यादि गुण गण इमि सोहें * जिमिविधुकिरणनिखिलमनमोहें ॥
मृदुभाषी अनसूय त्यागी * जिमि निर्बाध ब्रह्म अनुरागी ॥
परुष सुन नहिं उत्तर दाता * जिमि निर्क्षोभ यथार्थ ज्ञाता ॥
वाग्मी ब्रह्मवंश सद सेवी * मानत जिन भूत नहिं देवी ॥
निस्तन्द्री अप्रमत्त प्रतापी * जाकी गति लह उधरें पापी ॥
शिल्पादि गुण गण का वेता * सेनादि विभाग का नेता ॥
को विद्या को गुण अस नामा * जाको मर्म न जानत रामा ॥

दोहा

सांगवेदवित राम थे, अखिल कला अभिराम ।
ताको चरित बखानना, बाल्मीक को काम ॥
सत्य वाक् श्रीराम की, अद्भुत कथा अनेक ।
सारभूत वर्णन करों, हिय धर सुनो विवेक ॥

चौपाई

कैकेयी ने जब यह चीन्हा * यद्यपि महाराज वर दीन्हा ॥
जब तक राम वचन नहिं होई * मम कारज कर सके न कोई ॥
यह जिय जान कहानी सारी * कैकेयी प्रति राम उचारी ॥
पितू बचन जब माने ताता * तब मैं कहूँ कैकेयी माता ॥
राम कहा किहि हेतु संदेहू * क्या जन प्राकृत जानेहु मोहू ॥
दृढ़ प्रतिज्ञ मुझे तुम जानो * पितू बचन सिर धर मैं मानो ॥
कहो मात का। दुष्कर काजा * स्व मुख ते नहीं भाषत राजा ॥
कहा मात सुन सुत परवीने * दो वर पिता तुम्हारे दीने ॥
भरत अवधपति होवे राजा * मानें तेहि सब राज समाजा ॥
दूसर वर नहीं जात बखाना * जो तुमरे पितु ने नहिं माना ॥
राम धरे तापस को वेषा * तजे अवधपुर सकल विशेषा ॥
सुनी राम यह दारुण बानी * हिय में शंक कछू नहिं आनी ॥
कहा मात तव आशा जोई * राम करेंगे पूर्ण सोई ॥
कहु को जन्मा अस भव माहीं * राम समान चरित महि जाहीं ॥
भीष्म भीम भये व्रत धारी * तजे धर्म हित राज प्रवारी ॥
वन कंटक संकट सहे नाना * पर भीरूपन मन नहीं आना ॥
यद्यपि थे यह दृढ़ व्रती नीके * रामचरित पढ़ तद्यापि फीके ॥
कारण यह ते घातिक भाई * राम भरत हित तजी प्रभुताई ॥

या अन्तर से राम महाने * वनिता बाल वृद्ध सब जाने ॥
कहों उच्चता ताकी आना * जाह्यु मोर मन मुदित महाना ॥
राजघोषणा जब यह होई * राम हरे नहिं वस्तु कोई ॥
चीर जटा धर तापस वेषा * राम करे कानन परवेशा ॥
चीर वसन जब धरे रघुवंशा * मुनि सम भये राज अवतंशा ॥
तब माता कैकेयी विचारी * जनकनन्दनी सङ्ग जो नारी ॥
ताको चीर वसन पहनावो * तब रामहिं वनवास पठावो ॥
यह सुन भा दारुण दुःख राजा * शोक बारिधि मग्न समाजा ॥
नीतिनिपुण अमात्य मिल सारे * सोचन लगे नीति नय भारे ॥
सिद्धारथ मन्त्री जो पुराना * निखिलनीतिनयनिपुणनिधाना ॥
तिन यह तर्क अपूरव दीन्हा * मन्त्री पद चरितार्थ कीन्हा ॥
वर एहा जु राम वन जावे * सीतहिं किहि विधि चीर पहावे ॥
पतिहित वन गमने जो नारी * तिहिं अपराधहिं कौन विचारी ॥

दोहा

सीता सुकुमारी बधू, केहिं विधि बांधे चीर ।
देख दृश्य रघुवंशमणि, रहे धीर के धीर ॥

चौपाई

देख दृश्य यह चीर विवादू * रामहि मन नहीं हर्ष विषादू ॥
पितु आज्ञा सिरधर श्रीरामा * किया जगत में अद्भुत कामा ॥
कहो को अस जन्मा भव माहीं * वहिषकार जाको न लजाहीं ॥
चीर वसन धर जहँ गज गमनी * दुर्गम विषम गमन करे अवनी ॥

सरित भयानक जेहि मग माहीं * नाना विषधर पथ पथ माहीं ॥
पथ दुर्गम अति विकट कराला * पद पद भूमि भरे बहु व्याला॥
सिंह द्वीपि द्विप हिंसक नाना * कानन सतत विपत्ति निधाना ॥
नाना विध परिपन्थि जामें * कहा राम विचरें सीय तामें ॥

दोहा

या विधि सीय निषेध हित, बहुविध किय उपदेश ।
सिय पतिव्रतपथ ना तजा, सिर धरे निखिल क्लेश॥

चौपाई

धर्म धुरीण राम की करणी * मुख सहस्र से जात न वरणी ॥
चित्रकूट जब किया निवासा * तज भव भोग निखिल अभिलाषा॥
इक दिन बनशोभा अभिरामा * देख रहे सीता संग रामा ॥
बन तरु वरषहिं सुमन अनेका * मनहुं राम दें राज्यभिषेका ॥
मन्दाकिनी जल निर्मल ऐसे * उदित विवेक मनोगति जैसे ॥
साधु समागम मज्जन करहीं * जिमि स्नातक व्रत ब्रह्म उधरहीं॥
कहुँ कहुँ हवनाग्नि द्युति छाजे * मनहुँ उषासङ्ग दिनकर राजे ॥
विन्ध्यगिरि सानु सोहें ऐसे * युद्ध मध्य वर वारण जैसे ॥
घोर नाद भया तत्क्षण भारी * मनहुँ प्रलय हित चढ़गयो वारी॥
तरुतरु तर व्यापत भये योधा * मनहुँ कल्प यम किया निरोधा ॥
कोउ कोउ तुङ्ग तुरङ्ग नचावत * मनहुँ भूमि यमधाम पठावत ॥
वन द्विप यूथप भागे ऐसे * दावानल से मृगगण जैसे ॥
बन पक्षी व्याकुल भये सारे * मनहुँ काल अब करत संहारे ॥

सेनघटा चहुँ दिक उमड़ाई * प्रावृट घट जिमि हिम गिरि छाई॥
देख राम मन भयऊ न क्षोभा * जिमि विरक्त मन उपजे न लोभा॥
सहज स्वभाव कहा रघुवीरा * देखहु लक्ष्मण सेन सभीरा॥

दोहा

लक्ष्मण सेना देखकर, बोले बचन सक्रोध।
तुम वध हित सेना कसी, भरत राज्य के लोभ॥

चौपाई

राज्य लोभ की कथा विशाला * बन्धुदहे इमि जिमि वन ज्वाला॥
भ्रात तात को गिने न कोऊ * राज्य प्रमाद उदय जब होऊ॥
एक उदर ते जो नृप जाये * राज्यविरोध भये सो पराये॥
कोटिन कोटि भूपदल भारी * समर सरित में बहे बहु बारी॥
तात मात पितु बध का दोषू * मानत नाहिं राजमद रोषू॥
इमि जिय जान लषण भये क्रोधा * समय पाय जिमि टरे न योधा॥
कहा लषण सुनिये रघुराजू * भरत बटोर लिआय समाजू॥
सुनहु नाथ कहहूँ कर जोरे * किये अपराध भरत नहीं थोरे॥
प्रथम हमें बनवास पठाया * अब सेना ले मारन आया॥
इमि कह लषण नीतिनय सागा * मनहुँ बीर रस सोया जागा॥
सीतहिं गिरि गुह मध्य पठावो * रिपुऋण साग उऋण ह्वै जावो॥
सन्नद्ध होय धनु बाण सम्भारो * रघुकुल पङ्क कलङ्क निवारो॥
आततांई बध पाप न कोउ * निगमागम इमि गावत दोउ॥
प्रथमे अपकारी जन जोई * आततांई सम भाखा सोई॥

ताहिं बधे उर शङ्क न आनो * राजधर्म का तत्व पछानो ॥
राम सुनी यह सगरी बातें * हिमकरसम कछु भये न तातें ॥
धीरज धर्म विटप हिय जाको * कोउ क्षोभ करसकत न ताको॥
पुरुष अयुक्त चहे जिमि योगा * जिमि क्लीव चहे रतिकृत भोगा॥
चहे अविवेकी मोह तम टारी * पतिव्रतधर्म कुशीला नारी ॥
तिमिहि राम उर करना रोषू * भरत त्रिषयक सुनाकर दोषू ॥

दोहा

लषण वीररस आगको, राम वचन बहुवार ।
बन्धूबध सम अन्य नहिं, जग में अत्याचार ॥

चौपाई

जिमि कृशानु शमने जग वारी * नशे मोह जिमि पढ़ श्रुतिचारी॥
जिमिकुलटा सतपथ मग सागे * चहत न जिमि ऐश्वर्य अभागे ॥
जन निर्मोह उदित नहिं कामा * जिमि सुकुमार स्वभाविक वामा॥
तिमिह वीररस लषण तियागा *जनु कायर रिपुरण लखभागा॥
रामबचन अस छेदी माया *जिमिहि ईश जग धरत न काया॥
सन्त हृदय जस उपजे न मोहू * ऊषर सस्य उदय नहिं होहू ॥
जिमि वस्तु सदसन्ता भाऊ * जिमि विकृत नहिं सन्तस्वभाऊ ॥
तिमिहिं लषण भये दूर अज्ञाना * मनहुँ ब्रह्ममग अज्ञ पछाना ॥

दोहा

लक्ष्मण को पुन लक्षधर, कही राम यह बात ।
जिन हित चाहें राज्य हम, हनें कहो कस तात ॥

चौपाई

धनुष बाण किहि काम हमारे * प्रियवर बन्धु भरत जब मारे ॥
असि धनुष भाथा रघुवंशी * कुलरक्षा हित धरें प्रशंसी ॥
जिन स्वारथ लग निजकुलनाशी * तिनतें कौन कहो अघराशी ॥
जिमि आर्यगण गो प्रति पालें * कबहुँ वेदमत त्याग न चालें ॥
बाल वृद्ध जिमि हने न धीरा * दे धोखा नहिं मारत बीरा ॥
रोगातुर नारी अरु भीरु * इन पर वार तजे जिमि धीरु ॥
तिमिहिं भरत नहिं राम प्रहरहीं * राम दरश तिहिं पातक टरहीं ॥
या जग राज्यभक्त जिमि लोगू * सुख सम्पति पावत भवभोगू ॥
तिमिहिं भरत मम आज्ञाकारी * कहूँ लषण हिय सत्य विचारी ॥
भरत विषय दुर्बुद्धि जोई * तजो लषण मिथ्या मति सोई ॥
अस कह राम धर्ममर्यादू * कहा अन्त तज बाद विवादू ॥
यदि भरत मुझपै परिहारा * करे धर्म तज अत्याचारा ॥
तद्यपि मोह हनन तिहिं ऐसे * क्षत्रिय कुल गो भूसुर जैसे ॥
पितु बचन जब अवध तियागी * किहिं विधि बनूं बन्धु बधभागी ॥
अस कहि राम धनुषधर टेका * लक्ष्मण उर महा भयो विवेका ॥
पुनः भरत आबन्दन कीने * राम युगलपद कर गह लीने ॥
मनहुँ नीर मिला अवधि अगाधु * निश्चल भया पायगति साधु ॥
धर्म पेघ जिमि पाय समाधि * चञ्चल मनहिं मिटी सब आधी ॥
जुगनु कल्प अल्प जस आतम * भया अटल मिल ब्रह्म प्रमातम ॥

मनहुँ अनन्य भया भव भोगी * ब्रह्म पीयुष पिया जनु योगी ॥
भ्रातु प्रेम पयोनिधि वारा * मग्न भरत भूला संसारा ॥
पितु पश्चात्वादि दुःख सारे * भये दूर जिमि रविद्युतितारे ॥

दोहा

जटिल चीर धर भरत का, दीन खीन सुख हीन ।
रामधीर तिमि धृति तजि, जिमि जल शुष्कहि मीन ॥

चौपाई

कहो भरत को कारण भाई *तब तनु क्षीण लख्यो नहिं जाई॥
राज्य प्रजामहं भा का रोषू * उत नरेश तनु भया कलेशू ॥
अथवा कोउ मिथ्या अभियोगी* वृथा भया काराग्रह भोगी ॥
अथवा तब शासन के माहीं * नीति निपुण कोउ नेता नाहीं ॥
उग्रदण्ड से प्रजा विचारी * अथवा दीन दुःखी भई भारी ॥
जासुराज सुख सम्पति नाना *सो नृप नीति निपुण हम जाना॥
जासु राज पा प्रजा बढ़ाने * पण्डित भट नाना गुण जाने ॥
कला कुशल जहं शासन भ्राजें * दैशिक भूप विविध विध राजें ॥
जा शासन पा बढ़े समाजू * कुल कुरीति सुधरें सब काजू ॥
जासु कृपा पुर नगर मझारी * ज्ञान बढ़े जिमि प्रावृट् बारी ॥
नारि नर सब धर्म पछाने * पाप पङ्क से अति डरपाने ॥
शिक्षितगण लहइमि मही भ्राजहिं*मनहुँ सुमन दिये अब ऋतु राजहिं॥
जासु राज खलदल बलनाशी * सो सम्राट् भया अविनाशी ॥
साहस जासु राजमहं ऐसे * ऊपर तृण जामें नहीं जैसे ॥

दाम्भिक कुटिल कुमारग गामी * जा शासन में बने न नामी ॥
जा शासन पा प्रजा हर्षाये * दीन हीन कोउ नाहिं सताये ॥
इमि जग जा शासन परभाऊ * सुनहुँ भरत वह राज्य अथाहू ॥

दोहा

राम दिया पुन भरत को, राजधर्म उपदेश ।
जिहिं जाने जग में मिटे, हिय के निखिल क्लेश ॥

चौपाई

सभा समाज न होवत जामें * राजकता नाहिं जासु प्रजा में ॥
याजक यज्ञ नहीं व्रत नेमा * नहीं परस्पर होवत प्रेमा ॥
दूरदेश से बणिक विपारी * ना विचरें जिहिं राज्यमझारी ॥
भूषण हैमवती सुकुमारी * क्रीडा हित उद्यान मझारी ॥
विचर सकें न अराजक राजू * नहिं होवत तहँ धर्मसमाजू ॥
शास्त्र विबुध महाजन नाना * पा राजकता बढ़ें सुजाना ॥
पा वर्षा जिमि शस्य सुहाने * कुसुमाकर पा सुमन महाने ॥
तिमि राजकता जन बन फूले * नीति निपुण नृप जस अनुकूले ॥
दोष पञ्च नव का जो ज्ञानी * ता नृप की कहुँ होत न हानी ॥
नास्तिकभाव अनृत अतिक्रोधी * दीर्घसूत्र पुन विद्या विरोधी ॥
अविवेकिहिं मिल मन्त्र विचारी * एकाकी मन्तर निरधारी ॥
गुप्तमन्त्र रक्षा नहीं जाने * आलस तथा प्रमाद प्रधाने ॥
इन्द्रियाराम तथा परमादू * निश्चित अर्थ नहीं जिस आदू ॥
मङ्गल कर कोउ करे न कामा * सर्व मङ्ग चाहे संग्रामा ॥
नीतिनिपुण जग में नृप सोई * दोष पञ्च नव जाने जोई ॥

असकर राजधर्म उपदेशू * पुन पूछा कुल कुशल नरेशू ॥
पितू कुशल की गाथा जोई * पूछी राम भली विधि सोई ॥
कौसल्या कैकेयी माता * किहिं विध अहे कहो मम भ्राता॥
पुनः पुरोहित पूछे सारे * यज्ञ हवन जिनको अति प्यारे॥
पुनः राम पूछी यह बाता * कौन हेतु आये बन ताता ॥

दोहा

बद्धाञ्जलि पुन भरत ने,रामहि कहा सशोक ।
तव सनेह पीडा प्रबल,पितू भया परलोक ॥

चौपाई

यह कह भरत गहे प्रभु चरणा * मम अपराध क्षमो कर करुणा॥
विमत मात तव मम महतारी * जाके कारण भौं दुःख भारी ॥
जा कारण भये पिता प्रलोकू * नगर ग्राम सबमें भया शोकू ॥
राम विहीन अवध अकुलानी * जिमि मछली तड़फत बिनपानी ॥
इम कह भरत कही यह बानी * तज बन अवध करो रजधानी ॥

दोहा

अहो भरत अति खेद मम,मत निन्दोहु मम मात ।
जस गौरव मम पिता का, तथा पूज्य मम मात॥

चौपाई

मात दोष मत देवो ताता * भई वही जो लिखी विधाता ॥

मो प्रारब्ध कर्मफल जोई * ताको मेट सकत नहीं कोई ॥
मात केकयी नहीं कछु दोषू * वृथा धरो तुम तापर रोषू ॥
पिता किया तव राज्यधिकारी * मम किया चीर वसन तनुधारी ॥
पितू वचन मम पालन योगा * तुच्छ राज जानों भवभोगा ॥
यह सुन भरत भया अतिभीरू * नलिन नयन भर लाया नीरू ॥

दोहा

नीति निपुण कहा भरतपुन, सुनो राम रघुराज ।
चीर वसन तुम बन वसो, मोहि राजकेहि काज ॥

चौपाई

को अस राजधर्म तुम जाना * जामें लघु सुत होय प्रधाना ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई * राज्य करे सब से बड़ भाई ॥
तुम गुण गौरव अस भव माहीं * जा सम अन्य पुरुष कोउ नाहीं ॥
धर्मारथ अरु काम निकेतू * तुम पुन जगत जलधि के सेतू ॥
मर्यादा पुरुषोत्तम रामा * बाल वृद्ध जानें अरु वामा ॥
पितू वचन प्रतिज्ञा जोई * पूरण भई तुम्हारी सोई ॥
पुन पुन भरत कहे कर जोरी * चलो अवध यह विनती मोरी ॥
भरत समान भ्रातृ हितकारी * बन्धु भया नहीं जगत मझारी ॥
हुआ न होवन हार सुआना * यह हम भरतचरित पढ़ जाना ॥
रघुकुल भया भरत बड़ भागा * भ्रातुहित जिन राज तियागा ॥
सदाचार की शिक्षा भारी * भरतचरित पढ़ मिले अपारी ॥

दोहा

रामायण दीपक लखो, मध्यवर्ति सिय राम ।
भरत स्नेह जामें नहीं, सो दीपक किहिं काम ॥

चौपाई

राजपाट जिसने जग सारा * राम विमात बन्धु हित बारा ॥
कबहुं न मन अनिष्ट जिस आया * शुद्ध ब्रह्म जिमि ग्रसे न माया ॥
राम अनिष्ट भरत मन ऐसे * रवि मण्डल तम ग्रसे न जैसे ॥
मात कौसल्या के गृह जाके * कहा भरत यह शपथ उठाके ॥
यदि मम सम्मति से रघुराजा * गये विपन तज सकल समाजा ॥
तो मोको अघि जानो ऐसा * मात पिता गुरु हन्ता जैसा ॥
वेद विदूषक जो अघ लागे * जो अघ लगे धर्म के त्यागे ॥
अबला बाल वृद्ध के मारे * जो अघ लगे राज हत्यारे ॥
पीड़ प्रजा को कर जो लेता * बिन अपराध द्रव्य हरलेता ॥
साहसी बढ़े न रक्षा कोई * अस राजा जग में जो होई ॥
जो अघ अस राजा को लागे * जो अघ लगे सत्य के त्यागे ॥
सो अघ मोकों लगे अति घोरा * राम गमन में यदि मत मोरा ॥
जो राजा स्वप्रजा हित करता * विद्यादान दे दुर्गुण [illegible]ता ॥
निशदिन स्नेह करे अति भारी * जिमि सुत को पाले [illegible]री ॥
जो जन अस राजा के द्रोही * करें अनीति अकारण कोही ॥
जो पातक अस जन को होही * सो पातक मातर हो मोही ॥
मद्यपान से जो अघ लागे * जो भीरु है रण से भागे ॥
द्यूतासक्त अरु इन्द्रियारामी * जिस पातक से कौलिक कामी ॥
सायं प्रात शापि अघ जोऊ * सो अघ मोकों ताते होऊ ॥

यदि मम सम्मति से रघुवीरा * गये विपन धर तापस चीरा ॥
दस्यु हनन करें धन वाको * मांगत भीख मिले नहिं ताको ॥
कामी क्रोधी ह्वै आतम घाये * मित्र होय पुन द्रोह कमाये ॥
अग्निदाही जिमि पातक घोरा * जिमि निन्दक गुरुतल्पग चोरा ॥
होय अराजक जो जन भागे * जो अघमायिक दाम्भिक लागे ॥
एक ईश तजि नाना देवा * भूत पिशाचादिक की सेवा ॥
शुद्ध ब्रह्म तज अन्य पुजारी * जो अघ तजे विवाहित नारी ॥
जस अघ नार अनेक विवाहे * जस अघ होय दीन सन्ताये ॥
जो अघ लगे विप्र गो मारे * जों अघ लगे धर्म व्रत टारे ॥
इन सम होय अघी जन सोऊ * राम विपन में सहमत जोऊ ॥
इमि कह भरत पुनः धिक्कारा * किया आपको बारम्बारा ॥
को मो सम अस अन्य अभागा * दावानल वन कुल वन लागा ॥
भरत अग्नि जनु अस कुल दाहा *जिमि अन्तिम आहुति कर स्वाहा ॥
भ्रातु प्रेम की सीमा जोई * आज भरत से टूटी सोई ॥
पितु वध का मोहि लागत दोषू * किंहिं विधि करों मातु परितोषू ॥
धिक मम जन्म कैकेयी गेहा * याते मो में भये सन्देहा ॥
भवतु तथापि दैव सब जाने * पाप पुण्य जिससे नहिं छाने ॥

दोहा

इहि विधि विलपत भरत को, लीना हृदय लगाय ।
वन फिर आये राम पुन, मनहुँ गात लिये लाय ॥

चौपाई

दोष तुम्हार असम्भव ऐसे * उदित भानु तम नसे न जैसे ॥
उदित प्रबोध अज्ञान न टारे * हिम जिमि दग्ध करे वन सारे ॥

बन्ध्यासुत जस हो नरनाहू * उलट हिमांशु ग्रसे किनु राहू ॥
भरत राम परि पंथी ऐसे * निगम तजे आर्य्यगण जैसे ॥
इम बहुविध भरतहिं आश्वासन * राममातु दिया शान्ती शासन ॥
भरत प्रीति कवि वाग अतीता * रसिक कवि किमि वरणें गीता॥
प्रेमपयोधि तरङ्ग अपारा * कवि मति उडुप लहे किम पारा॥
जगत पयोनिधि भरत जहाजा * भवनिधि पार भये चढ़ि राजा॥
ते बूढ़े भवनिधी अभागी * बन्धु बधे जिन स्वारथ लागी ॥
इहि विधि सरस चरित्र अपारी * जाहि पढ़ें सुधरें नरनारी ॥
छोड़ दिये उत नहिं विस्तारे * मिथ्या बहुविधि के लिख डारे ॥
करं प्रक्षेप बढ़ाय कहानी * मिथ्या लिखी कथा मनमानी ॥
कहुँ कहुँ रिच्छ लंगूर मिलाके * मिथ्याभाव भरा बल लाके ॥
रामायण महिमा थी जोई * सत्यानृत मिल घट गई सोई ॥
यह लख लिखी रमायणव्याख्या * यथातथ्य यामें सब भाख्या ॥
भाग प्रक्षिप्त किये सब दूरी * जनु मुख मुकर लसे तज धूरी॥
सत्यधर्म मर्यादा केतु * भवसागर तरने का सेतु ॥
अस यश जाको सब जग छाया * ताको कहें ब्रह्म ग्रसा माया ॥
यदि राम होता अवतारा * निखिल जगत का सृजनहारा॥
तो किहिं हेतु मरीचिमाया * हेम तनूधर ताहि भुलाया ॥
माया छल में जो जन आवे * सो कैसे जगदीश कहावे ॥
रूप न रेख जासु नहिं काया * ब्रह्म नाम ताका श्रुति गाया ॥
सो किहिं विध नर तनुधर जन्मा * वेद कहत जिहिं सदा अजन्मा॥
नारद बाल्मीक सम्वादू * कविकृत पढ़ा रमायण आदू॥
तामें रामहिं पुरुष बताया * मर्यादा का सेतु गाया ॥
ताको विष्णवतार बताके * बाल्मीक का भाव मिटाके ॥

रामहिं कहा ईश अवतारा * रामायण का कर विस्तारा ॥
ताका कर संक्षेप सुनाया * नानाविध सन्देह मिटाया ॥
सहस चारदश दो रामायण * बाल्मीक मुनि किया उचारण॥
यह संख्या केचित जन माने * केचित अन्य करत परमाने ॥
हस्त लिखत पुस्तक मिलें नाना * जिनमें उत्तरकाण्ड न माना ॥
सहंसचार दो दश की बानी *उत्तरकाण्ड कवि आप बखानी॥
अन्य अनृत कथा विधि नाना * उत्तरकाण्ड में मिलें महाना ॥
रावण का कैलाश उठाना * हनुमान का सूरज खाना ॥
झूठ अनेक कवि ने मारे * उत्तरकाण्ड में मिलें अपारे ॥
बाल्मीकि ऋषि मुनिजन ज्ञानी *बरणे किमि मिथ्या अस बानी॥
ताते मिथ्या कथा मिलाई * जैसी जाके मन में भाई ॥
याते आर्य्यमुनि यह चीन्हा * उत्तरकाण्ड का भाव नवीना ॥
काण्डषटक मुनि आप बखाना * यामें मिलें अनेक प्रमाना ॥

दोहा

युद्धकाण्ड के अन्त में, भया राम अभिषेक ।
कथा समापत सब भई, रहा वृत्त नहिं नेक ॥

रामायण के अनेक स्थल प्रक्षिप्त हैं, इस भाव को हमने छन्दोवन्दी में ग्रन्थन किया है, अब यह दिखलाते हैं कि किस प्रकार की अश्लील तथा असम्भव कथायें इसमें समय के परिवर्तन से स्वार्थी लोगों ने भरदी हैं, जब पशुवध की प्रधानता का समय आया तब अश्वमेध यज्ञ में घोड़ा मारकर हवन करना बाल्मीकि के नाम से रामायण में प्रविष्ट कर दिया गया, इतना ही नहीं

इसके साथ २ बाममार्ग का बीज भी रामायण में भरदिया जो अत्यन्त अश्लील तथा घृणित है, वह कथा इस प्रकार है कि :—

एतच्छ्रुत्वारहः सूतो राजानमिदमब्रवीत् ।
श्रूयतां तत्पुरावृत्तं पुराणे च मया श्रुतम् ॥

बाल० सर्ग० ९ श्लो० १

यहां प्रकरण यह है कि जब राजा दशरथ ने पुत्रोत्पत्ति के अर्थ अश्वमेध यज्ञ करने का निश्चय करलिया तब सुमन्त्र ने राजा दशरथ से कहा कि इस यज्ञ के विषय में पुराण में मैंने एक प्राचीन इतिहास सुना है सो उसको आप सुनें (१) ऋत्विजों ने जो अश्वमेध यज्ञ करना कहा है उसका करना तो पुत्र के लिये युक्त ही है परन्तु उसमें मैंने विशेष यह सुना है कि आपके पुत्रोत्पत्ति विषय में ऋषियों के निकट आकर भगवान् सनत्कुमार ने पूर्व ही यह कथा कही थी कि काश्यपऋषि के पुत्र विभाण्डक मुनि और उनके पुत्र ऋष्यश्रृंग नामा होंगे और वह नित्य ही अपने पिता की सेवा करते हुए सदा वन में वास करेंगे और सांसारिक वासनाओं से सर्वथा पृथक् रहेंगे। २।३।४ हे राजन् ! लोक में महात्माओं के कथन किये हुए दो ब्रह्मचर्य्य हैं, एक मेखला, मृगचर्मादि धारण कर नियम से रहना और दूसरा ऋतुकाल में प्रथम की चार रात्रि छोड़ छठी आठवीं और दशवीं आदि युग्म रात्रियों में अपनी स्त्री से सम्भोग करना, यह दोनों ब्रह्मचर्य्य महात्मा ऋष्यश्रृंग के होंगे॥ ५।६ और वह अग्नि तथा अपने यशस्वी पिता की सेवा में प्रवृत्त रहेंगे, बहुत काल पश्चात् उसी समय में महाप्रतापी रोमपाद नामक राजा बहुत बलवान् अङ्गदेश में होगा, और शास्त्रमर्यादा उल्लङ्घन

करने से उसके राज्य में घोर अनावृष्टि बहुत दिनों तक होगी जिससे उसकी प्रजा को महान् दुःख होगा तब राजा दुःखित होकर बड़े २ वेदपारग प्राचीन ब्राह्मणों को बुलाकर पूछेंगे कि आप लोग सब के चरित्र जानते हैं सो जिन हमारे कर्मों से मेरे राज्य में वृष्टि नहीं होती उन कर्मों का प्रायश्चित्त बतावें ॥ ७। ८। ९। १०। ११ तब वह ब्राह्मण राजा से यह कहेंगे कि हे राजन् ! ऋष्यशृंग को सब उपायों से यहां लावें और उनका आदर सत्कार करके विधिपूर्वक अपनी शान्ता नामक कन्या उन्हें दें, उन ब्राह्मणों के बचन सुन राजा रोमपाद बड़ी चिन्ता को प्राप्त होंगे कि महाप्रतापी ऋष्यशृंग को किस उपाय से यहां

लासकने हैं ॥ १२। १३। १४। १५ फिर राजा अपने मन में विचार मन्त्रियों से सम्मति ले पुरोहित वा अन्य सेवकों को मुनि के लाने के लिये कहेंगे, परन्तु वह लोग राजा के बचन सुन विभाण्डक ऋषि के कोप से भयभीत हो नीचे मुख कर लेंगे अर्थात् वहां न जावेंगे और सोच विचार कर उनके लाने का उपाय राजा को बतलादेंगे तब राजा गणिका=वेश्याओं द्वारा ऋषिपुत्र ऋष्यशृंग को अपने यहां बुलावेंगे और उनके आते ही देश में भलेप्रकार वृष्टि होगी फिर राजा अपनी कन्या शान्ता का उनके साथ विवाह करदेंगे ॥ १६।१७।१८।१९ सो हे राजन् ! ऋष्यशृंग आपके मित्र रोमपाद के जामाता होने से आपके पुत्रोत्पत्ति की इच्छा से अवश्य आपका यज्ञ करावेंगे, यह सनत्कुमार का कहा हुआ बचन है, यह सुनकर राजा दशरथ बहुत प्रसन्न हुए और सुमन्त्र से बोले कि ऋषिश्रृंग के यहां आने का उपाय अवश्य बतलावें ॥ २०। २१ ॥

सुमन्त्रश्चोदितो राज्ञा प्रोवाचेदं वचस्तदा ।
यथर्ष्यशृंगस्त्वानीतो येनोपायेनमन्त्रिभिः ।
तन्मे निगदितं सर्वं शृणु मे मन्त्रिभिः सह ॥

बाल० सर्ग० १० । श्लो० १

राजा के इस प्रकार पूछने पर सुमन्त्र बोले कि रोमपाद के मन्त्रियों ने जिस उपाय से ऋषिशृंग को बुलाया वह मैं सब विस्तारपूर्वक कहता हूं आप मन्त्रियों सहित सुनें (१) राजा रोमपाद के पूछने पर मन्त्रियों सहित पुरोहितों ने राजा से कहा कि ऋष्यशृंग के बुलाने का हम लोगों ने निर्विघ्न यह उपाय सोचा है कि वह बन में तप तथा वेदाध्ययन में तत्पर रहने के कारण स्त्रियों के विषयसम्बन्धी सुख से सर्वथा अनभिज्ञ हैं, सो आप ऐसा उपाय करें कि इन्द्रियों के उत्तेजित करने में जो पदार्थ समर्थ हैं उन सबको एकत्रित करें फिर शीघ्र ही मुनि को यहां लाते हैं ॥ २ । ३ । ४ प्रथम तो सब वस्त्राभूषणों से अलंकृत रूपवती गणिका वहां भेजी जावें जो मुनि को विविध उपायों से लुभायमान करके यहां लावें ॥ ५ ॥ यह सुनकर राजा पुरोहितों से बोला कि " बहुत अच्छा " फिर राजमन्त्रियों और पुरोहितों ने ऐसा ही किया ॥ ६ ॥ सुअलंकृत गणिकाओं ने उस बड़े वन में प्रवेश किया और ऋष्यशृंग के आश्रम के निकट ही डेरा करके उनके दर्शन का उपाय करने लगीं ॥ ७ ॥ परन्तु पिता के दुलारे, धैर्य्यवान् ऋषि के पुत्र ऋष्यशृंग नित्य आश्रम में ही रहते थे वह आश्रम से बाहर न निकलते थे, तपस्वी ऋष्यशृंग ने आजन्मपर्य्यन्त नगर वा राज्य के स्त्री, पुरुष अथवा अन्य जीव कभी नहीं देखे थे, दैवयोग से एक दिन ऋष्यशृंग उन गणिकाओं

के आश्रम में पहुंच गये और उन वराङ्गनाओं को देखा, तब वह सब प्रमदा वस्त्राभूषणों से अलंकृत मधुरबाणी द्वारा गान करती हुई मुनि के पुत्र से बोलीं कि ॥ ८ । ९ । १० । ११ हे ब्रह्मन् ! आप कौन हैं, किस जाति के, किसके पुत्र, आपका कौन नाम, क्या काम करते और अकेले इस घोर वन में कैसे फिरते हो, यह हमें संशय है ? ऐसी कामरूप स्त्रियें उन्होंने वन में कभी नहीं देखी थीं उनके देखने से ऋषि को हार्दिक स्नेह होगया और कहने लगे कि हमारे पिता का नाम विभाण्डक और मैं ऋष्यश्रृंग नामक उनका औरस पुत्र अपने कर्म और नाम से जगत में विख्यात हूं ॥ १२ । १३ । १४ हे शुभदर्शन ऋषियो ! हमारा आश्रम यहां से बहुत समीप है यदि तुम वहां चलो तो हम तुम्हारी विधिपूर्वक पूजा करें, ऋषिपुत्र के उक्त बचन सुनकर वह सब उनके साथ आश्रम में आईं और ऋषिपुत्र ने अर्घ्य,पाद्य तथा फल मूलादि से उनकी भले प्रकार पूजा की उस पूजा को ग्रहण करके उन सबकी उत्कट इच्छा हुई कि इनको साथ लेचलें परन्तु विभाण्डक ऋषि के शाप से भयभीत हो शीघ्र ही अपने स्थान को चलीं और आते समय सब ने प्रेमपूर्वक ऋषि से आलिङ्गन कर कहा कि विविधप्रकार के हमारे भी फल स्वीकार कर भोजन कीजिये और देखिये यह कैसे स्वादु हैं तब उन्होंने उन विविधप्रकार के उत्तम मोदकों को खाया ॥ १५ । १६ । १७ । १८ । १९ । २० वह तेजस्वी ऋषि जो निरन्तर वन में ही वास करते थे उन्होंने ऐसे लड्डू कभी नहीं खाये थे सो उन्होंने सचमुच यही जाना कि यह एक प्रकार के फल हैं, फिर मुनिकुमार से कुछ पूछकर और यों ही अपनी कुछ

व्रतविधि कह विभाण्डक के शाप भय से वहां चिरकाल तक न ठहरकर शीघ्र ही चली आई, उनके चले आने पर ऋष्यशृङ्ग उनके स्नेह से दुःखित हुए उदासीन रहने लगे ॥ २१ । २२ । २३ फिर मन में बार २ चिन्तन करते हुए दूसरे दिन उन गणिकाओं के रमणीय आश्रम पर आये और उन्होंने दूर से ही उन ब्राह्मण देव को आता देख सब खड़ी होकर बड़े प्रेमपूर्वक मिलीं और बोलीं कि यहां पर भी बड़े उत्तम फल फूलादि हैं परन्तु यहां से भी बहुत उत्तम हमारे यहां हैं, यह सुन ऋषि का मन वहां जाने को होगया और वह सब प्रेमपाश में बांधकर उनको अपने देश में ले आईं ॥ २४ । २५ । २६ । २७ । २८ ॥ मुनि राज के वहां आने पर रोमपाद के राज्य में एकाएक बड़ी भारी वर्षा हुई जिससे सब प्रजा परमान्दित हुई, वर्षासहित मुनिराज के आने पर राजा रोमपाद ने उनको दण्डवत् कर सादर बिठाया, और न्यायपूर्वक मुनि का पाद्यार्घ्यादि से पूजा कर वर मांगा कि आपके प्रसाद से विभाण्डक मुनि हम पर कुपित न हों और इन गणिकाओं द्वारा बुलाने में आप भी क्रोध को प्राप्त न हों, मुनि से अभीष्ट वर पाय राजा उनको अपने अन्तःपुर में लेगये और वहां शान्तचित्त हो अपनी शान्ता नामक कन्या से उनका विवाह कर दिया, तब वह शान्ता को पाकर अति प्रसन्न हो सब कामनाओं से पूजित हुए उसके साथ रहने लगे ॥२९।३०।३१।३२।३३ ॥

भूय एव हि राजेन्द्र शृणु मे वचनं हितम् ।
यथा स देवप्रवरः कथयामास बुद्धिमान् ॥

बाल० सर्ग० ११ श्लो० १

फिर सुमन्त्र राजा दशरथ से बोले कि हे राजन् ! देवों में श्रेष्ठ बुद्धिमान् सनत्कुमार ने इसी कथा के प्रसङ्ग में पुनः कहा कि (१) इक्ष्वाकुओं के कुल में धर्मात्मा, सत्यवादी दशरथ नामक राजा होंगे, और उनकी अङ्गदेश के राजा रोमपाद से मित्रता होगी और उनके महाभागा शान्ता नामक कन्या होगी, फिर उन रोमपाद के निकट ऋष्यशृङ्ग को बुलाने के लिये राजा दशरथ जावेंगे, और वह कहेंगे कि हे धर्मात्मन् ! आप आज्ञा दें कि शान्ता कन्या के पति ऋष्यशृङ्ग हमारे कुल में सन्तानार्थ "पुत्रेष्टियज्ञ" करावें ॥ २ । ३ । ४ । ५ राजा दशरथ के उक्त वचन सुन मन में सोच विचारकर पुत्रवान् ऋष्यशृङ्ग को राजा रोमपाद दशरथ को देंगे, और उस ब्राह्मण को प्राप्त कर प्रसन्नचित्त हो राजा दशरथ "पुत्रेष्टियज्ञ" करेंगे, और यश की कामना वाले राजा दशरथ हाथ जोड़कर उस यज्ञ में ऋष्यशृङ्ग को ऋत्विज बनावेंगे, द्विजों में मुख्य ऋष्यशृङ्ग से राजा दशरथ यज्ञद्वारा पुत्र और स्वर्ग के लिये सैकड़ों कामनायें प्राप्त करेंगे, राजा के इस यज्ञ से उनके यहां अमितपराक्रमी, वंश को प्रतिष्ठित करने वाले, सब लोकों में प्रसिद्ध चार पुत्र होंगे ॥ ६ । ७ । ८ । ९ । १० ॥ यह कथा पूर्व सतयुग में देवों में श्रेष्ठ सनत्कुमार ने कही है, सो हे राजन् ! आप सेना वा वाहन सहित वहां जाकर सत्कार पूर्वक ऋष्यशृङ्ग को यहां लावें ॥ ११ । १२ ॥ सुमन्त्र के उक्त बचन सुन राजा दशरथ ने अति प्रसन्न हो वसिष्ठऋषि को बुला उनकी सम्मति लेकर रानी, मन्त्री तथा आमात्यों सहित मार्ग में वन तथा नदियों को धीरे २ लांघते हुए वहां गये जहां मुनिराज ऋष्यशृङ्ग थे,

वहां जाकर देखा कि राजा रोमपाद के समीप ब्राह्मणों में श्रेष्ठ विभाण्डक ऋषि के पुत्र ऋष्यश्रृङ्ग अग्नि के समान देदीप्यमान बैठे हैं,राजा दशरथ के वहां पहुंचते ही रोमपाद ने उनकी यथाविधि पूजा की,और मित्रता के कारण अति प्रसन्न हो ऋष्यश्रृङ्ग से उनको मिलाकर अपनी मित्रता का सम्बन्ध बतलाया ॥१३।१४।१५। १६।१७॥ फिर ऋष्यश्रृङ्ग राजा दशरथ की बड़ी प्रशंसा करने लगे, इस भांति राजा दशरथ वहां बड़े सत्कार के साथ सात आठ दिन रहकर राजा रोमपाद से बोले कि हे राजन् ! मैं तुम्हारी शान्ता नामक कन्या को उसके पति सहित अपने नगर को ले जाना चाहता हूं, इनसे मेरा बड़ा कार्य्य है, राजा दशरथ का यह कथन सुन रोमपाद ने कहा बहुत अच्छा यह आपके यहां अवश्य जायंगे, फिर राजा रोमपाद ने ऋष्यश्रृङ्ग से कहा कि आप अपनी भार्यासहित राजा दशरथ के नगर को जायं उन्होंने भी तथास्तु कह जाना स्वीकार किया ॥१८। १९।२०।२१॥ और राजा रोमपाद की आज्ञा प्राप्त कर स्त्री सहित चल दिये, फिर राजा दशरथ और रोमपाद परस्पर प्रसन्नतापूर्वक हाथ मिलाय हार्दिक प्रेम से मिलकर परमानन्दित हो राजा रोमपाद से आज्ञा ले सब समाजसहित अपने पुर को चल दिये, और अपने सुभूषित नगर अयोध्या में प्रवेशकर राजा ऋष्यश्रृङ्ग को अपने अन्तःपुर में लेगये और वहां उनकी यथाविधि पूजा की, फिर वह दम्पति कुछ काल सुख पूर्वक वहां रहे ॥२२।२३।२४।२५॥

पाठकगण ! यह कथा तो ऋत्विज ऋष्यश्रृङ्ग के लाने की है, अब आगे अश्वमेध का वर्णन सुनें:—

ततः काले बहुतिथेकस्मिंश्चित्सुमनोहरे ।
वसन्ते समनुप्राप्ते राज्ञो यष्टुं मनोऽभवत् ॥

बाल० स० १२।१

जब पतिसहित शान्ता को राजा दशरथ के यहां बहुत दिन बीत गये तब अति मनोहर वसन्त ऋतु के प्राप्त होने पर राजा के मन में अश्वमेध यज्ञ करने का विचार उत्पन्न हुआ (१) तदनन्तर अपने कुल की वृद्धि के लिये ऋष्यश्रृङ्ग को प्रणाम कर उन्हें यज्ञ कराने के लिये प्रथम वरण किया, मुनि ने स्वीकार कर कहा कि आप सब सामग्री एकत्रित करावें, यज्ञ के योग्य घोड़ा छोड़ें और सरयू के उत्तर तट पर यज्ञभूमि बनावें, फिर सुयज्ञ, वामदेव, सुमन्त्र, जावालि, कश्यप, पुरोहित वसिष्ठ और अन्यान्य वेदपारग ब्राह्मणों की सम्मति लेने पर उन्होंने भी कहा कि निःसन्देह अश्वमेध यज्ञ से आपके चार पुत्र होंगे, उक्त ब्राह्मणों की सम्मति से सब सामग्री एकत्रित की गई और यज्ञ के योग्य घोड़ा भी छोड़ा गया, फिर राजा दशरथ वसिष्ठ से बोले कि हे मुनिराज ! जैसा वेद में लिखा है उसी विधि से यज्ञ करावें जिससे यज्ञ के अङ्गों में कोई विघ्न न हो ॥२।३।४।५।६।७।८।९॥ फिर राजा ने अन्य कर्मचारियों और:—

कर्मांतिकान् शिल्पकारान्वर्धकान् खनकानपि ।
गणकान् शिल्पिनश्चैव तथैव नटनर्तकान् ॥

बाल० स० १३।७

शिल्पीकार, इन्जिनियर तथा भूमि खोदनेवाले कार्य्यकर्त्ता, ज्योतिर्वित् पण्डित और गणका=वेश्या तथा नट नर्तकों को भी

निमन्त्रण दिया ॥ ७ ॥ फिर राजा ने आज्ञा दी कि बहुतसी ईंटें लाई जायं जिनसे राजाओं के निवास योग्य सुन्दर मन्दिर बनाये जायं जिनमें स्नान भोजनादिकों की सब सामग्री विद्यमान हो, इसी प्रकार ब्राह्मणों के रहने के लिये सैकड़ों स्थान बनाये जायं जिनमें सब प्रकार के भक्ष्य, भोज्य पदार्थ सदा एकत्रित रहें, और पुरवासी तथा राज्यनिवासियों के लिये भी बैठने उठने के स्थान बनाये जायं, जो राजा लोग दूर २ से यज्ञ में निमन्त्रित होकर आवेंगे उनके लिये भी अलग २ सहस्रों स्थान जिनमें सब प्रकार का सुपास हो तैयार किये जायं, तैसे ही घोड़ों हाथियों के रहने के लिये स्थान बनाये जायं, नाना प्रकार की शय्या और नाना प्रकार के गृह जो योद्धा परदेशी आवेंगे उनके लिये निर्मित किये जायं, जो यज्ञ में आवें सबको सत्कारपूर्वक विविध प्रकार के अन्न दिये जायं, चाहें किसी वर्ण का क्यों न हो किसी का अनादर न कियाजाय, और जो यज्ञकर्म में लगे हों उनकी भी पूजा यथाक्रम कीजाय, कोई विपरीत कार्य्य न होने पावे, बड़ों की पूजा पीछे और छोटों की पहले कीजाय, क्योंकि जिन सेवकों की पूजा धन भोजनादि से अच्छी तरह कीजाती है वह चित्त लगाकर कार्य्य करते हैं, तब सब लोग वसिष्ठ से बोले कि अश्वमेध में आप जो २ बातें चाहते हैं वह सब यथावस्थित होंगी कोई कार्य्य न छूटेगा, तब वसिष्ठजी सुमन्त्र से बोले कि:—

निमन्त्रय स्वनृपतीन्पृथिव्यां येच धार्मिकाः ।
ब्राह्मणान् क्षत्रियान् वैश्यान् शूद्रांश्चैव सहस्रशः ॥

बाल० सर्ग० १३ । २०

अर्थ—पृथिवी में जो धर्मात्मा राजा लोग हैं उन सबको

निमन्त्रित करो और सहस्रों ब्राह्मण,क्षत्रिय,वैश्य तथा शूद्रों को भी देशदेशान्तरों से बुलाओ,और सत्यवादी,शूरवीर सब वेद शास्त्रों में निष्ठावाले मिथिलापुरी के राजा जनक, पुत्रसहित केकय देश के राजा को और अंगदेश के राजा रोमपाद को स्वयं जाकर लाओ, क्योंकि वह बड़े यशस्वी हैं, दक्षिणकोशला के राजा भानुमान् को भी बुलाओ, क्योंकि वह बड़ा शूरवीर तथा शास्त्र विशारद है, इत्यादि सम्पूर्ण नरेशों को बुलाने के लिये तुरन्त प्रबन्ध करो, वसिष्ठजी की आज्ञानुसार सुमन्त्र ने देशदेशान्तरों के नरेशों को बुलाने के लिये तुरन्त ही दूत भेजे और वसिष्ठ की आज्ञानुसार यज्ञ का सब कार्य्य होने लगा, फिर वसिष्ठजी सब सेवकों को बोले कि किसी को कोई पदार्थ निरादर तथा खेलपूर्वक न दियाजाय, क्योंकि अनादर से दिया हुआ पदार्थ दाता का विनाश करदेता है, इसमें संशय नहीं, निमन्त्रित हुए राजे महाराजे तथा प्रजागण महाराज दशरथ की आज्ञानुसार आने लगे और सबका सत्कार यथाविधि होने लगा, तदनन्तर वसिष्ठ ने राजा दशरथ से कहा कि महाराज यज्ञस्थान में यज्ञ की सब सामग्री तैयार है अब आप यज्ञस्थान को पधारें, तब राजा यज्ञस्थान में आये और वसिष्ठ तथा अन्य ब्राह्मणों से घिरे हुए शृंगीऋषि भी यज्ञमण्डप में पधारे और :—

अथ सम्वत्सरे पूर्णे तस्मिन्प्राप्ते तुरंगमे ।
सरय्वाश्चोत्तरे तीरे राज्ञो यज्ञोभ्यवर्तत ॥

बाल० स० १४ । १

अर्थ—एकवर्ष पूर्ण होने पर सर्वत्र घूम फिर कर जब अश्वमेध वाला घोड़ा जिस दिन अयोध्या में पहुँचा उसी दिन सरयू के

उत्तरीय किनारे पर राजा दशरथ का यज्ञ आरम्भ हुआ, ऋष्यशृंग को आगे कर महाराज दशरथ अश्वमेध यज्ञ करने लगे, यज्ञ करने वाले सब ब्राह्मण वेदशास्त्र के ज्ञाता थे सो सब कृत्य वेदानुकूल कराने लगे, न्यायशास्त्र के अनुसार कहीं न्यूनाधिक नहीं होता था, फिर प्रातःसवन, माध्यन्दिनसवन और तृतीयसवन, यह तीनों सवन यथाविधि किये गये, तदनन्तर इन्द्र देवता को भाग दिये गये और ऋष्यशृंगादि ब्राह्मणों ने स्वर तथा वर्णसहित मन्त्रों से सब देवताओं को आह्वान किया, इस यज्ञ में जितने ब्राह्मण तथा संन्यासी आदि आये थे उन सबको यथायोग्य भोजन तथा वस्त्रादि मिलते थे और सबको इतना स्वादिष्ट भोजन मिलता था कि भोजन करते २ कोई तृप्त ही नहीं होता था, इत्यादि ॥

यह सब कृत्य होने के अनन्तर अब पश्वालम्भ के लिये खम्भे गाड़ने की तैयारी हुई, बेल, खैर, पलाश, बहेरा और देवदारु के मोटे यूप=खम्भे गाड़े गये जिनको यज्ञकर्म में चतुर लोगों ने यथास्थान गाड़ा जो सुवर्ण के पत्रों से मढ़े हुए थे, फिर इन सब खम्भों को सुशोभित तथा चिकना करके सबकी पूजा कीगई, यह खम्भे यज्ञ में ऐसे सुशोभित होते थे जैसे स्वर्ग में सप्त ऋषि शोभित होते हैं, फिर पश्वालम्भ के लिये स्थान निर्मित किया, अर्थात् पशुयज्ञ के लिये अग्निस्थापन करने की वेदी यज्ञकर्म में कुशल ब्राह्मणों ने यथाविधि निर्माण की, और उक्त खम्भों में जिस देवता के लिये जो पशु अपेक्षित था वह सब बांधे गये, और जो घोड़ा यज्ञान्त में बलिदान किया जायगा वह भी शास्त्रानुसार ब्राह्मणों ने बलिप्रदानस्थान में बांधा, इस भांति उक्त यज्ञखम्भों से तीनसौ

पशु बांधे गये और फिर उनको तलवारों से हनन करके षोडश ऋत्विजों ने उनकी प्रज्वलित अग्नि में आहुतियें दीं, तदनन्तरः—

कौसल्या तं हयं तत्र परिचर्य्य समंततः ।
कृपाणैर्विशशासैनं त्रिभिः परमया मुदा ॥

बाल० स० १४ । ३३

अर्थ—उस घोड़े को महाराज दशरथ की कौसल्यादि तीनों रानियों ने भलीभांति पूजा करके एक खड्ग से बध किया, और फिर :—

पतत्रिणा तदा सार्धं सुस्थितेन च चेतसा ।
अवसद्रजनीमेकां कौसल्या धर्मकाम्यया ॥

अर्थ—धर्म की कामना वाली कौसल्या रात्रिभर उस घोड़े के निकट प्रसन्नचित्त होकर सोई और गर्भाधान के मन्त्र पढ़कर ऋत्विजों ने उस मृताश्व के साथ कौसल्या को नियोजित किया अर्थात् "प्रजनने प्रजननं सन्निधायोपविशति"= प्रजनन इन्द्रिय में प्रजनन इन्द्रिय का संयोग किया, इत्यादि विधि दिखलाते हुए वहां अनेक बातें अत्यन्त अश्लील लिखी हैं, जिनके लिखने से ग्रन्थ का गौरव घटता है, इसलिये यह थोड़ासा लिखदिया है ॥

ज्ञात होता है कि यह स्थल किसी वाममार्गी ने बाल्मीकि रामायण में लिख दिया है, अन्यथा पुत्रोत्पत्ति में इसका क्या उपयोग, जो इस विषय को विशेष रूप से देखना चाहे वह पूना की छपी हुई बाल्मीकि में इस स्थल को देखे जिसको योग्य पण्डितों ने शोधा है ॥

तदनन्तर सब वेदसम्पन्न ऋत्विजों ने उस घोड़े की चरबी को लेकर अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करके शास्त्र की आज्ञानुसार अग्नि पर चढ़ाया, उस समय चरबी तथा मांसादि के जलने से जो सुगन्धित धुआं निकलता था उसको महाराज दशरथ सूंघ २ कर अपने पाप भस्म करते थे, इस प्रकार सम्पूर्ण विधि करके अश्वमेधयज्ञ समाप्त किया, तदनन्तर ब्राह्मणों को दक्षिणा देकर राजा दशरथ पापों का नाश करने वाला तथा स्वर्ग देने वाला उत्तम यज्ञ समाप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुए ॥

इस प्रकार का "अश्वमेधयज्ञ" इस स्थल में वर्णन किया है जो ज्ञात होता है कि वाममार्ग के समय वाल्मीकि में मिलाया गया है, सो यह प्रक्षिप्त होने के कारण हमने निकाल दिया है ॥

और जो इसको टीकाकारों ने "गणानां त्वा गणपति ँ हवामहे" इत्यादि वेदमन्त्रों की प्रतीकें देकर वैदिक सिद्ध किया है यह उनकी भूल है, क्योंकि उक्त मन्त्र का मृत अश्व से कोई सम्बन्ध नहीं और नाही उन मन्त्रों का कोई सम्बन्ध है जिनका यहां गर्भाधान में विनियोग किया है, इस प्रकार समीक्षा करने से स्पष्ट प्रतीत होता है कि अल्पश्रुत लोगों ने वेदों का अर्थाभास करके उनको कलङ्कित किया है, वेद वास्तव में पवित्र शिक्षा को बतलाते हैं उक्त प्रकार की अश्लील तथा घृणित शिक्षा को नहीं ॥

वस्तुतः पुत्रोत्पत्ति के लिये पुत्रेष्टियज्ञ का उपयोग था और इसी इष्टि के निमित्त ऋष्यशृङ्ग को बुलाया गया था,जैसा कि आदि में लिखा है, यह बीच में अश्वमेध का अनुपयुक्त प्रकरण

वेद का नाम लेकर स्वार्थियों ने मिलाया है जिसका उपयोग राज्य के दृढ़ करने में है. और वहां भी अश्वादि पशुओं के पालन पोषण. में तात्पर्य्य है हनन में नहीं, पुत्रोत्पत्ति में पुत्रेष्टियज्ञ का विधान है जिसको हमने भी यथावस्थित रखा है ॥

और जो सर्ग १५ श्लोक १६ से लेकर इस स्थल में राम को अवतार सिद्ध किया है यह भी प्रक्षिप्त होने से आदरणीय नहीं, क्योंकि प्रारम्भ में बाल्मीकि ने जो नारद से प्रश्न किया है वह उत्तम पुरुष के जीवनचरित्र विषयक है ईश्वर के जीवन चरित्र विषयक नहीं, और इसी अभिप्राय से यह लिखा है कि:-

समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव ।
विष्णुना सदृशो वीर्ये सोमवत् प्रियदर्शनः ॥

बाल्मी० स० १।१७

अर्थ-राम गम्भीरता में समुद्र के तुल्य, धैर्य्य में हिमालय के समान और बल में विष्णुसम हैं ॥

इस कथन से स्पष्ट है कि राम विष्णु का अवतार न थे, यदि विष्णु का अवतार होते तो विष्णु के साथ तुलना क्यों कीजाती, जिस प्रकार समुद्र तथा हिमालय राम से भिन्न होने के कारण राम के उपमान हैं इसी प्रकार विष्णु भी यहां राम का उपमान है राम विष्णु नहीं, इसी अभिप्राय से इस सर्ग में राम को पुरुषविशेष सिद्ध किया है अवतार नहीं, फिर इस उपक्रम के विरुद्ध आगे जाकर राम को अवतार कहना भूल है, और जो:-

स हि देवैरुदीर्णस्य रावणस्य वधार्थिभिः ।
अर्थितो मानुषे लोके जज्ञे विष्णुः सनातनः ॥

अयो०कां० १।७

अथ विष्णुर्महातेजा अदित्यां समजायत ।
वामनं रूपमास्थाय वैरोचनिमुपागमत् ॥

बाल० २९।१८

अर्थ—रावण के वध के प्रार्थी देवों से प्रार्थना किया हुआ वह सनातनविष्णु रामरूप से उत्पन्न हुआ (२) महातेजस्वी विष्णु अदिति के गर्भ में उत्पन्न हो वामनरूप धारण कर राजा बलि के पास गया, इत्यादि श्लोक जो अवतार के बोधक रामायण में मिलते हैं यह सब प्रक्षिप्त हैं जिनके प्रक्षिप्त होने में प्रमाण यह हैं कि (१) राम का अवतार होना बाल्मीकि तथा नारद की प्रतिज्ञा के विरुद्ध है (२) राम की कथा से इसका कोई सम्बन्ध नहीं (३) तीसरा पुष्ट प्रमाण यह है कि :—

कौसल्यापि तदा देवि रात्रिं स्थित्वा समाहिता ।
प्रभाते चाकरोत पूजां विष्णो पुत्र हितैषिणी ॥

अयो० कां० २०।१४

अर्थ—राम के राज्याभिषेक समय कौसल्या ने समाहित चित्त होकर प्रातः उठ के विष्णु की पूजा की ॥

इससे स्पष्ट है कि राम विष्णु का अवतार न थे, क्योंकि यदि राम विष्णु का अवतार होते तो उनसे भिन्न विष्णु की पूजा उनके राज्याभिषेक निमित्त न कीजाती (४) "गुह" के समीप जाकर जब राम ने पर्णशय्या पर निवास किया है तब उस शय्या को देखकर भरत ने कहा किः—

यो न देवासुरैः सर्वैः शक्यः प्रसहितुं युधिः ।
तं पश्य गुह संविष्टं तृणेषु सह सीतया ॥

अयो० ८८।११

अर्थ-जो देव तथा असुरों से युद्ध में नहीं सहा जाता वह राम इन तृणों पर सीता के साहित कैसे सोया होगा, यदि राम अवतार होते तो इस समय भरत यह कहते कि साक्षात् ईश्वर होकर इस तृणशय्या पर कैसे सोये होंगे (५) जब मारीच के मारने समय लक्ष्मण ने सीता से यह कथन किया किः——

यो रामं प्रतियुध्येत समरे वासुवोपमम् ।
अवध्य समरे रामो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥

आरण्य० ४५।१३

अर्थ-इन्द्रतुल्य पराक्रम वाले तथा समर में अवध्य राम के साथ युद्ध करने में कोई समर्थ नहीं, इस श्लोक में राम को इन्द्र की उपमा दी है कि इन्द्रतुल्य बलवाले राम युद्ध में अवध्य हैं, यदि राम ईश्वर होते तो लक्ष्मण यह कहते कि राम तो साक्षात ईश्वर हैं, हे सीते ! तू क्यों शोक करती है वह मृग को मारकर आजावेंगे, इससे भी उनका ईश्वर होना नहीं पाया जाता, और नाही उनको सीता ने ईश्वर समझा था, यदि सीता उनको ईश्वर समझती तो मारीच के पीछे जाने पर उनके मारेजाने का सन्देह न करती ॥

भाव यह है कि जिसको अर्धाङ्गिनी सीता, सदा साथ रहने वाला लक्ष्मण, भरत और कौसल्या, आदि सम्बन्धियों में से किसी ने भी अवतार नहीं जाना तो उनको अन्य कवि अवतार कैसे जानसक्ता है, इससे सिद्ध है कि अवतारबोधक श्लोक कवियों ने पीछे से मिलाये हैं वास्तव में राम मर्य्यादापुरुषोत्तम पुरुष थे अवतार नहीं ॥

बालकाण्ड० सर्ग० ४८ में अहल्या तथा इन्द्र का दुराचार और अहल्या के पति गौतम का शाप देना, यह कथा उक्त स्थल में ऐसे घृणित आचार वाली है जिसको हमें यहां उद्धृत करते हुए भी लज्जा आती है ॥

इसी प्रकार बालकाण्ड० सर्ग० ६२ । ६३ में विश्वामित्र तथा मेनका की घृणित कथा इस प्रकार है कि :—

विश्वामित्रोऽपि धर्मात्मा भूयस्तेपे महातपाः ।
पुष्करेषु नरश्रेष्ठ दशवर्षशतानि च ॥

अर्थ—धर्मात्मा विश्वामित्र पुनः १००० वर्ष तक पुष्करतीर्थ में तप करते रहे, जब तप करते २ सहस्रवर्ष व्यतीत होगये तब तपस्या का फल देने की इच्छा से सब देवता लोग आये, उनमें ब्रह्माजी परम रुचिर बचन बोले कि हे विश्वामित्र! अब तक तो तुम राजर्षि रहे पर अब की तपस्या से आप ऋषि हुए हैं ब्रह्मर्षि नहीं, यह कह ब्रह्मा आदि देव तो अपने २ घर को चले गये और विश्वामित्र फिर तप करने लगे ॥ १ । २ । ३

कुछ काल पश्चात् मेनका नामक अप्सरा पुष्कर में स्नान करने की इच्छा से आई और उस मेनका को मेघ के बीच विजुली के समान चमकती हुई देखकर महातेजस्वी विश्वामित्र मोहित हो बोले कि हे अप्सरा! स्नान करके हमारे आश्रम पर निवास कर, यह सुन मेनका मुनि के आश्रम पर वास करने लगी, इस रीति से १० वर्ष तक मेनका सुखपूर्वक विश्वामित्र के आश्रम पर रही और मुनिराज को उसके साथ रमण करते हुए दश वर्ष व्यतीत होगये ॥ ४।५।६।७।८।९, तदनन्तर :—

स व्रीड इव संवृत्तश्चिन्ताशोक परायणः ।
बुद्धिर्मुनेः समुत्पन्ना सामर्षा रघुनन्दन ॥ १० ॥

अर्थ—मुनि को लज्जासहित बड़ी चिन्ता हुई और रात्रि दिन इसी शोक में रहने लगे, फिर क्रोध सहित उनको यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि हमारे तप में जो यह विघ्न हुआ है यह देवताओं का कर्म है अर्थात् उन्होंने ईर्षा से हमारा तप भंग किया है, अब हमको दशवर्ष ऐसे बीत गये हैं कि मानो एक दिन रात ही व्यतीत हुआ है, और फिर कहने लगे कि :—

काममोहाभिभूतस्य विघ्नोऽयं प्रत्युपस्थितः ।
स निःश्वसन्मुनिवरः पश्चात्तापेन दुःखितः ॥१२॥

अर्थ—हा शोक मोहित होकर मेरे तप में बड़ा विघ्न हुआ यह कह मुनिराज वार २ पश्चात्ताप करने लगे ॥

मुनिवर की यह दशा देखकर मेनका थर थर कांपने लगी कि मुनि अब शाप दिये बिना नहीं रहेंगे, परन्तु मुनि ने अपने तप के प्रभाव से अपना कोप शान्त कर मधुरवाणी द्वारा बोले कि तेरा कुछ दोष नहीं तू जा यह सब हमारा ही दोष है यह कह विश्वामित्र उसको छोड़कर तप की इच्छा से ब्रह्मचर्य्य में नैष्ठिकी बुद्धि कर उत्तर दिशा को चले गये ॥ १३।१४।१५ ॥

इस प्रकार की अश्लील गाथायें रामायण में अनेक पाई जाती हैं जिनकी समीक्षा करना व्यर्थ है, ऐसे लेखों को हमने रामायण से सर्वथा निकाल दिया है, क्योंकि ऐसी कथायें पाठकों को सर्वथा हानिकारक हैं ॥

अयोध्याकाण्ड० सर्ग० ९१ में लिखा है कि जब भरत अपनी चतुरङ्गिणी सेना, माताओं तथा मन्त्रियों सहित राम को लौटाने के लिये चित्रकूट को गये तब मार्ग में भरद्वाज के आश्रम पर पहुंच उनके दर्शन किये, भरद्वाज से बहुत कुछ वार्त्तालाप होने के अनन्तर उन्होंने भरत से कहा कि आप आज रात्रि को सेनासहित यहीं निवास करें प्रातः राम के समीप जायं, भरद्वाज के उक्त प्रकार कथन करने पर जब भरत ने सेनासहित उनके आश्रम में रहना मान लिया तब भरद्वाज ने आतिथ्यभाव से उनको निमन्त्रण दिया, तब भरत बोले कि वन में जिसप्रकार का निमन्त्रण अर्घ्यपाद्यादि से होता है वह आपने किया, अब इससे अधिक निमन्त्रण क्या करेंगे? यह सुन हंसकर भरद्वाज बोले कि मैं जानता हूं आप प्रीतिसंयुक्त होने से जो कुछ मिलजाय उसी में सन्तुष्ट होजाते हैं,हे मनुजर्षभ! हम आपकी इस सेना तथा सब बन्धुवर्ग को भोजन कराना चाहते हैं, सो हमारी इस प्रीति को आप पूर्ण करने योग्य हैं, फिर भरद्वाज भरत से बोले कि आप अपनी सेना को दूर टिकाकर क्यों आये सेना के सहित ही चले आते, यह सुन हाथजोड़ भरत बोले कि हे भगवन्! आपके भय से मैं यहां सेना को नहीं लाया, क्योंकि राजा वा राजपुत्र को चाहिये कि वह ऐसा यत्न करे जिससे तपस्वियों के स्थान पर कोई उपद्रव नहो, सेना के यहां आने पर अवश्य उपद्रव होता, क्योंकि सेना में बहुत घोड़े तथा बड़े २ मत्त हाथी, प्यादे और बहुत रथ हैं जो मेरे पीछे चलते हुए बहुत दूर तक भूमि को ढ़ाप लेते हैं, सो मैंने विचारा कि यह आश्रम के वृक्ष, जल, भूमि और पर्णकुटी आदि का नाश न करदें

इसीसे मैं उनको दूर छोड़कर अकेला आपके समीप आया हूं, तब मुनिराज भरद्वाज ने कहा कि कुछ उपद्रव न होगा आप सेना को यहां बुलावें, भरद्वाज की आज्ञानुसार भरत ने सेना को बुला लिया, तब भरद्वाज ने :—

अग्निशालां प्रविश्याथपीत्वापः परिमृज्य च ।
आतिथ्यस्य क्रियाहेतोर्विश्वकर्माणमाह्वयत् ॥११॥
आह्वये विश्वकर्माणमहंत्वष्टारमेव च ।
आतिथ्यं कर्तुमिच्छामि तत्र मे संविधीयताम्॥१२॥

अर्थ—अग्निशाला में जाकर आचमन तथा मार्जन करके आतिथ्यक्रिया के लिये विश्वकर्मा को बुलाया, और उस समय यह मन्त्र पढ़ा कि "त्वष्टा"=विश्वकर्मा को हम बुलाते हैं, क्योंकि सेनासहित हमने भरत का आतिथ्य करना है सो उनके लिये सब सामग्री उपस्थित करो, और वरुण, कुबेर तथा यमराज, इन तीनों लोकपालों वा इन्द्रादि अन्य देवताओं को भी हम आह्वान करते हैं, क्योंकि सेनासहित हम भरत का आतिथ्य भाव से निमन्त्रण करना चाहते हैं सो यहां आकर सब सामग्री एकत्रित करो, और फिर कहा कि :—

प्राक्स्रोतसश्च या नद्यस्तिर्यक्स्रोतस एव च ।
पृथिव्यामंतरिक्षे च समायांत्वद्य सर्वशः ॥१४॥
अन्याः स्रवन्तु मैरेयं सुरामन्याः सुनिष्ठिताम् ।
अपराश्चोदकं शीतमिक्षुकाण्डरसोपमम् ॥१५॥

अर्थ—जो नदियां पूर्ववाहिनी हैं, जो तिरछीं बहती हैं और जो पृथिवी पर तथा अन्तरिक्ष में बहती हैं वह सब आज यहां आवें, और यहां आकर कोई मैरेय=सुन्दर बनी हुई मदिरा और कोई इस के समान मीठा जल चुआवें ॥

आह्व देवगन्धर्वान्विश्वावसुहाहाहुहून् ।
तथैवाप्सरसो देवगन्धर्वैश्चापि सर्वशः ॥१६॥
घृताचीमथ विश्वाचीं मिश्रकेशीमलंबुषाम् ।
नागदत्तां च हेमां च सोमामद्रिकृतस्थलीम् ॥१७॥

अर्थ—और सब विश्वावसु हाहा, हुहू आदि गन्धर्व और अप्सरा देवियों को आह्वान करते हैं,और उनमें घृताची,विश्वाची, मिश्रकेशी, अलम्बुषा, नागदत्ता, हेमा, सोमा और अद्रिकृतस्थली अवश्य आवें ॥

जो स्त्रियां इन्द्र वा ब्रह्मा के निकट रहती हैं वह सब तुम्बुरु नामक गन्धर्व के सहित आवें, जो स्त्रियां उत्तर कुरुदेश में हैं वह सुन्दर स्त्रियां दिव्य वस्त्रभूषणों सहित अवश्य आवें ॥१८।१९॥

इह मे भगवान्सोमो विधत्तामन्नमुत्तमम् ।
भक्ष्यं भोज्यं च चोष्यं च लेह्यं च विविधं बहु॥२०॥
विचित्राणि च माल्यानि पादपप्रच्युतानि च ।
सुरादीनि च पेयानि मांसानि विविधानि च॥२१॥

अर्थ—भक्ष्य, भोज्य, चूष्य और लेह्यादि विविध प्रकार के अन्न यहां आकर भगवान् सोम उत्पन्न करें, वृक्षों से चुये हुए

विचित्र फूलों की मालायें तथा सुरा आदि पीने के पदार्थ और विविध प्रकार का मांस यहां उपस्थित हो,तब सब देवताओं के गण पृथक् २ आये और बड़ा उत्तम सुगन्धित पवन बहने लगा, उसके पीछे बड़ी दिव्य पुष्पवृष्टि हुई, सब दिशाओं में बाजे बजने लगे, उत्तम पवन बहने लगे, अप्सरा नाचने लगीं, देव, गन्धर्व गाने लगे और बीणाओं से सुर निकलने लगे, सब के कानों में दिव्य शब्द ने प्रवेश किया और सब सुनकर बड़े आनन्दित हुए ॥२२।२३।२४।२५।२६।२७।२८॥ विश्वकर्मा ने एक और विचित्र बात यह की कि चारो ओर पांच २ योजन तक भूमि समचौरस करदी, कहीं खाली तथा ऊंची न रही, और कहीं नील वैदूर्य्यमणियों के समान हरी घास जमगई, कहीं बेल, कटहर, बिजौरा, नीबू, आंवला आदि सुन्दर वृक्ष लग गये और उत्तर कुरुदेशों से बड़े २ दिव्य भोग के सामान आये और वहीं से किनारे २ वृक्ष लगी हुई एक सौम्या नाम नदी आई ॥२९।३०।३१॥ अनेकानेक चौमहले अतिसुन्दर महल आये, जिनमें नाना प्रकार की अटारीं तथा धौराहर बने थे, उत्तम२ तोरण बन्दनवार लगे थे और घोड़े तथा हाथियों के रहने के लिये अनेक बाजिशाला तथा दन्तिशाला आई, सुन्दर बन्दनवार लगा हुआ उज्वलफूलों की मालाओं से सुवासित, सुगन्धित जल से छिड़का हुआ दिव्य राजमन्दिर आगया, जिस में चौकोने अतिविशाल, सोने उठने बैठने आदि के अनेक प्रकार के स्थान बने हुए थे और पालकी, पीनस, तामदान आदि सवारी के यान, और देवताओं के भोजन सदृश सब प्रकार के रासीलेभोजन तथा उत्तम वस्त्र उपस्थित थे, शयन

करने वाले स्थानों में सब प्रकार के उत्तम बिस्तरों सहित बड़े २ दिव्य पलङ्ग बिछे हुए आये, इस रत्नजटित सर्वोत्तम मन्दिर में वसिष्ठ वा भरद्वाज की आज्ञा से महाबाहु कैकेयी के पुत्र भरत ने प्रवेश किया, और उनके पीछे मंत्री तथा पुरोहित लोगों ने भी उसी मन्दिर में प्रवेश किया, ऐसे उत्तम बने हुए भवन को देखकर सब लोग परमानन्दित तथा परम विस्मय को प्राप्त हुए ॥३२।३३।३४।३५।३६।३७॥ उसी महल में एक राजसिंहासन बना था जिसके निकट राजा के योग्य चंवर तथा छत्र लिये सब वस्त्राभूषणों से भूषित दास लोग खड़े थे, तब मन्त्रियों सहित जाकर भरत उस राजसिंहासन पर राजा की न्याईं विराजमान हुए, परन्तु जो सब से उत्तम स्थान बना था उस पर भरत नहीं बैठे किन्तु उसके लिये तो यही विचार किया कि यह राम ही के बैठने योग्य है, और उस आसन को प्रणाम कर उसी के निकट मुख्यमन्त्री के बैठने योग्य जो स्थान बना था उसी स्थान पर आप बैठ गये, और पश्चात् क्रम से यथोचित स्थानों में मन्त्री, पुरोहित तथा सेनापति आदि बैठे॥३८।३९।४०

ततस्तत्र मुहूर्तेन नद्यः पायसकर्दमाः ।
उपातिष्ठन्त भरतं भरद्वाजस्य शासनात् ॥४१॥
तेनैव च मुहूर्तेन दिव्याभरणभूषिताः ।
अगुर्विंशतिसाहस्रा ब्राह्मणप्रहिताः स्त्रियः ॥४२॥

अर्थ—तदनन्तर वहां पर उसी समय दूधसदृश जल वाली नदियां भरद्वाज की आज्ञानुसार भरत के सन्मुख आगई, और उसी समय दिव्य वस्त्राभूषण धारण किये हुए ब्रह्मा की भेजी

हुई बीससहस्र स्त्रियां आईं, और सुवर्ण, मणि, मुक्ता, मूङ्गा आदि धारण किये हुए कुवेर की भेजी हुई बीसहज़ार स्त्रियां तथा बीसहज़ार अप्सरा नन्दन वन से आईं जिनके दर्शनमात्र से पुरुष का मन विक्षिप्त सा होजाता था. नारद, तुम्बुरु तथा गोप आदि सूर्य्य समान तेजस्वी गन्धर्वराज भरत के सन्मुख आकर गाने बजाने लगे, और अलम्बुषा, मिश्रकेशी, पुण्डरीका और वामना आदि अप्सरायें भरद्वाज की आज्ञानुसार भरत के आगे आकर नाचने लगीं ॥४३।४४।४५।४६।४७॥ जो फूल देवलोक में सुनेजाते वा जो चैत्ररथ नामा वन में होते हैं वह सब भरद्वाज के तेज से उस समय प्रयाग में दृष्टिगत होते थे, बेल के वृक्ष मृदङ्ग बजाते,शमीवृक्ष ताल बजाते और पीपल के वृक्ष नाचते थे, यह सब प्रभाव भरद्वाज का था, सिरस, आंवला, जामुन आदि वृक्ष और वन में जो लतायें थीं वह सब स्त्रियों का रूप धारण कर उस समय भरद्वाज के आश्रम में आ बसी थीं ॥४८।४९।५०।५१॥

सुरांसुरापाः पिबत पायसं च बुभुक्षिताः ।
मांसानि च सुमेध्यानि भक्ष्यंतां यो यदिच्छति ॥५२॥
उच्छोद्यस्नापयन्तिस्म नदीतीरेषु वल्गुषु ।
अप्येकमेकं पुरुषं प्रमदाः सप्तचाष्ट च ॥५३॥

अर्थ—तदनन्तर सब लोग आपस में कहने लगे कि भाइयो जो लोग भूखे हों वह यथेच्छ भोजन करें अर्थात् खीर, हलवा तथा विविधप्रकार का मांस खायं और जो प्यासे हों वह दूध, शर्बत तथा मद्यपान करें, जैसे ही लोगों ने भोजन करने को मन

किया कि एक २ पुरुष के साथ पन्द्रा २ स्त्रियां नियत होगईं, कोई किसी अङ्ग में कोई किसी अङ्ग में उबटन लगाय अति सुन्दर नदी के तीर पर लेजाकर स्नान कराने लगीं, फिर उन विशालनेत्रों बाली बराङ्गनाओं ने उन सब को भलेप्रकार पोंछ मद्यादि मादक पदार्थ अपने २ हाथों से उठा २ कर पिलाये फिर सब साईस तथा हाथीवानों ने भी मादक द्रव्य भक्षण किये और उन्मत्त होकर उन्होंने अपने घोड़ों को भी न पहचाना कि कौन हमारा है और न हाथीवानों ने अपने २ हाथियों को पहचाना, इसप्रकार मत्त प्रमत्त होने से हर्षित हुई सेना बड़ी शोभा को प्राप्त हुई ॥५४।५५।५६।५७॥

तर्पिताः सर्वकामैश्च रक्तनन्दनरूषिताः ।
अप्सरोगणसंयुक्ताः सैन्यावाचमुदीरयन् ॥५८॥
नैवायोध्यां गमिष्यामो न गमिष्यामो दण्डकान् ।
कुशलं भरतस्यास्तु रामस्यास्तु तथा सुखम् ॥५९॥

अर्थ—जब सेना के लोग सब कामों से तृप्त हुए तब लाल चन्दन लगा २ कर अप्सराओं के साथ बिहार करते हुए मतवालों की सी बातें कहने लगे कि अब न हम अयोध्या को जायेंगे और न दण्डकारण्य को, भरत को कुशल और राम को सुख हो, और पैदल योद्धा वा हाथी घोड़ों के सवार भी इसी प्रकार कहने लगे, क्योंकि उनको कभी किसी ने मादक पदार्थ नहीं खिलाया था और यहां प्रायः मादक पदार्थ विशेषतः खाने को मिले इससे सब विक्षिप्त होगये, भरत के अनुयायी हर्षित हो२ कर कहने लगे कि जो स्वर्ग सुनते थे वह यही है, फूलों की

माला पहने हुए हज़ारों सैनिक नाचते, गाते तथा हंसते, हंसाते इधर उधर दौड़ते थे, उस समाज में न तो कोई ऐसा था जिसके उजले चाक बरक कपड़े न हों, सब साफ़ सुथरे वस्त्र पहने बाल साफ़ कर तेल फुलेल आदि लगाये हुए थे, जो वन उत्तर कुरुदेश से आया था उसके किनारे २ जो कुआं थे उन सब में खीर का ही चहला भरा था जो चाहता निकाल २ कर खालेता था, इसके अतिरिक्त गायें ऐसी थीं कि जो पदार्थ चाहो उन्हीं से दुह लो ॥

वाप्या मैरेयपूर्णाश्चमृष्टमांसचयैर्वृता ।
प्रतप्तपैठरैश्चापि मार्गमायूरकौक्कुटैः ॥ ७० ॥

अर्थ—बावड़ियों में मद्य भरा हुआ था सुन्दर हरिण आदि का मीठा मांस बनाबनाया भरा था और मृग, मुरैला, मुरगा आदि का मांस पृथक् २ कुण्डों में भरा हुआ था, खाद्य पदार्थ रखने के लिये सुवर्ण के सहस्रों पात्र थे, भात आदि रींधने के लिये भी सुवर्ण के एक लक्ष पात्र और भोजन करने के निमित्त सुवर्ण ही के दश करोड़ पात्र थे, इत्यादि बड़े सामान के साथ भरद्वाज ने भरत की सेना का निमन्त्रण किया, भरद्वाज के आश्रम पर लोगों ने इसप्रकार रमण किया जैसे देवता लोग नन्दन वन में रमण करते हैं ॥

भरद्वाजाश्रमे रम्ये सा रात्रिर्व्यत्यवर्त्तत ।
प्रतिजग्मुश्च ताः सर्वा गन्धर्वाश्च यथागतम् ।
भरद्वाजमनुज्ञाप्य ताश्च सर्वा वरांगनाः ॥८२॥

अर्थ—भरद्वाज के रम्यआश्रम पर इसप्रकार आनन्दपूर्वक

वह रात्रि व्यतीत हुई, प्रातःकाल होते ही भरद्वाज से आज्ञा लेकर वह सब स्त्रियां जहां से जैसे आई थीं वहां को वैसे ही चली गई और गन्धर्व लोग भी अपने २ लोक को चले गये परन्तु उन सब के चले जाने पर भी सम्पूर्ण मनुष्य मदोन्मत्त हुए दिव्य चन्दन तथा नाना प्रकार की दिव्य मालायें जिनमें पुष्प खिले हुए थे धारण किये उन्मत्त हुए फिरते थे ॥ ८१ ॥

रसिक जनों ने इस प्रकार की असम्भव और अश्लील अनेक गाथायें रामायण में भर कर इतना बड़ा विस्तार कर दिया है कि जिसका आद्योपान्त पाठ करना भी अति कठिन है, इस प्रकार के किस्से कहानियें एक उत्तम चरित्र में होने से पाठकों को लाभ के स्थान में बहुत हानि होती है, इसीलिये हमने ऐसी घृणित गाथाओं और बढ़ाई हुई कथाओं को निकालकर बाल्मीकि रचित रामायण पर ही टीका किया है जिसको पढ़कर पुरुष अपने जीवन को उच्च बनासक्ते हैं ॥

इस प्रकार की अनेक गाथायें बाल्मीकि रामायण में पाईजाती हैं, यदि उनको यहां यथावस्थित लिखाजाय तो ग्रन्थ बहुत बढ़ जाता है, इसलिये ऐसी कथाओं को दिङ्मात्र ही दर्शाया है ॥

हमारे विचार में जिन कथाओं में मद्य, मांस का वर्णन अथवा असम्भव बातों का निरूपण है वह सब पीछे से मिलाई गई हैं बाल्मीकि की रचना नहीं, किन्तु किसी आधुनिक कवि की रचना है, जो लोग यह कहते हैं कि जहां २ बाल्मीकि का नाम लिखा हुआ है वह सब बाल्मीकिकृत है उनके लिये पुष्ट प्रमाण यह है कि अयोध्याकाण्ड० सर्ग० ९५ तथा ९६ के बीच एक सर्ग है जिसकी समाप्ति में बाल्मीकिकृत लिखा है क्या यह सर्ग भी

वाल्मीकिकृत है ? जिसका विषय यह है कि चित्रकूट में राम एक सुन्दर कन्दरा में बैठकर जानकी को वन की शोभा दिखला रहे थे कि :—

शुद्धबाणहतांस्तत्र मेध्यान्कृष्णमृगान्दश ।
राशीकृतान्शुष्यमाणानन्यान्कांश्चनकांश्चन ॥
तद्दृष्ट्वाकर्म सौमित्रेर्भ्राता प्रीतो भवत्तदा ।
क्रियंतां बलयश्चेति रामः सीतामथान्वशात् ॥
बलिंप्रदायभूतेभ्य सीताथ वरवर्णिनी ।
तयोरुपददद्भ्रात्रोर्मधुमांसं च तद्भृशम् ॥
तयोस्तुष्टिमथोत्पाद्य वीरयोः कृतशौचयोः ।
विधिवज्जानकी पश्चाच्चक्रे सा प्राणधारणम् ॥
शिष्टं मांसं निकृष्टं यच्छोषणायावकल्पितम् ।
तद्रामवचनात्सीता काकेभ्य पर्यरक्षत ॥

अर्थ—इसी अवसर में लक्ष्मण दश काले मृग मार कर लाया तब राम उनको देखकर अति प्रसन्न हो सीता से कहने लगे कि हे सीते ! तू इनका बलिदान कर, तदनन्तर सीता ने बलिवैश्वदेव करके पश्चात् बहुतसा मद्य मांस दोनों भाइयों को दिया, जब वह दोनों भाई तृप्त होगये तब सीता ने अपना प्राणपोषण किया और शेष बचा हुआ मांस सूखने के लिये डाल दिया जिसको कौवे खाने आजाते थे और सीता उन्हें वार २ निवारण करती थी, इसीप्रकार वह कौवे सीता को बहुत सताते थे, एक कौआ जो उनमें बहुत धृष्ट था और जो राम के हटाने

पर भी नहीं हटता था वह सीता की ओर झपटा, इससे राम ने अत्यन्त रुष्ट होकर उस पर अपना अमोघ बाण छोड़ा तब वह कौआ इधर उधर बहुत भागा पर उसको कहीं भी शरण न मिली तब वह हारकर राम ही की शरण में आगिरा और आकर मानुषी बाणी से बोला कि हे राम ! मुझपर कृपाकरो, तब पाओं पर गिरे हुए उस कौवे को राम ने कहा कि यह मेरा अमोघ बाण है व्यर्थ नहीं जाता और तू अब शरण में आया है इसलिये इस बाण से तेरा एक अङ्ग भङ्ग अवश्य होगा और एक अङ्ग से हीन होकर जीना मरण की अपेक्षा उत्तम है, राम के इस वाक्य को सुनकर कौवे ने विचारा कि पण्डित को उचित है कि यदि सम्पूर्ण पदार्थ नष्ट होता हो तो आधे को बचावे, यह सोचकर कौवे ने राम से कहा कि हे राम ! मेरी एक आंख बचा लीजिये, फिर सीता के देखते ही राम का अमोघ बाण उसके एक नेत्र पर पड़ा, और वह काना हो राम को सिर झुकाकर चल दिया ॥

क्या यह सर्ग भी बाल्मीकि निर्मित है, यदि यह कहाजाय कि जिसके पीछे बाल्मीकि का नाम हो वह बाल्मीकि रचित ही है तो इसके पीछे भी बाल्मीकि का नाम इस प्रकार है कि "इत्यार्षे श्रीमद्रामायणे बाल्मीकीये आदिकाव्ये अयोध्याकाण्डे" लिखा है ॥

और जिनके मतानुसार बाल्मीकिरामायण में मिलावट है उन के मत का प्रभाव यह है कि यहां सब ने यह लिखा है कि "अयं प्रक्षिप्तः सर्गः"=यह सर्गप्रक्षिप्त है,जब यह प्रक्षिप्त है तो जिन स्थानों में इसी प्रकार मद्य, मांस तथा अश्वादि पशुओं का बध

किंवा अन्य अश्लील बातें लिखी हैं, वह प्रक्षिप्त क्यों नहीं, हमारे विचार में तो जिन २ स्थलों में ऐसी बातें लिखी हैं वह सभी प्रक्षिप्त हैं और वह मांसभक्षी तथा सुरापी लोगों ने पीछे से मिलाये हैं॥

इसी प्रकार वाल्मीकिरामायण जिसमें छः काण्ड थे उसमें सातवां "उत्तरकाण्ड" के नाम से मिलाया गया है जिस की कतिपय कथाओं को यहां उद्धृत करते हैं, जिससे ज्ञात होगा कि यह पीछे से बनाकर मिलाया गया हैं तपस्वी बाल्मीकि की रचना नहीं, जैसाकिः—

प्राप्तराजस्य रामस्य राक्षसानां बधे कृते।
आजग्मुर्मुनयः सर्वे राघवं प्रतिनन्दितुम् ॥१॥
कौशिकोऽथ यवक्रीतो गार्ग्यो गालव एव च।
कण्वोमेधातिथेः पुत्रः पूर्वस्यां दिशि ये श्रिताः॥२॥
स्वस्त्यात्रेयश्च भगवान्नमुचिः प्रमुचिस्तथा।
अगस्त्योऽत्रिश्च भगवान्सुमुखो विमुखस्तथा ॥३॥
आजग्मुस्ते सहागस्त्या ये श्रिता दक्षिणां दिशम्।
नृषङ्गः कवषीधौम्यः कौषेयश्च महानृषिः॥४॥
तेप्याजग्मुः सशिष्या वै येश्रिताःपश्चिमां दिशम्।
वसिष्ठः कश्यपोऽथात्रिर्विश्वामित्रः स गौतमः ॥५॥

जमदग्निर्भरद्वाजस्तेपि सप्तर्षयस्तथा।
उदीच्यां दिशि सप्तैते नित्यमेव निवासिनः ॥६॥

अर्थ—जब राम, रावणादिराक्षसों को मार फिर अयोध्या में आकर राजसिंहासन पर विराजमान हुए तब उनको बधाई देने के लिये सब मुनि लोग आये, पूर्व दिशा से कौशिक, यवक्रीत, गार्ग्य, गालव और मेधातिथि का पुत्र कण्व, दक्षिण दिशा से आत्रेय, नमुचि, प्रमुचि, अगस्त्य, अत्रि, सुमुख तथा विमुख, पश्चिम दिशा से नृषङ्ग, कवषी, धौम्य, कौषेय और उत्तर दिशा से वसिष्ठ, कश्यप, अत्रि, विश्वामित्र, गौतम, जमदग्नि तथा भरद्वाज, यह सप्तऋषि अपने शिष्यों सहित आये, और दूर निकट से सभी राजे महाराजे तथा राजकुमार भी आये ॥

तब राम ने प्रत्येक मुनि से कुशल पूछी और उन्होंने उत्तर दिया कि हम सब सर्वथा प्रसन्न हैं (१६) तदनन्तर सब ऋषियों ने राम से कहा कि बड़े भाग्य की बात है कि जो शत्रुओं को जीतकर कुशलपूर्वक आपको हम सब आया देखते हैं, और बड़े आनन्द की बात है कि सब लोकों को रुलाने वाले रावण को पुत्र पौत्रों सहित मारडाला, और यह और भी बड़े हर्ष की बात है कि हम लोग सीता सहित आपको आनन्दित देखते हैं (१७।१८।१९) हे महाबाहो! बड़े ही भाग्य की बात है कि मेघनाद के चलाये हुए ब्राह्मास्त्रादि से बचकर आपही विजयी हुए हैं, हम लोग महामायावी इन्द्रजित् का बध सुनकर अति प्रसन्न हुए, क्योंकि वह सब प्राणियों से अबध्य था, उसका बध सुनकर हम लोग बड़े विस्मय को प्राप्त हुए, यह बड़े भाग्य की

बात है, हे शत्रुकर्शन ! आपकी इसी भांति सदा जय हो, (२५। २६।२७।२८) ऋषियों के उक्त वाक्य सुनकर राम बोले किः—

भगवन्तः कुम्भकर्णं रावणं च निशाचरम् ।
अतिक्रम्य महावीर्य्यौ किं प्रशंसथ रावणिम् ॥२९॥

अर्थ—आप लोगों ने महाबलवान् कुम्भकर्ण तथा रावण का अतिक्रमण करके मेघनाद की इतनी प्रशंसा क्यों की, तब मुनिलोग बोले कि रावण के कुल, जन्म तथा वरदान पाने के सब वृत्त आपके प्रति कहते हैं आप ध्यानपूर्वक सुनें, (१।२।३):–

हे राम ! सतयुग में ब्रह्मा के समान ही उनका एकपुत्र पुलस्त्य नाम ब्रह्मर्षि हुआ, और वह महामति पुलस्त्य इन्द्रादि सब देवों को प्रिय तथा सब लोकों के लिये बड़ा इष्ट हुआ, वह पुलस्त्य तप करने के लिये सुमेरुपर्वत के निकट तृणविन्द्वाश्रम में जाबसे, और वहां वेदाध्ययन तथा अपनी इन्द्रियों को वशीभूत करते हुए तप करने लगे, परन्तु उनके आश्रम पर कन्यायें जाकर विघ्न करने लगीं जिनमें बहुतसी ऋषियों तथा नागों की कन्यायें थीं और कई एक राजर्षियों की अप्सरायें थीं, यह सब क्रीड़ा करती हुई अगस्त्यमुनि के आश्रम पर पहुंची (४।५।६।७।८।९) वहां जाने का कारण यह था कि एक तो वह स्थान सब ऋतुओं में भोगविलास करने योग्य था, क्योंकि वहां का वन अतिरमणीय होने के कारण वह वहां जाकर नित्य क्रीड़ा करती थीं अर्थात् गातीं, बजातीं, नाचतीं और अन्य हाव भाव दिखाती थीं (१०।११) इस प्रकार उस परमतपस्वी मुनि के तप में उन

कन्याओं ने बड़ा विघ्न किया, तब बड़े रोष से वह महामुनि पुलस्त्य उन कन्याओं से बोले किः—

या मे दर्शनमागच्छेत्सा गर्भं धारयिष्यति ।
तास्तु सर्वाः प्रतिश्रुत्य तस्य वाक्यं महात्मनः॥१२॥
ब्रह्मशापभयाद्भीतास्तं देशं नोपचक्रमुः ।
तृणविन्दोस्तु राजर्षेस्तनया न शृणोति तत् ॥१३॥

अर्थ—आज से जो कोई कन्या हमारी दृष्टि के सन्मुख आवेगी वह गर्भवती होजायगी, उस महात्मा मुनि का उक्त वाक्य सुनकर ब्राह्मण के शाप भय से और सब तो न आईं परन्तु राजर्षि तृणविन्दु की कन्या ने पुलस्त्य का बचन न सुना, और वह उसी आश्रम पर जाकर विचरने लगी परन्तु उसने अपने साथ की अन्य किसी सखी को न आया हुआ देखा, तब तप से स्वयं प्रकाशित महात्मा पुलस्त्य से प्रथम तो उस राजकुमारी ने वेदपाठ सुना, फिर पुलस्त्य की ओर भलेप्रकार देखा, ज्यों ही मुनि को देखा, कि वह राजकुमारी गर्भवती होगई और उसके सब अंग पीले होगये, तब वह कन्या अपनी ऐसी दशा देखकर बहुत उद्विग्नचित्त हो विचारने लगी कि यह क्या हुआ, यही विचारती हुई अपने पिता के स्थान पर पहुंची, (१४।१५।१६।१७।१८) तब उसका पिता उसको देखकर बोला कि तू अभी कन्या है विवाह हुआ नहीं फिर यह हमारे कुल में अयोग्य गर्भ तैंने कैसे धारण किया? पिता के उक्त बचन सुनकर लजाती हुई उस कन्या ने हाथ जोड़कर सब वृत्त पिता से कहा कि मैं अपनी सखियों की खोज में अकेली ही पुलस्त्य के

आश्रम पर गई थी और वहां मेरी यह दशा होगई और मैं भयभीत हुई घर चली आई हूं, तब राजर्षितृणविन्दु यह सुनकर अपने तपोबल से जानगये कि महात्मा पुलस्त्य के शाप से ऐसा हुआ है, फिर वह कन्या को साथ लेकर उनके आश्रम पर पहुंचे (१९।२०।२१।२२।२३।२४) और उनसे बोले कि :—

भगवंस्तनयां मे त्वं गुणैः स्वैरेव भूषिताम् ।
भिक्षांप्रतिगृहाणेमां महर्षे स्वयमुद्यताम् ॥ २५ ॥
तपश्चरणयुक्तस्य श्राम्यमाणेन्द्रियस्यते ।
शुश्रूषणपरा नित्यं भविष्यति न संशयः ॥ २६ ॥

अर्थ—हे भगवन् ! अपने गुणों से भूषित तथा अपने आप आई हुई मेरी इस कन्या रूपभिक्षा को आप ग्रहण करें, यह मेरी कन्या तप करते तथा श्रान्त इन्द्रिय हुए आपकी भलेप्रकार सेवा करेगी, इसमें संशय नहीं, धर्मात्मा राजर्षि तृणविन्दु के उक्त प्रकार कथन करने पर कन्या लेने की इच्छा वाले पुलस्त्य ने उसको प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार किया, तब तृणविन्दु कन्यादान कर अपने आश्रम पर चले आये और वह अपने गुणों से पतिसेवा करती हुई वहीं रहने लगी (२७।२८) कुछ काल पश्चात् मुनि प्रसन्न होकर उससे बोले कि मैं आज तुमको पुत्र देता हूं जो दोनों वंशों को बढ़ावेगा और जिसका एक नाम पौलस्त्य तथा दूसरा विश्रवा होगा, इसमें संशय नहीं (३०।३१) वह विश्रवा वेदाध्ययन तथा तप करते हुए अपने पिता पुलस्त्यमुनि के ही समान हुए, तब विश्रवामुनि को उत्तम आचरणों वाला जान भरद्वाज ने अपनी अति रूपवती कन्या

भार्या बनाने के लिये दी, कुछ कालान्तर में विश्रवामुनि ने अपनी भार्या में गर्भाधान कर उसमें से बड़ा अद्भुत पुत्र उत्पन्न किया जिससे ब्रह्माजी अति प्रसन्न हुए, और उन्हीं ने उसका नामकरणसंस्कार किया कि यह जगत् में वैश्रवण के नाम से प्रसिद्ध होगा, (५।६।७।८) उस वैश्रवण ने वन में निराहार हज़ारवर्ष तप किया तब महातेजस्वी ब्रह्मा उसके तप से प्रसन्न हो इन्द्रादि देवों को साथ लेकर उसके स्थान पर आये और बोले कि हे सुन्दर व्रत करने वाले वत्स! मैं तुम्हारे इस कर्म से बहुत प्रसन्न हुआ, हे महामते! अब वर मांग, क्योंकि तू वर मांगने योग्य है, तब वैश्रवण ने कहा कि हे भगवन्! मैं लोकपाल होकर लोक की रक्षा करना चाहता हूं, तब ब्रह्मा ने कहा बहुत अच्छा ऐसा ही होगा, क्योंकि इन्द्र, वरुण तथा यम इन तीनों लोकपालों को बनाय अब चौथा लोकपाल बनाया ही चाहते थे, सो वही चौथा स्थान तुम चाहते हो, सो हे धर्मज्ञ! अब तुम यहां से जाओ, तुम इन्द्र, वरुण तथा यमराज के तुल्य चौथे कुवेर नामक लोकपाल किये गये (१२।१३।१४।१५।१६।१७।१८) अपने चढ़ने के लिये यह सूर्य्यवत् प्रकाशित पुष्पकयान ग्रहण कर देवताओं के समान होओ, यह कह सब देवताओं सहित ब्रह्मा तो अपने स्थान को चले गये और कुवेर सब इन्द्रियों को वशीभूत करके अपने पिता विश्रवा से हाथ जोड़ बोले कि मैंने ब्रह्मा से मनमाना वरदान पाया है परन्तु उन्होंने मेरे रहने के लिये कोई स्थान नही बताया तब विश्रवा ने कहा कि विश्वकर्मा की बनाई हुई त्रिकूट के ऊपर लङ्कापुरी बड़ी रमणीय अमरावती के तुल्य है उसी पुरी में तुम जाकर वास करो, और वह पुरी

अब खाली पड़ी है, क्योंकि विष्णु के भय से सब राक्षस उसको छोड़कर भागगये हैं, तब कुबेर पिता की आज्ञानुसार वहां जावसे (२३ । २४ । २५ । २६ । २७ । २८) कुबेर के वास करने पर सब राक्षस इधर उधर से आकर फिर लङ्का में आवसे और वहां बड़ा मङ्गलाचार होने लगा नित्य कुबेर के आगे विमान पर अप्सराओं के नृत्य गीत होने लगे ॥

हे राम ! यहां तक यह कथा समाप्त हुई अब रावण की उत्पत्ति सुनिये :—

चिरकाल पश्चात् सुमाली नाम राक्षस रसातललोक से आकर मर्त्यलोक में विचरने लागा कि (२) क्या उपाय करें जिससे कुबेर की सी लक्ष्मी मुझे भी प्राप्त हो, इस प्रकार चिन्ता करता हुआ वह राक्षस सुमाली अपनी कैकसी नामक कन्या से बोला कि हे पुत्री ! तू मुनियों में श्रेष्ठ, ब्रह्मा के कुल में उत्पन्न पुलस्त्य के पुत्र विश्रवा को जाकर ग्रहण कर, क्योंकि जो तू विश्रवा मुनि को अपना पति बनावेगी तो हे पुत्री ! तुम्हारे भी ऐसे ही प्रतापी पुत्र होंगे, जैसे तेज से सूर्य्य के तुल्य कुबेर हैं इसमें संशय नहीं, इसके अनन्तर वह कन्या विश्रवा के आश्रम पर गई और उन के प्रार्थना करने पर विश्रवा ने उसको स्वीकार किया, हे राम ! उस कन्या ने मुनि के संयोग से कुछ काल-पश्चात् अतिभयंकर रूप अतिदारुण राक्षस उत्पन्न किया जिसके दश गल, बड़े दांत, अञ्जन के समान श्यामवर्ण, ताम्र-समान ओष्ठ, बीस हाथ, बड़ा मुख, कुछ लाली लिये हुए बाल और जो रावण नामा था ॥

फिर राम के पूछने पर अगस्त्य मुनि ने बतलाया कि रावण ने पहले तप द्वारा बल प्राप्त किया, फिर कुबेर को जीत कर उससे पुष्पकविमान छीना, और फिर पुष्पकविमान पर चढ़कर दिग्विजय किया और उस दिग्विजय में बड़े २ राजा तथा इन्द्र को भी जीता, इसी विजययात्रा में उसने हिमालय के एक बन में तप करती हुई एक दिव्यरूपवती कन्या देखी जिसका नाम वेदवती था, उसको देखकर रावण मोहित होगया और अपनी भार्या बनाने के लिये रावण ने उसको बहुत ही ललचाया, फुसलाया, धमकाया तथा भयभीत किया, जब किसी प्रकार भी उसने नहीं माना तब रावण ने उसको बालों से पकड़ लिया तब बालों को हाथ लगाते ही वेदवती ने उसका हाथ झटककर रावण से छुए बालों को उखाड़ कर फेंक दिया और जलती हुई अग्नि में भस्म होगई, भस्म होते समय स्वाभाविक ही उसके मुख से यह बाणी निकली कि जिस तुझ पापात्मा ने वन में मुझे सताया है इससे तेरे बध के लिये मैं फिर उत्पन्न होउंगी, सो हे राजन् ! वही वेदवती महाराज जनक के कुल में उत्पन्न हुई यह सीता है ॥

राम ने फिर अगस्त्य से पूछा कि हे भगवन् ! क्या उस समय ऐसा कोई राजा न था जो रावण का अभिमान तोड़ता, तब भगवान् अगस्त्य बोले कि हां दो राजाओं ने उसका अभिमान तोड़ा था, एक माहिष्मतीनगरी का राजा कृतवीर्य्य का पुत्र सहस्रबाहुअर्जुन और दूसरा बाली था इनकी कथा इस प्रकार है किः—

सहस्रबाहु अर्जुन नर्मदा नदी में जलक्रीडा का आनन्द ले

रहा था कि रावण पुष्पकविमान पर चढ़कर वहां पहुंचा और सहस्रबाहु को युद्ध के लिये आह्वान किया, तब दोनों का वहीं पर बड़ा घोर युद्ध हुआ, अन्त में अर्जुन से घुमाकर मारी हुई गदा की चोट से रावण व्याकुल होगया और पीठ न दिखलाता हुआ पीछे हटकर वहीं बैठगया, तब सहस्रबाहु ने उसको बांध लिया, और बांधकर माहिष्मती नामक अपनी पुरी को लेगया, यह सुनकर रावण का बाबा पुलस्त्य माहिष्मती में सहस्रबाहु के समीप गया, तब उस वृद्ध को आता देख सहस्रबाहु ने बड़ा सत्कार किया, और कहा कि हे भगवन् ! कैसे कृपा की, क्या कार्य्य है, आज्ञा दीजिये, तब पुलस्त्य बोला कि हे नरेन्द्र ! तेरा बल अतुल है तैंने मेरे पोते रावण को जीतकर बड़ा यश लिया है, तेरा नाम जगत् में प्रसिद्ध है, हे वत्स ! मुझ से याचना किया हुआ तू रावण को छोड़दे, तब सहस्रबाहु ने अतिथि पुलस्त्य के कथनानुसार रावण को छोड़ दिया, हे राम ! रावण का पराजय करने वाला दूसरा योद्धा बाली है, जिसकी कथा इस प्रकार है कि:—

बाली चारो दिशाओं के समुद्रों पर सन्ध्या किया करता था, और वह उस समय सब से बड़ा बली माना हुआ था, इसलिये बाली के बल की चर्चा सुनकर रावण युद्धार्थ किष्किन्धापुरी में पहुंचा, उस समय बाली घर न था, बाली के द्वारपालों ने रावण से पूछा कि आप किस प्रयोजन से आये हैं, रावण ने उत्तर दिया कि बाली से युद्ध करने के लिये आया हूं तब द्वार-पालों ने कहा कि:—

चतुर्भ्योऽपि समुद्रेभ्यः सन्ध्यामन्वास्य रावण ।
इदं मुहूर्त्तमायाति बाली तिष्ठ मुहूर्त्तकम् ॥

अर्थ–चारो दिशाओं के समुद्रों पर सन्ध्या करके बाली मुहूर्त्तभर में अभी आते हैं आप यहां मुहूर्त्तभर ठहरें, रावण ने वहां ठहरकर मुहूर्त्तभर भी प्रतीक्षा करना उचित न समझकर वहां ही दक्षिण समुद्र पर चला गया जहां बाली सन्ध्या करता था, बाली रावण को आता देखकर अचल बैठा रहा, जब रावण समीप आया तो उसको बगल में दबाकर सन्ध्योपासन करता रहा अर्थात् उसको दबाये हुए ही दक्षिण, उत्तर, पूर्व और पश्चिम के चारो समुद्रों पर सन्ध्या करके उसी तरह उसको घर लेआया और घर आकर उसको अपनी बगल से निकाला, तब व्याकुल हुए रावण ने बाली की असन्त स्तुति की, कि अहो आप और आपका बल धन्य है, और अपना नाम बतला कर कहा कि मैं तो युद्ध के अभिप्राय से आपके समीप आया था, और फिर रावण बोला किः—

सोऽहं दृष्टबलस्तुभ्यमिच्छामि हरिपुंगव ।
त्वया सह चिरं सख्यं सुस्निग्धं पावकाग्रतः ॥

अर्थ–हे वानरश्रेष्ठ ! मैंने तेरा बल भलेप्रकार जान लिया है, अब मैं तुम्हारे साथ अग्नि के सन्मुख सदा के लिये स्नेह से पूरित मित्रता चाहता हूं, तब अग्नि प्रज्वलित करके वह दोनों परस्पर एक दूसरे के मित्र बने, तदनन्तर रावण एक मास तक वहीं किष्किन्धापुरी में रहा और फिर लङ्कापुरी को चलागया ॥

इसी प्रकार एकवार रावण कैलाश में गया और वहां

उस समय महादेव जी ध्यानावस्थित थे, इस कारण शिवजी के गणों ने उसको आगे न जाने दिया, तब रावण अति क्रुद्ध हुआ और क्रोधित हुए रावण ने कैलाश के नीचे दोनों हाथ डालकर उसको धरातल से ऊपर उठालिया, जब कैलाश डोलने से शिव की समाधि खुली तब शिव ने रुद्ररूप धारण कर कैलाश को ऊपर से दबा दिया, और उसके दबने से रावण के दोनों हाथ कैलाश के नीचे दब गये, इसलिये रावण वहीं एकसहस्र वर्ष बैठा हुआ रुदन करता रहा "रौतीति रावणः"= वह रोता था इसलिये उसका नाम रावण पड़ा ॥

रावण के ऐसे बल का कारण जिससे वह हिमालय आदि पर्वतों को उठा लेता तथा सब सुरासुरों को दबा लेता था, उत्तरकाण्ड में यह लिखा है कि एक समय रावण ने दशसहस्र वर्ष निराहार तप किया, फिर एकसहस्रवर्ष के पूर्ण होने पर अपने एक सिर की आहुति अग्नि में चढ़ा दी, फिर एक सहस्रवर्ष के पूर्ण होने पर दूसरा सिर, एवं जब हज़ार २ वर्ष पश्चात् अपने ९ सिरों को काटकर अग्नि में चढ़ा चुका पुनः दशवें सिर को चढ़ाने के लिये तैयार हुआ तब ब्रह्माजी आये और आकर कहा कि हे दशानन ! मैं तुम पर अतिप्रसन्न हूं, तू कोई वर मांग, रावण ने यह वर मांगा कि मैं देवता तथा दैत्यों से अवध्य होजाऊं अर्थात् देवता तथा दैत्यों के युद्ध में मैं किसी से न मरूं, तब ब्रह्माजी ने कहा कि "तथास्तु"=ऐसा ही होगा, फिर ब्रह्मा जी ने यह भी कहा कि यह जो तुमने अपने सिर अग्नि में डाले हैं वह भी तुम्हारे लगजायेंगे, और ऐसा ही हुआ अर्थात् वह सिर फिर रावण के ज्यों के त्यों लग गये ॥

इत्यादि अनेक मिथ्याप्रलाप उत्तरकाण्ड में हैं जो किसी पुरुष की बुद्धि में नहीं आसकते, क्या कोई समझ सक्ता है कि बालि वास्तव में चारो समुद्रों पर सन्ध्या किया करता था, इतना वेगशाली तो कोई विमान भी नहीं होसक्ता कि जिसपर चढ़कर बाली दक्षिण, उत्तर, पूर्व, पश्चिम के समुद्रपर सन्ध्या कर आता हो, एवं शिरों को काटकर चढ़ाना भी सर्वथा असम्भव है तथा कैलाश का उठाना, दशसहस्रवर्ष निराहार तप करना और एकसहस्रवर्ष रोते रहना, इत्यादि सब बातें बाललीला के समान तथा प्रकृति नियम से सर्वथा विरुद्ध हैं ॥

उत्तरकाण्ड के कवि ने इन्हीं पर सन्तोष नहीं किया, किन्तु इनसे भी बढ़चढ़ कर असम्भव कथायें लिखी हैं जैसाकि हनुमान् के विषय में यह लिखा कि वह जन्मता ही सूर्य्य को भक्षण करने के लिये गया और सूर्य्य के समीप पहुंचा तब राहू ने देखा कि यह सूर्य्य के भक्षण करने को आरहा है तब राहु ने इन्द्र की शरण ली और इन्द्र तथा राहु दोनों मिलकर सूर्य्य को बचाने के लिये चले, इतने में हनुमान् ने राहु को फल समझकर उस पर आक्रमण किया, तब इन्द्रने उच्चस्वर से कहा कि तुम मत डरो मैं इसको हनन करता हूं, यह कहकर जब इन्द्र आगे बढ़ा तब इन्द्र के श्वेत ऐरावत हस्थी को देखकर हनुमान् ने इन्द्र पर आक्रमण किया तब इन्द्र ने अपने बज्र का परिहार करके हनुमान् को नभोमण्डल से नीचे गिरा दिया जिससे हनुमान् की हनु=ठोड़ी टूट गई, इसी कारण इस लड़के का नाम हनुमान् पड़ा, जैसाकि :—

मत्करोत्सृष्टवज्रेण हनूरस्य यथा हतः ।
नाम्ना वै कपिशार्दूल भविता हनूमानिति ॥

अर्थ—मेरे हाथ के बज्र लगने से इस बालक की हनु हत होगई है इसलिये आज से इसका नाम हनुमान् होगा, यह कहकर इन्द्र ने यह वर दिया कि यह आज से लेकर बज्र से कदापि बध न होगा, एवं सब देवताओं ने भिन्न २ वर दिये, वर देने का कारण यह लिखा है कि जब इन्द्र ने हनुमान् के बज्र मारा तब उसका पिता कुपित होगया और वह अपने पुत्र हनुमान् को लेकर एक गुफा में जाघुसा और सारे ब्रह्माण्ड का वायु बन्द होगया, इसलिये बिना वायु सब देव घबरागये, और इसी कारण सब ने पवन को प्रसन्न करने के लिये हनुमान् को वर दिये, किसी ने कहा तुम कभी न मरोगे, किसी ने कहा तुम अव्याहत गति हुए अर्थात् तुम स्वेच्छाचारी होकर युक्त पुरुषों के समान जहां चाहो विचरो और किसी ने कहा कि तुम्हारा शरीर बज्र का होजावे, इत्यादि अनेक असम्भव सामर्थ्य कवि ने उस स्थल में वर्णन किये हैं जो महर्षिबाल्मीकि के आशय से सर्वथा विरुद्ध हैं, क्या कोई कहसक्ताहैकि कोई बालक कूदकर सूर्य्यतकपहुंचजाय, अथवा सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की वायु बन्द होजाने से दुनियां भर के जीव कभी जीवित रहसक्ते हैं, यह सब बातें प्रकृति नियम से विरुद्ध हैं, इस प्रकार अनेकानेक मिथ्या कथायें इस काण्ड में भरी हैं जिनके लिखने से ग्रन्थ बहुत बढ़जाता है, इसलिये अधिक विस्तार न करते हुए संक्षेप से ही इसका भाव दर्शाया है, तत्त्व यह है कि यह उत्तर काण्ड पीछे से रचकर बाल्मीकि की कविता में मिलाया गया है, यदि यह काण्ड भी पूर्व के षट् काण्डों के साथ ही बनाया जाता तो इसका नाम भी पूर्व के काण्डों के समान विषय के अनुसार होता, इसका उत्तरकाण्ड नाम रखना ही इस बात को सिद्ध

करता है कि यह पीछे से बनाया गया है (२) दूसरी युक्ति यह है कि :—

श्रृणोति य इदं काव्यं पुरा बाल्मीकिना कृतम् ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥

अर्थ—जो क्रोध को त्यागकर श्रद्धावान् हुआ बाल्मीकि रचित इस काव्य को सुनता है वह सब दुष्कर कर्मों को सहज ही में करलेता है, इस कथन से सिद्ध है कि रामायण पूर्ण होचुका, क्योंकि ग्रन्थ के पूर्ण होने पर ही उसके महात्म्य का निर्देश होता है प्रथम नहीं, यदि उत्तरकाण्ड को मिलाकर यह ग्रन्थ समाप्त होता तो यहां छटेकाण्ड के अन्त में ग्रन्थ का महात्म्य लिखना निष्फल था, यदि यह कहाजाय कि बालकाण्ड के प्रथमसर्ग के अन्त में भी तो महात्म्य का कथन है वह समाप्ति सूचक क्यों नहीं ? इसका उत्तर यह है कि इस सर्ग में आद्योपान्त रामायण के विषयों का संक्षेप है,अतएव इसके अन्त में महात्म्य का आना समाप्तिसूचक नहीं होसक्ता (३) तीसरा प्रबल प्रमाण यह है कि बालकाण्ड के इस आदि सर्ग में रामायण के विषयों को संक्षेप से वर्णन किया है अर्थात् राम का बनोवास और वहां चित्रकूट तथा पञ्चवटी में निबास करना, फिर मारीच का मारना, हनुमान् तथा सुग्रीव से मिलाप, बाली का बध, रावण को मारना, सीता की अग्नि द्वारा परीक्षा लेना और अयोध्या में आकर राज्याभिषेक को प्राप्त होना, इत्यादि प्रसिद्ध २ कथायें प्रायः सभी इस सर्ग में संक्षेप रूप से वर्णन की हैं, यदि उस समय "उत्तरकाण्ड" होता तो उसकी कथाओं का संक्षेप भी इसमें होना चाहिये, था परन्तु उत्तरकाण्ड की कथाओं का गन्धमात्र भी इसमें न होने से सिद्ध

है कि यह काण्ड बाल्मीकिकृत नहीं, ज्ञात होता है कि रामायण की रचना के बहुत काल पीछे किसी कवि ने इस काण्ड को बनाकर रामायण में मिलाया है, और उसने ऐसी घृणित कथायें लिखी हैं जैसाकि गर्भवती सीता को घर से निकाल देना, इत्यादि, हमारे विचार में ऐसी २ बातों ने रामायण के गौरव को नष्ट करदिया है, क्योंकि राम जैसे महानुभाव के ऐसे भाव कदापि नहीं होसक्ते कि वह एक बिचारी अबला के साथ ऐसा भयानक वर्ताव करें (४) महर्षिबाल्मीकि की रचना का प्रकार यह है कि "समुद्र इव गाम्भीर्ये धैर्येण हिमवानिव"=राम गम्भीरता में समुद्र की भांति और धैर्य्य में हिमालय के समान थे. इस प्रकार महर्षि बाल्मीकि अपनी कविता में राम विषयक नाना प्रकार के अलङ्कार भरते हैं, यदि यह उत्तरकाण्ड महर्षि बाल्मीकि का बनाया हुआ होता तो इसमें भी उक्त प्रकार के अलङ्कार होते परन्तु नहीं हैं, और इस काण्ड में जहां हनुमान् का सूर्य्य भक्षण के लिये नभोमण्डल में उड़जाना लिखा है, ऐसे २ प्रसिद्ध विषय भी अलङ्कारों से सर्वथा शून्य हैं; इत्यादि युक्तियों से सिद्ध है कि यह काण्ड पीछे से मिलाया हुआ है ॥

इस प्रकार आद्योपान्त समीक्षा करने से प्रतीत होता है कि इस अत्युत्तम ग्रन्थ को स्वार्थी लोगों ने मिलावट करके इसके गौरव को नष्ट करादिया है, ऐसे उत्तम पुरुष का जीवन-चरित्र जिसको पढ़कर सब लोग मर्यादा में स्थिर होते थे उसको ऋच्छ, लंगूर तथा वन्दरों के भावों में पलटकर आर्य्यजाति के गौरव को घटा दिया है, महर्षि बाल्मीकि के लेखों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि सुग्रीव तथा बाली आदि बन्दर कदापि न थे और

न जामवन्तादि रीछ थे किन्तु मध्यभारत के रहने वाले आर्य्य पुरुष थे, इस भाव को हमने इस आर्य्यटीका में स्पष्ट रीति से सिद्ध करादिया है, जैसाकि हनुमान् का व्याकरण पढ़ा हुआ तथा वाग्मी होना, बाली का सन्ध्या करना तथा उनके कुल में वैदिकसंस्कारों का होना और तारा आदि स्त्रियों का मानुषी बाणी द्वारा भाषण करना, इत्यादि अनेक हेतुओं से इनका मनुष्य होना पायाजाता है ॥

और जो रावण के दश सिर कथन किये गये हैं वह एक प्रकार की उपाधि थी जैसाकि बंगदेश में अब भी न्यायशास्त्र के बड़े २ पण्डितों को तर्कपंचानन आदि उपाधियों से कथन करते हैं और उसको उत्तरकाण्ड की एक २ सिर कटकर चढ़ाने वाली कहानी ने इस भाव में परिणत करदिया है कि रावण के वास्तव में दश सिर थे और ऐसी अनृत कथाओं का यह फल हुआ कि पाश्चात्य कई एक विद्वान् इन गाथाओं का यह परिणाम निकालने लगे हैं कि वास्तव में राम कोई नहीं हुआ यह सब कल्पित कहानी हैं, ऐसी २ कल्पनाओं का कारण केवल वह मिथ्या कथायें हैं जिनको हम संक्षेप से उद्धृत कर आये हैं, सत्य यह है कि राम के वास्तविक चरित्र को कौन छिपा सक्ता और इस भाव को कौन मिटा सक्ता है कि जो आर्य्यजाति में सभ्यता तथा सदाचार की रेखा पाई जाती है इसका मूल एकमात्र राम का जीवनचरित्र ही है, क्योंकि एक पुरुष का एक स्त्री से विवाह होना, स्त्री का पतिव्रता होना और पुरुष का एक स्त्रीव्रती होना, इत्यादि सद्भाव राम के जीवनचरित्र का फल हैं ॥

वसु से भरी हुई सम्पूर्ण वसुधा को त्याग देना परन्तु कुल

में विरोधरूप ज्वाला को प्रदीप्त न होने देना, यह राम जैसे महा पुरुषों के शील का ही प्रभाव है, कहां तक कहें जो उच्चभाव आज़ आर्य्यजाति में पाये जाते हैं वह सब मर्यादापुरुषोत्तम राम के सच्चरित्रमूलक हैं, अधिक क्या जो कुछ सदाचार का चित्र आज भारतवर्ष में पाया जाता है उसका केन्द्र एकमात्र रामायण ही है, जैसाकिः—

मद्यप्रसक्तो भवतु स्त्रीष्वक्षेषु च नित्यशः ।
कामक्रोधाभिभूतश्च यस्यार्योऽनुमते गतः ॥

अयो० ७५।४१

अर्थ—जहां भरत ने शपथें उठाई हैं वहां एक यह भी शपथ है कि वह पुरुष मद्यपान तथा स्त्री में सदा प्रसक्त हो और जुआ तथा काम, क्रोध में सदा आसक्त रहे जिसकी सम्मति राम के बन जाने में हो, अधिक क्या "यथा मांसं यथा सुरा यथाऽक्षा परिदेवने" अथर्व० ६।७।१। इस भाव को बलपूर्वक रामायण ने ही दर्शाया है, एवंविध सदाचार सम्बन्धी अनेक रत्न रामायण में भरे हुए हैं जिनको हम स्व २ स्थानों पर दर्शा आये हैं, यहां विशेष दर्शाने योग्य बात यह है कि राम अपने बचन पालन करने में कैसे दृढ़ थे, जैसाकिः—

तद्ब्रूहि बचनं देवि राज्ञो यदभिकांक्षितम् ।
करिष्ये प्रतिजाने च रामो द्विर्नाभिभाषते ॥

अयो० १८।३०

अर्थ—हे देवि ! तू वह बचन कह जो राजा को अभीष्ट है,

मैं यह प्रतिज्ञा करता हूं कि उसको अवश्य पूर्ण करूंगा, क्योंकि राम दो वार भाषण नहीं करता अर्थात् राम अपनी प्रतिज्ञा को कदापि नहीं टालता, इत्यादि लेखों से राम का असन्त गौरव पाया जाता है, ऐसे २ अमूल्य रत्न जो आर्य्यजाति का सर्वस्व थे वह मिलावटरूप पङ्क में मिलकर कलङ्कित होगये हैं, जैसाकि उत्तरकाण्ड में यह लिखा है कि राम ने "शंबूक" नामक शूद्र का सिर इसलिये काट डाला था कि वह तप करता था, वह राम जो मनुष्यमात्र का मित्र तथा सब भूतों को अभय दान देने वाला था क्या वह किसी तपस्वी के साथ ऐसा वर्ताव कर सक्ता था, कदापि नहीं, श्रीराम के सद्‌गुणों के विषय में महर्षि वाल्मीकि यह लिखते हैं कि:—

रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य परिरक्षिता ।
रक्षिता स्वस्य धर्मस्य स्वजनस्य च रक्षिता ॥

वाल० १।१२३

अर्थ—राम जीवलोक के रक्षक और धर्म की रक्षा करने वाले थे, क्या ऐसे राम से सम्भव होसक्ता है कि उन्होंने तप करने के अपराध से किसी शूद्र को मारा हो, राम जिस समय हुए थे उस समय आर्य्यजाति के भाव यह थे कि "सत्यकाम जावाल" को अज्ञात कुल गोत्र होने पर भी गौतमऋषि ने उसको स्वभाव से ब्राह्मण समझा, राजा जानश्रुति के शूद्र होने पर भी उसको ऋषिरैक ने ब्रह्मविद्या का उपदेश दिया, और मतङ्ग के चाण्डाल होने पर भी उसको छन्दोदेव होने का अधिकार मिला, यह उच्चभाव उस समय आर्य्यजाति के थे, कहां तक कहें उस समय आर्य्य लोग, दस्युओं को भी शुद्ध करलेते थे,

जैसाकि मनुस्मृति तथा महाभारतादिकों में लिखा है, फिर राम ऐसे तुच्छहृदय कैसे होसक्ते थे कि किसी पुरुष का गला तप करने के कारण काट डालें, यह नीचभाव पौराणिक समय में आर्य्यजाति के हृदय में आये हैं कि शूद्रादि कोई भी उच्च न बनने पावे, इस लेख से स्पष्ट प्रतीत होता है कि यह "उत्तर-काण्ड" महाभारत से भी बहुत पीछे बनाया गया है, क्योंकि महाभारत के समय में भी मतङ्गादिकों को ऋषि तथा महर्षि होने का अधिकार था, इससे स्पष्ट है कि "उत्तरकाण्ड" बहुत नवीन है, जैसाकि इसके नाम से भी यही पाया जाता है कि उत्तर=पीछे से बनाया हुआ, अन्य युक्ति यह है कि उत्तरकाण्ड९८।१७ में यह लिखा है कि यह सब बाल्मीकि का किया समझा जायगा, इससे ज्ञात होता है कि यह किसी अन्य कविने लिखाहै, और इन कथाओं का राम के जीवनचरित्र के साथ कोई सम्बन्ध भी नहीं पायाजाता, राम के जीवन के साथ केवल राज्याभिषेक तक का सम्बन्ध है, अन्य जो लव, कुश की उत्पत्ति, सीता का घर से निकाल देना, सीता का धरती फटकर उस में समाजाना और अन्त में राम का सरयू में प्रविष्ट होजाना, इत्यादि बातें काव्य में नहीं वर्णन कीजातीं, प्रधान नायकों के नाश को कोई भी उत्तम कवि वर्णन नहीं करता ॥

और यदि एवं उत्तरोत्तर कथा बढ़ाई जायं तो सात क्या फिर तो कईएक काण्ड मानने पड़ेंगे, जैसाकि राम के उत्तरचरित्र के लिये "उत्तरकाण्ड" लव, कुश की उत्पत्ति के लिये "लवकुशकाण्ड" जैसाकि आजकल के छपे हुए तुलसीकृत रामायण में "लवकुशकाण्ड" को मिलाकर आठकाण्ड हैं, एवं राम

का "स्वर्गारोहणकाण्ड" बनाया जाय तो नवकाण्ड बनते हैं, यह सब नवीन कल्पनायें हैं, इस विषय में हम पूर्व बहुत लिख आये हैं, यहां केवल इतना ही लिखते हैं कि यदि इस काण्ड की रचना महर्षिबाल्मीकिकृत होती तो इसमें कविता के उच्च भाव अवश्य होते जैसाकि महर्षिबाल्मीकि सब काण्डों में प्रायः ऋतुओं का वर्णन करते हैं और ऋतुओं का उत्तम रीति से वर्णन करना ही कवि का महत्त्व है, और इस काण्ड में किसी ऋतु का वर्णन नहीं पाया जाता, इसलिये उक्त हेतुओं से यह काण्ड बाल्मीकि रचित नहीं, अब हम यहां महर्षि बाल्मीकिकृत षट् ऋतुओं को कविता में वर्णन करके कथा को समाप्त करते हैं ॥

अथ षट्ऋतुवर्णनम्

अब छः ऋतुओं का वर्णन करते हैं।

दोहा

ग्रीषम ऋतु आया कठिन, भया अन्त ऋतुराज।
लषणसहित रघुवंशमणि, बनमें रहे विराज ॥

चौपाई

तीक्ष्ण रविरश्मि जब जागी * दावानल बन बन में लागी ॥
क्षुद्र सरित सरिताकर सूखे * विषद विपन सब लागत रूखे ॥
चातक रटत तृषा के मारे * द्विप द्वीपि जल ढूंडत सारे ॥
तहाँ नीर जहँ नदी अगाधू * जिमि सद्गुण गण गेहासाधू ॥
शुष्क नीर भये व्याकुलमीना * बहु परिवारी जिमि धन हीना ॥
बणिक भिखार पथिक पथ त्यागे * जिमि कायर रिपु रण से भागे ॥

कोमल विटप सभी मुरझाने * जिमि सज्जन लख पाप डराने ॥
अर्क करीर पुष्प भये नाना * जिमि खल जनकर पाप महाना॥
ग्रीषम तेज भया अति भारी * बिन तपसी को सके ? सहारी ॥
सब हिम उपल अचाहिं नरनारी* तृट् तृष्णा नहिं जात निवारी ॥
सिता संग वारि बहु पीवहिं * केचित् नीर मीन सम जीवहिं ॥
विजन विआर महा सुखदायी * ताप निदाघ निखिल मिटजाई ॥
सलिल स्पर्श महा सुख दाता * मनहुँ अमीरस दिया विधाता ॥
ताप निदाघ मिटावे वारी * पाप ताप को जिमि श्रुति चारी ॥
हिमकर दिनकर उडुगण सारे * गुप्तरूप नहिं जायँ निहारे ॥
नभमण्डल में रेणू पूरी * रवि द्युति दूरकरी सब धूरी ॥
समय निदाघ भयानक ऐसा * बन द्रुम दावानल भय जैसा ॥
सिय वियोग ग्रीषम ऋतु आई* रामसरित जिहं माहिं सुखाई ॥

दोहा

ईश नियम यह जगत में, जब जब होवें पाप ।
योगी जन तनुधार तब, प्रगट ह्वैआवहिं आप ॥
तिमि निदाघ तप आग से, भया घोर सन्ताप ।
दिव्यतनूधर वरुण तब, प्रगट ह्वै आया आप ॥

चौपाई

जलदागमन समय पुन आया * श्याम घटा घन घोर लगाया ॥
हिमगिरि शिखर मेघ नभ छाये* कोटिन कोटि न जात गिंनाये ॥
मेघ सैन नभमण्डल व्यापी * जिमि सम्राट महा परतापी ॥
अखिल धरातल सिंचन कीन्हा* भूतधु सुभगरूप धर लीन्हा ॥

धरणी जलज नयन जल भारी* सिय वियोग जनु अश्रुधारी ॥
निसदिन तिमिर रहे घन छाया* मनहुँ अज्ञ जन लिपटी माया ॥
कहुँ कहुँ दिनकर आतप भासे * सत सङ्गत जिमि ज्ञान प्रकाशे ॥
दिनकर हिमकर अरु नभतारे * दीन हीन हत ज्योति विचारे ॥
जिमि पखण्डमत वेद दबाया * घन घमण्ड तिमिहिं नभ छाया॥
इषुसम तीक्ष्ण वर्षे नीरा * सिय हिय सुमिर दुखे रघुबीरा ॥
हिमगिरि शिखर जलदजलधारा* विजयमाल जनु हिमगिरि डारा ॥
नभ अभिषिक्त हिमाचल कीन्हा* मनहुँ राज्य मही मण्डल दीन्हा॥
तड़ित कड़क भय पथिक डराने* जिमि कायर रणलख भय माने ॥
प्रौढ़ प्रवाह भयङ्कर भारी * नदी नद बेग बहे बहुवारी ॥
तटिनी तट सब दीरण कीन्हे * प्रबल राज्य जिमि खलबल छीन्हे॥
निम्नोन्नत परिपूर्ण पानी * जनु सुराज्य पा प्रजा सुखानी॥
हरित दुकूल धरा शिर धरणी * शोभा जासु जाय नहीं वरणी ॥
तरु अंकुर नाना उपजाये * शुभ बधु जिमि सतसन्तति जाये॥
मीन मशक नाना भये प्राणी * जिमि सुराज्य पा प्रजा बढ़ानी॥
निविड़ घटा चढ़ आई कारी * मनहुँ प्रलयकर चढ़ गयो वारी॥
जीरण पर्ण प्रवाह बहाने * जिमि जरठापन तनू पलाने ॥
मल निदाघ धोवें जलधारा * मनो पाप जिमि पढ़ श्रुतिचारा॥
गङ्ग यमुन सरयू नद नारे * मिल पयोधि भये अतल अपारे॥
जनु जिय ब्रह्म पयोधि समाना* मिल भूमा भया क्षुद्र महाना ॥
क्षुद्र सरित पथ माहिं विलाये * कली पाय जिमि धर्म नसाये ॥
विपिन मझार बने सर नाना * जिमि भारत में पन्थ महाना ॥
गङ्ग यमुन सम जे परवाहा * मिल पयोधि भये अतल अथाहा॥
वैदिकमत जिमि पन्थ समाने * क्षुद्ररूप तज भये महाने ॥
रस रस जल भये पूरण टंका * जिमि हरि मिले राउ अरु रंका॥

दोहा

निलय विहग व्यापे सभी, घोरवृष्टि डर जान ।
जिमि खल दल बल नशतहै, राजदण्डभय मान ॥

चौपाई

चक्रवाक, खग मिले न खोजा * जनु खल छिपे राज के ओजा ॥
निखिल मही सतसम्पत्ति भ्राजे * वृटिशराज्य में जिमि लघु राजे ॥
दादुर मोर शिखी हर्षाने * जिमि सुराज्य पा सन्त महाने ॥
तृण तरुपल्लव बीरुध जामे * सत पथ समझ परत नहीं तामे ॥
जनु पथ वेदपुराणन छाया * कलूकाल जनु व्यापीमाया ॥
वर्षा ऋतु तिमि पन्थ लुकाने * पथिक ढूंडते फिरें भुलाने ॥
तृण तृण व्याप रहे बहु व्याला * जिमि पग पग में काल कराला ॥
तृण वीरुध छाये मग सारे * जहिं तहिं व्याल बसहिं मतवारे ॥
प्रावृट् काल भयङ्कर भारी * निस दिन इषु सम वर्षत वारी ॥

दोहा

सिय वियोग प्रावृट् घटा, घन घमण्ड नभ व्याप ।
सिय विहीन श्रीरामको, करत महा सन्ताप ॥
राज्य पाय सुग्रीव ने, रामहिं दिया भुलाय ।
मति विहीन सबही भये, प्रौढराज्यमद पाय ॥

चौपाई

नहुष वेणु सम भूपति भारे * भये राज्यमद पा मतवारे ॥
शब्द सुने पर धरे न ध्याना * होय राज्यमद जासु महाना ॥
देखे सब कछु दृष्टि न आवे * जासु राज्यमद हृदय समावे ॥
राज्य पाय सुग्रीव महाना * राम काज किञ्चित नहीं जाना ॥

बाली भय सुग्रीव डराने * रघुपति बिन कछु और न जाने ॥
सो भय रघुपति दूर मिटाया * बाली यमपुरधाम पठाया ॥
अब प्रभुता पाई सुग्रीवा * पाय राज्य भया अतुल असीवा ॥
को जन्मा अस पुरुष विज्ञानी * पा प्रभुता जस मति न मलानी ॥

दोहा

वृद्ध भई वर्षा मनहुँ, गया बुढ़ापा छाय ।
काश श्मश्रुश्वेतसम, भये शरद ऋतु पाय ॥

चौपाई

क्षुद्र सरित सर सूखे वापी * दुराचार कर जिमि जन पापी ॥
रवि रश्मि जल शोषण कीन्हा * अति व्याकुल भये जलचरमीना ॥
भो सुखिये जहँ नीर अथाहा * प्रजा सुखी जस पा नरनाहा ॥
क्षुद्रकीट मुये जल बिन सारे * जिमि धनहीन अनाथ विचारे ॥
गङ्ग यमुन तटिनी तट त्यागे * तजहिं मोह जिमि ब्रह्मअनुरागे ॥
जलद विलीन भये नभ माहीं * पाय पाप जिमि राज्य विलाहीं ॥
निर्मल सर सरसिज सुहिं कैसे * निराकार में संसृति जैसे ॥
धूड़ पङ्क धरणी दोउ सागे * भूतल सुभग मनोहर लागे ॥
घास पात किये दूर किसाना * मल विक्षेप जनु तजें बुद्धिमाना ॥
हलि हल रेख मिटाई सारी * निपुण भूप जनु प्रजा सुधारी ॥
स्वाति बूँद बिन चातक प्यासे * जिमि जनु लम्पटविषय अभिलाषे ॥
मशक दंश हिम त्रास मिटाने * पा सुराज्य जिमि दुष्ट पलाने ॥
उडुगण राजि विराजत ऐसे * राजसभा में मन्त्री जैसे ॥
उडुगण मध्य सोहिं शशि ऐसे * विविध प्रजा में राजा जैसे ॥

रवि आतप निश को शशि टारे * वेद धर्म जिमि पतित उधारे ॥
शरद गगन निर्मल पद पाया * जनु जन भक्त भया तज माया ॥
चन्द्र किरण नभ में अस सोहे * हितकर नृप जस सब मन मोहे ॥
शरद नदी निर्मल भया वारी * जिमि हरिजन त्यागहिं परिवारी ॥
क्षुद्र नदी अस तल भये रीते * जस जन होय युवाधन बीते ॥
गिरि गिरि में शारदि छवि छाई * मुदित मनोज मनहुँ रति पाई ॥
उष्ण वस्तु सब लागत नीके * शीत स्पर्श लगहिं अति फीके ॥
ज्वाल कृशानु लगे अति प्यारी * जिमि कामी जन को प्रिय नारी ॥
या कारण कपि राम विसारे * कामी जन कहु ? काके प्यारे ॥

दोहा

निर्मलऋतु को देखकर, लक्ष्मण कहा सशोक ।
राज्य पाय सुग्रीव अब, जाय वसा निज ओक ॥
शरद विषय सुख भोगमें, कपि भूला प्रभु काज ।
जिमि कामी जन त्यागहरि, सुख में रहे विराज ॥

चौपाई

सुन स्वारथरत कपि की गाथा * रघुवर धनुषबाण लिये हाथा ॥
कहा लषण से श्रीरघुराजू * वेग कहो तुम जाकर आजू ॥
काञ्चन पृष्ठ धनुष मम जोई * बालि अनुज बध कारण होई ॥
ज्या तल घोष सुनेगा भारी * राज्य पाय मम काज विसारी ॥
सो संकुचित नहीं यमधामा * जामें बालि भेजा रामा ॥
सो मारग तुम स्व हित जानो * राम बचन यदि ना बहु मानो ॥
अस कह लषण बहुत समझाया * दे शिक्षा कपिधाम पठाया ॥

दोहा

धनुषबाण ले हाथ में, लक्ष्मण भया तयार ।
मनहुँ वीर रस आज भुवि, लिया मनुज अवतार ॥

चौपाई

अरुण अधर फरकत तिहँ ऐसे * शरद मेघ में विद्युत जैसे ॥
धरा शरासन कांधे भारी * मनहुँ काल जग करत संहारी ॥
सत्य कहहुँ नहिं कुलहिं प्रशंसी * कालहुँ डरहिं न रण रघुवंशी ॥
वृषभस्कन्ध वृहद् उरु जांके * आजानू भुज शोभत तांके ॥
गूढ़ जत्रू कम्बू सम ग्रीवा * जासु ओज अतुलित बल सीवा ॥
अरुण नयन रिस वस है आये * जिमि रिस बढ़े समर के पाये ॥
लख पन्नग रसना भय जैसे * तासु शरासन लागत तैसे ॥
कोप श्वास अति उष्ण चलाया * मनहुँ वन्हि मिल धूम सुहाया ॥
धर अस रूप भयङ्कर भारी * गये तहां जहिं कपि बलधारी ॥

दोहा

किष्किन्धा के द्वार पर, लक्ष्मण पहुँचा जाय ।
देख भयङ्कर रूप को, कपिदल आया धाय ॥
लषण अकेला वीर था, द्वितीय शरासन चाप ।
एक अनेकन सो गणे, जो कायर हो आप ॥

देख धनुषधर कोटिन योधा * लक्ष्मण उर उपजा अति क्रोधा ॥
जनु रिस बढ़ा देख रिपुछाया * मनहुँ अनल इन्धन नव पाया ॥
वर्षा काल राम के काजा * लेकर बहुविध साज समाजा ॥

सिय अवलोकनके हित आऊँ * तब मैं रघुपति दास कहाऊँ ॥
या विधि भणकर आप कपीशा * भूलगये अब बन अवनीशा ॥
इमि सुमरण कर सब कछु भूले * रण रिस रोम विटप बन फूले ॥
काढ़ शरासन कर गह लीन्हे * मनहुँ कीस अब आहुति कीन्हे ॥
सायक स्रुव सर आहुति करके * शोणित स्रुवा विविध विध भरके ॥
हवन करे जो समर मझारी * सो क्षत्रिय जानो सदाचारी ॥
समर कृशानु करे जो हवना * नहीं होत तिहं पुन जग गमना ॥
जो क्षत्रिय है समर सकावे * सो नर घोर नरक में जावे ॥
यह जिय जान लषण बढ़े आगे * कपि सब भीरु है तब भागे ॥
अङ्गद बाली सुत तब आया * पीन भुजा जांकी लघुकाया ॥
बाल जान हिय लषण विचारी * बाल वृद्ध आतुर अरु नारी ॥
खाली हाथ होय जन जोई * इनपर वार करे जो कोई ॥
सो नर होय नरक अधिकारी * न्याय विधि मनु आप उचारी ॥
यह जिय धार लषण सकुचाने * अङ्गद से यह वाक्य बखाने ॥

दोहा

कहो वत्स सुग्रीव से, राजसभा में जाय ।
राम अनुज धनु हाथ लै, द्वारे ठाढ़े आय ॥

चौपाई

कहा जाय अङ्गद सन्देशू * सम्भ्रम से उठ सुना नरेशू ॥
भा अति शोक भयङ्कर भारा * मित्रधर्म सुग्रीव विसारा ॥
मित्र करे जगमें सब कोई * दुष्कर ताँको पालन होई ॥
दुखित मित्रलख दुखजिहँ नाहीं * ताँ सम अधम कौन जगमाहीं ॥

जा विधि बचन कहे हनुमाना * राम काज कपि तुम नहीं जाना॥
जहिं दीन्हा तुहि राज समाजू * वह रघुपति अर्थी तव आजू ॥
वर्षा शरद गये ऋतु दोऊ * राम काज तुम किया न कोऊ ॥
यहिं ते यह लषण पठाया * राम अनुज तव द्वारे आया ॥

दोहा

हनुमान के वचन सुन, कपिमन भया उद्योग ।
राम काज बिन जीवना, नहीं हमारे योग ॥
शरद ऋतू के अन्त में, हिम ऋतु व्यापा आय ।
हनुमत औ सुग्रीव पुन, गये राम ढिंग धाय ॥

चौपाई

हिमऋतु व्यापा शरद मिटाके * मनहुँ कृष्ण जन्मा भुवि आके ॥
गीता में श्रीकृष्ण बखाना * अघन मास मैंने तनु माना ॥
ग्रसा निहार हिमांशु ऐसे * दिनकर को राहु गहे जैसे ॥
जिमि दर्पण द्युति श्वास निवारे * चन्द्रकला तिमि हिम ऋतु टारे ॥
दिश उत्तर हतश्री भई ऐसे * बिना तिलक के नारी जैसे ॥
श्वेत कृष्ण दोउ पर्व समाना * जनु तम दिया मोह भगवाना ॥
रवि रश्मि तीक्ष्णता त्यागी * दिन दिन आतप मीठी लागी ॥
विजिगीषु योधाजन जोई * हिम ऋतु पाय विचरते सोई ॥
दक्षिण दिश रवि दूर पधारे * हिमगिरि हिम छाया अब सारे ॥
अर्थ सहित हुआ नाम हिमालय * बढ़ा शीतऋतु गया उष्णालय ॥
यत्र गेहुँ शुभ शस्य सुहाने * जासु देख मन मुदित महाने ॥
कहुँ कहुँ शाली शस्य नवीना * हरितदुकूल मनहुँ धर लीन्हा ॥
शीतधरा पर सोवहिं योगी * विविध विषयरस भोगहिं भोगी॥

ब्रह्म मुहूरत्त में, नित जाके * भरत करे तप कष्ट उठाके ॥
सरयू नीर शीत अति भारा * अवगाहे विधि कौन विचारा ॥
त्रिविध विषयरस भोग त्यागा * केवल कर मम तनु अनुरागा ॥
इमि जिय जान राम पछिताये * शीत ऋतू घन कानन छाये ॥
बनराजि सोई हिम पा कर * ब्रह्म निशा जनु व्यापी आकर॥

दोहा

इमि बहुविध चिन्तनकरत,शीत ऋतु भय मान ।
इतने में सुग्रीव औ, आय गये हनुमान ॥

चौपाई

रघुपति चरण गहे सुग्रीवा * क्षमहुँ प्रभो मम दोष असीवा ॥
प्राकृत जन मैं तुम गुण गेहा * करो कृपा मम विनति एहा ॥
राम कहा तब दोष न कोऊ * राज्य पाय सब जग अस होऊ ॥
जानहु तुम मम सरल सुभाऊ * मो मन में नहिं होत दुराऊ ॥

दोहा

आज्ञा पा श्रीरामकी,सिय ढूँडन हिय ठान ।
सैनिक बल सुग्रीवके, बनमें किया पयान ॥
घन कानन गिरि ढूंडते, लङ्का पहुंचे जाय ।
मिटा शीत शीशी करत,गई शिशिर ऋतु आय॥

चौपाई

जीरण पात वात के मारे * दिन दिन झड़ झड़ पड़त विचारे॥
ताहिं पेख नूतन मुसकाने * अपनी दशा अन्त नहीं जाने ॥
काल पाय सबकी गति ऐसी * होवत पात पुराने जैसी ॥
शिशिर ऋतु जनु यम तनुधारा* समय पाय रहे वृद्ध न बारा ॥

शुष्क शाख लागत बन ऐसे * मेद हीन धमनी तनु जैसे ॥
सबहँ निराश भये नरनारी * शुष्क अनिल शीतल बहे भारी॥
अधर बिम्ब प्रायः फट जाते * शीशी करते अधिक पिड़ाते ॥
मधुकर शुष्कडार लिपटाने * जनु संसारी पुरुष लुभाने ॥
धर ऋतु राज आश मनमाहीं * निस दिन सेवहिं निष्फलताई ॥
निर्विकार जो पुरुष अकामा * ताको शिशिर न व्यापत कामा॥
जप तप संयम साधन जांके * शिशिर काम हिय उदित न तांके॥
वृषभस्कन्ध राम धनुधारी * शिशिर पाय नहीं भये विकारी॥
देखहु प्रभुकी अद्भुत माया * जा लंकहँ रसवीर समाया ॥
रसकरुणा अरु शान्त पलाने * पाय मधू जिमि शीत उड़ाने ॥

दोहा

जा लङ्का रघुनाथ दल, चहुँ दिक गयो विराज ।
शिशिर अन्तकर अन्तको,आयगया ऋतुराज ॥

चौपाई

शिशिर गई आयो ऋतुराजा * अब सुधरें रघुवर के काजा ॥
नूतन पल्लव बन बन जाये * जनु शुभ कर्म उदय है आये ॥
विटप करीर गणे नहिं कोऊ * पाय मधु अब फूला सोऊ ॥
अरुण वर्ण सिर पाग बँधाने * मनहुँ बधु अब चला विआहने ॥
कृतकार्य है घर फिर आया * टींट पूत ताँने शुभ जाया ॥

दोहा

कावल में मेवा भयो, बृज में टींट बहार ।
कोउक बतिया कृष्णकी, गई सटल्लो मार ॥
अंमृत फल कावल नहीं, बृजमें अंमृत खान ।
अद्भुत महिमा कृष्ण की को ? कर सके बखान ॥

चौपाई

यह आक्षेप मिटावे भारा * मिल सैन्धव जब बने अचारा ॥
अंमृतसम सबके मन माहीं * आय वसे तब संशय नाहीं ॥
अन्य सुवृक्ष आंब सम सारे * पाय मधु हूये मतवारे ॥
सोहँ सरोवर जलज अपारी *विशद नयन जिमि शोभित नारी॥
अम्रतरू फूले मधु आये * जिमिं जन बढ़े धर्मधन पाये ॥
घन कानन शोभा भई ऐसी * निपुण भूप की परजा जैसी ॥
बन बन कुञ्ज बने विधि नाना * वृहद राज्य जिमि दुर्ग महाना॥
दिश दक्षिण रवि पन्था लागा* देव यान जनु अब प्रिय लागा ॥
दिश उत्तर के साधु सन्ता * मुदित भये ऋतु पाय वसन्ता ॥
हिमगिरि हिमगरने अब लागा * मनहुँ वरुण अब सोया जागा ॥
हिम गर गर भयो नीर उतङ्गा * घट घट नीर बाढ़ गई गङ्गा ॥
गङ्ग प्रवाह भये अब नाना * फूट भये जिमि, पन्थ महाना ॥
प्रौढ़ प्रवाह चला जब भारी * एकरूप भई धारा सारी ॥
क्षुद्र राज महाराज समाये * मिटे द्वैत जिमि प्रभुके पाये ॥
फूल मिला घन कानन सारा * एकरूप मधुने कर डारा ॥
कहुँ कहुँ भिन्न भिन्न तरु राजहिं* युद्ध भूम जनु बीर विराजहिं ॥
पक्षीरुत सुन मन हुलसावे * रामहँ जनु रसवीर बुलावे ॥
कटकटाय कोटिन कपि योधा * जाय लङ्कगढ़ कियो निरोधा ॥
लवा निरख जिमि टरे न वाजू * लख मतङ्ग गण जिमि मृगराजू ॥
जिमि झष हीनमीन को मारे * काल वेग जिमि टरे न टारे ॥
तिमि रघुवर सेना को वारा * अतुल अटल कोउ सके न टारा॥
विविध भांत योधागण भ्राजहिं * सरसिज पा जनुमधुकर राजहिं ॥
राम प्रदीप अगन तहँ बीरा * गूढ़जन्तु अति पीन शरीरा ॥
मुग्ध पतङ्ग देख पड़ जामें * क्षणभर में तनु खागत तामें ॥

महाकाल का रूप निराला * धर रघुपति अति विशद कराला ॥
दुष्टदैत्य दल मार मुकाये * जनु तनु धर रसवीर सुहाये ॥
शिशिर गया फूली बनराजी * जनु कर्त्ता सृष्टि नई साजी ॥
अल्पकाल में वीरुध सारे * पत्रपुष्प पा लागत प्यारे ॥

दोहा

रामचरित पङ्कज लखो, बाल्मीकि ऋतुराज ।
मधुकर तुलसीदास है, तामहिं रहयो विराज ॥१॥
रामायण के लेख में, तुलसी भये प्रधान ।
भाषा कविता के विषय, तां सम अन्य न जान॥२॥
सम्बत सोलासौ असी, असी गंग के तीर ।
सावन शुक्लाअष्टमी, तुलसी तजियो शरीर ॥३॥
या ते यह निश्चय भया, जहांगीर के राज ।
श्रीयुततुलसीदास ने, पूरण कीन्हा काज ॥४॥
रामायण का लेख पढ़, होवत पुरुष सुजान ।
कुलमर्यादा को लहे, धर्म कर्म ले जान ॥५॥
रामायण के पाठ से, होवत पुरुष विनीत ।
करे सेव पितु मातकी, राम चरित जिहँ चीत ॥६॥
सरल अर्थ भाषा सरल, यामें बहु गुण देख ।
मुनिमन में यह वसगया, रामायण का लेख ॥७॥
आज्ञा पालन रामका, भरतप्रीत की रीत ।
या जग में कहुँ ना मिले, निसदिन ढूँढहु मीत॥८॥

गुणगौरव श्रीराम का, घट घट रहा समाय।
याते रामायण कथा, सब जगमें गई छाय ॥९॥
रामायण के कवि का, यश वर्ण्यो नहीं जाय।
शुक्ला दशमी क्वाँर को, सबको देत जगाय ॥१०॥
राजकतारत हो प्रजा, भूप प्रजाप्रिय होय।
कपट दम्भ छल छोड़के, पढ़े रमायण जोय ॥११॥
शासन जारजपंचमा, शान्तिमय शुभ देख।
ग्रह रस ग्रह पुन चन्द्रमें, लिखा अपूरव लेख ॥१२॥
श्रावण शुक्ला अष्टमी, लवपुर कर विश्राम।
आर्यमुनि पूरण कियो, रामायण को काम ॥१३॥

श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे
बाल्मीकीये रामायणे
आर्यटीकायाम्
भूमिका
समाप्ता

वाल्मीकिरामायण द्वितीयभाग की

विषयसूची

किष्किन्धाकाण्ड

विषय		पृष्ठ	पंक्ति

सुन्दरकाण्ड

विषय	पृष्ठ	पंक्ति

युद्धकाण्ड

—:*:—

अथ किष्किन्धाकाण्डं प्रारभ्यते

स तां पुष्करिणीं गत्वा पद्मोत्पलझषाकुलाम् ।
रामः सौमित्रि साहितो विललापा कुलेन्द्रियः ॥ १ ॥
तत्र दृष्ट्वैव तां हर्षादिन्द्रियाणि च कम्पिरे ।
स कामवशमापन्नः सौमित्रिमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ—लक्ष्मण सहित राम लाल तथा नीले कमल और मछलियों से भरी हुई पम्पा पर जाकर व्याकुलेन्द्रिय हुए २ विलाप करने लगे, और वहां उस पम्पा को देखते ही हर्ष से राम के इन्द्रिय कांप उठे तथा काम के वशीभूत हुए २ लक्ष्मण से बोले कि:—

सौमित्रे शोभते पम्पा वैदूर्यविमलोदका ।
फुल्लपद्मोत्पलवती शोभिता विविधैर्द्रुमैः ॥ ३ ॥
सौमित्रे पश्य पंपायाः काननं शुभदर्शनम् ।
यत्र राजन्ति शैला वा द्रुमाः स शिखरा इव ॥ ४ ॥
मां तु शोकाभिसंतप्तमाधयः पीडयंति वै ।
भरतस्य च दुःखेन वैदेह्याहरणेन च ॥५॥

अर्थ–हे सौमित्रे ! वैदूर्य्यमणि की भांति निर्मल जलवाली तथा फूले हुए लाल पीले कमलों वाली पम्पा विविध वृक्षों से कैसी शोभायमान प्रतीत होती है, हे लक्ष्मण ! देख पम्पा के किनारे बन कैसी शोभा देरहा है और इसके तट पर लगे हुए वृक्ष पर्वत की चोटी के समान कैसे सुन्दर प्रतीत होते हैं,परन्तु भरत के दुःखी होने और वैदेही के हरणसे मेरा मन सन्तप्त हुआ पीड़ा देरहा है॥

शोकार्तस्यापि मे पम्पा शोभते चित्रकानना ।
व्यवकीर्णा बहुविधैः पुष्पैः शीतोदका शिवा ॥६॥

नलिनैरपि संछन्नाह्यत्यर्थ शुभदर्शना ।
सर्प व्यालानुचरिता मृगद्विज समाकुला ॥ ७ ॥

अधिकं प्रविभात्येतन्नीलपीतं तु शाद्वलम् ।
द्रुमाणां विविधैः पुष्पैः परिस्तोमैरिवार्पितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–शोक से पीड़ित हुए मुझको भी यह विचित्र वनों वाली, अनेक प्रकार के फूलों से भरी हुई तथा शीतल जलवाली सुखकारिणि पम्पा कैसी शोभायमान प्रतीत होती है, कमलों के पुष्प तथा पत्रों से आच्छादित, सर्प, व्याल, मृग तथा पक्षियों से संयुक्त कैसी शुभदर्शन =सुहावनी दिखाई देती है, यह नील, पीत तथा हरित प्रदेश विविध वृक्षों और पुष्पों से सघन बहुत ही सुशोभित हैं ॥

पुष्पभारसमृद्धानि शिखराणि समन्ततः ।
लताभिः पुष्पिताग्राभिरुपगूढानि सर्वतः॥ ९ ॥

सुखानिलोऽयं सौमित्रे कालः प्रचुरमन्मथः ।
गन्धवान्सुरभिर्मासो जातपुष्प फलद्रुमः ॥ १० ॥

पश्य रूपाणि सौमित्रे वनानां पुष्पशालिनाम् ।
सृजतां पुष्पवर्षाणि वर्षं तोयमुचामिव ॥ ११ ॥

अर्थ—और सब ओर फूलों के भार से पूर्ण वृक्षों की चोटियां फूली हुई चोटियों वाली लताओं से सब ओर से घिरी हुई झुक रही हैं, हे सौमित्रे! उत्पन्न हुए फूल फलों से युक्त वृक्षों वाला यह सुगान्धित उत्तम मास काम का उद्दीपक है, हे लक्ष्मण! इन उत्तम पुष्पों वाले बनों के रूप देख जो मेघों की न्याईं फूलों की वर्षा कर रहे हैं ॥

प्रस्तरेषु च रम्येषु विविधाः काननद्रुमाः ।
वायुवेगप्रचलिताः पुष्पैरवकिरन्ति गाम् ॥ १२ ॥
पतितैः पतमानैश्च पादपस्थैश्च मारुतः ।
कुसुमैः पश्य सौमित्रे क्रीडतीव समन्ततः ॥ १३ ॥

अर्थ—भांति २ के जंगली वृक्ष वायु के वेग से हिलकर पृथिवी में सुहावनी शिलाओं पर पुष्पों की बिखेर कर रहे हैं, हे लक्ष्मण! देख गिरे हुए, गिरते हुए और वृक्षों पर स्थित फूलों से सब ओर मानो वायु क्रीड़ा कर रहा है ॥

मत्तकोकिलसंनादैर्नर्तं यन्निव पादपान् ।
शैलकन्दरनिष्क्रान्तः प्रगीतइव चालिनः ॥ १४ ॥

तेन विक्षिपतात्यर्थं पवनेन समन्ततः ।
अमी संसक्त शाखाग्रा ग्रथिता इव पादपाः॥ १५ ॥

अर्थ—पर्वतों की कन्दरा से निकला हुआ वायु मानो वृक्षों को नृत्य कराता हुआ स्वयं मत्त कोकिलों की ध्वनि के समान मानो गीत गारहा है, और वह पवन सब ओर से वृक्षों को हिलाकर उनकी शाखाओं के अग्रभाग मिलजाने से मानो वायु वृक्षों को जोड़ रहा है ॥

स एव सुख संस्पर्शो वाति चन्दनशीतलः ।
गंधमभ्यवहन्पुण्यं श्रमापनयनोऽनिलः ॥ १६ ॥
अमी पवन विक्षिप्ता विनदंतीव पादपाः ।
षट्पदैरनुकूजद्भिर्वनेषु मधु गंधिषु ॥ १७ ॥

अर्थ—वही पवन चन्दन के समान शीतल स्पर्श तथा सुखकारी महकता हुआ बहता और वह पुण्यरूप हुआ २ मार्गादि चलने से उत्पन्न हुए श्रम को दूर करता है, सुगन्धित बनों में फूले हुए वृक्ष भोरों की गूंज और पवन से हिलने के कारण मानो नाद कर रहे हैं ।

सुपुष्पितांस्तुपश्यैतान्कर्णिकारान्समन्ततः ।
हाटकप्रतिसंछन्नान्नरान्पीताम्बरानिव ॥ १८ ॥
अयं वसन्तः सौमित्रे नाना विहगनादितः ।
सीतया विप्रहीणस्य शोकसन्दीपनो मम ॥ १९ ॥
अशोकस्तवकाङ्गारः षट्पदस्वन निःस्वनः ।
मां हि पल्लव ताम्रार्चिर्वसन्ताग्निः प्रधक्ष्यति ॥२०॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! चारो ओर फूले हुए इन चंपा के वृक्षों को देख जो सुवर्ण से ढके हुए पीत वस्त्रों वाले मनुष्यों की न्याई प्रतीत होते हैं, हे लक्ष्मण ! अनेक पक्षियों की गूंज से भरा हुआ यह वसंत सीता से हीन मेरे शोक को बढ़ाने वाला है, यह बसंतरूप अग्नि जिसके अशोक वृक्ष के गुच्छे अंगारे, भोरों की गूंज ध्वनि और कोयलें लाल २ लाटें हैं वह मुझे अवश्य दग्ध करेगा।

अयं हि रुचिरस्तस्याः कालो रुचिर काननः।
कोकिला कुलसीमान्तो दयिताया ममानघ ॥२१॥
अमी मयूराः शोभन्ते प्रनृत्यं तस्ततः।
स्वैः पक्षैः पवनोद्धूतैर्गवाक्षैःस्फटिकैरिव ॥ २२ ॥

अर्थ—हेनिष्पाप!यहउत्तमकालजिसमें सम्पूर्ण बनशोभायमानप्रतीत होते और जिनकी सीमा के किनारे कोयलों से गूंज रहे हैं यह काल मेरी प्यारी को अति प्रिय है, यह इतस्ततः नाचते हुए मयूर = मोर पवन द्वारा हिलाये हुए अपने पंखों से स्फटिक की भांति शोभा देरहे हैं।

पश्य लक्ष्मण नृत्यन्तं मयूरमुपनृत्याति।
शिखिनी मनमथार्तैषा भर्त्तारं गिरिसानुनि ॥२३॥
तामेव मनसा रामां मयूरोऽप्यनुधावाति।
वितत्य रुचिरौ पक्षौरुतैरुपहसान्निव ॥ २४ ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! देख इस पर्वत की चोटी पर नाचते हुए मोर के साथ काम से पीड़ित हुई मोरनी कैसी नृत्य कर रही है,

और उसका भर्ता मयूर पंख फैलाकर उसी अपनी रमणी के पीछे मन से दौड़ता हुआ अपनी ध्वनियों से मानो मेरे साथ हंसी कर रहा है ॥

मयूरस्य वने नूनं रक्षसा न हृता प्रिया ।
तस्मान्नृत्यति रम्येषु वनेषु सह कान्तया ॥ २५ ॥
पश्य लक्ष्मण संरागास्तिर्यग्योनि गतेष्वपि ।
अधुना शिखिनी कामाद्भर्तारमभिवर्तते ॥ २६ ॥
ममाप्येवं विशालाक्षी जानकी जातसंभ्रमा ।
मदनेनाभिवर्तेत यदि नापहृता भवेत् ॥ २७ ॥

अर्थ–हे मयूर ! तेरी प्यारी बन में किसी राक्षस द्वारा नहीं हरी गई इसीलिये तू सुहावने बनों में अपनी कान्ता के साथ नृत्य कर रहा है, हे लक्ष्मण ! देख पक्षियों में भी कैसा राग पाया जाता है, यह मोरनी काम से पीड़ित हुई अपने पति के समीप कैसे वेग से जारही है, यदि हरी न जाती तो विशाल नेत्रों वाली जानकी भी काम से मोहित हुई अवश्य मेरी ओर दौड़ती ॥

पश्य लक्ष्मण पुष्पाणि निष्फलानि भवन्ति मे ।
पुष्पभार समृद्धानां वनानां शिशिरात्यये ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! देख वसंत ऋतु में पुष्पभार से समृद्ध हुए वनों में जो पुष्प खिल रहे हैं वह जानकी के बिना हमारे लिये निष्फल हैं ॥

रुचिराण्डपि पुष्पाणि पादपानामतिश्रिया ।
निष्फलानि महीं यान्ति समं मधुकरोत्करैः ॥२५॥

नदन्ति कामं शकुनामुदिताः संघशः कलम् ।
आह्वयन्त इवान्योन्यं कामोन्मादकरा मम ॥२६ ॥

अर्थ—हा !! यह वृक्षों के सुन्दर फूल जो पृथिवी पर गिर रहे हैं वह सीता के बिना हमारे लिये व्यर्थ हैं चाहे भ्रमर भी बोल रहे हैं, लक्ष्मण देख यह पक्षियों के झुण्ड के झुण्ड कैसी मधुर वाणी से बोल रहे हैं, मानो एक दूसरे को बुलाते हुए मुझे कामोन्माद कराते हैं ॥

वसन्तो यदि तत्रापि यत्र मे वसति प्रिया ।
नूनं परवशा सीता सापि शोचत्यहं यथा ॥ २७ ॥
नूनं न तु वसंतस्तं देशं स्पृशति यत्रसा ।
कथं ह्यसित पद्माक्षी वर्तयेत्सामयाविना ॥२८॥

अर्थ—यदि वहां भी वसंत है जहां मेरी प्यारी वास कर रही है तो निःसन्देह वह परवश हुई मेरी भांति शोक कर रही होगी, मेरे विचार में निःसन्देह वहां वसंत नहीं जहां मेरी प्यारी सीता है, क्योंकि यदि वहां वसंत होता तो मेरे बिना वह कदापि जीवित न रहती ॥

श्यामा पद्मपलाशाक्षी मृदुभाषा च मे प्रिया ।
नूनं वसन्तमासाद्य परित्यक्ष्याति जीवितम् ॥ २९ ॥
दृढं हि हृदये बुद्धिर्ममसंपरिवर्तते ।
नालं वर्तयितुं सीता साध्वी मद्विरहंगता ॥ ३० ॥

अर्थ—नवयुवति, पद्मपत्र के समान नेत्रों वाली तथा मीठा बोलने वाली, मेरी प्यारी वसंत के होने पर निःसन्देह जीवन

त्याग देगी, मेरे हृदय में यह दृढ़ बुद्धि होरही है कि वसंत हो वा न हो साध्वी सीता मेरे वियोग में जीवित न रहेगी ॥

मयि भावो हि वैदेह्यास्तत्त्वतो विनिवेशितः ।
ममापि भावः सीतायां सर्वथा विनिवेशितः ॥३१॥
एष पुष्पवहो वायुः सुखस्पर्शो हिमावहः ।
तां विचिन्तयतः कान्तां पावकप्रतिमो मम ॥३२॥
सदा सुखमहं मन्ये यं पुरा सह सीतया ।
मारुतः स विना सीतां शोकसंजननो मम ॥३३॥

अर्थ—सीता का भाव पूर्ण प्रकार से मुझ में स्थित है और मेरा भाव सर्वथा सीता की ओर आकर्षित होरहा है.इसी कारण यह सुगन्धित शीतल तथा सुखस्पर्श वाला वायु उस कान्ता को चिन्तन करते हुए मुझे अग्नि के तुल्य प्रतीत होता है,मैं जिस वायु को सीता के साथ पहिले सुखदायक मानता था वही सीता के बिना अब मेरे लिये शोकजनक होरहा है ॥

पश्य लक्ष्मण संनादं वने मदविवर्धनम् ।
पुष्पिताग्रेषु वृक्षेषु द्विजानामवकूजताम् ॥३४॥
विक्षिप्तां पवनेनैतामसौ तिलकमंजरीम् ।
षट्पदः सहसाभ्येति मदोद्धूतामिव प्रियाम् ॥३५॥
अमी लक्ष्मण दृश्यन्ते चूताः कुसुमशालिनः ।
विभ्रमोत्सिक्तमनसः सांगरागा नरा इव ॥३६॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! देख वन में फूले हुए वृक्षों के ऊपर बोलते हुए पक्षियों की ध्वनि चित्त को कैसा आह्लादित करने वाली है,

देख वह भौरा मद से मोहित हुई प्यारी की भांति पवन से उड़ाई हुई तिलकमञ्जरी की ओर कैसे वेग से जारहा है, हे लक्ष्मण! देख यह कुसुमशाली आम मद से कैसे शोभायमान प्रतीत होते हैं जैसे विलास से भरे हुए चित्त वाले अङ्गराग किये मनुष्य प्रतीत होते हैं ॥

जले तरुण सूर्याभैः षट्पदाहत केसरैः ।
पंकजैः शोभते पम्पा समन्तादभिसंवृता ॥ ३६ ॥
चक्रवाकयुतानित्यं चित्र प्रस्थवनान्तरा ।
मातंग मृग यूथैश्च शोभते सलिलार्थिभिः ॥३७॥
पवनाहत वेगाभिरूर्मिभिर्विमलेऽम्भसि ।
पंकजानि विराजन्ते ताड्यमानानि लक्ष्मण॥३८॥

अर्थ—जल में तरुण=नवीन सूर्य्य के तुल्य, भौरों से ताड़न किये हुए केसरों वाले कमलों से पम्पा चारो ओर ढकी हुई है, चकई, चकवा आदि पक्षी सब ओर बैठे हैं, विचित्र वन चारो ओर खिल रहा है और हाथी तथा मृगों के झुण्डों से यह पम्मा कैसी सुशोभित होरही है, हे लक्ष्मण! पवन के वेग से उठी लहरों द्वारा ताड़ित हुए कमल निर्मल जल में स्थित कैसे शोभायमान प्रतीत होते हैं ॥

पद्मपत्रविशालाक्षीं सततं प्रियपङ्कजाम् ।
अपश्यतो मे वैदेहीं जीवितं नाभिरोचते ॥ ३९ ॥
यानि स्म रमणीयानि तया सह भवन्ति मे ।
तान्येवा रमणीयानि जायन्ते मे तया विना॥४०॥

पद्मकोशपलाशानि द्रष्टुं दृष्टिर्हि मन्यते ।
सीताया नेत्रकोशाभ्यां सदृशानीति लक्ष्मण ॥४१॥

अर्थ–कमलपत्र के तुल्य विशाल नेत्रों वाली, कमलों को सदा प्यार करने वाली वैदेही को न देखते हुए मुझको अपना जीवन नहीं रुचता, जो पदार्थ उसके साथ मेरे लिये रमणीय थे अब वही उसके बिना अप्रिय प्रतीत होते हैं, हे लक्ष्मण ! कमल पत्रों को दृष्टि बहुत देखना चाहती है, क्योंकि वह सीता के नेत्र समान हैं ॥

पद्मकेसरसंसृष्टो वृक्षान्तरविनिःसृतः ।
निःश्वास इव सीताया वाति वायुर्मनोहरः ॥४२॥
सौमित्रे पश्य पम्पाया दक्षिणे गिरिसानुषु ।
पुष्पितां कर्णिकारस्य यष्टिं परमशोभिताम् ॥४३॥

अर्थ–कमलों के केसर से मिलकर वृक्षों के भीतर से निकला हुआ मनोहर वायु सीता के श्वास की भांति चलता है, हे लक्ष्मण ! देख पम्पा के दक्षिण पर्वत की चोटी पर चम्पा की शाखायें पुष्पों से लदी हुई कैसी शोभायमान होरही हैं ॥

गिरिप्रस्थास्तु सौमित्रे सर्वतः संप्रपुष्पितैः ।
निष्पत्रैः सर्वतो रम्यैः प्रदीप्ता इव किंशुकैः ॥४४॥
पादपात्पादपं गच्छञ्छैलाच्छैलं वनाद्वनम् ।
वाति नैकरसास्वादसंमोदित इवानिलः ॥ ४५ ॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! पर्वतों की चोटियें चारो ओर फूले हुए पत्रहीन सुहावने केसुओं से मानो अग्नि की भांति प्रदीप्त होरही

हैं, और वृक्ष से वृक्ष, पर्वत से पर्वत तथा बन से बन को जाता हुआ वायु अनेक रसों का आस्वाद लेता हुआ आनन्दित हुए की भांति कैसा मन्द २ बह रहा है ॥

इदं मृष्टमिदं स्वादु प्रफुल्लमिदमित्यपि ।
रागरक्तो मधुकरः कुसुमेष्वेव लीयते ॥ ४६ ॥
इयं कुसुमसंघातैरुपस्तीर्णा सुखाकृता ।
स्वयं निपतितैर्भूमिः शयन प्रस्तरैरिव ॥ ४७ ॥

अर्थ—मधुर, स्वादु और फूले हुए पुष्पों को अवलोकन कर, प्रेम में रत हुआ भौरा उन्हीं में लीन होजाता है, हे लक्ष्मण! देख यह भूमि अपने आप पतन हुए पुष्पसमूह से कैसी शय्या के विछौने की भांति सुखदायी बन रही है ॥

हिमान्ते पश्य सौमित्रे वृक्षाणां पुष्पसम्भवम् ।
पुष्पमासे हि तरवः संघर्षादिव पुष्पिताः ॥ ४८ ॥
आह्वयन्त इवान्योन्यं नगाः षटपदनादिताः ।
कुसुमोत्तंस विटपाः शोभन्ते बहुलक्ष्मण ॥ ४९ ॥

अर्थ—हे सौमित्रे! हिम ऋतु के अंत में वृक्षों के पुष्पों की उत्पत्ति देख, मानो इस पुष्पमास में वृक्ष स्पर्धा द्वारा एक दूसरे से बड़चढ़कर फूले हैं, और हे लक्ष्मण! सब वृक्ष भौरों की ध्वनियों से मानो एक दूसरे को आह्वान करते हुए फूलों से कैसे शोभायमान होरहे हैं ॥

यदि दृश्येत सा साध्वी यदि चेह वसे महि ।
स्पृहयेयं न शक्राय नायोध्यायै रघूत्तम ॥ ५० ॥

न ह्येवं रमणीयेषु शाद्वलेषु तया सह ।
रमतो मे भवेच्चिन्ता न स्पृहान्येषु वा भवेत् ॥५०॥
अमीहि विविधैः पुष्पैस्तरवो विविधच्छदाः ।
काननेऽस्मिन्विनाकान्तां चिन्तामुत्पादयन्ति मे।५१।

अर्थ—हे रघूत्तम ! यदि यहां उस साध्वी का दर्शन हो और यदि हम यहां ही वास करें तो मैं इन्द्रासन तथा अयोध्या की कभी इच्छा भी न करूं, इस प्रकार के रमणीय, सुहावने स्थान पर अपनी प्रिया के साथ रमण करते हुए न मुझे कोई चिन्ता हो और नाही कोई इच्छा हो, उसके विना इस बन में नाना प्रकार के पुष्प तथा पल्लवों से सुशोभित वृक्ष मुझे चिन्ता उत्पन्न कराते हैं ॥

पश्य सानुषु चित्रेषु मृगीभिः सहितान्मृगान् ।
मां पुनर्मृगशावाक्ष्या वैदेह्या विरहीकृतम् ॥ ५२ ॥
या मामनुगता मन्दं पित्रा प्रस्थापितं वनम् ।
सीता धर्मं समास्थाय क्व नु सा वर्तते प्रिया॥५३॥
तया विहीनः कृपणः कथं लक्ष्मण धारये ।
या मामनुगता राज्याद्भ्रष्टं विहतचेतसम् ॥५४॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! इन विचित्र चोटियों के ऊपर मृगों को मृगियों के सहित देख और मुझे उस मृगनयनी से बिना विरह में व्याकुल हुआ देख, जो पिता द्वारा बन को भेजे हुए मेरे पीछे धर्म का सहारा लेकर मन्द २ चाल से चलकर आई थी वह मेरी प्यारी सीता कहां है. उससे विहीन हुआ मैं कैसे प्राणों

को धारण करूं जो राज्य से भ्रष्ट हुए मुझ दुःखी चित्त वाले के पीछे आई थी ॥

तच्चार्वञ्चितपद्माक्षं सुगन्धिशुभमव्रणम् ।
अपश्यतो मुखं तस्याः सीदतीव मतिर्मम ॥ ५५ ॥
स्मितहास्यान्तरयुतं गुणवन्मधुरं हितम् ।
वैदेह्या वाक्यमतुलं कदाश्रोष्यामि लक्ष्मण ॥५६॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! उस सुन्दर पूजित कमल तुल्य नेत्रों वाले सुगन्धित तथा व्रण रहित शुभ मुख को न देखते हुए मेरी मति नष्ट होरही है, हे लक्ष्मण ! वह कौन दिन होगा जब मैं मन्द २ मुसकराहट से युक्त, गुणों से पूर्ण, मीठा तथा हितकारी बचन सीता के मुख से सुनुंगा ॥

किं नु वक्ष्याम्ययोध्यायां कौसल्यां हि नृपात्मज ।
क्व सा स्नुषेति पृच्छन्तीं कथं चापिमनस्विनीम्॥५७॥
गच्छ लक्ष्मण पश्य त्वं भरतं भ्रातृवत्सलम् ।
नह्यहं जीवितुं शक्तस्तामृते जनकात्मजाम् ॥५८॥

अर्थ—हे नृपसुत ! जब मैं अयोध्या में जाउंगा तब "मेरी स्नुषा कहां और कैसी है" मनस्विनी कौसल्या के इस प्रकार पूछने पर क्या कहुंगा. हे लक्ष्मण ! तू जा और भाइयों से प्यार करने वाले भरत को देख, अब मैं उस जनकात्मजा के बिना जीवित नहीं रहसकता ॥

इति रामं महात्मानं विलपन्तमनाथवत् ।
उवाच लक्ष्मणो भ्राता वचनं युक्तमव्ययम् ॥५९॥

संस्तम्भ राम भद्रं ते मा शुचः पुरुषोत्तम ।
नेदृशानां मतिर्मन्दा भवत्यकलुषात्मनाम् ॥ ६० ॥

अर्थ-इस प्रकार अनाथ की भांति विलाप करते हुए महात्मा राम को भाई लक्ष्मण यह युक्तियुक्त सदा स्थिर रहने वाला वचन बोला कि हे राम! अपने आपको सम्भाल, हे पुरुषोत्तम! शोक मतकर, तुम्हारे जैसे शुद्धात्मा पुरुष की मति जड़ नहीं होनी चाहिये ॥

स्मृत्वा वियोगजं दुःखं त्यज स्नेहं प्रिये जने ।
अति स्नेहपरिष्वंगाद्वर्तिरार्द्रापि दह्यते ॥ ६१ ॥

अर्थ-हे राम! वियोगज दुःख का स्मरण करके अपने प्रिय जनों में स्नेह का त्याग करना चाहिये, क्योंकि किसी पदार्थ में अति अनुरक्त होना ही दुःख का मूल है, जैसाकि अति स्नेह=तैल से भीगी हुई वत्ती भी दाह को प्राप्त होजाती है ॥

यदि गच्छति पातालं ततोऽभ्यधिकमेव वा ।
सर्वथा रावणस्तात न भविष्यति राघव ॥ ६२ ॥

उत्साहो बलवानार्य नास्त्युत्साहात्परं बलम् ।
सोत्साहस्य हि लोकेषु न किंचिदपि दुर्लभम् ॥ ६३ ॥

उत्साहवन्तः पुरुषा नावसीदन्ति कर्मसु ।
उत्साहमात्रमाश्रित्य प्रतिलप्स्याम जानकीम् ॥ ६४ ॥

अर्थ-हे तात! यदि रावण पाताल को चलाजाय अथवा उससे भी आगे चलाजाय तब भी अब वह जीवित नहीं रहेगा,

हे आर्य्य ! उत्साह बड़ा बलवान् है, उत्साह से बढ़कर कोई बल नहीं, उत्साह वाले को लोक में कुछ भी दुर्लभ नहीं है, उत्साह वाले पुरुष कर्मों में कदापि दुःखी नहीं होते, सो हम उत्साहमात्र को ही आश्रय करके जानकी को प्राप्त करेंगे ॥

एवं संबोधितस्तेन शोकोपहतचेतनः ।
त्यज्य शोकं च मोहं च रामो धैर्यमुपागमत् ॥६५॥
सोऽभ्यतिक्रामदव्यग्रस्तामचिन्त्यपराक्रम ।
रामः पम्पां सुरुचिरां रम्यां पारिप्लवद्रुमाम् ॥ ६६ ॥

अर्थ—इस प्रकार लक्ष्मण की शिक्षा द्वारा शोक से नष्ट हुई चेतना वाला राम फिर शोक मोह को त्यागकर धैर्य्य को प्राप्त हुआ, और फिर वह अति पराक्रम वाले राम शान्तचित्त हुए २ सुहावनी, रमणीय तथा चञ्चल वृक्षों वाली पम्पा से पार होगये ॥

नावृष्यमूकस्यसमीपचारीचरन्ददर्शाद्भुत-
दर्शनीयौ ; शाखामृगाणामधिपस्तरस्वी
वितत्रसे नैव विचेष्टचेष्टम् ॥ ६७ ॥

अर्थ—तदनन्तर अद्भुत दर्शनीय उन दोनों को ऋष्यमूक पर्वत के समीप विचरने वाले वानरों के अधिपति बलवान् सुग्रीव ने देखा और वह उनको देखकर ऐसा भयभीत हुआ कि फिर कोई चेष्टा न की ॥

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

सं०–अब सुग्रीव का हनुमान को राम के समीप भेजना कथन करते हैं :–

तौ तु दृष्ट्वा महात्मानौ भ्रातरौ राम लक्ष्मणौ ।
वरायुधधरौ वीरौ सुग्रीवः शङ्कितोऽभवत् ॥ १ ॥
उद्विग्नहृदयः सर्वादिशः समवलोकयन् ।
नव्यतिष्ठतकस्मिंश्चिद्देशे वानर पुंगवः ॥ २ ॥
नैव चक्रे मनः स्थातुं वीक्ष्यमाणौ महाबलौ ।
कपेः परम भीतस्य चित्तं व्यव ससादह ॥ ३ ॥
चिन्तयित्वा स धर्मात्मा विमृश्य गुरु लाघवम् ।
सुग्रीवः परमोद्विग्नः सर्वैस्तैवानरैः सह ॥ ४ ॥

अर्थ–उन दोनों महात्मा बीर भाई राम लक्ष्मण को शस्त्र धारण किये हुए देखकर सुग्रीव बड़ा शाङ्कित हुआ, और व्याकुल चित्त हुआ २ सब दिशाओं की ओर देखता हुआ कहीं भी चित्त स्थिर न हुआ, उन दोनों महाबली योद्धाओं को देखकर अशान्त चित्त हुआ सुग्रीव परम भय को प्राप्त हो चिन्तन करने लगा कि वाली का बल बहुत अधिक और मेरा न्यून होने के कारण सब वानरों के साथ मुझे शीघ्र ही यहां से चले जाना चाहिये ॥

ततः सुग्रीवसचिवाः पर्वतेन्द्रेसमाहिताः ।
संगम्य कपि मुख्येन सर्वे प्रांजलयः स्थिताः ॥५॥

ततस्तु भयसंत्रस्तं बालिकिल्विषशङ्कितम् ।
उवाच हनुमान्वाक्यं सुग्रीवं वाक्यकोविदः ॥६॥
संभ्रमस्त्यज्यतामेष सर्वैर्बालिकृते महान् ।
मलयोऽयं गिरिवरोभयं नेहास्ति बालिनः ॥७॥

अर्थ-तदनन्तर सुग्रीव के सब मन्त्री हाथ जोड़ उनकी ओर मुख करके उस पर्वत पर खड़े होगये, और भयभीत हुए बालि के पाप से शङ्कित सुग्रीव से वाक्यकोविद=बोलने में पण्डित=चतुर हनुमान यह वाक्य बोला कि बालि विषयक शङ्का से यह बड़ी घबराहट सबको छोड़ देनी चाहिये, क्योंकि यह मलय पर्वत है यहां बालि का भय नहीं होसक्ता ॥

सुग्रीवस्तु शुभं वाक्यं श्रुत्वा सर्वं हनूमतः ।
ततः शुभतरं वाक्यं हनुमन्तमुवाच ह ॥८॥

अर्थ-हनुमान के उक्त शुभ वाक्य सुनकर पुनः सुग्रीव हनुमान से यह शुभतर वचन बोला कि:—

बालि प्रणिहितावेव शङ्केऽहं पुरुषोत्तमौ ।
राजानो बहुमित्राश्च विश्वासो नात्र हि क्षमः ॥९॥
अरयश्च मनुष्येण विज्ञेयाश्छद्मचारिणः ।
विश्वस्तानामविश्वस्ताश्छिद्रेषु प्रहरंत्यपि ॥१०॥

अर्थ-मुझे शङ्का है कि यह दोनों उत्तम पुरुष बालि के गुप्तचर हैं, क्योंकि राजाओं के बहुत मित्र होते हैं, यह विश्वास योग्य नहीं, मनुष्य को छली शत्रुओं को भी भले प्रकार जानना

चाहिये जो स्वयं विश्वास न करते हुए दूसरे को विश्वस्त बनाकर उसके छिद्रों में प्रहार करते हैं अर्थात् समय पाकर अपना काम कर जाते हैं ॥

शुद्धात्मानौ यदि त्वेतौ जानीहि त्वं प्लवंगम ।
व्याभाषितैर्वारुपैर्वा विज्ञेया दुष्टतानयो ॥११॥

वचो विज्ञाय हनुमान्सुग्रीवस्य महात्मनः ।
पर्वताद्दृष्यमूकात्तु पुप्लुवे यत्र राघवौ ॥१२॥

अर्थ–इसलिये हे वानर ! यदि यह दोनों शुद्धात्मा पुरुष हैं तो भी इनको जान कि यह कौन हैं, और यदि दुष्ट हैं तो भी इनकी दुष्टता की इनके वचन और रूपों से भले प्रकार परीक्षा कर, हनुमान् महात्मा सुग्रीव के वचनों का तात्पर्य्य समझकर ऋष्यमूक पर्वत से दोनों राघवों के समीप गया ॥

कपिरूपं परित्यज्य हनुमान्मारुतात्मजः ।
भिक्षुरूपं ततो भेजे शठबुद्धितया कपिः ॥१३॥

ततश्च हनुमान्वाचा श्लक्ष्णया सुमनोज्ञया ।
विनीतवदुपागम्य राघवौ प्रणिपत्य च ॥१४॥

आबभाषे च तौ वीरौ यथावत्प्रशशंस च ।
उवाच कामतो वाक्यं मृदु सत्यपराक्रमौ ॥१५॥

राजर्षिदेवप्रतिमौ तापसौ संशितव्रतौ ।
देशं कथमिमं प्राप्तौ भवन्तौ वरवर्णिनौ ॥१६॥

अर्थ–पवनसुत हनुमान् अपना रूप त्यागकर कपट बुद्धि से भिक्षुरूप धारण करके नम्रतापूर्वक उन दोनों राघवों के समीप गया और उनको प्रणाम कर स्पष्ट सुन्दर वाणी द्वारा उन दोनों वीरों से भाषण तथा उनकी यथावत प्रशंसा करके उन सत्य पराक्रम वाले वीरों से यह मधुर वाक्य बोला कि राजर्षि और देवताओं के तुल्य आप दोनों तीक्ष्ण व्रतों वाले तपस्वी ब्रह्मचारी इस देश में किस प्रकार पधारे हैं ॥

पद्मपत्रेक्षणौ वीरौ जटामण्डलधारिणौ ।
अन्योन्य सदृशौ वीरौ देवलोकादिहागतौ ॥१७॥
सिंहस्कन्धौ महोत्साहौ समदाविवगोवृषौ ।
आयताश्च सुवृत्ताश्च बाहवः परिघोपमा ॥१८॥
इमे च धनुषी चित्रे श्लक्ष्णे चित्रानुलेपने ।
प्रकाशते यथेन्द्रस्य वज्रे हेम विभूषिते ॥१९॥
सम्पूर्णाश्च शितैर्बाणैस्तूणाश्च शुभदर्शनाः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैर्ज्वलद्भिरिवपन्नगैः ॥२०॥

अर्थ–आप दोनों कमलपत्र के समान नेत्रों वाले, वीर, जटामण्डलधारी, एक दूसरे के सदृश ऐसे प्रतीत होते हो कि मानो देवलोक से आये हैं, सिंह के तुल्य कन्धों वाले, महा उत्साही, मद वाले वृषभ के समान, लोहदण्ड के समान लंबी तथा गोल भुजाओं वाले और धनुष भी धारण किये हुए हो जो चित्र विचित्र अनुलेपन से युक्त है, सुवर्ण से भूषित इन्द्र के वज्र समान धनुष और तरकस भी जो आप दोनों के हैं वह सब तीक्ष्ण

बाणों से भरे हुए, देदीप्यमान, घोर और जीवन का अन्त करने वाले मानो प्रज्वलित सर्प हैं ॥

खड्गावेतौ विराजेते निर्मुक्तभुजगाविव ।
एवं मां परिभाषंतं कस्माद्वैनाभिभाषथ ॥२१॥
सुग्रीवो नाम धर्मात्मा कश्चिद्वानरपुंगवः ।
वीरो विनिकृतो भ्रात्रा जगद्भ्रमति दुःखितः॥२२॥
प्राप्तोऽहं प्रेषितस्तेन सुग्रीवेण महात्मना ।
राज्ञा वानरमुख्यानां हनुमान्नाम वानरः ॥२३॥

अर्थ—और आपके खड्ग भी मानो केंचुली छोड़े हुए सर्प ही हैं, मेरे इस प्रकार भाषण करने पर आप कैसे नहीं बोलते अर्थात् आपको भी मुझसे भाषण करना चाहिये, वानरों में श्रेष्ठ एक सुग्रीव नाम धर्मात्मा अपने वीर भाई से निकाला हुआ दुःखित हो जगत् में घूम रहा है, और मुख्य वानरों के राजा उसी महात्मा सुग्रीव का भेजा हुआ मैं हनुमान नामक वानर आपके समीप आया हूं ॥

युवाभ्यां स हि धर्मात्मा सुग्रीवः सख्यमिच्छति ।
तस्य मां सचिवं वित्तं वानरं पवनात्मजम् ॥२४॥

अर्थ—और वह धर्मात्मा सुग्रीव आप दोनों के साथ मैत्री करना चाहते हैं, मुझे आप उनका मन्त्री पवनसुत वानर जानें ॥

सं०—अब राम हनुमान् से वार्तालाप करते हुए उसकी प्रशंसा करते हैं :—

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।

प्रहृष्टवदनःश्रीमान् भ्रातरं पार्श्वतःस्थितम् ॥२५॥
सचिवोऽयं कपीन्द्रस्य सुग्रीवस्य महात्मनः।
तमेव कांक्षमाणस्य ममान्तिकमिहागतः ॥२६॥

अर्थ-हनुमान के उक्त वचन सुनकर प्रसन्न मुख श्रीमान् राम अपने समीप स्थित भाई लक्ष्मण से बोले कि यह हनुमान कपिराज महात्मा सुग्रीव का मन्त्री है और सुग्रीव से हमारी मैत्री कराने की इच्छा करता हुआ यहां आया है ॥

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीव सचिवं कपिम्।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥२७॥
नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेदधारिणः।
ना सामवेदविदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥२८॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम्।
बहु व्याहरताऽनेन न किञ्चिदपशब्दितम् ॥२९॥
न मुखे नेत्रयोश्चापि ललाटे च भ्रुवोस्तथा।
अन्येष्वपि च सर्वेषु दोषः संविदितः क्वचित् ॥३०॥

अर्थ-हे सौमित्रे! स्नेह से भरे हुए, शत्रुओं को दमन करने वाले तथा वाक्य के जानने वाले सुग्रीव के इस मन्त्री ने मधुर वाक्यों द्वारा ऐसा भाषण किया है कि न ऋग्वेद का शिक्षा पाया हुआ, न यजुर्वेद को धारण करने वाला और न सामवेद को जानने वाला ऐसा भाषण करसकता है, निःसन्देह इसने अनेक वार व्याकरण श्रवण किया है, क्योंकि बहुत देर से बात करते हुए इसने कहीं भी अपभ्रंश नहीं बोला, और इसके बोलते

समय मुख पर, नेत्रों में, ललाट पर, भ्रुवों और अन्य अंगों में भी कहीं दोष विदित नहीं होता है ॥

अविस्तरमसंदिग्धमविलंवितमव्यथम् ।
उरस्थं कंठगं वाक्यं वर्तते मध्यमस्वरम् ॥३१॥
संस्कार क्रमसम्पन्नामद्भुतामविलंबिताम् ।
उच्चारयति कल्याणीं वाचं हृदय हर्षिणीम् ॥३२॥
अनया चित्रया वाचा त्रिस्थानव्यंजनस्थया ।
कस्य नाराध्यते चित्तमुद्यतासेरेररपि ॥३३॥

अर्थ—और न इनका शब्द संक्षेप होता, न संदिग्ध, न विलम्ब से उच्चारण होता, और न सुनने वाले को व्यथा होती, यह हृदय तथा कंठ में प्राप्त हुए वाक्यको मध्यम स्वर से बोलता है, और यह संस्कार के क्रम से सम्पन्न, अद्भुत भाषण करने वाला, विलम्ब दोष से रहित, हृदय को हर्ष देने वाली कल्याणमयी बाणी का उच्चारण करता है, तीन स्थानों में उत्पन्न होने वाली ऐसी विचित्र बाणी के श्रवण से किसका चित्त वशीभूत नहीं होजाता, चाहे तलवार उठाये हुए शत्रु भी क्यों न हो ॥

एवं विधो यस्य दूतो न भवेत्पार्थिवस्य तु ।
सिध्यन्ति हि कथं तस्य कार्याणां गतयोऽनघ॥३४॥
एवं गुणगणैर्युक्तः यस्य स्युः कार्यसाधकाः ।
तस्य सिध्यन्ति सर्वेऽर्था दूतवाक्य प्रचोदिताः॥३५॥

अर्थ-हे निष्पाप ! जिस राजा का दूत इस प्रकार का न हो उसके कामों के फल कैसे सिद्ध होसक्ते हैं, और इस प्रकार के गुणों से युक्त पुरुष जिसके कार्य्यकर्त्ता हों उसके सम्पूर्ण कार्य्य दूत के वाक्य से प्रेरे हुए सिद्ध होते हैं ॥

एवमुक्तस्तु सौमित्रिः सुग्रीवसचिवं कपिम् ।
अभ्यभाषत वाक्यज्ञो वाक्यज्ञं पवनात्मजम् ॥३६॥
विदिता नौ गुणा विद्वन्सुग्रीवस्य महात्मनः ।
तमेव वाचां मार्गावः सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ॥३७॥
यथा ब्रवीषि हनुमन्सुग्रीव वचनादिह ।
तत्तथा हि करिष्यावो वचनात्तव सत्तम ॥३८॥

अर्थ-राम के उक्त प्रकार कथन करने पर वाक्य के जानने वाला लक्ष्मण वाक्यज्ञ सुग्रीव के मन्त्री पवनसुत हनुमान से भाषण करने लगा कि हे विद्वन् ! महात्मा सुग्रीव के गुण हमें विदित हैं और हम उसी वानरपति सुग्रीव को ढूढ़ते फिरते हैं, हे हनुमन् ! जसे आप सुग्रीव का कहा हुआ कहते हैं सो आपके कथनानुसार हम वैसा ही करेंगे ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

सं०—अब हनुमान तथा लक्ष्मण का प्रश्नोत्तर कथन करते हैं:—

ततः परमसंहृष्टो हनूमान्प्लवगोत्तमः ।
प्रत्युवाच ततो वाक्यं रामं वाक्यविशारदम् ॥१॥

किमर्थं च वनं घोरं पम्पाकाननमण्डितम् ।
आगतः सानुजो दुर्गं नानाव्यालमृगायुतम् ॥२॥

अर्थ—इसके अनन्तर परम प्रसन्न हुआ वानरोत्तम हनुमान् वाक्य के जानने वाले राम से बोला कि आप यहां पम्पा के जंगलों से भूषित नाना व्याल, मृगों से युक्त इस भयंकर दुर्गम वन में छोटे भाई सहित कैसे आये हैं ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा लक्ष्मणो रामचोदितः ।
आचचक्षे महात्मानं रामं दशरथात्मजम् ॥३॥
राजा दशरथो नाम द्युतिमान्धर्मवत्सलः ।
चातुर्वर्ण्यं स्वधर्मेण नित्यमेवाभिपालयन् ॥४॥
न द्वेष्टा विद्यते तस्य स तु द्वेष्टि न कंचन ।
स तु सर्वेषु भूतेषु पितामह इवापरः ॥५॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्तदक्षिणैः ।
तस्यायं पूर्वजः पुत्रो रामो नाम जनैः श्रुतः ॥६॥

अर्थ—हनुमान् के उक्त वचन सुनकर राम से प्रेरित हुआ लक्ष्मण दशरथसुत महात्मा राम का इस प्रकार परिचय देने लगा कि राजा दशरथ नामा तेजस्वी धर्मवत्सल हुए हैं जो नित्य ही धर्मपूर्वक चारो वर्णों का पालन करते थे, उनका कोई द्वेषी न था और न वह किसी से द्वेष करते थे वरन सब प्राणियों का पिता की न्याईं पालन करते थे, उन्होंने बहुत दक्षिणा वाले अनेक अग्निष्टोमादि यज्ञ किये थे, उन्हीं के यह बड़े पुत्र हैं जो राम नाम से लोगों में विख्यात हैं ॥

राजलक्षणसंयुक्तः संयुक्तो राज्यसम्पदा ।
राज्याद्भ्रष्टो मया वस्तुं वनें सार्धमिहागतः ॥७॥
भार्यया च महाभाग सीतयानुगतो वशी ।
दिनक्षये महातेजाः प्रभयेव दिवाकरः ॥८॥
अहमस्यावरो भ्राता गुणैर्दास्यमुपागतः ।
कृतज्ञस्य बहुज्ञस्य लक्ष्मणो नाम नामतः ॥९॥

अर्थ—राजा के लक्षणों से युक्त तथा राज्यसम्पदा से युक्त हुए २ राज्य से भ्रष्ट होकर वन में वास करने के लिये मेरे साथ यहां आये हैं, जैसे महातेजस्वी सूर्य्य सायंकाल के समय अपनी प्रभा से शोभित होता है इसी प्रकार यह भी अपनी भार्या सीता के साथ सुशोभित थे, मैं इनका छोटा भाई गुणों से दासभाव को प्राप्त लक्ष्मण नाम वाला हूं, और यह कृतज्ञ=दूसरे के किये उपकार को मानने वाले तथा बहुज्ञ=बहुत जानने वाले हैं ॥

रक्षसापहृता भार्या रहिते कामरूपिणा ।
तच्च न ज्ञायते रक्षः पत्नीयेनास्य वा हृता ॥१०॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं याथातथ्येन पृच्छतः ।
अहं चैव च रामश्च सुग्रीवं शरणं गतौ ॥११॥

अर्थ—हमारी अनुपस्थिति में इनकी भार्या किसी काम रूपी राक्षस ने हरी है जिसको हम पूर्ण प्रकार से नहीं जानते, आपके पूछने पर हमने अपना सब वृत्तान्त यथार्थ कहदिया है, सो हम दोनों उसी की खोज में सुग्रीव की शरण को प्राप्त हुए हैं ॥

सीता यस्य स्नुषा चासीच्छरण्यो धर्मवत्सलः ।

तस्य पुत्रः शरण्यस्य सुग्रीवं शरणं गतः ॥१२॥
सर्वलोकस्य धर्मात्मा शरण्यः शरणं पुरा ।
गुरुर्मे राघवः सोऽयं सुग्रीवं शरणं गतः ॥१३॥
यस्य प्रसादे सततं प्रसीदेयुरिमाः प्रजाः ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकांक्षते ॥१४॥

अर्थ-सीता जिसकी स्नुषा और जो शरण लेने योग्य धर्मवत्सल=धर्म के जानने वाले राजा दशरथ थे उस शरण देने योग्य के पुत्र यह राम सुग्रीव की शरण को प्राप्त हुए हैं, जो धर्मात्मा इस समय शरण लेने योग्य है वह इससे पूर्व सम्पूर्ण लोक की शरण था, सो इस समय यह मेरे गुरु राम सुग्रीव की शरण लेते हैं, जिसके प्रसाद=कृपा से यह सम्पूर्ण प्रजायें सदा प्रसन्न होती हैं वह राम सुग्रीव का प्रसाद चाहते हैं॥

येन सर्वगुणोपेताः पृथिव्यां सर्वपार्थिवाः ।
मानिताः सततं राज्ञा सदा दशरथेन वै ॥१५॥
तस्यायं पूर्वजः पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुतः ।
सुग्रीवं वानरेन्द्रं तु रामः शरणमागतः ॥ १६ ॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरणं गते ।
कर्त्तुमर्हति सुग्रीवः प्रसादं सहयूथपैः ॥१७॥
एवं ब्रुवाणं सौमित्रिं करुणं साश्रुपातनम् ।
हनुमान्प्रत्युवाचेदं वाक्यं वाक्यविशारदः ॥१८॥

अर्थ-जिस राजा दशरथ ने पृथिवी में सब गुणी राजाओं का सन्मान किया है, उनके यह बड़े पुत्र सर्वत्र विख्यात राम

आज सुग्रीव की शरण आये हैं, शोक से आच्छादित तथा शोक से पीड़ित शरणागत आये हुए राम पर मन्त्रियों सहित सुग्रीव कृपा करने योग्य हैं, इस प्रकार लक्ष्मण के अश्रुपात सहित करुणामय वचन कहते हुए बोलने में चतुर हनुमान् उनसे यह वचन बोला किः—

ईदृशाबुद्धिसम्पन्ना जितक्रोधा जितेन्द्रियाः ।
द्रष्टव्या वानरेन्द्रेण दिष्ट्या दर्शनमागताः ॥१९॥
स हि राज्याच्च विभ्रष्टः कृतवैरश्च बालिना ।
हृतदारो वनेत्रस्तो भ्रात्रा विनिकृतो भृशम् ॥२०॥
करिष्यति स साहाय्यं युवयोर्भास्करात्मजः ।
सुग्रीवः सह चास्माभिः सीताया परिमार्गणे ॥२१॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! आप जैसे बुद्धिसम्पन्न, क्रोध को जीते हुए तथा इन्द्रियों को दमन किये हुए सुग्रीव के लिये दर्शन योग्य हैं, अधिक क्या हमारे भाग्य से आपके दर्शन हुए हैं, वह सुग्रीव राज्य से भ्रष्ट हुआ, बालि से वैर किये हुए उनकी स्त्री हरी गई है और भाई बालि से अत्यन्त अपमानित होकर भय-भीत हुए बन में रहते हैं, वह सूर्य्य पुत्र सुग्रीव सीता की खोज में हम लोगों सहित अवश्य आपकी सहायता करेंगे ॥

इत्येवमुक्त्वा हनुमाञ्श्लक्ष्णं मधुरयागिरा ।
बभाषे साधुगच्छामः सुग्रीवमिति राघवम् ॥२२॥
ततः स सुमहाप्राज्ञो हनूमान्मारुतात्मजः ।
जगामादाय तौ वीरौ हरिराजाय राघवौ ॥२३॥

अर्थ–इस प्रकार मधुरवाणी द्वारा भाषण करते हुए हनुमान

फिर बोले कि हम लोग सुग्रीव के निकट चलें, तदनन्तर वह महाप्राज्ञ पवनसुत हनुमान उन दोनों राघव वीरों को साथ लेकर वानरराज सुग्रीव के समीप गया ॥

इति तृतीयः सर्गः

अथ चतुर्थः सर्गः

सं०—अब राम और सुग्रीव की मैत्री का वर्णन करते हैं:—

ऋष्यमूकात्तु हनुमान् गत्वा तं मलयं गिरिम् ।
आचचक्षे तदा वीरो कपिराजाय राघवौ ॥१॥
अयं रामो महाप्राज्ञ संप्राप्तो दृढविक्रम ।
लक्ष्मणेन सहभ्रात्रा रामोऽयं सत्यविक्रमः ॥२॥

अर्थ—उन दोनों भाइयों को ऋष्यमूक पर्वत से उस मलय गिरि पर लेजाकर हनुमान् ने बतलाया कि यह दोनों राघव हैं, हे महाप्राज्ञ ! यह परम दृढ़विक्रम तथा सत्यप्रतिज्ञ राम हैं जो अपने छोटे भाई लक्ष्मण के साथ यहां आये हैं ॥

इक्ष्वाकूणां कुले जातो रामो दशरथात्मजः ।
धर्मे निगदितश्चैव पितुर्निर्देशकारकः ॥३॥
राजसूयाश्वमेधैश्च वह्निर्येनाभितर्पितः ।
दक्षिणाश्चतथोत्सृष्टागावः शतसहस्रशः ॥४॥
तपसा सत्यवाक्येन वसुधा तेन पालिता ।

स्त्री हेतोस्तस्य पुत्रोऽयं रामोऽरण्यं समागतः ॥५॥
तस्यास्य वसतोऽरण्ये नियतस्य महात्मनः।
रावणेन हृताभार्या स त्वां शरणमागतः ॥६॥

अर्थ-यह इक्ष्वाकुवंशियों के कुल में उत्पन्न राजा दशरथ के पुत्र राम धर्मात्माओं में अग्रणी अपने पिता के बड़े आज्ञाकारी हैं. वह राजा दशरथ जिन्होंने अनेक राजसूय तथा अश्वमेधादि यज्ञों से अग्नि को तृप्त कर बहुतसी गायें दक्षिणा में दीं, और जिन्होंने तप तथा सत्य से पृथिवी का पालन किया उन्होंने स्त्री के कारण इनको वनवास दिया है सो यह राम यहां वन में आये हैं, यह महात्मा जितेन्द्रिय दण्डकारण्य में वास करते थे, वहां से इनकी भार्या को रावण हर लेगया है, इससे यह आपकी शरण को प्राप्त हुए हैं ॥

भवता सख्यकामौ तौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
प्रगृह्यचार्चयस्वै तौ पूजनीयतमावुभौ ॥७॥
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं सुग्रीवो वानराधिपः ।
दर्शनीयतमो भूत्वा प्रीत्योवाच च राघवम् ॥८॥
भवान्धर्मविनीतश्च सुतपाः सर्ववत्सलः ।
तन्ममैवैष सत्कारो लाभश्चैवोत्तमः प्रभो ॥९॥

अर्थ-आपके साथ मैत्री की कामना वाले यह राम लक्ष्मण दोनों भाई हैं इनको आप स्वीकार कर सत्कार करें, क्योंकि यह दोनों पूजनीय हैं, हनुमान के उक्त बचन सुनकर सुग्रीव दर्शनीयतम=दर्शन की अति उत्कण्ठा वाले हुए २ प्रीतिपूर्वक

राम से बोले कि आप धर्म में विनीत, बड़े तपस्वी तथा सब से प्यार करने वाले हैं, हे प्रभो ! यह मेरा बड़ा सत्कार और मुझे बड़ा लाभ है जो आप मेरे साथ मित्रता करना चाहते हैं ॥

रोचते यदि मे सख्यं बाहुरेषप्रसारितः ।
गृह्यतां पाणिना पाणिर्मर्यादा वध्यतां ध्रुवा ॥१०॥
एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् ।
संप्रहृष्टमना हस्तं पीडयामास पाणिना ॥११॥
ततोऽग्निं दीप्यमानं तौ चक्रतुश्च प्रदक्षिणम् ।
सुग्रीवो राघवश्चैव वयस्यत्वमुपागतौ ॥१२॥

अर्थ—यदि आपको मुझसे मित्रता करना रुचता है तो यह मैंने भुजा फैलाई हैं आप अपने हाथ से मेरा हाथ पकड़कर मित्रता की अटल मर्यादा बांधें, सुग्रीव के उक्त वचन सुनकर प्रसन्न हुए राम ने अपने दायें हाथ मे सुग्रीव का दायां हाथ ग्रहण किया, तदनन्तर मित्रता की दृढ़ता के लिये उन दोनों ने प्रदीप्त अग्नि की प्रदक्षिणा की और राम तथा सुग्रीव दोनों मित्र बन गये ॥

ततः सुप्रीतमनसौ तावुभौ हरिराघवौ ।
अन्योन्यमभिवीक्षन्तौ न तृप्तिमभिजग्मतुः ॥१३॥
त्व वयस्योऽसि हृद्यो मे एकं दुःखं सुखं च नौ ।
सुग्रीवो राघवं वाक्यमित्युवाच प्रहृष्टवत् ॥१४॥

अर्थ—तदनन्तर सुग्रीव और राम दोनों अति प्रसन्न हो एक दूसरे को एकटक देखते हुए तृप्त नहीं होते हैं, आप मेरे मित्र मेरे हृदय को प्रिय हैं, हमारा दोनों का सुख दुःख एक है, इस प्रकार सुग्रीव ने राम को परम हर्षदायक वचन वार २ कहे ॥

ततः सुपर्ण बहुलां भंक्त्वा शाखां सुपुष्पिताम् ।
सालस्यास्तीर्य सुग्रीवो निषसादस राघवः ।
लक्ष्मणायाथ संहृष्टो हनुमान्मारुतात्मजः ॥१५॥
शाखाचन्दन वृक्षस्य ददौ परमपुष्पिताम् ।
ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णं मधुरयागिरा ॥१६॥
प्रत्युवाच तदाराम हर्ष व्याकुल लोचनः ।
अहं विनिकृतो रामचरामीह भयार्दितः ॥१७॥
हृतभार्यो वनेत्रस्तो दुर्गमे तदुपाश्रितः ।
सोहं त्रस्तो वने भीतो वसाम्युद्भ्रान्त चेतनः॥१८॥

अर्थ—तदनन्तर पुष्पों सहित एक साल की डाली जिसमें बहुत से पत्र थे तोड़कर सुग्रीव तथा राम उस पर बैठे और हर्षित हुए हनुमान ने लक्ष्मण के लिये अतिपुष्पित चन्दन की एक शाखा तोड़कर बैठने को दी,तत्पश्चात् हर्ष से व्याकुल नेत्रों वाले परम प्रसन्न हुए सुग्रीव मधुरवाणी द्वारा राम से बोले कि हे राम! मुझे बालि ने घर से निकाल दिया और मेरी स्त्री भी हरली है सो मैं भयभीत हुआ यहां दुर्गम बन में भ्रमण करता हूं, और भय से व्याकुल चित्त हुआ क्षणमात्र भी शान्ति को प्राप्त नहीं होता ॥

बालिनानि कृतो भ्रात्रा कृतवैरश्च राघव ।
बालिनो मे महाभाग भयार्तं स्याभयं कुरु ॥१९॥
कर्तुमर्हसि काकुत्स्थ भयं मेन भवेद्यथा ।
एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ॥२०॥
प्रत्यभाषत काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ।
उपकार फलं मित्रं विदितं मे महाकपे ॥२१॥

अर्थ–हे राघव ! बालि ने वैर करके मुझको घर से निकाल दिया और अब भी मुझसे वैर करता है, सो हे महाभाग ! बालि के भय से व्याकुल हुए मुझको अभय करें, आप कृपा करके ऐसा उपाय करें जिससे मुझे बालि से भय न हो, सुग्रीव के इस प्रकार कथन करने पर तेजस्वी धर्मवत्सल राम मुसकराकर बोले कि हे मित्र सुग्रीव ! मुझे उपकार का फल भले प्रकार विदित है ॥

बालिनं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ।
अमोघाः सूर्य संकाशाममेमे निशिताः शराः॥२२॥
तस्मिन् बालिनि दुर्वृत्ते निपतिष्यंति वेगिताः ।
कंकपत्र प्रतिच्छन्ना महेन्द्राशनिसान्निभाः ॥२३॥

अर्थ–हे सुग्रीव ! तुम्हारी भार्या के हरण करने वाले उस बालि का मैं इन सूर्य्यसमान अमोघ तीक्ष्ण बाणों से अवश्य वध करूंगा, उस दुराचारी भ्रातृजायापहारी बालि के ऊपर मेरे कंकपत्र लगे हुए इन्द्र के वज्रसमान यह बाण अति वेग से गिरेंगे जिनसे आप उसको मरा हुआ ही समझें ॥

आगे चले बहुरि रघुराई । ऋष्यमूक पर्वत नियराई ॥
तहं रह सचिवसहित सुग्रीवा । आवत देख अतुल बल सींवा ॥
अति सभीत कह सुन हनुमाना । पुरुष युगल बल रूप निधाना ॥
धरि वटुरूप देख तें जाई । कहि सुजान जिय सैन बुझाई ॥
पठवा बालि होय मन मैला । भागों तुरत तजों यह शैला ॥
विप्ररूप धरि कपि तहं गयऊ । माथ नाय पूछत अस भयऊ ॥
को तुम श्यामल गौर शरीरा । क्षत्रिय रूप फिरहु वन वीरा ॥
कठिन भूमि कोमल पद गामी । कवन हेतु वन विचरहु स्वामी ॥
मृदुल मनोहर सुन्दर गाता । सहत दुसह वन आतप बाता ॥
की तुम तीन देव महं कोऊ । नर नारायण की तुम दोऊ ॥

राम का हनुमान के प्रति उत्तर

हंसि बोले रघुवंश कुमारा । विधिकर लिखा को मेटन हारा ॥
कौशलेश दशरथ के जाये । हम पितु वचन मानि वन आये ॥
नाम राम लक्ष्मण दोउ भाई । संग नारि सुकुमारि सुहाई ॥
यहां हरी निश्चर वैदेही । खोजत विप्र फिराहिं हम तेही ॥
आपन चरित कहा हम गाई । कहहु विप्र निज कथा बुझाई ॥
प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरणा । सो सुख उमा जाय नहिं बरणा ॥
पुलकित तनु मुख आव न वचना । देखत रुचिर वेश की रचना ॥
पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्हा । हर्ष हृदय निज नाथहिं चीन्हा ॥

राम के प्रति हनुमान का कथन

देखि पवनसुत पति अनुकूला । हृदय हर्ष बीते सब शूला ॥
नाथ शैल पर कपिपति रहई । सो सुग्रीव दास तव अहई ॥
तेहि सन नाथ मयत्री कीजे । दीन जान तेहि अभय करीजे ॥
सो सीताकर खोज कराइहि । जहं तहं मर्कट कोटि पठाइहि ॥
यहि विधि सकल कथा समझाई । लिये दोउ जन पीठ चढ़ाई ॥

सुग्रीव और राम का मिलाप

जब सुग्रीव राम कहं देखा । अतिशय धन्य जन्म करि लेखा ॥
सादर मिलेउ नाय पद माथा । भेटे अनुज सहित रघुनाथा ॥
कपि कर मन विचार यह नीति । करिहैं विधि मोसन यह प्रीति ॥
तब हनुमन्त उभयादिशि, कहि सब कथा बुझाय ।
पावक साखी देय कर, जोरी प्रीति दृढ़ाय ॥
कीन्ह प्रीति कछु बीच न राखा । लक्ष्मण रामचरित सब भाखा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी । मिलिहि नाथ मिथिलेश कुमारी॥

राम के प्रति अपनी विपत्ति का कथन

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई । विधिगत अलख जानि नहिं जाई ॥
नाथ बालि अरु मैं दोउ भाई। प्रीति रही कछु बरणि न जाई ॥
रिपु समान मोहिं मारसि भारी । हरलीन्हें सरबस अरु नारी ॥
ताके भय रघुबीर कृपाला । सकल भुवन में फिरों बिहाला ॥
यहां शापवश आवत नाहीं । तदपि सभीत रहों मन माहीं ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला । फरकि उठे दोउ भुजा विशाला ॥
सुन सुग्रीव मैं मारिहों, बालिहि एकहि बाण ।
ब्रह्मरुद्र शरणागतहु, गये न उबरहिं प्राण ॥
जे न मित्र दुःख होहिं दुखारी । तिनहिं विलोकत पातक भारी ॥
निज दुःख गिरिसम रज के जाना । मित्र के दुःख रज मेरु समाना॥
जिनके अस मति सहज न आई । ते शठ हठ कत करत मिताई॥
कुपंथ निवारि सुपंथ चलावा । गुण प्रकटै अवगुणहि दुरावा ॥
देत लेत मन शंक न धरहीं । बल अनुमान सदा हित करहीं ॥
विपति काल कर सतगुण नेहा । श्रुति कह संत मित्र गुण एहा ॥
सखा शोच त्यागहु बल मोरे । सब विधि करब काज मैं तोरे ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पंचमः सर्गः

सं०—अब सुग्रीव सीता के वस्त्राभूषण दिखलाकर राम को आश्वासन देते हैं :—

पुनरेवाब्रवीत्प्रीतो राघवं रघुनन्दनम् ।
अयमाख्याति ते राम सेवको मन्त्रि सत्तमः ॥१॥
हनुमान्यन्निमित्तं त्वं निर्जनं वनमागतः ।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा वसतश्च वने तव ॥ २ ॥
रक्षसापहृता भार्या मैथिली जनकात्मजा ।
त्वया वियुक्ता रुदती लक्ष्मणेन च धीमता ॥३॥
अन्तरं प्रेप्सुना तेन हत्वा गृध्रं जटायुषम् ।
भार्यावियोगजं दुःखं प्रापितस्तेन रक्षसा ॥ ४ ॥

अर्थ—सुग्रीव अति प्रसन्न होकर रघुनन्दन राम से बोले कि हे राम ! यह आपका सेवक मेरा श्रेष्ठ मन्त्री हनुमान जिस निमित्त आप इस निर्जन वन में आये हैं मुझे बतलाता है कि भाई लक्ष्मण के साथ वन में वास करते हुए आपकी भार्या जनकसुता मैथिली आपसे और बुद्धिमान् लक्ष्मण से पृथक् हो रुदन करती हुई उस गृध्र जटायु को मारकर हरण करली है और उस राक्षस ने आपको भार्या के बड़े वियोगजन्य दुःख को प्राप्त किया है ॥

भार्यावियोगजं दुःखं नचिरात्त्वं विमोक्ष्यसे ।
अहं तामानयिष्यामि नष्टां वेदश्रुतिमिव ॥ ५ ॥

इदं तथ्यं मम वचस्त्वमवेहि च राघव ।
त्यज शोकं महाबाहो तां कान्तामानयामि ते ॥६॥
अनुमानात्तु जानामि मैथिली सा न संशयः ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रक्षसा रौद्रकर्मणा ॥ ७ ॥

अर्थ—हे राम ! आप भार्या के वियोगज दुःख को शीघ्र ही छोड़देंगे, मैं खोई वेदश्रुति की भांति उसको फिर खोजकर लाउंगा, हे राघव ! मेरे इस वचन को आप सत्य जानकर शोक को त्याग दें, मैं आपकी उस कान्ता को अवश्य लाउंगा, मैं अनुमान से जानता हूं कि निःसन्देह वह मैथिली ही थी जो भयङ्कर कर्मों वाले राक्षस से मैंने हरी हुई जाती देखी है ॥

क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च विस्वरम् ।
स्फुरन्ती रावणस्याङ्के पन्नगेन्द्रवधूर्यथा ॥ ८ ॥
आत्मना पंचमं मां हि दृष्ट्वा शैलतले स्थितम् ।
उत्तरीयं तया त्यक्तं शुभान्याभरणानि च ॥ ९ ॥
तान्यस्माभिर्गृहीतानि निहितानि च राघव ।
आनयिष्याम्यहंतानि प्रत्यभिज्ञातुमर्हसि ॥१०॥

अर्थ—हा !! राम,हा !! राम, हा !! लक्ष्मण,इस प्रकार विस्वर से पुकारती और रावण के समीप नागनी की भांति तड़फती हुई सीता ने मुझे चार वानरों के सहित पर्वततल पर स्थिर देखकर अपना दुपट्टा तथा शुभ आभूषण छोड़े हैं,और हे राघव ! वह मैंने उठा सम्भालकर रखे हुए हैं सो मैं उन्हें लाता हूं आप उनको पहचानने योग्य हैं ॥

तमब्रवीत्ततो रामः सुग्रीवं प्रियवादिनम् ।
आनयस्व सखे शीघ्रं किमर्थं प्रविलम्बसे ॥११॥
एवमुक्तस्तु सुग्रीवः शैलस्य गहनां गुहाम् ।
प्रविवेश ततः शीघ्रं राघवप्रियकाम्यया ॥ १२ ॥

अर्थ—तब उस प्रियवादी सुग्रीव को राम ने कहा कि हे सखे ! उन्हें शीघ्र लावें आप किसलिये विलम्ब करते हैं, जब राम ने सुग्रीव से इस प्रकार कहा तब वह उनका प्रिय करने की इच्छा से शीघ्र ही गहनगुहा में प्रविष्ट होकर :—

उत्तरीयं गृहीत्वातु स तान्याभरणानि च ।
इदं पश्येति रामाय दर्शयामास वानरः ॥ १३ ॥
ततो गृहीत्वा वासस्तु शुभान्याभरणानि च ।
अभवद्बाष्पसंरुद्धो नीहारेणेव चन्द्रमाः ॥ १४ ॥
सीतास्नेहप्रवृत्तेन स तु वाष्पेण दूषितः ।
हा प्रियेति रुदन्धैर्यमुत्सृज्य न्यपतत्क्षितौ ॥१५॥
हृदि कृत्वा स बहुशस्तमलङ्कारमुत्तमम् ।
निःशश्वास भृशं सर्पो बिलस्थ इव रोषितः ॥१६॥

अर्थ—दुपट्टा तथा उन आभूषणों को लाया और "यह देखिये" इस प्रकार कहकर वह सब राम को दिखलाये, उस वस्त्र तथा शुभ आभूषणों को ग्रहण कर राम कुहर से चन्द्रमा की भांति आंसुओं से अच्छादित होगये, और सीता के स्नेह द्वारा प्रवृत्त हुए आंसुओं से दूषित होकर अर्थात् सीता के प्रेम में मग्न हो

आंसु बहाते हुए धैर्य्य को त्यागकर "हा प्यारी" इस प्रकार रुदन करते हुए पृथिवी पर गिर पड़े और उस उत्तम वस्त्र को बार २ हृदय पर रखकर बिल में स्थित क्रुद्ध किये सर्प की भांति बार २ श्वास लेने लगे ॥

अविच्छिन्नाश्रुवेगस्तु सौमित्रिं प्रेक्ष्य पार्श्वतः ।
परिदेवयितुं दीनं रामः समुपचक्रमे ॥ १७ ॥
पश्य लक्ष्मण वैदेह्या संत्यक्तं ह्रियमाणया ।
उत्तरीयमिदं भूमौ शरीराभूषणानि च ॥ १८ ॥

अर्थ—लगातार आंसुओं के वेग वाला राम समीप स्थित दुःखित हुए लक्ष्मण को रुलाने लगे कि हे लक्ष्मण ! देख हरी जाती हुई जानकी ने यह दुपट्टा और यह आभूषण भूमि पर फैंके हैं ॥

एवमुक्तस्तु रामेण लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ।
नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले ॥१९॥
नूपुरे त्वभिजानामि नित्यं पादाभिवन्दनात् ।
ततस्तु राघवो वाक्यं सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥ २० ॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर लक्ष्मण बोला कि मैं बाहुबन्द और कुण्डलों को नहीं जानता, हां प्रतिदिन चरणों पर नमस्कार करने के कारण नूपुर=पांव के भूषणों को पहचानता हूं, तब राम सुग्रीव से यह वाक्य बोले कि :—

ब्रूहि सुग्रीव कं देशं ह्रियन्ती लक्षिता त्वया ।
रक्षसा रौद्ररूपेण मम प्राणप्रिया हृता ॥ २१ ॥

क्व वा वसति तद्रक्षो महद्व्यसनदं मम ।
यन्निमित्तमहं सर्वान्नाशयिष्यामिराक्षसान् ॥ २२ ॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! यह बतलाओ कि उस भयङ्कर रूप वाले राक्षस से मेरी प्राणप्यारी किस देश को हरी जाती हुई देखी है, और मुझे विपद् में डालने वाला वह राक्षस कहां वास करता है जिसके निमित्त मैं सब राक्षसों का नाश करुंगा ॥

मंत्रिन सहित यहां इक बारा। बैठ रहेउं कछु करत विचारा ॥
गगनपंथ देखी मैं जाता। परवश परी बहुत बिलखाता ॥
राम राम हा राम पुकारी। मम दिशि देख दीन्ह पट डारी ॥
मांगा राम तुरत सो दीन्हा। पट उर लाय शोच अति कीन्हा ॥
कह प्रभु लक्ष्मण सों यह बाता। पहंचानत पट भूषण ताता ॥
हाथ जोरि लक्ष्मण यह बोले। रघुनायक सों वचन अमोले ॥
पगभूषण मैं सकत चिन्हारी। ऊपर कबहुं न सीय निहारी ॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुवीरा। तजहु शोच उर आनहुधीरा ॥
सब प्रकार करिहों सेवकाई। जेहि विधि मिले जानकी माई ॥

इति पंचमः सर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

सं०—अब सुग्रीव का राम को धैर्य्य देना कथन करते हैं :—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो रामेणार्तेन वानरः ।
अब्रवीत्प्रांजलिर्वाक्यं सबाष्पं बाष्पगद्गदः ॥ १ ॥

सत्यं तु प्रतिजानामि त्यज शोकमरिंदम ।
करिष्यामि तथा यत्नं यथा प्राप्स्यसि मैथिलीम् ॥२॥

अर्थ—उक्त प्रकार कहकर आंसुओं से गद्गद हुआ सुग्रीव दुःखी राम से हाथ जोड़कर यह वचन बोला कि हे शत्रुओं को दमन करने वाले राम ! आप शोक को त्याग दें. मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि वैसा ही यत्न किया जायगा जिससे आप शीघ्र ही मैथिली को प्राप्त करेंगे ॥

रावणं सगणं हत्वा परितोष्यात्मपौरुषम् ।
तथास्मि कर्त्ता न चिराद्यथा प्रीतोभविष्यसि ॥३॥
अलं वैक्लव्यमालंब्य धैर्यमात्मगतंस्मर ।
त्वद्विधानां न सदृशमीदृशं बुद्धिलाघवम् ॥ ४ ॥
मयापि व्यसनं प्राप्तं भार्याविरहजं महत् ।
नाहमेवं हि शोचामि धैर्यं न च परित्यजे ॥ ५ ॥

अर्थ—रावण को उसके सम्बन्धियों सहित मारकर अपने पौरुष को पूर्ण प्रकार से दिखलाता हुआ शीघ्र ही ऐसा यत्न करूंगा जिससे आप अति प्रसन्न होंगे, आप घबराहट को छोड़कर धैर्य्य धारण करें, आप जैसे महापुरुष को बुद्धिलाघव=बुद्धि की चञ्चलता उचित नहीं, मैंने भी भार्या के वियोग से भारी विपत्ति भोगी है परन्तु मैं इस प्रकार शोक नहीं करता और न धैर्य्य को त्यागता हूं ॥

नाहंतामनुशोचामि प्राकृतो वानरोपिसन् ।
महात्मा च विनीतश्च किं पुनर्धृतिमान्महान् ॥६॥

बाष्पं मा पतितं धैर्यान्निगृहीतुं त्वमर्हसि ।
मर्यादा सत्त्वयुक्तानां धृतिं नोत्स्रष्टुमर्हसि ॥ ७ ॥
व्यसनेवार्थ कृच्छ्रेवाभये वा जीवितांतगे ।
विमृशंश्चस्वया बुद्ध्या धृतिमान्नावसीदति ॥ ८ ॥

अर्थ—जब हम साधारण पुरुष ऐसा शोक नहीं करते तो आप जैसे महात्मा तथा सुशिक्षित को तो कदापि अपने धैर्य्य का त्याग नहीं करना चाहिये, आप अपने आंसुओं को धैर्य्य से रोकने योग्य हैं, क्योंकि सत्व में स्थित पराक्रमी पुरुषों की मर्यादा वा धारणाशक्ति आपको कभी नहीं छोड़नी चाहिये, चाहे दुःख आवे, चाहे धन का नाश होजाय, चाहे भय उपस्थित हो और चाहे प्राणान्त ही क्यों न होजाय परन्तु बुद्धिमान् पुरुष विचारपूर्वक धैर्य्य का त्याग नहीं करते अर्थात् धैर्य्यसम्पन्न पुरुष सदा विचार पूर्वक काम करते हैं ॥

ये शोकमनुवर्तन्ते न तेषां विद्यते सुखम् ।
तेजश्च क्षयते तेषां न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ९ ॥
शोकेनाभिप्रपन्नस्य जीविते चापि संशयः ।
स शोकं त्यज्य राजेन्द्र धैर्य्यमाश्रय केवलम् ॥१०॥
हितं वयस्यभावेन ब्रूमि नोपदिशामि ते ।
वयस्यता पूजयन्मे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ ११ ॥

अर्थ—जो पुरुष शोक में रहते हैं उनको सुख नहीं होता किन्तु उनका तेज क्षीण होता है, इसलिये आपको शोक नहीं करना चाहिये, अधिक क्या शोकार्त्त पुरुष के तो जीवित रहने

में भी संशय होता है, सो हे राजेन्द्र ! आप शोक को त्यागकर केवल धैर्य्य का आश्रय लें, मैं आपको मित्रभाव से यह हित की बात कहता हूं उपदेश नहीं करता, आप मेरे मित्रभाव का आदर करते हुए शोक का त्याग करने योग्य हैं ॥

मधुरं सान्त्वितस्तेन सुग्रीवेण स राघवः ।
मुखमश्रुपरिक्लिन्नं वस्त्रान्तेन प्रमार्जयत् ॥ १२ ॥
प्रकृतिस्थस्तु काकुत्स्थः सुग्रीव वचनात्प्रभुः ।
संपरिष्वज्य सुग्रीवमिदं बचनमब्रवीत् ॥ १३ ॥
कर्तव्यं यद्वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च ।
अनुरूपं च युक्तं च कृतं सुग्रीव तत्त्वया ॥ १४ ॥
एष च प्रकृतिस्थोऽहमनुनीतस्त्वया सखे ।
दुर्लभो हीदृशो बन्धुरस्मिन्काले विशेषतः ॥१५॥

अर्थ—जब सुग्रीव ने राम को उक्त प्रकार से मधुर वाक्यों द्वारा आश्वासन दिया तब राम ने आंसुओं से भीगे हुए मुख को वस्त्र के अञ्चल से पोंछा, सुग्रीव के बचनों से स्वस्थ हुए राम उसको आलिङ्गन करके यह बचन बोले कि हे सुग्रीव ! बुद्धिमान् हितु मित्र का जो कर्तव्य है वह आपने उचित और अपने सदृश किया है अर्थात् अपने हितप्रिय मित्र को जैसा करना चाहिये वैसा ही आपने किया है, हे सखे ! आपसे आश्वासन दिया हुआ मैं प्रकृतिस्थ हुआ हूं अर्थात् शोक त्याग अपने पूर्व स्वभाव पर जा टिका हूं, ऐसे विपत्ति काल में सचमुच आप जैसा बन्धु मिलना दुर्लभ है ॥

किं तु यत्नस्त्व कार्यो मैथिल्याः परिमार्गणे ।
राक्षसस्य च रौद्रस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥ १६ ॥

मया च यदनुष्ठेयं विस्रब्धेन तदुच्यताम् ।
वर्षास्विव च सुक्षेत्रे सर्वं संपद्यते तव ॥ १७ ॥

अर्थ—अस्तु, अब आपको मैथिलि के ढूंढने और क्रूर दुरात्मा राक्षस रावण के मारने में यत्न करना चाहिये, और मेरा जो कर्तव्य है वह विश्वस्त होकर मुझसे कहो. वर्षा काल में उत्तम क्षेत्र में बोये हुए बीज की न्याई आपका सब कार्य्य सफल होगा ॥

मया च यदिदं वाक्यमभिमानात्समीरितम् ।
तत्त्वयाहरिशार्दूलतत्त्वमित्युपधार्यताम् ॥ १८ ॥

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवो वानरैः सचिवैः सह ।
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रतिज्ञातं विशेषतः ॥ १९ ॥

एवमेकान्तसंपृक्तौ ततस्तौ नरवानरौ ।
उभावन्योन्यसदृशं सुखं दुःखमभाषताम् ॥ २० ॥

अर्थ—हे सुग्रीव शार्दूल ! मैंने जो " बालि का वध आदि " करने विषयक वचन अभिमान से कहे हैं उनको तुम सत्य ही जानना, मैं कभी अनृतभाषण नहीं करता, तदनन्तर राम के वचन सुनकर अपने मन्त्रियों सहित सुग्रीव अति प्रसन्न हुआ और विशेषतः प्रतिज्ञा को सुनकर अपने कार्य्य की सिद्धि जान गद्गद होगया. इस प्रकार राम तथा सुग्रीव एकान्त में मिले हुए परस्पर एक दूसरे के तुल्य अपना २ दुःख दोनों ने वर्णन किया ॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

सं०—अब सुग्रीव का दुःख वर्णन करते हुए राम का बल कथन करते हैं :—

ततः प्रहृष्टः सुग्रीवः श्लक्ष्णया शुभया गिरा ।
उवाच प्रणयाद्रामं हर्षव्याकुलिताक्षरम् ॥ १ ॥
अहं विनिकृतो भ्रात्रा चराम्येष भयार्दितः ।
ऋष्यमूकं गिरिवरं हृतभार्यः सुदुःखितः ॥ २ ॥
बालिनो मे भयार्तस्य सर्वलोकाभयंकर ।
ममापि त्वमनाथस्य प्रसादं कर्तुमर्हसि ॥ ३ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् हर्ष को प्राप्त हुआ सुग्रीव मधुर शुभ वाणी द्वारा हर्ष से पूर्ण अक्षरों सहित प्रेमपूर्वक राम से बोला कि भाई से अनादर को प्राप्त हुआ तथा भयभीत और हरण कीहुई भार्या वाला मैं अतीव दुःखित हो इस ऋष्यमूक पर्वत पर फिर रहा हूं, हे सब लोक को अभय देने वाले राम ! आप बालि के भय से पीड़ित हुए मुझ अनाथ पर कृपा करने योग्य हैं ॥

एवमुक्तस्तु तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मवत्सलः ।
प्रत्युवाच स काकुत्स्थः सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ ४ ॥
उपकारफलं मित्रमपकारोऽरि लक्षणम् ।
अद्यैवं तं वधिष्यामि तव भार्यापहारिणम् ॥ ५ ॥

इमे हि मे महाभाग पत्रिणस्तिग्मतेजसः ।
कार्तिकेयवनोद्भूताः शराः हेमविभूषिताः ॥ ६ ॥
बालिसंज्ञममित्रं ते भ्रातरं कृतकिल्बिषम् ।
शरैर्विनिहतं पश्य विकीर्णमिव पर्वतम् ॥ ७ ॥

अर्थ—सुग्रीव के उक्त प्रकार कथन करने पर तेजस्वी, धर्मज्ञ, धर्मवत्सल राम मुसकराकर सुग्रीव से बोले कि मित्र उपकार के फल से पहचाना जाता और अपकार करना शत्रु का चिन्ह है, मैं अभी तुम्हारी भार्या हरण करने वाले का वध करूंगा, हे महाभाग ! यह तीक्ष्ण चमकते हुए, सुवर्ण से भूषित नोकों वाले शर जो कार्तिकेय वन में उत्पन्न हुए हैं सो अब आप किये हुए अपराध वाले अपने बालि नामक भाई रूप शत्रु को इन्हीं से बिखरे हुए पर्वत की भांति मरा हुआ देखेंगे ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
प्रहर्षमतुलं लेभे साधुसाध्विति चाब्रवीत् ॥ ८ ॥
त्वं हि पाणिप्रदानेन वयस्यो मेऽग्नि साक्षिकम् ।
वयस्य इति कृत्वा च निस्रब्ध प्रवदाम्यहम् ॥ ९ ॥

अर्थ—राम के उक्त वचन सुनकर सेनापति सुग्रीव अतुल हर्ष को प्राप्त होकर साधु २ कहने लगा और बोला कि आप अग्नि के सन्मुख हाथ में हाथ देकर मेरे सखा बने हैं सो मैं आपको अपना सखा जानकर निःशङ्क यह कहता हूं कि :—

पुराहं बालिना राम राज्यात्स्वादवरोपितः ।
परुषाणि च संश्राव्य निर्धूतोऽस्मि बलीयसा॥१०॥

हृता भार्या च मे तेन प्राणेभ्योऽपि गरीयसी ।
सुहृदश्च मदीया ये संयता बन्धनेषु ते ॥ ११ ॥
यत्नवांश्च स दुष्टात्मा मद्विनाशाय राघव ।
बहुशस्तत्प्रयुक्ताश्च वानरा निहता मया ॥ १२ ॥

अर्थ–हे राम ! बालि ने प्रथम मुझे अपने राज्य से भ्रष्ट तथा उस बलवान् ने कठोर वाक्य कहकर मेरा अनादर किया, प्राणों से प्रिय मेरी पत्नी हरली और जो मेरे सुहृद् थे उनको उसने बन्धन में डालदिया, और हे राघव ! वह दुष्टात्मा अब मेरे विनाश के लिये यत्नवान् है, अनेकवार उसके भेजे हुए वानर मैंने मारे हैं ॥

केवलं हि सहाया मे हनुमत्प्रमुखास्त्विमे ।
अतोऽहं धारयाम्यद्य प्राणान्कृच्छ्रगतोऽपिसन्॥१३॥
एते हि कपयः स्निग्धा मां रक्षन्ति समन्ततः ।
सहगच्छन्ति गन्तव्ये नित्यं तिष्ठन्ति चास्थिते॥१४॥

अर्थ–मेरे सहायक केवल यह हनुमान आदि हैं, सो आज मैं इतने घोर क्लेश में पड़ा हुआ भी प्राणों को धारण कर रहा हूं, यह मेरे स्नेही लोग सब ओर से मेरी रक्षा करते हैं, मेरे चलने पर साथ जाते और ठहरने पर सदा ठहर जाते हैं ॥

संक्षेपस्त्वेष मे राम किमुक्त्वा विस्तरं हि ते ।
स मे ज्येष्ठो रिपुर्भ्राता बाली विश्रुतपौरुषः ॥१५॥
तद्विनाशेपि मे दुःखं प्रमृष्टं स्यादनन्तरम् ।
सुखं मे जीवितं चैव तद्विनाश निबन्धनम् ॥१६॥

एष मे राम शोकान्तः शोकार्तेन निवेदितः ।
दुःखितःसुखितो वापि सख्युर्नित्यं सखागतिः॥१७॥

अर्थ—हे राम ! यह मैंने अपना वृत्तान्त संक्षेप से कहा, आपको अधिक विस्तार कहने से क्या, वह मेरा बड़ा भाई विख्यात पराक्रम वाला बालि मेरा शत्रु है, सो जब तक उसका विनाश न होजायगा तब तक मुझको सुख न होगा, उसके विनाश होने पर ही मेरे प्राण निर्भय होंगे, हे राम ! शोक से पीड़ित हुए मैंने यह अपने शोक का अन्त आपके सन्मुख निवेदन किया है, क्योंकि सुख दुःख में मित्र का मित्र ही सदा सहारा होता है ॥

एवमुक्तः स तेजस्वी धर्मज्ञो धर्मसंहितम् ।
वचनं वक्तुमारेभे सुग्रीवं प्रहसन्निव ॥ १८ ॥
आत्मानुमानात्पश्यामि मग्नस्त्वंशोकसागरे ।
त्वामहं तारयिष्यामि वाढं प्राप्यसि पुष्कलम्॥१९॥
तस्य वद्वचनंश्रुत्वा हर्ष पौरुष वर्धनम् ।
सुग्रीवः परमप्रीतः सुमहद्वाक्यमब्रवीत् ॥ २० ॥

अर्थ—सुग्रीव के उक्त प्रकार कथन करने पर वह तेजस्वी धर्मज्ञ राम मुसकराकर बोले कि मैं अपने अनुमान से देखता हूं कि आप शोकसागर में डूबे हुए हैं, सो मैं आपको अवश्य तराउंगा और निःसन्देह आप बड़े फल को प्राप्त होंगे, हर्ष तथा पौरुष के बढ़ाने वाले राम के इस वचन को सुनकर परम प्रसन्न हुआ सुग्रीव राम से यह बड़ा वाक्य बोला कि :—

बालिनः पौरुषं यत्तद्यच्च वीर्यं धृतिश्चया ।
तन्ममैकमनाः श्रुत्वा विधत्स्व यदनन्तरम् ॥२१॥
बहवः सारवन्तश्च वनेषु विविधा द्रुमाः ।
बालिना तरसा भग्ना बलं प्रथयतात्मनः ॥ २२ ॥
महिषो दुन्दुभिर्नाम कैलास शिखर प्रभः ।
बलं नाग सहस्रस्य धारयामास वीर्यवान् ॥ २३ ॥
विषाणयोर्गृहीत्वा तं दुन्दुभिं गिरिसन्निभम् ।
अविध्यत तदा बाली विनदन्कापिकुञ्जरः ॥ २४ ॥

अर्थ—हे राम ! आप बालि का बल, वीर्य तथा धैर्य्य मुझसे एकाग्रचित्त होकर सुनें और फिर जो कर्तव्य हो सो करें, वन में विविध प्रकार के अनेक दृढ़ वृक्ष बालि ने अपना बल दिखलाते हुए बलपूर्वक ताड़े हैं, और दुन्दुभि नामक भैंसा * जो कैलास के शिखर समान महाकाय तथा अनेक हाथियों का बल रखने वाला था उस पर्वततुल्य दुन्दुभि को सींगों से पकड़ बाली ने गर्जकर उसको बींध दिया ॥

तं तु दुन्दुभिमुद्यम्य धरण्यामभ्यपातयत् ।
युद्धे प्राणहरे तस्मिन्निष्पिष्टो दुन्दुभिस्तदा ॥२५॥

अर्थ—और उस दुन्दुभि को ऊंचा उठाकर उसने पृथिवी पर ऐसा पटका कि वह प्राणों से वियुक्त होकर युद्ध में चूर२ होगया॥

---

* जिस प्रकार कथा को ललित बनाने के लिये सुग्रीव आदि को वानर के अलङ्कार से वर्णन किया है इसी प्रकार दुन्दुभि को भैंसा के अलङ्कार से वर्णन किया है वास्तव में यह "दैत्य" था ॥

इमे च विपुलाः सालाः सप्तशाखावलम्बिनः ।
यत्रैकं घटते वाली निष्पत्रयितुमोजसा ॥ २६ ॥
एतदस्यासमं वीर्यं मया राम प्रकाशितम् ।
कथं तं वालिनं हन्तुं समरे शक्ष्यसे नृप ॥ २७ ॥

अर्थ–और यह सात बड़े २ साल के वृक्ष जो लटकती हुई बड़ी २ शाखाओं वाले हैं इनमें से एक को बालि अपने बल से कम्पाकर पत्रहीन कर देता है, हे राम ! यह मैंने उसका असाधारण बल वर्णन किया है, हे नृप ! उस बालि को आप युद्ध में कैसे हनन करसकेंगे ॥

तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं प्रहसँल्लक्ष्मणोऽब्रवीत् ।
कस्मिन् कर्मणि निर्वृत्ते श्रद्दध्या वालिनोवधम् ॥२८॥
तमुवाचाथ सुग्रीवः सप्तसालानिमान्पुरा ।
एवमेकैकशो वाली विव्याधाथ स चासकृत् ॥२९॥
रामो निर्दारयेदेषां बाणेनेकेन च द्रुमम् ।
वालिनं निहतं मन्ये दृष्ट्वा रामस्य विक्रमम् ॥३०॥

अर्थ–सुग्रीव के उक्त प्रकार कथन करन पर हंसता हुआ लक्ष्मण बोला कि किस काम के पूर्ण कर देने से आपको बालि के वध का विश्वास होगा, तब सुग्रीव बोला कि बालि ने इस प्रकार सात साल के वृक्षों को एक २ करके कई बार बींधा है, सो यदि राम इनमें से एक बाण से एक वृक्ष को फोड़दें तो मैं इनके विक्रम को देखकर बालि को मरा हुआ समझुंगा ॥

एवमुक्त्वा तु सुग्रीवं रामो रक्तान्तलोचनः ।
ध्यात्वा मुहूर्तं काकुत्स्थं पुनरेव वचोऽब्रवीत् ॥३१॥
उपालब्धं च मे श्लाघ्यं सन्मित्रं मित्रवत्सल ।
त्वामहं पुरुषव्याघ्र हिमवन्तमिवाश्रितः ॥ ३२ ॥
किं तु तस्य बलज्ञोऽहं दुर्भ्रातुर्बलशालिनः ।
अप्रत्यक्षं तु मे वीर्यं समरे तव राघव ॥ ३३ ॥

अर्थ—रक्त नेत्रों वाला सुग्रीव उक्त प्रकार कहकर तनिक सोचता हुआ फिर राम से बोला कि हे मित्र वत्सल ! प्रशंसा के योग्य आप जैसे सन्मित्र को जो मैंने उपालम्भ दिया है सो क्षमा योग्य है, हे पुरुषव्याघ्र ! जैसे कोई हिमालय का आश्रय ले इसी प्रकार मैं तो आपका आश्रय लिये हुए हूं, परन्तु उस बलशाली दुष्ट भ्राता के बल को जानने वाला हूं और आपका बल मैंने संग्राम में कभी नहीं देखा, इसी से उक्त वचन कहा है ॥

न खल्वहं त्वां तुलये नावमन्ये न भीषये ।
कर्मभिस्तस्य भीमैश्च कातर्यं जनितं मम ॥३४॥
कामं राघव ते बाणी प्रमाणं धैर्यमाकृतिः ।
सूचयन्ति परं तेजो भस्मच्छन्नमिवानलम् ॥३५॥

अर्थ—न मैं आपकी तुलना करता, न निरादर करता और न मैं आपको भयभीत करता हूं किन्तु उसके भयङ्कर कर्मों ने मेरे में कायरता उत्पन्न करदी है, हे राम ! निःसन्देह आपकी बाणी मुझे प्रमाण है, आपका धैर्य्य और आकृति भस्म से ढकी हुई अग्नि के समान आपमें परमतेज को सूचित कराते हैं ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

सं०–अब वालि और सुग्रीव के युद्ध का वर्णन करते हैं:—

एतच्च वचनं श्रुत्वा सुग्रीवस्य सुभाषितम् ।
प्रत्ययार्थं महातेजा रामो जग्राह कार्मुकम् ॥ १ ॥
स गृहीत्वा धनुर्घोरं शरमेकं च मानदः ।
सालमुद्दिश्य चिक्षेप पूरयन्सरवैर्दिशः ॥ २ ॥

अर्थ–सुग्रीव के उक्त सुभाषित वचन सुनकर महातेजस्वी राम ने उसके विश्वास के लिये धनुष को पकड़ा, और उस मान के देने वाले राम ने धनुष तथा एक बाण लेकर उसकी ध्वनि से दिशाओं को पूर्ण करते हुए साल को लक्ष्य रखकर छोड़ा ॥

स विसृष्टो बलवता बाणः स्वर्णपरिष्कृतः ।
भित्वा तालान् गिरि प्रस्थं सप्त भूमिं विवेश ह ॥३॥
तान्दृष्ट्वा सप्त निर्भिन्नान्सालान्वानरपुंगवः ।
रामस्य शरवेगेन विस्मयं परमं गतः ॥ ४ ॥

अर्थ–और बलवान् राम से छोड़ा हुआ वह सुवर्णभूषित बाण सातों साल और पर्वत की चोटी को फोड़कर भूमि में जाकर गढ़ गया, तब वह श्रेष्ठ सुग्रीव! राम के बाण के वेग से उन सात सालों को फोड़ा हुआ देखकर परम विस्मय को प्राप्त हुआ ॥

इदं प्रोवाच धर्मज्ञं कर्मणा तेन हर्षितः ।
रामं सर्वास्त्रविदुषां श्रेष्ठ शूरमवस्थितम् ॥ ५ ॥
सेन्द्रानपि सुरान्सर्वांस्त्वं बाणैः पुरुषर्षभ ।
समर्थः समरे हन्तुं किं पुनर्बालिनं प्रभो ॥ ६ ॥
येन सप्त महाताला गिरिभूमिश्च दारिता ।
बाणेनैकेन काकुत्स्थ स्थाता ते को रणाग्रतः ॥७॥

अर्थ—और उनके इस कर्म से हर्षित हुआ अस्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ सुग्रीव सन्मुख स्थित धर्मज्ञ तथा शूरबीर राम से यह बचन बोला कि हे पुरुषश्रेष्ठ ! आप अपने बाणों से इन्द्र सहित सब देवताओं को भी युद्ध में जीतसक्ते हैं तो फिर बालि की बो कथा ही क्या, हे काकुत्स्थ ! जिसने सात बड़े साल, पर्वत और भूमि एक बाण से फोड़ दिये हैं उसके आगे रण में कौन खड़ा होसक्ता है ॥

अद्य मे विगतः शोकः प्रीतिरद्य परा मम ।
सुहृदं त्वां समासाद्य महेन्द्रवरुणोपमम् ॥ ८ ॥
तमद्यैव प्रियार्थं मे वैरिणं भ्रातृरूपिणम् ।
बालिनं जहि काकुत्स्थ मया बद्धोऽयमञ्जलिः॥९॥
ततो रामः परिष्वज्य सुग्रीवं प्रियदर्शनम् ।
प्रत्युवाच महाप्राज्ञो लक्ष्मणानुगतं वचः ॥ १० ॥

अर्थ—आज महेन्द्र और वरुण के समान आप जैसे सुहृद् को पाकर मेरा शोक दूर होकर परमप्रीति को प्राप्त हुआ हूं,

हे राम ! मैं हाथ जोड़कर प्रार्थना करता हूं कि मेरे प्रिय के लिये आज ही उस मेरे वैरी भाईरूप बालि का बध करें, तदनन्तर महाप्राज्ञ राम प्रियदर्शन लक्ष्मण सहित सुग्रीब को कण्ठ लगाकर बोले कि :—

अस्माद्गच्छाम किष्किन्धां क्षिप्रं गच्छ त्वमग्रतः ।
गत्वा चाह्वय सुग्रीव वालिनं भ्रातृगन्धिनम् ॥११॥
सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां वालिनः पुरीम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य ह्यतिष्ठन्गहने वने ॥ १२ ॥
सुग्रीवोऽप्यनदद्घोरं वालिनो ह्वानकारणात् ।
तं श्रुत्वा निनदं भ्रातुः क्रुद्धो वाली महाबलः॥१३॥
निष्पपात सुसंरब्धो भास्करोऽस्ततटादिव ।
ततः स तुमुलं युद्धं वालिसुग्रीवयोरभूत् ॥ १४ ॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! हम यहां से किष्किन्धा को चलते हैं आप आगे जायं और जाकर उस दुष्ट भाई बालि को आह्वान करें, तदनन्तर वह सब शीघ्र ही बालि की किष्किन्धापुरी में जाकर घने वन में अपने आपको वृक्षों से ढ़ापकर वहीं ठहरे, तत्पश्चात सुग्रीव ने बालि के आह्वान=बुलाने के लिये ऊंचा सिंहनाद किया उस नाद को सुनकर क्रुद्ध हुआ महाबली बालि बड़े आवेश में भरा हुआ बाहर निकला, जैसे अस्तगिरि से सूर्य्य उदय होता है तब बालि और सुग्रीव का बड़ा घोर युद्ध हुआ ॥

तलैरशनिकल्पैश्च वज्रकल्पैश्च मुष्टिभिः ।
जघ्नतुः समरेऽन्योन्यं भ्रातरौ क्रोधमूर्च्छितौ ॥१५॥

ततो रामो धनुष्पाणिस्तावुभौ समुदैक्षत ।
अन्योन्यसदृशौ वीरावुभौ देवाविवाश्विनौ ॥१६॥
यन्नावगच्छत्सुग्रीवं बालिनं वापि राघवः ।
ततो न कृतवान् बुद्धिं मोक्तुमन्तकरं शरम् ॥१७॥
एतस्मिन्नन्तरे भग्नः सुग्रीवस्तेन बालिना ।
अपश्यन्राघवं नाथमृष्यमूकं प्रदुद्रवे ॥ १८ ॥

अर्थ—और क्रोध से मूर्च्छित दोनों भाइयों ने बिजुली तुल्य तलियों और लोह के समान मुक्कियों से एक दूसरे का भले प्रकार ताड़न किया तब राम ने हाथ में धनुष उठाया, परन्तु उन दोनों वीरों में से प्रत्येक को अश्वि देवों की भांति एक दूसरे के सदृश देखा, राम सुग्रीव तथा बालि को पृथक् करके न पहचानने के कारण उन्होंने बालि का प्राणान्त करने वाला बाण छोड़ने की बुद्धि नहीं की, इस अवसर पर सुग्रीव राम को अपना रक्षक न देखता हुआ बालि से भयभीत हो ऋष्यमूक की ओर भागगया ॥

राघवोऽपि सहभ्रात्रा सहचैव हनूमता ।
तदेव वनमागच्छत्सुग्रीवो यत्रवानरः ॥ १९ ॥
तं समीक्ष्यागतं रामं सुग्रीवः सहलक्ष्मणम् ।
ह्रीमान्दीनमुवाचेदं वसुधामवलोकयन् ॥ २० ॥
आह्वयस्वेति मामुक्त्वा दर्शयित्वा च विक्रमम् ।
वैरिणो घातयित्वा च किमिदानीं त्वयाकृतम्॥२१॥

तामेव वेलां वक्तव्यं त्वया राघवं तत्त्वतः ।
बालिनं न निहन्मीति ततो नाहमितो व्रजे ॥२२॥

अर्थ–और लक्ष्मण तथा हनुमान के साथ राम भी उसी वन में आगये जहां सुग्रीव था, तब लक्ष्मण सहित राम को आया देखकर सुग्रीव बहुत लज्जित हो नीचे देखता हुआ बोला कि मुझे आपने अपना बल दिखलाकर और " बालि को बुला " ऐसा कहकर फिर मुझे बैरी से मरवाया यह आपने क्या किया, हे राघव ! आपने मुझसे उसी समय ठीक २ कहदेना था कि मैं बालि का हनन नहीं करूंगा ॥

तस्य चैवं ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
करुणं दीनया वाचा राघवः पुनरब्रवीत् ॥ २३ ॥

अर्थ–महात्मा सुग्रीव के उक्त प्रकार कथन करने पर दीन बाणी से राम यह करुणामय वचन बोले कि :—

सुग्रीव श्रूयतां तात क्रोधश्च व्यपनीयताम् ।
कारणं येन बाणोऽयं स मया न विसर्जितः ॥२४॥
अलंकारेण वेषेण प्रमाणेन गतेन च ।
त्वं च सुग्रीव बाली च सदृशौ स्थः परस्परम्॥२५॥

अर्थ–हे तात सुग्रीव ! आप क्रोध को दूरकर वह कारण सुनें जिससे मैंने बाण नहीं छोड़ा था, हे सुग्रीव ! अलङ्कार, वेग, डीलडौल और चाल से आप तथा बालि परस्पर तुल्य हैं ॥

स्वरेण वर्चसा चैव प्रेक्षितेन च वानर ।
विक्रमेण च वाक्यैश्च व्यक्तिं वां नोपलक्षये ॥२६॥

ततोऽहंरूपसादृश्यान्मोहितो वानरोत्तम ।
नोत्सृजामि महावेगं शरं शत्रुनिबर्हणम् ॥ २७ ॥
जीवितान्तकरं घोरं सादृश्यात्तु विशङ्कितः ।
मूलघातो न नो स्याद्धि द्वयोरिति कृतो मया॥२८॥

अर्थ–हे सुग्रीव ! स्वर, कान्ति, दृष्टि, विक्रम और वाक्यों से तुम दोनों की व्यक्ति को कोई नहीं जानसक्ता, सो मैं आप दोनों का रूप समान देखकर मोह को प्राप्त हुआ और दोनों के तुल्य होने की शङ्का वाले मैंने शत्रुओं के हनन करने वाला, बड़े वेग वाला, जीवन का अन्त करने वाला भयङ्कर बाण नहीं छोड़ा कि ऐसा नहो कि हम दोनों का मूलघात होजाय, इससे मैंने ऐसा ही करना उचित समझा ॥

त्वयि वीर विपन्ने हि आज्ञानाल्लाघवान्मया ।
मौढ्यं च मम बाल्यं च ख्यापितं स्यात्कपीश्वर॥२९॥
दत्ताभयवधो नाम पातकं महदद्भुतम् ।
अहं च लक्ष्मणश्चैव सीता च वरवर्णिनी ॥ ३० ॥
त्वदधीना वयं सर्वे वनेऽस्मिञ्शरणं भवान् ।
तस्माद्युध्यस्व भूयस्त्वं मा माशंकीश्च वानर ॥३१॥
एतन्मुहूर्ते तु मया पश्य बालिनमाहवे ।
निरस्तमिषुणैकेन चेष्टमानं महीतले ॥ ३२ ॥

अर्थ–हे वीर ! यदि मैं अज्ञान वा चंचलता से आपका हनन कर डालता तो अपनी मूढ़ता तथा बालकपन प्रकट करता,

और अभय दिये हुए को मारना बड़ा भारी पाप भी होता, किन्तु मैं, लक्ष्मण तथा सुन्दरी सीता हम सब आपके अधीन और इस बन में हम आपकी ही शरण हैं, इसलिये हे सुग्रीव ! फिर युद्ध के लिये खड़ा हो किसी प्रकार की शङ्का मत कर, इस समय युद्ध में मेरे एकही बाण से बालि को पृथिवी तल पर गिरकर लोटते हुए देखेगा ॥

अभिज्ञानं कुरुष्व त्वमात्मनो वानरेश्वर ।
येन त्वामभिजानीयां द्वन्द्वयुद्धमुपागतम् ॥३३॥
गजपुष्पीमिमां फुल्लामुत्पाट्य शुभलक्षणाम् ।
कुरु लक्ष्मण कण्ठेऽस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥३४॥
ततो गिरितटे जातामुत्पाट्य कुसुमायुताम् ।
लक्ष्मणो गजपुष्पीं तां तस्य कण्ठे व्यसर्जयत्॥३५॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! आप कोई चिन्ह लगायें जिससे द्वन्द्व युद्ध में जुटे हुए आपको मैं पहचान सकूं, हे लक्ष्मण ! शुभ लक्षणों वाली फूली हुई इस गजपुष्पी को उखाड़कर महात्मा सुग्रीव के कण्ठ में बांध दे, तत्पश्चात पर्वत पर उगी हुई उस गजपुष्पी को उखाड़कर लक्ष्मण ने सुग्रीव के कण्ठ में बांध दी ॥

स तया शुशुभे श्रीमाँल्लतया कण्ठसक्तया ।
मालयेव बलाकानां ससंध्य इवतोयदः ॥ ३६ ॥
विभ्राजमानो वपुषा रामवाक्य समाहितः ।
जगाम सह रामेण किष्किन्धां पुनराप सः ॥३७॥

अर्थ—तब वह श्रीमान् सुग्रीव कण्ठ में लटकती हुई उस लता द्वारा बगुलों की पंक्ति से सन्ध्या काल के मेघ समान सुशोभित और शरीर से शोभायमान तथा राम के वचन से सावधान हुआ उनके साथ पुनः किष्किन्धा को गया ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

सं०—अब तारा का बालि को युद्ध से रोकना कथन करते हैंः—

ऋष्यमूकात्स धर्मात्मा किष्किन्धां लक्ष्मणाग्रजः ।
जगाम सह सुग्रीवो बालिविक्रम पालिताम् ॥१॥
समुद्यम्य महच्चापं रामः कांचनभूषितम् ।
शरांश्चादित्य संकाशान्गृहीत्वा रणसाधकान् ॥२॥
अग्रतस्तु ययौ तस्य राघवस्य महात्मनः ।
सुग्रीवः संहतग्रीवो लक्ष्मणस्य महाबलः ॥ ३ ॥
पृष्ठतो हनुमान्वीरो नलो नीलश्च वीर्यवान् ।
तारश्चैव महातेजा हरियूथपयूथपः ॥ ४ ॥

अर्थ—धर्मात्मा लक्ष्मण के बड़े भाई राम सुग्रीव सहित ऋष्यमूक से बाली के पराक्रम द्वारा पालित किष्किन्धा को गये और सुवर्णभूषित बड़ा धनुष तथा सूर्य्य के समान चमकते हुए, रणसाधक बाणों को राम ने ग्रहण किया, गठी हुई ग्रीवा वाला महाबली सुग्रीव महात्मा राम के आगे २ गया और लक्ष्मण

के पीछे २ बीर हनुमान, वीर्य्यवान् नल तथा नील और महातेजस्वी सेनापतियों का पति तार गया ॥

सर्वे ते त्वरितं गत्वा किष्किन्धां बालिनःपुरीम् ।
वृक्षैरात्मानमावृत्य व्यतिष्ठन्गहने वने ॥ ५ ॥
विसार्य सर्वतो दृष्टिं कानने काननप्रियः ।
सुग्रीवो विपुलग्रीवः क्रोधमाहार यद्भृशम् ॥ ६ ॥
ततस्तु निनदं घोरं कृत्वा युद्धाय चाह्वयत् ।
परिवारैः परिवृतो नादैर्भिन्दन्निवाम्बरम् ॥ ७ ॥

अर्थ—और यह सब शीघ्र ही बाली की किष्किन्धापुरी में जाकर अपने आपको वृक्षों से ढांप गहन वन में ठहरे, तदनन्तर वनप्रिय विशाल ग्रीवा वाला सुग्रीव वन में सब ओर दृष्टि डालकर बड़े क्रोध में आया, और परिवार से घिरे हुए सुग्रीव ने अपने सिंहनादों से आकाश को फोड़ते हुए के समान भयङ्कर ध्वनि करके युद्ध के लिये बालि को आह्वान किया ॥

अथ तस्य निनादं तं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
शुश्रावान्तःपुरगतो बाली भ्रातुरमर्षणः ॥ ८ ॥
शब्दं दुर्मर्षणं श्रुत्वा निष्पपात ततो हरिः ।
वेगेन च पदन्यासैर्दारयन्निव मेदिनीम् ॥ ९ ॥
तं तु तारा परिष्वज्य स्नेहाद्दर्शित सौहृदा ।
उवाच त्रस्तसंभ्रान्ता हितोदर्कमिदं वचः ॥१०॥

अर्थ—इसके अनन्तर महात्मा सुग्रीव की उस गर्ज को भाई

के वैरी बालि ने अन्तःपुर में सुना, और उस दुःसह शब्द को सुनकर बालि पाओं से मानो पृथिवी को फोड़ता हुआ बड़े वेग से बाहर निकला, उसी समय स्नेह से सौहार्द दिखलाती हुई तारा उसको कण्ठ लगाकर भयभीत तथा घबराई हुई हित की कामना वाला यह वचन बोली कि :—

साधुक्रोधमिमं वीर नदीवेगमिवागतम् ।
शयनादुत्थितः काल्यं त्यज भुक्तामिव स्रजम्॥११॥
काल्यमेतेन संग्रामं करिष्यसि च वानर ।
वीर ते शत्रु बाहुल्यं फल्गुतावानविद्यते ॥ १२ ॥
सहसा तव निष्क्रामो मम तावन्न रोचते ।
श्रूयतामभिधास्यामि यन्निमित्तं निवार्यते ॥ १३ ॥

अर्थ—हे वीर ! नदी के वेग की भांति आये हुए इस क्रोध को शयन से उठे हुए प्रातःकाल भोगी हुई माला की भांति इस समय त्याग कल प्रातः युद्ध करना, हे वीर ! तेरा शत्रु कोई बड़ा बलवाला नहीं है जिसको फिर न जीत सकेगा, आपका सहसा बाहर निकलना मुझे नहीं रुचता, आप वह कारण सुनें जिससे मैं आपको रोकती हूं ॥

पूर्वमापतितः क्रोधात्स त्वामा ह्वयते युधि ।
निष्पत्य च निरस्तस्ते हन्यमानो दिशो गतः॥१४॥
त्वया तस्य निरस्तस्य पीडितस्य विशेषतः ।
इहैत्य पुनराह्वानं शङ्कां जनयतीव मे ॥ १५ ॥

दर्पश्च व्यवसायश्च यादृशस्तस्य नर्दतः ।
निनादस्य च संरम्भो नैतदल्पं हि कारणम् ॥१६॥
नासहायमहं मन्ये सुग्रीवं तमिहागतम् ।
अवष्टब्धसहायश्च यमाश्रित्यैष गर्जति ॥ १७ ॥

अर्थ—पहले उसने क्रोध में आकर आपको युद्ध के लिये आह्वान किया तब आपने बाहर निकलकर उसको हरा के ताड़न किया फिर वह भागगया, जब आपने उसको बहुत पीड़ा देकर हरा दिया तब फिर उसका यहां आकर आपको आह्वान करना मुझे शङ्का उत्पन्न करता है, उस गर्जते हुए का जैसा अभिमान, अहङ्कार और उसके नाद का जैसा तुमुल शब्द है यह कोई छोटा कारण नहीं है, मैं उस सुग्रीव को यहां बिना साथी के आया हुआ नहीं समझती, उसको अवश्य कोई सहायक मिला है जिसके सहारे वह गर्ज रहा है ॥

पूर्वमेव मया वीर श्रुतं कथयतो वचः ।
अंगदस्य कुमारस्य वक्ष्याम्यद्य हितं वचः ॥ १८ ॥
अंगदस्तु कुमारोऽयं वनान्तमुपनिर्गतः ।
प्रवृत्तिस्तेन कथिता चारैरासीन्निवेदिता ॥ १९ ॥

अर्थ—हे वीर ! मैंने जो पूर्व कुमार अङ्गद से सुना है उस हितकारी वचन को आज आपसे कहती हूं, कुमार अङ्गद वन की ओर गया था उसको वन में विचरने वालों ने यह समाचार कहा और उसने मुझे सुनाया कि :—

अयोध्याधिपतेः पुत्रौ शूरौ समरदुर्जयौ ।
इक्ष्वाकूणां कुले जातौ प्रस्थितौ रामलक्ष्मणौ ॥२०॥

सुग्रीवप्रियकामार्थं प्राप्तौ तत्र दुरासदौ ।
स ते भ्रातुर्हि विख्यातः सहायो रणकर्मणि ॥२१॥

अर्थ–अयोध्याधिपति राजा दशरथ के दोनों पुत्र राम लक्ष्मण जो इक्ष्वाकु कुल में उत्पन्न शूर बीर और युद्ध में कठिनता से जीतने योग्य वन में आये हुए हैं, और वह दुष्प्राप्य सुग्रीव की प्रियकामना के लिये यहां प्रस्तुत हुए हैं, सो वह रण कर्म में विख्यात तुम्हारे भाई सुग्रीव के साथी हैं ॥

रामः परबलामर्दी युगान्ताग्निरिवोत्थितः ।
निवासवृक्षः साधूनामापन्नानां परागतिः ॥२२॥
आर्तानां संश्रयश्चैव यशसश्चैव भाजनम् ।
ज्ञानविज्ञानसम्पन्नो निदेशे निरतः पितुः ॥ २३ ॥
तत्क्षमो न विरोधस्ते सहतेन महात्मना ।
शूरवक्ष्यामि ते किञ्चिन्न चेच्छाम्यभ्यसूयितुम्॥२४॥

अर्थ–और वह राम प्रलयाग्नि की भांति शत्रुओं की सेना का नाशक, भले पुरुषों का निवास वृक्ष और आपद्ग्रस्तों का परमगति है, दुःखि पुरुषों का आश्रम, यश का पात्र, ज्ञान विज्ञान से सम्पन्न और पिता का आज्ञाकारी है, सो उस महात्मा के साथ आपको विरोध करना उचित नहीं, हे शूर ! मैं आपसे एक बात कहना चाहती हूं तुम्हारी निन्दा नहीं करती ॥

श्रूयतां क्रियतां चैव तव वक्ष्यामि यद्धितम् ।
यौवराज्येन सुग्रीवं तूर्णं साध्वभिषेचय ॥ २५ ॥

विग्रहं मा कृथा वीर भ्रात्रा राजन्यवीयसा ।
अहं हि ते क्षमं मन्ये तेन रामेण सौहृदम् ॥ २६ ॥

अर्थ—आप सुनकर वैसा ही कीजिये जो मैं आपका हित बतलाती हूं, आप सुग्रीव को शीघ्र ही युवराज बनावें, हे राजन् ! आप अपने छोटे भाई के साथ विरोध न करें, मैं उसके बरावर पृथिवी में तुम्हारा कोई बन्धु नहीं मानती ॥

सुग्रीवेण च संप्रीतिं वैरमुत्सृज्यदूरतः ।
लालनीयो हिते भ्राता यवीयानेष वानरः ॥२७॥
तत्रवासन्निहस्थो वा सर्वथा बन्धुरेव ते ।
नाहि तेन समं बन्धुं भुवि पश्यामि कंचन ॥२८॥

अर्थ—सो आप दूर ही से वैर छोड़कर सुग्रीव से प्रीति करें, क्योंकि वह तुम्हारा छोटा भाई होने से तुम्हें उसका लालन पालन करना चाहिये, चाहे वह ऋष्यमूक पर हो और चाहे यहां हो वह तुम्हारा सब प्रकार से बन्धु ही है, मैं उसके समान तुम्हारा कोई बन्धु पृथिवी पर नहीं देखती ॥

दानमानादिसत्कारैः कुरुष्व प्रत्यनन्तरम् ।
वैरमेतत्समुत्सृज्य तव पार्श्वे स तिष्ठतु ॥ २९ ॥
यदि ते मत्प्रियं कार्यं यदि चावैषि मां हिताम् ।
याच्यमानः प्रियत्वेन साधुवाक्यं कुरुष्व मे ॥३०॥

अर्थ—आप दान मानादि सत्कारों से उसको अपने अधीन करें जिससे वह इस वैर को छोड़कर आपके समीप स्थित हो, यदि आपको मेरा प्रिय करना है और यदि आप मुझे अपनी

हितैषिणी जानते हैं तो प्रेम से याचना किये हुए मेरे उक्त वचन को आप स्वीकार करें ॥

तदा हि तारा हितमेव वाक्यं तं वालिनं पथ्यमिदंबभाषे। न रोचते तद्वचनं हितस्य कालाभिपन्नस्य विनाशकाले ॥ ३१ ॥

अर्थ–यद्यपि तारा ने बालि से उक्त हितकर बचन कहा और पथ्य की न्याई भाषण किया परन्तु उसको वह वचन न रुचे, जैसे मरण समय काल से घिरा हुआ पुरुष अपने हितकर वचन नहीं सुनता ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमः सर्गः

सं०–अब सुग्रीव और बाली के युद्ध में बाली का बध कथन करते हैं :—

तामेवं ब्रुवतीं तारां ताराधिपनिभाननाम् ।
बाली निर्भत्सयामास वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार कथन करती हुई उस चन्द्रमुखी तारा को बाली झिड़ककर यह वचन बोला कि :—

गर्जतोऽस्य सुसंरब्धं भ्रातुः शत्रोर्विशेषतः ।
मर्षयिष्यामि केनापि कारणेन वरानने ॥ २ ॥
अधर्षितानां शूराणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ।
धर्षणामर्षणंभीरु मरणादतिरिच्यते ॥ ३ ॥

अर्थ-हे सुन्दरमुखि! विशेषतः भाई होकर शत्रु की भांति आवेश से गर्जते हुए को मैं किस कारण सहारूं, युद्ध में मुख न मोड़ने वाले शूरबीर जो कभी किसी से न दबे हों उनके लिये निरादर सहना मरण से भी बढ़कर है ॥

सोढुं नच समर्थोऽहं युद्धकामस्य संयुगे।
सुग्रीवस्य च संरम्भं हीनग्रीवस्य गर्जितम् ॥ ४ ॥
नच कार्यो विषदस्ते राघवं प्रति मत्कृते।
धर्मज्ञश्च कृतज्ञश्च कथं पापं करिष्यति ॥ ५ ॥
निवर्तस्व सह स्त्रीभिः कथं भूयोऽनुगच्छसि।
सौहृदं दर्शितं तावन्मयि भक्तिस्त्वया कृता ॥६॥

अर्थ-युद्ध की कामना वाले तथा हीनग्रीब=सुन्दर ग्रीवा वाले सुग्रीव का क्रोधसहित गर्जन मैं नहीं सहार सक्ता, और राम के हेतु मेरे लिये तुझे विषाद नहीं करना चाहिये, वह धर्मज्ञ तथा कृतज्ञ उसकी सहायतारूप पाप कैसे करेगा, तू स्त्रियों के साथ लौट जा कैसे आगे २ जारही है, तैने अपना सौहार्द भले प्रकार दर्शाया है और मुझ में तेरी भक्ति भी पूर्ण है ॥

प्रतियोत्स्याम्यहं गत्वा सुग्रीवं जहि संभ्रमम्।
दर्पं चास्य विनेष्यामि न च प्राणैर्वियोक्ष्यते ॥७॥
शापितासि मम प्राणैर्निवर्तस्व जनेन च।
अलं जित्वा निवर्तिष्ये तमहं भ्रातरं रणे ॥ ८ ॥
तं तु तारा परिष्वज्य वालिनं प्रियवादिनी।
चकार रुदती मन्दं दक्षिणा सा प्रदक्षिणम् ॥९॥

ततः स्वस्त्ययनं कृत्वा मंत्रविद्विजयैषिणी ।
अन्तःपुरं सह स्त्रीभिः प्रविष्टा शोकमोहिता ॥१०॥

अर्थ–हे तारे! मैं जाकर सुग्रीव के साथ अवश्य युद्ध करुंगा तू घबराहट को साग, मैं इसका अभिमान तोडुंगा प्राणों से नियुक्त न होगा, तुझे मेरे प्राणों की शपथ है तू अपने जनों के साथ लौटजा, मैं उस भाई को रण में केवल जीतकर लौट आऊंगा, तदनन्तर प्रिय बोलने वाली तारा ने बाली को आलिङ्गन कर मन्द २ रोती हुई ने उसकी प्रदाक्षिणा की, और फिर विजय चाहती हुई वह मन्त्र के जानने वाली तारा स्वास्तिवाचन करके शोक से मोहित हुई स्त्रियों के साथ अन्तःपुर को लौट आई ॥

प्रविष्टायां तु तारायां सह स्त्रीभिः स्वमालयम् ।
नगर्या निर्ययौ क्रुद्धो महासर्प इव श्वसन् ॥११॥
स निःश्वस्य महारोषो बाली परम वेगवान् ।
सर्वतश्चारयन्दृष्टिं शत्रुदर्शनकांक्षया ॥ १२ ॥
स ददर्श ततः श्रीमान्सुग्रीवं हेमपिङ्गलम् ।
सुसंवीतमवष्टब्धं दीप्यमानमिवानलम् ॥ १३ ॥

अर्थ–स्त्रियों सहित तारा के अपने घर में प्रविष्ट होने पर बाली क्रोधातुर हो सर्प की भांति सांस लेता हुआ नगरी से बाहर निकला, और बाहर जाकर महा क्रोध से शीघ्र २ श्वासें लेता हुआ बड़े वेग वाले बाली ने शत्रु के देखने की इच्छा से सब ओर दृष्टि फैलाई, तब उस श्रीमान् बाली ने सुवर्ण की भांति पीतवर्ण तथा अग्नि की न्याईं देदीप्यमान और कमर बांधकर दृढ़ता से खड़े हुए सुग्रीव को देखा ॥

स वाली गाढसंवीतो मुष्टिमुद्यम्य वीर्यवान् ।
सुग्रीवमेवाभिमुखो ययौ योद्धुं कृतक्षणः ॥ १४ ॥
क्लिष्टं मुष्टिं समुद्यम्य संरब्धतरमागतः ।
सुग्रीवोऽपि समुद्दिश्य वालिनं हेममालिनम् ॥१५॥
मुष्टिभिर्जानुभिः पद्भिर्बाहुभिश्च पुनः पुनः ।
तयोर्युद्धमभूद्धोरं वृत्रवासवयोरिव ॥ १६ ॥

अर्थ-वह बलवान् बाली दृढ़ता से अपनी कमर कसकर और मुक्का उठा युद्ध के लिये उत्साहित होकर सुग्रीव के सन्मुख गया, और सुग्रीव भी सुवर्ण की माला वाले बाली को लक्ष्य रखकर दृढ मुक्का उठा बड़े क्रोध में आया, मुक्कों, गोड़ों, पाओं और भुजाओं से उन दोनों का वार २ इन्द्र और वृत्रासुर की भांति बड़ा घोर युद्ध हुआ ॥

तौ शोणिताक्तौ युध्येतां वानरौ वनचारिणौ ।
मेघाविव महाशब्दैस्तर्जमानौ परस्परम् ॥ १७ ॥
हीयमानमथापश्यत्सुग्रीवं वानरेश्वरम् ।
प्रेक्षमाणं दिशश्चैव राघवः स मुहुर्मुहुः ॥ १८ ॥

अर्थ-वह सुग्रीव तथा बाली दोनों वनचारी रुधिर से लिपटे हुओं ने मेघ की भांति बड़ी गर्जों से एक दूसरे पर बलपूर्वक प्रहार किया, तब राम ने वानरेश्वर सुग्रीव का बल घटा हुआ और वार २ दिशाओं को देखता हुआ देखा ॥

ततो रामो महातेजा आर्तं दृष्ट्वा हरीश्वरम् ।
स शरं वीक्षते वीरो वालिनो वध कांक्षया ॥१९॥

ततो धनुषि संधाय शरमाशीविशोपमम् ।
पूरयामास तच्चापं कालचक्रमिवान्तकः ॥ २० ॥
मुक्तस्तु वज्रनिर्घोषः प्रदीप्ताशनिसन्निभः ।
राघवेण महावाणो बालिवक्षसि पातितः ॥ २१ ॥
ततस्तेन महातेजा वीर्ययुक्तः कपीश्वरः ।
वेगेनाभिहतो बाली निपपात महीतले ॥ २२ ॥

अर्थ-तदनन्तर महातेजस्वी राम ने सुग्रीव को बहुत आर्त्त देखकर बाली के बध की इच्छा से बाण की ओर देखा, तत्पश्चात् उन्होंने मृत्यु की न्याईं विषैले सर्प जैसे कालचक्र बाण को धनुष में जोड़कर पूर्ण किया अर्थात् धनुष पर बाण चढ़ाया, और वह बिजुली जैसी कड़क वाला तथा बिजुली के समान चमकता हुआ राम का महाबाण बाली की छाती में जाकर गढ़ गया, और उस बाण के वेग से हत हुआ महातेजस्वी, वीर्यशाली बाली पृथिवी तल पर गिरपड़ा ॥

इन्द्रध्वज इवोद्भूतः पौर्णमास्यां महीतले ।
आश्वयुक्समये मासि गतसत्त्वो विचेतनः ॥२३॥
भूमौ निपतितस्यापि तस्य देहं महात्मनः ।
न श्रीर्जहाति न प्राणा न तेजो न पराक्रमः ॥२४॥

अर्थ-आश्वन=कार की पौर्णमासी को इन्द्रध्वज की भांति अचेत हो पृथिवी पर गिरपड़ा, और भूमि पर गिरे हुए उस महात्मा बाली के देह को न शोभा, न प्राण, न तेज और न पराक्रम ने त्यागा अर्थात् उसकी सब कान्ति ज्यों की त्यों बनी रही ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

सं०-अब बाली के राम पर आक्षेप कथन करते हैं :—

बहुमान्य च तं वीरं वीक्षमाणं शनैरिव ।
उपयातौ महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ १ ॥

अर्थ-उक्त प्रकार बाली के गिरने पर धैर्य्य से देखते हुए उस वीर का बहुत मान करके बड़े वीर्य्यवाले राम लक्ष्मण दोनों भाई उसके समीप गये ॥

तं दृष्ट्वा राघवं बाली लक्ष्मण च महाबलम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं प्रश्रितं धर्मसंहितम् ॥ २ ॥
स भूमावल्पतेजो सुर्निहतो नष्टचेतनः ।
अर्थसंहितया वाचा गर्वितं रणगर्वितम् ॥ ३ ॥
पराङ्मुखवधं कृत्वा कोऽत्र प्राप्तस्त्वया गुणः ।
यदहं युद्धसंरब्धस्त्वत्कृते निधनं गतः ॥ ४ ॥

अर्थ-तब उन राम तथा महाबली लक्ष्मण को देखकर कठोर परन्तु धैर्य्ययुक्त विनयपूर्वक वचन भूमि पर लोटता अल्पतेज, अल्पप्राण तथा चेतनारहित बाली रणगर्वित राम से अहङ्कारयुक्त बोला कि सन्मुख न लड़ते हुए को मारकर आपने क्या गुण लाभ किया जो युद्ध में जुटे हुए मुझको मृत्यु को प्राप्त करादिया है ॥

कुलीनः सत्त्वसम्पन्नस्तेजस्वी चरितव्रतः ।
राम करुणवेदी च प्रजानां च हितेरतः ॥ ५ ॥

सानुक्रोशो महोत्साहः समयज्ञो दृढ़व्रतः।
इत्येतत्सर्वभूतानि कथयन्ति यशोभुवि ॥ ६ ॥
दमः शमः क्षमाधर्मो धृतिः सत्त्वं पराक्रमः।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥७॥
तान्गुणान्संप्रधार्याहमग्र्यं चाभिजनं तव।
तारया प्रतिषिद्धः सन्सुग्रीवेण समागतः ॥ ८ ॥

अर्थ—कुलीन, धैर्य्ययुक्त, तेजस्वी, ब्रह्मचर्य्य व्रत को पूर्ण किये हुए, दयाभाव को जानने वाले और प्रजाओं के हित में रत, दयावान्, बड़े उत्साही, समय अनुसार कार्य्य करने वाले और दृढ़व्रती, इस प्रकार के गुणसम्पन्न होने से सब लोग पृथिवी में आपका यश गारहे हैं, हे राजन्! दम, शम, क्षमा, धर्म, धृति, सत्त्व, पराक्रम और अपकारियों को दण्ड देना, यह सब राजाओं के गुण हैं, सो मैं आपके उक्त सब गुण और श्रेष्ठवंश को जानकर तारा के रोकने पर भी सुग्रीव से युद्ध के लिये आजुटा॥

न मा मन्येन संरब्धं प्रमत्तं वेद्धुमर्हसि।
इति ते बुद्धिरुत्पन्ना बभूवादर्शने तव ॥९॥
स त्वां विनिहतात्मानं धर्मध्वजमधार्मिकम्।
जाने पापसमाचारं तृणैः कूपमिवावृतम् ॥१०॥
स तां वेषधरं पापं प्रच्छन्नमिव पावकम्।
नाहं त्वामभिजानामि धर्मच्छद्माभिसंवृतम् ॥११॥
विषये वा पुरे वा ते यदा पापं करोम्यहम्।
नच त्वामवजानेऽहं कस्मात्त्वं हंस्यकिल्बिषम् ॥१२॥

अर्थ–और आपके दर्शन से पहले मेरी यह बुद्धि थी कि आप दूसरे से युद्ध करते हुए मुझ असावधान को नहीं बींधेंगे, अब वही मैं आपको नष्ट हुए आत्मावाला, धर्मध्वजी, अधार्मिक, पापाचरणवाला और तिनकों से ढके हुए कूप की भांति जानता हूं, मुनियों का वेश धारण किये हुए, पापी, ढकी हुई अग्नि की भांति धर्म की आड़ में पाप करता हुआ मैं तुम्हें नहीं जानता था, आपके देश अथवा पुर में जब मैं कोई पाप नहीं करता और न आप की अवज्ञा करता हूं तो फिर आप मुझ निरपराध को कैसे मारते हैं॥

कः क्षत्रियकुलेजातः श्रुतवान्नष्टसंशयः ।
धर्मलिङ्गप्रतिच्छन्नः क्रूरंकर्मसमाचरेत् ॥ १३ ॥
त्वं राघवकुले जातो धर्मवानिति विश्रुतः ।
अभव्यो भव्यरूपेण किमर्थं परिधावसे ॥ १४ ॥
साम दानं क्षमा धर्मः सत्यं धृति पराक्रमौ ।
पार्थिवानां गुणा राजन् दण्डश्चाप्यपकारिषु ॥१५॥

अर्थ–क्षत्रिय कुल में उत्पन्न, श्रुतवान्, संशय रहित और धर्मबोधक वाक्यों के अनुकूल आचरण करने वाले आप किस प्रकार ऐसे क्रूरकर्म का आचरण करते हैं,राघवकुल में उत्पन्न होकर जगत् में धर्मवान् विख्यात और वास्तव में अविनीत आप विनीत वेष से कैसे फिर रहे हैं,हे राजन् ! साम,दान,क्षमा,धर्म,सत्य, धैर्य, पराक्रम और अपकारियों को दण्ड देना यह राजाओं के गुण हैं॥

हत्वा वाणेन काकुत्स्थ मामिहानपराधिनम् ।
किं वक्ष्यसि सतां मध्ये कर्म कृत्वा जुगुप्सितम्॥१६॥

अर्थ–हे काकुत्स्थ ! मुझ निरपराध को यहां बाण से मारकर यह निन्दित कर्म करके सत्पुरुषों के मध्य में क्या कहेगा ॥

राजहा ब्रह्महा गोघ्नश्चोरः प्राणिवधेरतः ।
नास्तिकः परिवेत्ता च सर्वे निरयगामिनः ॥१७॥
सूचकश्च कदर्यश्च मित्रघ्नो गुरुतल्पगः ।
लोकं पापात्मनामं ते गच्छं ते नात्र संशयः ॥१८॥

अर्थ-राजा, ब्राह्मण तथा गौ को मारने वाला, चोर, प्राणियों के वध में सदा रत, नास्तिक और परिवेत्ता=बड़े भाई के विवाह से पहले अपना विवाह करने वाला, यह सब नरक गामी होते हैं, और इसी प्रकार सूचक=चुगलखोर, कांयर, मित्रघातक तथा गुरुतल्पक, यह भी पापियों की अवस्था को प्राप्त होते हैं इसमें सन्देह नहीं ॥

तारयावाक्यमुक्तोऽहं सत्यं सर्वज्ञयाहितम् ।
तदतिक्रम्य मोहेन कालस्य वशमागतः ॥ १९ ॥
त्वया नाथेन काकुत्स्थ न सनाथा वसुन्धरा ।
प्रमदा शीलसम्पूर्णा पत्येव च विधर्मणा ॥ २० ॥

अर्थ-बहुत जानने वाली तारा ने मेरे हित का सत्य वचन कहा था परन्तु मोह के कारण उसका अतिक्रमण करके मृत्यु को प्राप्त हुआ हूं, हे काकुत्स्थ! तेरे जैसे नाथ से पृथिवी सनाथ नहीं, जैसे शीलसम्पन्न स्त्री धर्मरहित पति को प्राप्त होकर सनाथ नहीं होती ॥

उदासीनेषु योऽस्मासु विक्रमोऽयं प्रकाशितः ।
अपकारिषु ते राम नैवं पश्यामि विक्रमम् ॥२१॥
दृश्यमानस्तु युध्येथा मया युधि नृपात्मज ।
अद्य वैवस्वतं देवं पश्येस्त्वं निहतो मया ॥ २२ ॥

अर्थ—हे राम ! हम उदासीनों में जो आपने अपना विक्रम प्रकट किया है ऐसा अपकारियों=स्त्री हरने वालों में आपका विक्रम नहीं देखता, हे राजपुत्र ! यदि तू युद्ध में सन्मुख होकर मेरे साथ लड़ता तो तू आज मुझसे मारा हुआ अवश्य मृत्यु को प्राप्त होता ॥

युक्तं यत्प्राप्नुयाद्राज्यं सुग्रीवः स्वर्गते मयि ।
अयुक्तं यदधर्मेण त्वयाहं निहतो रणे ॥ २३ ॥
काममेवं विधोलोकः कालेन विनियुज्यते ।
क्षमं चेद्भवताप्राप्तमुत्तरं साधुचिन्त्यताम् ॥ २४ ॥

अर्थ—मेरे स्वर्ग जाने पर सुग्रीव का राज्य को प्राप्त होना युक्त=ठीक है परन्तु आपने जो मुझको अधर्म से मारा है यह अयुक्त है, अस्तु सबका काल के वशीभूत होना सृष्टि का स्वभाव ही है सो मेरे साथ भी हुआ परन्तु मुझ निरपराध के मारने का तुमको कोई अच्छा उत्तर चिन्तन करना चाहिये ॥

इत्येवमुक्त्वा परिशुष्कवक्त्रः शराभिघाता-
द्व्यथितो महात्मा । समीक्ष्य रामं रविसं-
निकाशं तूष्णीं बभौ वानरराजसूनुः ॥२५॥

अर्थ—उक्त प्रकार कथन करके बाण की पीड़ा से पीड़ित शुष्क मुख वाला वानरराज का पुत्र बाली सूर्य्यतुल्य राम को देखकर चुप होगया ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

सं०–अब राम का उत्तर कथन करते हैं :—

धर्मार्थगुणसम्पन्नं हरीश्वरमनुत्तमम् ।
अधिक्षिप्तस्तदा रामः पश्चाद्वालिनमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–बाली के उक्त प्रकार कठोर भाषण करने पर राम उस उत्तम बानरेश्वर बाली से धर्म अर्थ सम्पन्न यह बोले कि :—

धर्ममर्थं च कामं च समयं चापि लौकिकम् ।
अविज्ञाय कथं बाल्यान्मामिहाद्य विगर्हसे ॥२॥
इक्ष्वाकूणामियं भूमिः सशैल वन कानना ।
मृगपक्षि मनुष्याणां निग्रहानुग्रहेष्वपि ॥ ३ ॥
तां पालयति धर्मात्मा भरतः सत्यवानृजुः ।
धर्मकामार्थ तत्त्वज्ञो निग्रहानुग्रहे रतः ॥ ४ ॥
नयश्च विनयश्चोभौ यस्मिन्सत्यं च सुस्थितम् ।
विक्रमश्च यथा दृष्टः स राजा देशकालवित् ॥५॥

अर्थ–हे बालि ! धर्म, अर्थ, काम और लोकाचार को न जानकर तू कैसे बालकपन से मुझे कठोर कहता है, पर्वत, वन तथा जङ्गलों सहित यह सम्पूर्ण भूमि इक्ष्वाकुओं की होने से पशु पक्षी तथा मनुष्यों को दण्ड देना अथवा उन पर अनुग्रह करने का अधिकार उन्हीं को है, और इस नियम का पालन धर्मात्मा भरत कर रहा है जो सत्यवान्, सरल तथा धर्म, अर्थ, काम के तत्त्व को जानने वाला और दुष्टों को दण्ड देने तथा शिष्टों का पालन

करने में रत है, जिसमें न्याय, विनय तथा सत्य स्थित और जो बड़ा विक्रमशाली है, वह देशकाल के जानने वाला भरत इस समय इक्ष्वाकुओं का राजा है ॥

तस्य धर्मकृतादेशा वयमन्ये च पार्थिवाः ।
चरामो वसुधां कृत्स्नां धर्मसन्तानमिच्छवः ॥ ६ ॥
यस्मिन्नृपतिशार्दूले भरते धर्मवत्सले ।
पालयत्यखिलां पृथिवीं कश्चरेद्धर्मविप्रियम् ॥ ७ ॥
ते वयं मार्गविभ्रष्टं स्वधर्मे परमे स्थिताः ।
भरताज्ञां पुरस्कृत्य निग्रहामो यथाविधि ॥ ८ ॥

अर्थ—उसकी धर्मपूर्वक आज्ञा का पालन करते हुए हम और अन्य राजा धर्मवृद्धि की इच्छा वाले सम्पूर्ण पृथिवी पर घूम रहे हैं, उस धर्मवत्सल श्रेष्ठ राजा भरत के सारी पृथिवी का पालन करते हुए कौन धर्म का नाश करसक्ता है, सो हम दुष्टों के निग्रह में स्थित अर्थात् दुष्टों का ताड़न करते हुए भरत की आज्ञा का पालन कर धर्ममार्ग से च्युत हुओं का यथाविधि निग्रह करते हैं ॥

त्वं तु संक्लिष्टधर्मश्च कर्मणा च विगर्हितः ।
कामतन्त्रप्रधानश्च न स्थितो राजवर्त्मनि ॥ ९ ॥
ज्येष्ठो भ्राता पिता वापि यश्च विद्यां प्रयच्छति ।
त्रयस्ते पितरो ज्ञेया धर्मे च पथि वर्तिनः ॥१०॥
यवीयानात्मनः पुत्रः शिष्यश्चापि गुणोदितः ।
पुत्रवत्ते त्रयश्चिन्त्या धर्मश्चैवात्र कारणम् ॥ ११ ॥

अर्थ–सो तू लोक में अपने कर्मों से निन्दित, धर्म का त्याग कर कामवृत्ति को मुख्य किये हुए राजमार्ग पर स्थित नहीं है, बड़ा भाई, पिता और विद्यादाता, यदि यह तीनों धर्ममार्ग में स्थित होंतो इनको पिता मानना चाहिये, और छोटा भाई, अपना पुत्र और गुणवान् शिष्य यह तीनों पुत्रवत् समझने चाहियें, यह धर्ममर्यादा है ॥

तदेतत्कारणं पश्य यदर्थं त्वं मया हतः ।
भ्रातुर्वर्तसि भार्यायां त्यक्त्वा धर्मं सनातनम् ॥१२॥
अस्य त्वं धरमाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
रुमायां वर्तसे कामात्स्नुषायां पापकर्मकृत् ॥१३॥
तद्व्यतीतस्य ते धर्मात्कामवृत्तस्य वानर ।
भ्रातृभार्याभिमर्शेऽस्मिन्दण्डोऽयं प्रतिपादितः॥१४॥

अर्थ–सो तू सनातनधर्म को त्यागकर छोटे भाई की स्त्री में वर्तता है. इस कारण मैंने तेरा वध किया है, तू इस महात्मा सुग्रीव के जीते हुए कामवश हो स्नुषा तुल्य इसकी रुमा में वर्तने के कारण तू पापकर्मों का करने वाला है, सो धर्म से पतित होकर इच्छाचारी हुए तुमको भाई की स्त्री ग्रहण करने के कारण यह दण्ड दिया गया है ॥

नहि लोकविरुद्धस्य लोकवृत्तादपेयुषः ।
दण्डादन्यत्र पश्यामि निग्रहं हरियूथप ॥ १५ ॥
नच ते मर्षये पापं क्षत्रियोऽहं कुलोद्गतः ॥१६॥

अर्थ–हे वानरों के यूथपति बालिन्! मैं लोकमर्यादा से

पतित हुए तथा लोकविरुद्ध चलने वाले का दण्ड से भिन्न और कोई उपाय नहीं देखता, मैं कुलीन क्षत्रिय होने के कारण तेरे पाप को नहीं सहारसक्ता ॥

औरसीं भगिनीं वापि भार्यां वाप्यनुजस्य यः ।
प्रचरेत नरः कामात्तस्य दण्डो वधः स्मृतः ॥१७॥
भरतस्तु महीपालो वयं त्वादेशवर्तिनः ।
त्वं च धर्मादतिक्रान्तः कथं शक्यमुपेक्षितुम्॥१८॥
श्रूयते मनुना गीतौ श्लोकौ चारित्रवत्सलौ ।
गृहीतौ धर्मकुशलैस्तथा तच्चरितं मया ॥ १९ ॥

अर्थ—जो अपनी सहोदर भग्नि अथवा छोटे भाई की भार्या में कामवृत्ति हो उसको वध दण्ड देना स्मृति में विधान किया है, पृथिवी का अधिपति भरत है और हम उसकी आज्ञानुसार वर्तने वाले होने से धर्म को उल्लङ्घन किये हुए तेरी कैसे उपेक्षा करसक्ते हैं, चारित्र के प्यारे दो श्लोक मनुधर्मशास्त्र में लिखे हैं जो धर्म में कुशल पुरुषों से ग्रहण किये हुए सुने जाते हैं उन्हीं के अनुसार मैंने आचरण किया है ॥

राजभिर्धृतदण्डाश्च कृत्वा पापानि मानवाः ।
निर्मला स्वर्गमायान्ति सन्तः सुकृतिनो यथा॥२०॥
शासनाद्वापि मोक्षाद्वास्तेनः पापात्प्रमुच्यते ।
राजा त्वशासन्पापस्य तदवाप्नोति किल्बिषम्॥२१॥

अर्थ—पाप करने के पश्चात राजाओं से दण्ड पाकर पुरुष पाप रहित हुए पुण्यात्मा सत्पुरुषों की भांति स्वर्ग को प्राप्त होते हैं॥
मनु० ८।३१८

अर्थ–शासन=दण्ड देने अथवा मोक्षाय=दयाकर छोड़ देने से चोर अथवा अन्य पापी पाप से छूट जाता है, यदि राजा उस पापी का शासन न करे तो वह उस पाप को प्राप्त होता है ॥

मनु० ८।३१६

आर्येण मम मान्धात्रा व्यसने घोरमीप्सितम् ।
श्रमणेन कृते पापे यथा पापं कृतं त्वया ॥२२॥
अन्यैरपि कृतं पापं प्रमत्तैर्वसुधाधिपैः ।
प्रायश्चित्तं च कुर्वन्ति तेन तच्छाम्यते रजः ॥२३॥
तदलं परितापेन धर्मतः परिकल्पितः ।
वधो वानरशार्दूल न वयं स्ववशे स्थिताः ॥२४॥

अर्थ–मेरे पूर्वज मान्धाता ने एक संन्यासी को पाप करने पर भयंकर दण्ड दिया था जैसे तैंने पाप किया है, और भी बहुत लोगों ने प्रमत्त होकर पाप किये हैं जिनको राजा लोगों ने दण्ड देकर शुद्ध किया अथवा वह प्रायश्चित्त द्वारा शुद्ध होकर पाप से निवृत्त हुए, सो हे वानर श्रेष्ठ ! तू सन्ताप न कर यह तेरा वध धर्मपूर्वक किया गया है, हम अपने वश में स्थित नहीं अर्थात् हमारे लिये धर्मपालन रूप आज्ञा शिरोधार्य्य है ॥

दुर्लभस्य च धर्मस्य जीवितस्य शुभस्य च ।
राजानो वानरश्रेष्ठ प्रदातारो न संशयः ॥ २५ ॥

अर्थ–धर्मानुष्ठान करने वाले राजा दुर्लभ धर्म और पवित्र जीवन प्रजा को देते हैं, इसमें संशय नहीं ॥

तान्न हिंस्यान्नचाक्रोशेन्नाक्षिपेन्नाप्रियंवदेत् ।
देवा मानुषरूपेण चरन्त्येते महीतले ॥ २६ ॥

अर्थ--अतएव प्रजा का कर्तव्य है कि वह उनसे न द्रोह करे, न उनकी निन्दा करे, न अपमान करे और न अप्रिय बोले, यह राजा लोग पृथिवी पर मानुष रूप से देवता विचर रहे हैं ॥

त्वं तु धर्ममविज्ञाय केवलं रोषमास्थितः ।
विदूषयसि मां धर्मे पितृ पैतामहे स्थितम् ॥२७॥

अर्थ--तू धर्म को न जानकर केवल क्रोध में निमग्न है जो पिता पितामह के धर्म में स्थित मुझको दोष देता है ॥

एवमुक्तस्तु रामेण बाली प्रव्यथितो भृशम् ।
न दोषं राघवे दध्यौ धर्मेऽधिगतनिश्चयः ॥२८॥
प्रत्युवाच ततो रामं प्रांजलिर्वानरेश्वरः ।
यत्त्वमात्थ नरश्रेष्ठ तत्तथैव न संशयः ॥ २९ ॥
यदयुक्तं मया पूर्वं प्रमादाद्वाक्यमप्रियम् ।
तत्रापि खलु मां दोषं कर्तुं नार्हसि राघव ॥३०॥
वाष्पसंरुद्धकण्ठस्तु बाली सार्तरवः शनैः ।
उवाच रामं संप्रेक्ष्य पङ्कलग्न इव द्विपः ॥ ३१ ॥

अर्थ--राम के उक्त प्रकार कथन करने पर बाली को धर्म में निश्चय हुआ और वह राम को निर्दोष ठहराता हुआ अपने पूर्व कथन पर अतीव दुःखित हुआ, तदनन्तर वह बाली हाथ जोड़कर राम से बोला कि हे नरश्रेष्ठ ! जो आप कहते हैं वह निःसन्देह ठीक है, हे राम ! मैंने प्रमाद से जो कुछ पूर्व अप्रिय

वाक्य कहे हैं उसमें भी आप मुझे दोष देने योग्य नहीं हैं, इतना कथन करते ही बाली का गला बाष्प से रुकगया और वह धीरे २ आर्त्तस्वर से कीचड़ में फंसे हुए हाथी की भांति राम को देखता हुआ कहने लगा कि :—

न चात्मानमहं शोचे न तारां नापि बान्धवान् ।
यथा पुत्रं गुणज्येष्ठमङ्गदं कनकाङ्गदम् ॥ ३२ ॥
स ममादर्शनाद्दीनो बाल्यात्प्रभृति लालितः ।
तटाक इव पीताम्बुरुपशोषं गमिष्यति ॥३३॥
बालश्चाकृतबुद्धिश्च एकपुत्रश्च मे प्रियः ।
तारेयो राम भवता रक्षणीयो महाबलः ॥३४॥
सुग्रीवे चांगदे चैव विधत्स्व मतिमुत्तमाम् ।
त्वंहिगोप्ताचशास्ताचकार्य्याकार्य्यविधौस्थितः॥३५॥

अर्थ—मुझे न अपना न तारा का और न अन्य बन्धुओं का इतना शोक है जितना कि सुवर्ण के बाहुबन्द वाले गुणों में ज्येष्ठ अङ्गद पुत्र का शोक है, वह बाल्यावस्था से लालन किया हुआ मेरे विना देखे दीन होकर पिये हुए जल वाले तालाब की भांति सूख जायगा, बाल अकृतबुद्धि, इकलौता बेटा मेरा प्रिय है सो वह महाबली अङ्गद तारा का पुत्र आपसे रक्षा किये जाने योग्य है, हे राम ! आप सुग्रीव और अङ्गद में उत्तम बुद्धि रखिये, क्योंकि अब आपही उनके रक्षक और कार्य्य अकार्य्य में शासन करने वाले हैं ॥

या ते नरपते वृत्तिर्भरते लक्ष्मणे च या ।
सुग्रीवे चांगदे राजंस्तां चिन्तयतुमर्हसि ॥३६॥

इत्युक्त्वा वानरो रामं विरराम हरीश्वरः ।
स तमाश्वासयद्रामो बालिनं व्यक्तदर्शनम् ॥३७॥

अर्थ-हे नरपते ! जिसप्रकार आप भरत और लक्ष्मण के साथ वर्तते हैं, हे राजन् ! वही वर्ताव सुग्रीव और अङ्गद में आप चिन्तन करने योग्य हैं अर्थात् उसी प्रकार इनसे भी वर्तें, राम को इतना कहकर बानरेश्वर बाली चुप होगया, तब समीप स्थित राम ने उस स्पष्टदर्शन वाले बाली को आश्वासन दिया किः-

न वयं भवता चिन्त्या नाप्यात्मा हरिसत्तम ।
वयं भवद्विशेषेण धर्मतः कृतनिश्चयाः ॥ ३८ ॥
दंड्ये यः पातयेद्दण्डं दंड्यो यश्चापि दंड्यते ।
कार्यकारणसिद्धार्थावुभौ तौ नावसीदतः ॥३९॥
तद्भवान्दण्ड संयोगादस्माद्विगतकल्मषः ।
गतः स्वां प्रकृतिं धर्म्यां दण्डदिष्टेन वर्त्मना ॥४०॥

अर्थ-हे वानरश्रेष्ठ ! आप न अपनी चिन्ता करें और न हमारी करें, हम आपसे अधिक धर्म में निश्चय वाले हैं, जो दण्ड योग्य को दण्ड देता और जो दण्ड के योग्य दण्ड पाता है, वह दोनों कार्यकारण से सिद्ध प्रयोजन वाले हुए २ दुःखी नहीं होते हैं, सो आप इस दण्ड के सम्बन्ध से निष्पाप होकर दण्डशास्त्र के मार्गद्वारा अपने शुद्धस्वभाव को प्राप्त हुए हैं ॥

त्यज शोकं च मोहं च भयं च हृदये स्थितम् ।
त्वया विधानं हर्यग्र्य न शक्यमतिवर्तितुम् ॥४१॥
यथा त्वय्यगंदो नित्यं वर्तते वानरेश्वर ।
तथा वर्तेत सुग्रीवे मयि चापि न संशयः ॥४२॥

अर्थ-हे वानरश्रेष्ठ ! आप हृदय में स्थित शोक,मोह तथा भय को त्याग दें, क्योंकि दैवगति का आप उल्लङ्घन नहीं कर सकते, हे बालिन् ! अङ्गद जैसे तुम्हारे साथ वर्तता रहा है वैसे ही सुग्रीव और मेरे साथ सदा वर्तेगा, इसमें संशय नहीं ॥

भाष्य-उक्त १३ वें श्लोक में राम ने बाली से यह कहा है कि तू सुग्रीव के " जीते हुए " उसकी स्त्री में वर्तने के कारण पाप कर्मों का करने वाला है अर्थात् "जीवित" कहने से पाया जाता है कि उस समय पति के मरने पश्चात् पुनर्विवाह की विधि थी, जैसाकि सुग्रीव का तारा से हुआ ॥

इतना ही नहीं आर्षग्रन्थों और प्राचीन इतिहासों के देखने से स्पष्ट है कि पूर्व कालीन आर्य्यों में पुनर्विवाह का प्रचार था, जैसाकिः—

सा चेदक्षतयोनिःस्याद्गतप्रत्यागतापि वा ।
पौनर्भवेन भर्त्रा सा पुनः संस्कारमर्हति ॥

मनु० ९।१७६

अर्थ-जो स्त्री अक्षतयोनि हो अथवा पति के घर जाकर आगई हो अर्थात् क्षतयोनि हो उसका दोनों दशाओं में अन्य पति के साथ पुनर्विवाह होसक्ता है, इस श्लोक से सिद्ध है कि मनुधर्मशास्त्र भी पुनर्विवाह की आज्ञा देता है,अब रही यह बात कि किन २ दशाओं में पुनर्विवाह होना चाहिये,इसमें बहुत मतभेद हैं,कोई कहता है कि केवल अक्षतयोनि के लिये ही धर्मशास्त्र पुनर्विवाह की आज्ञा देता है,किन्हीं का कथन है कि क्षतयोनि के लिये भी शास्त्र की आज्ञा है, इत्यादि पर यह बात निर्विवाद है कि धर्मशास्त्र पुनर्विवाह का विधायक है निषेधक नहीं, जो लोग धर्मशास्त्र से पुनर्विवाह का

निषेध करते हैं वह भी इस दशा में मानते हैं, जैसाकिः—

या पत्या वा परित्यक्ता विधवा वा स्वयेच्छया ।
उत्पादयेत्पुनर्भूत्वा स पौनर्भव उच्यते ॥

मनु० ९।१७५

अर्थ—जो पति से त्यागी गई हो अथवा विधवा होकर पुनर्विवाह से जो सन्तान उत्पन्न करती है उसकी सन्तान का नाम "पौनर्भव" है अर्थात् पुनर्विवाह वाली स्त्री का नाम **"पौनर्भू"** और उसके सन्तान को **"पौनर्भव"** कहते हैं, इससे स्पष्ट सिद्ध है कि पुनर्विवाह की प्रथा पूर्व प्रचलित थी, इसीलिये पौनर्भव पुत्र की निरुक्ति मनु ने की है ॥

और जिन लोगों का यह कथन है कि विधवा का विवाह केवल पौनर्भव पति से होसक्ता है अन्य से नहीं, उनका कथन सर्वथा निर्मूल है, क्योंकि पौनर्भव पुत्र से प्रथम जब विधवा को पुनर्विवाह का अधिकार होगा तभी पौनर्भव पुत्र उत्पन्न होसक्ता है अन्यथा नहीं, इससे सिद्ध है कि पुनर्विवाह में पौनर्भव भर्त्ता का नियम नही ॥

इसी प्रकार वेदभगवान् में भी पुनर्विवाह का वर्णन पाया जाता है, जैसाकि " **विधवेवदेवरम्** " ऋ० १०।४०।२ और " **हस्ताग्राभस्यदिदिषो०** " ऋ० १०।१८।८ इत्यादि मंत्रों में स्पष्ट है ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

सं०—अब तारा का विलाप कथन करते हैं :—

स वानरमहाराजः शयानः शरपीडितः ।
प्रयुक्तो हेतुमद्वाक्यैर्नोत्तरं प्रतिपद्यत ॥ १ ॥
तं भार्या बाणमोक्षेण रामदत्तेन संयुगे ।
हतं प्लवगशार्दूलं तारा शुश्राव बालिनम् ॥ २ ॥
सा सपुत्राप्रियं श्रुत्वा वधं भर्तुः सुदारुणम् ।
निष्पपात भृशं तस्मादुद्विग्ना गिरिकन्दरात् ॥३॥
सा व्रजन्ती ददर्शाथ पतिं निपतितं भुवि ।
हन्तारं वानरेन्द्राणां समरेष्वनिवर्तिनाम् ॥ ४ ॥

अर्थ—वह महाराज बाली बाणों के आघात से पीड़ित हुआ, राम के युक्ति युक्त वाक्यों द्वारा उत्तर पाकर फिर आगे कुछ न कहसका, उस वानरश्रेष्ठ बाली को उसकी पत्नी तारा ने राम के छोड़े हुए बाण द्वारा युद्ध में मरा हुआ सुना, और वह भर्त्ता के वध रूप बड़े दारुण अप्रिय को सुनकर अत्यन्त घबराई हुई पुत्रसहित उस किष्किन्धा पर्वत की कन्दरा से निकली, और उसने रणभूमि में जाकर युद्ध में पीठ न दिखाने वाले तथा वानरेन्द्रों का हनन करने वाले अपने पति को भूमि पर गिरा हुआ देखा ॥

अवष्टभ्यावतिष्ठन्तं ददर्श धनुरूर्जितम् ।
रामं रामानुजं चैव भर्तुश्चैव तथानुजम् ॥ ५ ॥

तानतीत्य समासाद्य भर्त्तारं निहतं रणे ।
समीक्ष्य व्यथिता भूमौ संभ्रान्ता निपपात ह ॥६॥

अर्थ—और पराक्रम वाले धनुष को थामकर खड़े हुए राम, लक्ष्मण और अपने भर्त्ता के छोटे भाई सुग्रीव को देखा, इन सबको अतिक्रमण करती हुई रणभूमि में पड़े हुए अपने भर्त्ता को देखकर दुःखी हो भूमि पर गिरपड़ी ॥

तामवेक्ष्य तु सुग्रीवः क्रोशन्तीं कुररीमिव ।
विषादमगमत्कष्टं दृष्ट्वा चांगदमागतम् ॥ ७ ॥
सा समासाद्य भर्त्तारं पर्य्यष्वजत भामिनी ।
तारा तरुमिवोन्मूलं पर्य्यदेवयतातुरा ॥ ८ ॥
कालो निःसंशयो नूनं जीवितान्तकरस्तव ।
बलाद्येनावपन्नोऽसि सुग्रीवस्या वशोवशी ॥ ९ ॥

अर्थ—और कुररी=कुलंग की भांति बाली को पुकारती हुई तारा तथा अङ्गद को आया देखकर सुग्रीव बड़े विषाद को प्राप्त हुआ, उस सुन्दरी तारा ने भर्त्ता के समीप जाकर उसको आलिङ्गन किया और जड़ से उखड़े हुए वृक्ष की भांति गिरे हुए भर्त्ता के समीप आतुर होकर रुदन करती हुई कहनें लगी कि निःसन्देह तुम्हारे जीवन का अन्त करने वाला काल है जिसने किसी के वश में न आने वाले आपको बल से सुग्रीव के वश करदिया है ॥

अस्थाने बालिनं हत्वा युध्यमानं परेण च ।
न सन्तप्यति काकुत्स्थः कृत्वा कर्म सुगर्हितम्॥१०॥

वैधव्यं शोक सन्तापं कृपणाकृपणासती ।
अदुःखोपचितापूर्वं वर्तयिष्याम्यनाथवत् ॥११॥
कुरुष्व पितरं पुत्र सुदृष्टं धर्मवत्सलम् ।
दुर्लभं दर्शनं तस्य तव वत्स भविष्यति ॥१२॥
समाश्वासय पुत्रं त्वं सन्देशं सन्दिशस्व मे ।
मूर्ध्नि चैनं समाघ्राय प्रवासं प्रस्थितो ह्यसि ॥१३॥

अर्थ—दूसरे के साथ युद्ध करते हुए को मारकर निन्दित कर्म करके राम सन्तप्त नहीं होता यह उसके लिये अयोग्य है, हा !! शोक पूर्वकाल में सुख के योग्य मैं कृपण के समान शोक सन्तापयुक्त वैधव्य भोगुंगी, हे पुत्र अङ्गद ! धर्मप्रिय पिता को भले प्रकार देख ले, हे वत्स ! अब तुझे इनका दर्शन दुर्लभ होजायगा, हे राजन् ! अपने पुत्र के सिर पर चूमकर उसको आश्वासन और मुझे सन्देश दें, क्योंकि अब आप परलोक को प्रस्थित होते हैं ॥

सं०—अब तारा के प्रति बालि का अन्तिम सन्देश कथन करते हैं :—

वीक्षमाणस्तु मन्दासुः सर्वतो मन्दमुच्छ्वसन् ।
आदावेव तु सुग्रीवं ददर्शानुजमग्रतः ॥ १४ ॥
तं प्राप्त विजयं वाली सुग्रीवं प्लवगेश्वरम् ।
आभाष्य व्यक्तया वाचा सस्नेहमिदमब्रवीत्॥१५॥

अर्थ—घटे हुए सांस वाला, मन्द २ सांस लेता हुआ बाली सब ओर देखकर प्रथम ही आगे खड़े हुए अपने छोटे भाई

सुग्रीव को देखा, और उस विजय प्राप्त किये हुए वानराधिपति सुग्रीव को बाली सम्बोधन कर स्पष्ट वाणी द्वारा स्नेह से यह वचन बोला कि :—

युगपद्विहितं तात न मन्ये सुखमावयोः ।
सौहार्दं भ्रातृयुक्तं हि तदिदं जातमन्यथा ॥१६॥
प्रतिपद्य त्वमद्यैव राज्यमेषां वनौकसाम् ।
मामप्यद्यैव गच्छन्तं विद्धि वैवस्वतक्षयम् ॥१७॥
जीवितं च हि राज्यं च श्रियं च विपुलां तथा ।
प्रजहाम्येष वै तूर्णमहं चागर्हितं यशः ॥ १८ ॥

अर्थ—हे तात ! मैं जानता हूं कि हम दोनों को एक साथ सुख नहीं भोगना था, हमारे मन्दकर्म प्रबल होने से यह सौहार्द जो भाई को उचित है वह हम में उलटा होगया, हे सुग्रीव ! तू आज ही इस राज्य को प्राप्त हो और मैं अभी यम के घर को जाता हूं अर्थात् मेरा जीवन अब क्षणमात्र शेष है, और जीवन, राज्य, यह बड़ी लक्ष्मी और यश यह सब अब मैं यहीं छोड़ता हूं ॥

अस्यां त्वहमवस्थायां वीर वक्ष्यामि यद्वचः ।
यद्यप्यसुकरं राजन्कर्तुमेव त्वमर्हसि ॥ १९ ॥
सुखार्हं सुखसंवृद्धं बालमेनमबालिशम् ।
बाष्पपूर्णमुखं पश्य भूमौ पतितमंगदम् ॥ २० ॥
मम प्राणैः प्रियतरं पुत्रं पुत्रमिवौरसम् ।
मया हीनमहीनार्थं सर्वतः परिपालय ॥ २१ ॥

अर्थ–हे वीर ! इस अन्त समय में जो वचन मैं आपसे कहू हे राजन् ! चाहे वह सुकर न हो तब भी तुम्हें करना चाहिये, सुख से पले हुए, सुख के योग्य, इस बुद्धिमान् बालक अङ्गद को आंसुओं से पूर्ण मुखवाला भूमि पर गिरा हुआ देख, यह मेरे प्राणों से प्यारा पुत्र जो आज मुझ से हीन होता है, इसके अर्थों को पूर्ण करते हुए औरसपुत्र की भांति इसका सब प्रकार से पालन करना ॥

त्वमप्यस्य पिता दाता परित्राता च सर्वशः ।
भयेष्वभयदश्चैव यथाहं प्लवगेश्वर ॥ २२ ॥
एष तारात्मजः श्रीमांस्त्वया तुल्यपराक्रमः ।
रक्षसां च वधे तेषामग्रतस्ते भविष्यति ॥ २३ ॥
अनुरूपाणि कर्माणि विक्रम्य बलवान् रणे ।
करिष्यत्येष तारेयस्तेजस्वी तरुणोऽङ्गदः ॥२४॥

अर्थ–अब आप ही इसके पिता, दाता और भय से अभय देने वाले मेरी भांति सब प्रकार से रक्षक हैं, यह तारा का पुत्र श्रीमान् अङ्गद तुम्हारे तुल्य पराक्रम वाला होने से यह राक्षसों के वध में तेरा अग्रणी होगा, और यह बलवान् तेजस्वी तारा का पुत्र अङ्गद जो तरुण अवस्था को प्राप्त है, यह रण में अपना विक्रम दिखलाता हुआ योग्य कर्म करेगा ॥

सुषेणदुहिता चेयमर्थसूक्ष्मविनिश्चये ।
औत्पातिके च विविधे सर्वतः परिनिष्ठिता ॥२५॥
यदेषा साध्विति ब्रूयात्कार्य्यं तन्मुक्तसंशयम् ।
नहि तारामतं किञ्चिदन्यथा परिवर्तते ॥ २६ ॥

राघवस्य च ते कार्य्यं कर्तव्यमविशङ्कया ।
स्यादधर्मो ह्यकरणे त्वां च हिंस्यादमानितः ॥२७॥

अर्थ–और यह सुषेण की कन्या तारा अर्थ के सूक्ष्म विचार और अनेक प्रकार के उपद्रवों को पूर्णतया समझने वाली है, यह जो कुछ भलाई की बात कहे उसको निःसन्देह करना, क्योंकि तारा का कहा हुआ कभी अन्यथा नहीं होता, और राघव का कार्य्य तैने निर्भय होकर करना, न करने में पाप होगा और अपमान को प्राप्त हुआ वह तुझे मार देगा ॥

इमां च मालामाधत्स्व दिव्यां सुग्रीव काञ्चनीम् ।
उदारा श्रीःस्थिता ह्यस्यां संप्रजह्यान्मृते मयि॥२८॥

इत्येवमुक्तः सुग्रीवो वालिना भ्रातृसौहृदात् ।
हर्षं त्यक्त्वा पुनर्दीनो ग्रहग्रस्त इवोडुराट् ॥२९॥

तद्वालि वचनाच्छान्तः कुर्वन्युक्तमतन्द्रितः ।
जग्राह सोऽभ्यनुज्ञातो मालां तांचैव काञ्चनीम्॥३०॥

अर्थ–और हे सुग्रीव ! इस दिव्य सुनहरी माला को पहन यह अद्भुत शोभा वाली है, मेरे मरने पर वह शोभा इसे त्याग देगी, जब भाई के सौहार्द से बाली ने सुग्रीव को इस प्रकार कहा तब वह हर्ष को त्यागकर राहुग्रस्त चन्द्रमा की भांति फिर दीन होगया, बाली के उक्त बचन सुनकर शान्त हुआ सुग्रीव सावधान होकर उचित कार्य्य में प्रवृत्त हुआ, और बाली की आज्ञानुसार उस सुवर्ण की माला को सुग्रीव ने ग्रहण किया ॥

तां मालां काञ्चनीं दत्त्वा दृष्ट्वा चैवात्मजं स्थितम् ।
संसिद्धःप्रेत्यभावाय स्नेहादंगदमब्रवीत् ॥३१॥

अर्थ—उस सुवर्ण की माला को देकर और पुत्र को आगे स्थित देख अन्त समय में स्नेह से बाली अङ्गद को बोलाकिः—

देशकालौ भजस्वाद्य क्षममाणः प्रियाप्रिये ।
सुखदुःख सहः काले सुग्रीववशगो भव ॥३२॥
नास्यामित्रैर्गतं गच्छेर्मा शत्रुभिररिन्दम ।
भर्तुरर्थपरो दान्तः सुग्रीववशगो भव ॥३३॥
इत्युक्त्वाथ विवृत्ताक्षः शरसं पीडितोभृशम् ।
विवृतैर्दशनैर्भीमैर्बभूवोत्क्रान्तजीवितः ॥ ३४ ॥

अर्थ—अब उस २ कर्म के अनुसार देश काल को विचार कर कार्य्य करना,प्रिय अप्रिय को सहारना और सुख दुःख सहते हुए सदा सुग्रीव का अनुगामी रहना, हे शत्रुओं को दमन करने वाले अङ्गद ! सुग्रीव से उदासीन न होना और न कभी इसके शत्रुओं का संग न करना, इसके कार्य्य साधन में तत्पर रहकर सुशीलता से सुग्रीव के अनुसार चलना, इतना कहने के अनन्तर बाली की आंखें फिर कर जीव निकल गया तब सब वानर अपने यूथपति को मरा हुआ देखकर भयंकर रुदन करने लगे ॥

ततस्तु तारा व्यसनार्णवप्लुतामृतस्य भर्तुर्वदनं समीक्ष्यसा । जगाम भूमिं परिरभ्य वालिनं महा द्रुमं छिन्नमिवाश्रितालता ॥ ३५ ॥

अर्थ-और बाली के मरने पर पति का मुख देख दुःख सागर में डूबी हुई तारा उसको आलिङ्गन कर भूमि में इस प्रकार गिरी जैसे बड़े वृक्ष पर चढ़ी हुई लता वृक्ष के कटने पर उसी के साथ गिरती है ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

सं०-अब तारा का पुनः विलाप कथन करते हैं:—

पतिं लोकाश्रिता तारा मृतं वचनमब्रवीत् ।
शेषे त्वं विषमे दुःखमकृत्वावचनं मम ॥१॥
इदं तद्वीरशयनं तत्र शेषे हतो युधि ।
शायिता निहता तत्र त्वयैव रिपवः पुरा ॥२॥
विशुद्धसत्त्वाभिजनप्रिययुद्ध मम प्रिय ।
मामनाथां विहायैकां गतस्त्वमसि मानद ॥३॥

अर्थ-जगत् विख्यात तारा अपने मृत पति से यह बचन बोली कि हाय !! शोक !! मेरा कहना न मानकर आप इस विषम स्थान में सोरहे हैं, यह वह वीर शय्या है जिसपर आप अब युद्ध में हत हुए लेटरहे हैं, इसी शय्या पर आपने भी पहले अनेक शत्रु लिटाये थे, हे शुद्धमन ! हे पवित्र कुल वाले ! हे युद्ध प्रिय ! हे मेरे प्यारे ! हे मान के देने वाले मेरे प्रिय पति ! आप मुझ अनाथा को अकेली छोड़कर कहां जाते हैं ॥

अवभग्नश्च मे मानो भग्ना मे शाश्वतीगतिः ।
अगाधे च निमग्नास्मि विपुले शोकसागरे ॥४॥
अश्मसारमयं नूनमिदं मे हृदयं दृढम् ।
भर्तारं निहतं दृष्ट्वा यन्नाद्य शतधाकृतम् ॥५॥
सुहृच्चैव च भर्ता च प्रकृत्या च मम प्रियः ।
प्रहारे च पराक्रान्तः शूरः पञ्चत्वमागतः ॥६॥
पतिहीना तु या नारी कामं भवतु पुत्रिणी ।
धनधान्यसमृद्धानि विधवेत्युच्यते बुधैः ॥७॥

अर्थ--मेरा मान जाता रहा, मेरी स्थिर गति आज मुझ से जुदा हुई, मैं आज अथाह और असीम शोकसागर में डूब रही हूं, निःसन्देह मेरा हृदय बड़ा दृढ़ पत्थर का बना हुआ है जो पति को मरा देखकर आज सौ २ टुकड़े नहीं होजाता, हा शोक !! मेरा सुहृद्, मेरा भर्ता और स्वभाव से ही मेरा प्यारा पराक्रमी, शूरबीर आज युद्ध में मृत्यु को प्राप्त हुआ है, पतिहीन नारी चाहे पुत्रवाली भी हो,धनधान्य से पूर्ण भी हो परन्तु लोक में विधवा ही कही जाती है ॥

उद्ववर्ह शरं नीलस्तस्य गात्रगतं तदा ।
पेतुः क्षतजधारास्तु व्रणेभ्यस्तस्य सर्वशः ॥८॥
रुधिरोक्षित सर्वांगं दृष्ट्वा विनिहतं पतिम् ।
उवाच तारा पिंगाक्षं पुत्रमंगदमंगना ॥९॥
बालसूर्योज्वलतनुं प्रयातं यमसादनम् ।
अभिवादय राजानं पितरं पुत्र मानदम् ॥१०॥

अर्थ—तत्पश्चात् बाली के शरीर से जब नील ने बाण निकाला तब उसके व्रणों से रुधिर की धारें सब ओर बह निकलीं, रुधिर से लिपटे हुए अंगों वाले पति को मरा हुआ देखकर उत्तम अंगों वाली-तारा पीतनेत्रों वाले अपने पुत्र अङ्गद से बोली कि हे पुत्र ! उदय होते हुए सूर्य्य की भांति उज्वल शरीर वाले, यम के घर जाते हुए अपने पिता राजा को अभिवादन कर ॥

एवमुक्त्वा समुत्थाय जग्राह चरणौ पितुः।
भुजाभ्यां पीनवृत्ताभ्यामंगदोऽहमितिब्रुवन् ॥११॥

अभिवादयमानं त्वामंगदं त्वं यथा पुरा।
दीर्घायुर्भवपुत्रेति किमर्थं नाभिभाषसे ॥ १२ ॥

इष्ट्वा संग्रामयज्ञेन रामप्रहरणाम्भसा।
तस्मिन्नवभृथे स्नातः कथं पत्न्या मयाविना ॥१३॥

अर्थ—तारा के उक्त प्रकार कथन करने पर "मैं अङ्गद हूं" इस प्रकार कहता हुआ मोटी गोल भुजाओं से पिता के चरण पकड़ कर अङ्गद ने अभिवादन किया, तारा पुत्र को अभिवादन करता हुआ देखकर पति से बोली हे राजन् !अभिवादन करते हुए अङ्गद को "हे पुत्र तेरी दीर्घायु हो" यह पूर्ववत् आशीर्वाद क्यों नहीं देते, संग्रामरूप यज्ञ पूर्ण करके राम के बाणरूप जल से आपने मुझ पत्नि के बिना कैसे अवभृथ*स्नान करलिया है ॥

---

* "अवभृथ" स्नान उसको कहते हैं जो यज्ञ के समाप्त होने पर अपनी पत्नी के साथ किया जाता है ॥

न मे वचः पथ्यमिदं त्वया कृतं नचास्मि
शक्ता हि निवारणे तव। हता स पुत्रास्मि हतेन
संयुगे सह त्वया श्रीर्विजहाति मामपि ॥१४॥

अर्थ—न आपने मेरे बचन को पथ्य जानकर माना और न मैं आपको रोकने में समर्थ हुई, हाय !! युद्ध में आपके मरने से मैं पुत्रसहित मारी गई, आज तुम्हारे साथ ही मुझे भी श्री त्यागती है ॥

तां चारुनेत्रां कपिसिंहनाथां पतिं समाश्लिष्य
तदाशयानाम् । उत्थापयामासुरदीनसत्त्वां-
मन्त्रिप्रधानाः कपिराजपत्नीम् ॥ १५ ॥

अर्थ—इस प्रकार विलाप करती हुई उस सुन्दर नेत्रों वाली बाली की पत्नी तारा अपने पति को आलिङ्गन कर लेटी हुई तथा दुःखी हृदय वाली कपिराज की पत्नी को प्रधान मन्त्रियों ने उठाया ॥

सा विस्फुरन्ती परिरभ्यमाणा भर्तुः समीपाद-
पनीयमाना । ददर्श रामं शरचापपाणिं
स्वतेजसा सूर्यामिव ज्वलन्तम् ॥ १६ ॥

अर्थ—जब कण्ठ से लगाकर रोती हुई तारा को भर्त्ता से पृथक् कियागया तब उसने हाथ में धनुषबाण लिये तथा अपने तेज से सूर्य्य की भांति चमकते हुए राम को देखा ॥

सुसंवृतं पार्थिवलक्षणैश्च तं चारुनेत्रं मृगशावनेत्रा ।
अदृष्टपूर्वंपुरुषं प्रधानमयं स काकुत्स्थइति प्रजज्ञे॥१७॥

अर्थ–उस मृगनयनी ने राजलक्षणों से युक्त, सुन्दर नेत्रों वाले प्रथम न देखे हुए उस पुरुषप्रधान को देखकर यह जाना कि यही राम है ॥

तं सा समासाद्य विशुद्धसत्त्वं शोकेन संभ्रान्त शरीर भावा। मनस्विनी वाक्यमुवाच तारा रामं रणोत्कर्षणलब्धलक्ष्यम् ॥ १८ ॥

अर्थ–तब उस शुद्धहृदय राम के निकट जाकर शोक से अपने आपको भूली हुई मनस्विनी तारा रण में सब से उत्कर्ष लक्ष्य बींधने वाले राम से यह वाक्य बोली कि :—

त्वमप्रमेयश्च दुरासदश्च जितेन्द्रियश्चोत्तम-धर्मकश्च। अक्षीणकीर्तिश्च विचक्षणश्च क्षितिक्षमावान् क्षतजोपमाक्षः ॥ १९ ॥

अर्थ–आप अप्रमेय, दुर्धर्ष, जितेन्द्रिय, उत्तम धर्म वाले, अक्षीण यशवाले, निपुण, पृथिवी तुल्य क्षमा वाले और अरुण नेत्रों वाले शूरवीर हैं ॥

ये नैव बाणेन हतः प्रियो मे तेनैव बाणेन हि मां जहीहि। हता गमिष्यामि समीप-मस्य न मां विना वीर रमेत बाली ॥२०॥

अर्थ–सो जिस बाण से आपने मेरे प्रिय पति का बध किया है उसी बाण से आप मुझे मारें, मैं मरकर उसी अपने प्रिय पति के पास जाउंगी, क्योंकि वह मेरा प्यारा वीर बाली मेरे बिना रमण नहीं करेगा ॥

त्वं वेत्थ तावद्धनिता विहीनः प्राप्नोति दुःखं
परुषः कुमारः। तत्वं प्रजानञ्जहिमां न बाली
दुःखं ममादर्शनजं भजेत ॥ २१ ॥

अर्थ—आप भले प्रकार जानते हैं कि स्त्री से विना पुरुष पीड़ित हुआ दुःखी होता है, सो आप यह जानते हुए मुझे मारें, जिससे बाली मेरे वियोग का दुःख न सहे ॥

यच्चापिमन्येत भवान्महात्मास्त्रीघातदोषस्तु
भवेन्न मह्यम्। आत्मेयमस्येति हि मां जहि
त्वं न स्त्रीवधः स्यान्मनुजेन्द्र पुत्र ॥ २२ ॥

अर्थ—यदि आप महात्मा यह समझें कि मुझको स्त्रीवध रूप दोष लगेगा तो हे नरेन्द्रपुत्र ! आप मुझे मेरे प्रिय बाली का स्वरूप जानकर मारें, आपको कोई दोष न होगा ॥

शास्त्रप्रयोगाद्विविधाच्च वेदादनन्यरूपाः
पुरुषस्य दाराः। दारप्रदानाद्धि न दानमन्य
त्प्रदृश्यते ज्ञानवतां हि लोके ॥ २३ ॥

अर्थ—शास्त्रीय अनुष्ठान अर्थात मिलकर यागादिकों का अनुष्ठान करने और अनेक वेदवाक्यों में विधान किये जाने से स्त्रियें अनन्यरूपा=पुरुष का ही रूप हैं, सो ज्ञानवानों के लिये लोक में बिछुड़ी हुई स्त्री मिला देने से बढ़कर दान नहीं है ॥

त्वं चापि मां तस्य मम प्रियस्य प्रदास्यसे
धर्ममवेक्ष्य वीर। अनेन दानेन न लप्स्यसे
त्वमधर्मयोगं मम वीर घातात् ॥ २४ ॥

अर्थ-सो हे वीर ! धर्म को लक्ष्य रखकर उस मेरे प्रिय पति को आप मेरा दान दें, हे वीर ! इस दान से अर्थात् मेरा बध करके वहां पहुंचाने से आप अधर्म को प्राप्त नहीं होंगे ॥

इत्येवमुक्तस्तु विभुर्महात्मा तारां समाश्वास्य
हितं बभाषे । मा वीरभार्ये विमतिं कुरुष्व
लोको हि सर्वो विहितो विधात्रा ॥ २५ ॥

अर्थ-तारा के उक्त प्रकार विलापयुक्त वचन सुनकर महात्मा राम उसको आश्वासन देते हुए यह हितकर बचन बोले कि हे वीरपत्नी ! तू विरुद्ध मति न कर, यह सारा जगत् परमात्मा की आज्ञा में चल रहा है ॥

त्रयोपि लोका विहितं विधानं नाति क्रमन्ते
वशगाहितस्य । प्रीतिं परांप्राप्स्यसि तां
तथैव पुत्रश्च ते प्राप्स्यति यौवराज्यम् ॥२६॥

अर्थ-तीनों लोक उसकी आज्ञा का उल्लङ्घन न करते हुए उसी के वशीभूत होकर वर्तते हैं, तू वैसी ही परमप्रीति को प्राप्त होगी और तेरा पुत्र युवराज बनेगा ॥

धात्रा विधानं विहितं तथैव-
न शूरपत्न्यः परिदेवयन्ति॥२७॥

अर्थ-विधाता की यही आज्ञा थी कि बाली का इसी प्रकार बध हो, शूरपत्नियें रुदन नहीं किया करतीं ॥

आश्वासितातेन महात्मनातु प्रभावयुक्तेन

परं तपेन । सा वीरपत्नी ध्वनतामुखेन
सुवेषरूपा विरराम तारा ॥ २८ ॥

अर्थ—जब प्रभावशाली, शत्रुओं को दमन करने वाले महात्मा राम ने सुवेषरूपिणी=सुन्दरी तथा वीरपत्नी तारा को आश्वासन दिया तब वह विलाप करने से चुप होगई ॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पंचदशः सर्गः

सं०—अब बाली के अन्त्येष्टि संस्कार का वर्णन करते हैंः—

स सुग्रीवं च तारां च सांगदां सहलक्ष्मणः ।
समानशोकःकाकुत्स्थः सान्त्वयन्निदमब्रवीत् ॥१॥
न शोकपरितापेन श्रेयसा युज्यते मृतः ।
पदत्रान्तरं कार्यं तत्समाधातुमर्हथ ॥२॥

अर्थ—तारा तथा सुग्रीवादिकों के तुल्य शोक वाले राम तथा लक्ष्मण सुग्रीव, तारा और अङ्गद को आश्वासन देते हुए बोले कि शोक सन्ताप करने से मृतपुरुष फिर जीवित नहीं हो-सक्ता. अतएव अब जो अवश्यकर्तव्य है वह करना चाहिये ॥

स्वधर्मस्य च संयोगाज्जितस्तेन महात्मना ।
स्वर्गः परिगृहीतश्च प्राणानपरिक्षता ॥३॥
एषा वै नियतिः श्रेष्ठा यां गतो हरियूथपः ।
तदलं परितापेन प्राप्तकालमुपास्यताम् ॥४॥

अर्थ—उस महात्मा बाली ने अपने धर्मपालनरूप संयोग से स्वर्ग को जीता था, और अब भी प्राणों की रक्षा न करते हुए युद्ध में स्वर्ग=सद्गति को प्राप्त हुआ है, यह ऐसा ही होना था वही हुआ अर्थात् युद्ध द्वारा ही उसकी मृत्यु होनी थी, अब सन्ताप को त्यागकर इस समय का कार्य्य कीजिये ॥

वचनान्ते तु रामस्य लक्ष्मणः परवीरहा ।
अब्रवत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं गतचेतसम् ॥५॥
कुरुत्वमस्य सुग्रीव प्रेतकार्यमनन्तरम् ।
तारांगदाभ्यां सहितो वालिनो दहनं प्रति ॥६॥

अर्थ—राम के उक्त वचन की समाप्ति पर शत्रु के वीरों को हनन करने वाला लक्ष्मण अचेत हुए सुग्रीव से नम्रतापूर्वक बोला कि हे सुग्रीव ! आप तारा और अङ्गद सहित बाली का दाह सम्बन्धी प्रेतकार्य्य करें ॥

समाज्ञापय काष्ठानि शुष्काणि च बहूनि च ।
चन्दनानि च दिव्यानि वालिसंस्कार कारणात्॥७॥
समाश्वासयदीनंत्वमंगदं दीनचेतसम् ।
माभूर्बालिशबुद्धिस्त्वं त्वदधीनमिदंपुरम् ॥८॥

अर्थ—सेवकों को आज्ञा दो कि वह अनेक प्रकार का शुष्क काष्ठ तथा दिव्य=उत्तम चन्दन बालि के दाह संस्कार के लिये लावें, और हे सुग्रीव ! तुम दुःखी चित्त अङ्गद को आश्वासन दो तुम्हारी बुद्धि अनार्य्यों कीसी नहीं होनी चाहिये, क्योंकि यह पुर तुम्हारे ही अधीन है ॥

अंगदस्त्वानयेन्माल्यं वस्त्राणि विविधानि च ।
घृतं तैलमथो गन्धान्यच्चात्र समनन्तरम् ॥९॥

त्वं तार शिबिकां शीघ्रमादायागच्छ संभ्रमात् ।
आदाय शिबिकां तारः स तु पर्यापतत्पुनः ॥१०॥

अर्थ—और माला, विविध वस्त्र, घृत, तैल, गन्ध तथा अन्य अपेक्षित पदार्थ अङ्गद लावे, और हे तार! तुम शिबिका=पालकी लेकर शीघ्र ही आओ, तब वह तार शीघ्र ही शिबिका लेकर लौट आया ॥

दिव्यां भद्रासनयुतां शिबिकां स्यन्दनोपमाम् ।
पक्षिकर्मभिराचित्रां द्रुमकर्म विभूषिताम् ॥ ११ ॥
विमानमिव सिद्धानां जालवातायनायुताम् ।
दारुपर्वत कोपेता चारुकर्मपरिष्कृताम् ॥ १२ ॥
वराभरणहारैश्च चित्रमाल्योपशोभिताम् ।
गुहागहनसंच्छन्ना रक्तचन्दनभूषिताम् ॥ १३ ॥
ईदृशीं शिबिकां दृष्ट्वा रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ।
क्षिप्रं विनीयतां बाली प्रेतकार्य्यं विधीयताम्॥१४॥

अर्थ—जो दिव्य भद्रासन से युक्त, युद्ध के रथ तुल्य, पक्षियों के चित्रों से चित्रित तथा वृक्षों के चित्रों से भूषित, सिद्धों के विमान समान जालीदार झरोखों वाली और पर्वतीय लकड़ियों द्वारा उत्तम प्रकार से सुभूषित थी, सुन्दर भूषण, हारों और

विचित्र मालाओं से सजी हुई तथा ऊपर पिंजरे से ढकी हुई और रक्तचन्दन से शोभायमान शिबिका को देखकर राम लक्ष्मण से बोले कि बाली की शव को इसमें रख शीघ्र ही लेजाकर प्रेतकार्य्य करो ॥

ततो बालिनमुद्यम्य सुग्रीवः शिबिकां तदा ।
आरोपयत विक्रोशन्नंगदेन सहैव तु ॥ १५ ॥
आरोप्य शिबिकां चैव बालिनं गतजीवितम् ।
अलङ्कारैश्च विविधैर्माल्यैर्वस्त्रैश्चभूषितम् ॥ १६ ॥

अर्थ—तदनन्तर अंगद सहित रुदन करते हुए सुग्रीव ने बाली की शव को उठाकर शिबिका पर चढ़ाया, और विविध अलङ्कारों, मालाओं तथा वस्त्रों से भूषित बाली के शव को शिबिका पर चढ़ाकर :-

आज्ञापयत्तदा राजा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
और्ध्वदेहिकमार्यस्य क्रियतामनुकूलतः ॥ १७ ॥
विश्राणयन्तो रत्नानि विविधानि बहूनि च ।
अग्रतः प्लवगा यान्तु शिबिका तदनन्तरम् ॥१८॥
राज्ञामृद्धिविशेषा हि दृश्यन्ते भुवि यादृशाः ।
तादृशैरिह कुर्वन्तु वानरा भर्तृसत्क्रियाम् ॥ १९ ॥

अर्थ—वानराधिपति राजा सुग्रीव ने आज्ञा दी कि भाई बाली का सब प्रेतकार्य्य आर्य्यरीत्यानुसार अर्थात् शास्त्र की विधि अनुकूल कियाजाय, और अनेक प्रकार विविध रत्न देते हुए सब वानर आगे २ चलें तथा उनके पीछे शिबिका को लेचलें,

पृथिवी पर राजाओं का जैसा ऐश्वर्य्य होता है उसी ऐश्वर्य्य से सब वानर अपने राजा बाली का सत्कार करें ॥

अङ्गदं परिरभ्याशु तारप्रभृतयस्तथा ।
क्रोशन्तः प्रययुः सर्वे वानरा हतबान्धवाः ॥२०॥
ताराप्रभृतयः सर्वा वानर्यो हतबान्धवाः ।
अनुजग्मुश्च भर्तारं क्रोशन्त्यः करुणस्वनाः ॥२१॥
तासां रुदितशब्देन वानरीणां वनान्तरे ।
वनानि गिरयश्चैव विक्रोशन्तीव सर्वतः ॥ २२ ॥

अर्थ–जिनका बन्धु मृत्यु को प्राप्त हुआ है वह तार आदि सब वानर अङ्गद के साथ रुदन करते हुए चले, और अपने मृत बन्धु के साथ वह तारा आदि सब स्त्रियें दीन ध्वनि से पुकार करती हुई अपने भर्ता के पीछे २ चलीं, उन सब के रुदन की प्रतिध्वनि से वन के मध्य मानो सब ओर वन और पर्वत रोरहे थे ॥

पुलिने गिरिनद्यास्तु विविक्ते जलसंवृते ।
चितां चक्रुः सुबहवो वानरा वनचारिणः ॥२३॥
अपरोप्य ततः स्कन्धाच्छिबिकां वानरोत्तमाः ।
तस्थुरेकान्तमाश्रित्य सर्वे शोकपरायणाः ॥ २४ ॥

अर्थ–जल से चारो ओर घिरे हुए अर्थात् द्वीपाकार पर्वतीय नदी के एक ओर एकान्त में सब वनचारी वानरों ने चिता बनाई, और वह सब वानरश्रेष्ठ अपने कन्धों से शिबिका उतार एक ओर होकर शोक परायण हुए २ बैठगये ॥

ततस्तारा पतिंदृष्ट्वा शिबिकातलशायिनम् ।
आरोप्याङ्के शिरस्तस्य विललाप सुदुःखिता ॥२५॥
हा वानर महाराज हा नाथ मम वत्सल ।
हा महार्ह महाबाहो हा मम प्रिय पश्य माम्॥२६॥

अर्थ—तदनन्तर तारा ने शिबिका में लेटे हुए अपने पति को देखकर उसके सिर को चूमा, फिर सिर को गोद में रखकर अति दुखित हुई विलाप करने लगी कि हा !! वानरों के महाराज हा !! मेरे प्यारे नाथ, हा !! बड़े पूजनीय महाबाहो, हा !! मेरे प्यारे मुझ-देख ॥

प्रहृष्टमिह ते वक्त्रं गतासोरपि मानद ।
अस्तार्कसमवर्णं च दृश्यते जीवितो यथा ॥२७॥
एष त्वां रामरूपेण कालः कर्षति वानर ।
येनस्म विधवाः सर्वाः कृता एकेषुणां रणे ॥२८॥
इमास्तास्तव राजेन्द्र वानर्योऽप्लवगास्तव ।
पादैर्विकृष्टमध्वानमागताः किं न बुध्यसे ॥२९॥

अर्थ—हे मान के देने वाले ! प्राणों के निकल जाने पर भी तेरा मुख हर्षित के समान अस्त होते हुए सूर्य्य के सदृश दीख पड़ता है जैसेकि जीवित का था, हे वानर ! जिस राम ने रण में एक ही बाण से हम सब को विधवा करदिया है वही राम रूप से काल है जो सब को आकर्षण कर रहा है, हे राजेन्द्र ! यह सब वानर तथा वानरियें जो तुम्हारी प्रजा हैं और जो बड़े कठिन मार्ग में पांवों चलकर आये हैं आप इनको क्यों नहीं देखते॥

तवेष्टा ननु चैवेमा भार्याश्चन्द्रनिभाननाः ।
एते हि सचिवा राजंस्तारप्रभृतयस्तव ॥३०॥
पुरवासिजनश्चायं परिवार्य विषीदति ।
विसर्जयैनान्सचिवान्यथापुरमरिन्दम ॥३१॥

अर्थ—हे राजन् ! वही हम तुम्हारी चन्द्रमुखी पत्नियें तथा वही यह तार आदि तुम्हारे मन्त्री हैं,और यह सब पुरवासी लोग तुम्हारे चारो ओर खड़े हुए दुःख को प्राप्त होरहे हैं,सो हे शत्रुओं को दमन करने वाले राजन् ! तुम इनको पूर्ववत् विसर्जन करो ॥

एवं विलपतीं तारां पतिशोकपरीवृताम् ।
उत्थापयन्ति स्म तदा वानर्यः शोककर्शिताः॥३२॥
सुग्रीवेण ततः सार्धं सोऽङ्गदः पितरं रुदन् ।
चितामारोपयामास शोकनाभिप्लुतेन्द्रियः ॥३३॥

अर्थ—इस प्रकार पतिशोक से व्याकुल विलाप करती हुई तारा को शोक से पीड़ित स्त्रियों ने उठाया, तत्पश्चात् सुग्रीव के साथ रुदन करते हुए शोक से व्याकुल इन्द्रियों वाले अङ्गद ने पिता को चिता पर आरोप किया ॥

ततोऽग्निं विधिवद्दत्त्वा सोऽपसव्यं चकार ह ।
पितरं दीर्घमध्वानं प्रस्थितं व्याकुलेन्द्रियः ॥३४॥
संस्कृत्य बालिनं तं तु विधिवत्प्लवगर्षभाः ।
आजग्मुरुदकं कर्तुं नदीं शुभजलां शिवाम्॥३५॥

अर्थ—तदनन्तर उस व्याकुल इन्द्रियों वाले अङ्गद ने बड़े लम्बे मार्ग पर जाते हुए पिता का यथाविधि अग्न्याधान करके

प्रदक्षिणा की, इस प्रकार वह सब उस बाली का विधिवत् संस्कार करके सुन्दर शुभ जल, वाली नदी पर स्नानादि कर्म करने के लिये आये ॥

सुग्रीवेणेव दीनेन दीनो भूत्वा महाबलः ।
समानशोकः काकुत्स्थः प्रेतकार्याण्यकारयत् ॥३६॥

अर्थ--और समान शोक वाले महाबली राम भी सुग्रीव की भांति दुःखी हुए २ सम्पूर्ण प्रेतकार्यों में साथ रहे ॥

बालि का वध

ले सुग्रीव संग रघुनाथा । चले चाप सायक गहि हाथा ॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा । गर्जसि जाय निकट बल पावा ॥
सुनत बालि क्रोधातुर धावा । गहि कर चरण नारि समुझावा ॥
सुन पति जिनहिं मिला सुग्रीवा । ते दोउ बन्धु अतुल बल सींवा ॥
कोशलेश सुत लक्ष्मण रामा । कालहु जीति सकें संग्रामा ॥
सोइ रघुवीर हृदय में आनहु । छाड़हु मोह कहा मम मानहु ॥
कहा बालि सुनु भीरु प्रिय, समदर्शी रघुनाथ ।
जो कदापि मोहि मारि हैं, तो पुनि होउं सनाथ ॥
अस कहि चला महा अभिमानी । तृण समान सुग्रीवहि जानी ॥
बालि देख सुग्रीवहि ठाढा । हृदय क्रोध पुनि बहु विधि बाढा ॥
भिरे युगल बाली अति तर्जा । मुष्टिक मारि महाधुनि गर्जा ॥
तब सुग्रीव विकल हुइ भागा । मुष्टि प्रहार वज्रसम लागा ॥
मैं जो कहा रघुवीर कृपाला । बन्धु न होय मोर यह काला ॥

राम के शर से बालि का वध

एक रूप तुम भ्राता दोऊ । तेहि भ्रम से मारा नहिं सोऊ ॥

मेली कण्ठ सुमन की माला। पुनि पठवा बल देय बिशाला॥
पुनि नानाविधि भई लराई। विटप ओट देखहिं रघुराई॥
बहु छल बल सुग्रीव कर, हृदय हारि भय मान॥
मारा बालिहि राम तब, हिये मांझ शर तान॥
पुनि पुनि चितै चरण चित दीन्हा। सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख वचन कठोरा। बोला चिते राम की ओरा॥
धर्महेतु अवतरेउ गुसांई। मारेउ मोहि व्याध की नांई॥
मैं वैरी सुग्रीव पियारा। कारण कवन नाथ मोहि मारा॥

राम का उत्तर

अनुज वधू भगिनी सुत नारी। सुन शठ ये कन्या सम चारी॥
इन्हें कुदृष्टि विलोके जोई। ताहि वधे कछु पाप न होई॥
राम बालि निजधाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा॥
नानाविधि विलाप कर तारा। छूटे केश न देह सम्भारा॥

तारा का विलाप

पुनि पुनि तासु शीश उर धरई। वदन विलोकि हृदय में हरई॥
मैं पति तुमहिं बहुत समुझावा। काल विवश पिय मनाहिं न आवा॥
अङ्गद कहं कछु कहन न पाये। बीचहि सुरपुर प्राण पठाये॥
तारा विकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हर लीन्हीं माया॥
क्षिति जल पावक गगन समीरा। पंचचररित यह अधम शरीरा॥
प्रकट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य तुम केहि लग रोवा॥
उपजा ज्ञान चरण तब लागी। लीन्हेसि परमभक्ति वर मांगी॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म विधिवत सब कीन्हा॥

इति पंचदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

सं०–अब सुग्रीव के राज्याभिषेक का वर्णन करते हैं :—

अभिगम्य महाबाहुं राममक्लिष्टकारिणम् ।
स्थिताः प्राञ्जलयः सर्वे पितामहमिवर्षयः ॥१॥
ततः काञ्चनशैलाभस्तरुणार्कनिभाननः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं हनुमान्मारुतात्मजः ॥२॥

अर्थ–तदनन्तर शुभ कर्मों वाले महाबाहु राम के समीप वह सब हाथ जोड़कर इस प्रकार खड़े होगये जैसे पितामह=ब्रह्मा के समीप ऋषि खड़े होते हैं, उनमें से सुवर्ण पर्वत के सदृश तथा प्रातः काल के सूर्य्य समान मुखवाला पवनसुत हनुमान हाथ जोड़कर बोला किः—

भवत्प्रसादात्काकुत्स्थ पितृपैतामहं महत् ।
वानराणां सुदंष्ट्राणां सम्पन्नबलशालिनाम् ॥३॥
महात्मनां सुदुष्प्रापं प्राप्तं राज्यमिदं प्रभो ॥४॥
भवता समनुज्ञातः प्रविश्य नगरं शुभम् ।
संविधास्यति कार्याणि सर्वाणि ससुहृद्गणः ॥५॥
स्नातोऽयं विविधैर्गन्धैरौषधैश्च यथाविधि ।
अर्चयिष्यति माल्यैश्च रत्नैश्च त्वां विशेषतः ॥६॥
इमां गिरिगुहां रम्यामभिगन्तुं त्वमर्हसि ।
कुरुष्व स्वामिसम्बन्धं वानरान्संप्रहर्षयः ॥ ७ ॥

अर्थ—हे राम ! बड़े बलशाली महात्मा वानरों का यह कठिनता से प्राप्त होने योग्य बड़ा राज्य जो पितृपितामह से चला आया है वह आपकी कृपा से सुग्रीव ने प्राप्त करलिया है, सो अब यह आपसे आज्ञा पाया हुआ सुग्रीव इस शुभ नगर में प्रवेश कर सुहृद्गणों सहित सब कार्य्यों को विधिवत करेगा, और यह राजा होकर विविध गन्धों, औषधियों, रत्नों और मालाओं से आपका यथाविधि विशेषतः पूजन करेगा, सो आप कृपाकरके इस रमणीय पर्वत गुहा में प्रवेश करने योग्य हैं अर्थात सुग्रीव का राज्याभिषेक करके आप स्वामी बन इन सब वानरों को प्रसन्न करें ॥

एवमुक्तो हनुमता राघवः परवीरहा ।
प्रत्युवाच हनूमन्तं बुद्धिमान्वाक्यकोविदः ॥८॥
चतुर्दश समाः सौम्ये ग्रामं वा यदि वा पुरम् ।
न प्रवेक्ष्यामि हनुमन्पितुर्निर्देशपारगः ॥९॥
सुसमृद्धां गुहां दिव्यां सुग्रीवो वानरर्षभः ।
प्रविष्टो विधिवद्वीरः क्षिप्रं राज्येऽभिषिच्यताम्॥१०॥

अर्थ—हनुमान के उक्त प्रकार कथन करने पर शत्रु वीरों के वध करने वाले तथा वाक्य के जानने वाले बुद्धिमान् राम हनुमान से बोले कि हे सौम्य ! जब तक पिता के निर्देश से पार नहीं पहुंचता अर्थात जबतक उनकी आज्ञा की अवधि पूर्ण न होगी तब तक ग्राम वा पुर में प्रवेश न कर १४वर्ष वन में ही वसुंगा, आप लोग अत्यन्त समृद्धि वाली दिव्य गुहा में श्रेष्ठ वीर सुग्रीव को प्रविष्ट कराके शीघ्र ही विधिवत राजा बनावें ॥

एवमुक्त्वा हनूमन्तं रामः सुग्रीवमब्रवीत् ।
इममप्यंगदं वीरं यौवराज्येऽभिषेचय ॥ ११ ॥
ज्येष्ठस्य हि सुतो ज्येष्ठः सदृशो विक्रमेण च ।
अंगदोऽयमदीनात्मा यौवराज्यस्य भाजनम् ॥१२॥

अर्थ—हनुमान को उक्त प्रकार कहकर राम सुग्रीव से बोले कि इस वीर अङ्गद को भी अवश्य यौवराज्य में अभिषिक्त करें, क्योंकि तुम्हारे बड़े भाई का बड़ा पुत्र पराक्रम में पिता के सदृश यह अदीन स्वभाव अङ्गद यौवराज्य का पात्र है ॥

पूर्वोऽयं वार्षिको मासः श्रावणः सलिलागमः ।
प्रवृत्ताः सौम्य चत्वारो मासा वार्षिकसंज्ञिताः॥१३॥
नायमुद्योगसमयः प्रविश त्वं पुरीं शुभाम् ।
अस्मिन्वत्स्याम्यहं सौम्य पर्वते सहलक्ष्मणः ॥१४॥

अर्थ—हे सौम्य ! अब जो वार्षिक चतुर्मास प्रवृत्त हुआ है उनमें यह पहला जलों का लाने वाला श्रावणमास है, हे सुग्रीव ! यह उद्योग का समय नहीं, सो तुम अब इस शुभ पुरी में प्रवेश करो और मैं लक्ष्मण सहित इसी पर्वत पर वास करूंगा, क्योंकिः—

इयं गिरिगुहा रम्या विशाला युक्तमारुता ।
प्रभूतसलिला सौम्य प्रभूतकमलोत्पला ॥ १५ ॥
कार्तिके समनुप्राप्ते त्वं रावण वधे यत ।
एष नः समयः सौम्य प्रविश त्वं स्वमालयम् ॥१६॥
इति रामाभ्यनुज्ञातः सुग्रीवो वानरर्षभः ।
प्रविवेश पुरीं रम्यां किष्किन्धांबालिपालिताम्॥१७॥

अर्थ—यह पर्वत गुहा सुहावनी, विशाल, युक्त पवन वाली, प्रभूत जल वाली और फूले हुए बहुत कमलों वाली है, हे सौम्य! कार्तिक के आने पर आपने रावण के वध का यत्न करना, यह हमारा आपका सङ्केत है, अब तुम अपने घर में प्रवेश करो, इस प्रकार राम की आज्ञानुसार वानरश्रेष्ठ सुग्रीव बालि से पालित सुहावनी किष्किन्धापुरी में प्रविष्ट हुआ ॥

प्रविष्टं भीमविक्रान्तं सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
अभ्यषिञ्चन्त सुहृदः सहस्राक्षमिवामराः ॥ १८ ॥
तस्य पाण्डुरमाजह्रुश्छत्रं हेमपरिष्कृतम् ।
शुक्ले च बालव्यजने हेमदण्डे यशस्करे ॥ १९ ॥
तथा रत्नानि सर्वाणि सर्वबीजौषधानि च ।
स क्षीराणां च वृक्षाणां प्ररोहान्कुसुमानि च ॥२०॥
शुक्लानि चैव वस्त्राणि श्वेतं चैवानुलेपनम् ।
सुगन्धीनि च माल्यानि स्थलजान्यम्बुजानि च ॥२१॥

अर्थ—प्रविष्ट होने पर बड़े बलवाले सुग्रीव को सब सुहृद् जनों ने राजतिलक दिया, जैसे देवताओं ने इन्द्र को दिया था, राजतिलक के लिये सुवर्ण से भूषित श्वेत क्षत्र और सुवर्ण के दण्ड वाली यशस्कर दो श्वेत चौरीं, सम्पूर्ण रत्न, सब बीज, सब औषधियें, दूध वाले वृक्षों के अंकुर तथा फूल, श्वेत वस्त्र, श्वेत अनुलेपन, सुगन्धित मालायें और स्थलकमल लाये गये ॥

चन्दनानि च दिव्यानि गन्धांश्च विविधान्बहून् ।
अक्षतं जातरूपं च प्रियंगमधुसर्पिषी ॥ २२ ॥

दधि चर्म च वैयाघ्रं पराध्यौं चाप्युपानहौ ।
समालम्भनमादाय गोरोचनं मनः शिलाम् ॥२३॥
आजग्मुस्तत्र मुदिता वराः कन्याश्च षोडश॥२४॥
ततस्ते वानरश्रेष्ठमभिषेक्तुं यथाविधि ।
रत्नैर्वस्त्रैश्च भक्ष्यैश्च तोषयित्वा द्विजर्षभान् ॥२५॥

अर्थ–और दिव्यचन्दन, विविध प्रकार के गन्ध, अक्षत, सुवर्ण, कङ्गनी, शहद, घृत, दधि, सिंह का मृगान, दो उत्तम जूते, अनुलेपनद्रव्य, गोरोचन और मैनशिल लेकर प्रसन्न हुई सोलह कन्यायें वहां आईं, तदनन्तर उस वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को यथाविधि अभिषेक देने से प्रथम रत्न, वस्त्र तथा भक्ष्य पदार्थों से ब्राह्मणों को प्रसन्न किया ॥

ततः कुशपरिस्तीर्णं समिद्धं जातवेदसम् ।
मन्त्रपूतेन हविषा हुत्वा मन्त्रविदो जनाः ॥२६॥
प्राङ्मुखं विधिवन्मन्त्रैः स्थापयित्वा वरासने ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना महर्षिविहितेन च ॥ २७ ॥

अर्थ–फिर जिसके चारो ओर कुशा बिछी हैं उस प्रदीप्त अग्नि में वेदवेत्ता ब्राह्मणों ने मन्त्रों से पवित्र हवि द्वारा हवन करके मन्त्रों के उच्चारणपूर्वक यथाविधि श्रेष्ठ आसन पर पूर्वाभिमुख बिठलाके वेदविहित तथा महर्षिविहित विधि द्वारा :—

गजो गवाक्षो गवयः शरभो गन्धमादनः ।
मैन्दश्च द्विविदश्चैव हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ॥२८॥

अभ्यषिंचंत सुग्रीवं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥२९॥

अर्थ—गज, गवाक्ष, गवय, शरभ, गन्धमादन, मैन्द, द्विविद, हनुमान् और जाम्बवान्, इन सब ने मिलकर निर्मल सुगन्धित जल से सुग्रीव का अभिषेक किया, जैसे देवताओं ने इन्द्र का अभिषेक किया था ॥

रामस्य तु वचः कुर्वन् सुग्रीवो वानरेश्वरः ।
अंगदं संपरिष्वज्य यौवराज्येऽभ्यषेचयत् ॥३०॥
अंगदे चाभिषिक्ते तु सानुक्रोशाः प्लवंगमाः ।
साधु साध्विति सुग्रीवं महात्मानो ह्यपूजयन्॥३१॥

अर्थ—फिर राम के वचनानुसार सुग्रीव ने अङ्गद को कण्ठ लगाकर यौवराज्य में अभिषिक्त किया, अङ्गद के अभिषिक्त होने पर महात्मा वानरसमूह ने साधु साधु कह उच्चध्वनि कर सुग्रीव का पूजन किया ॥

रामं चैव महात्मानं लक्ष्मणं च पुनः पुनः ।
प्रीताश्च तुष्टुवुः सर्वे तादृशे तत्र वर्तिनि ॥३२॥
हृष्टपुष्टजनाकीर्णा पताकाध्वज शोभिताः ।
बभूव नगरी रम्या किष्किन्धा गिरिगह्वरे ॥३३॥

अर्थ—वहां पर उक्त दृश्य देखकर प्रसन्न हुए सभों ने महात्मा राम और लक्ष्मण की बार २ स्तुति की, और हृष्ट पुष्ट जनों से भरी हुई, ध्वज पताकाओं से सुशोभित किष्किन्धा नगरी पर्वत की कन्दरा में बड़ी सुहावनी दृष्टिगत होने लगी ॥

निवेद्य रामाय तदा महात्मने महाभिषेकं
कपि वाहिनीपतिः। रुमां च भार्यामुपलभ्य
वीर्यवानवापराज्यं त्रिदशाधिपो यथा ॥३५॥

अर्थ—वानरयूथपति सुग्रीव महात्मा राम को निवेदन कर महाभिषेक को प्राप्त हो अपनी स्त्री रुमा को पाकर इन्द्र के समान राज्य को प्राप्त हुआ॥

उमा राम सम हितु जगमाहीं। गुरु पितु मातु बन्धु कोउ नाहीं॥
सुर नर मुनि सब की यह रीती। स्वारथ लागि करें सब प्रीति॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बुलाई। बहु प्रकार नृप नीति सिखाई॥
कहं प्रभु सुन सुग्रीव हरीशा। पुर न जाउं दश चारि बरीशा॥
गत ग्रीषम वर्षा ऋतु आई। रहिं हों निकट शैल पर छाई॥
अङ्गद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय राखि मम काजू॥
तब सुग्रीव भवन फिर आये। रामप्रवर्षण गिरि पर छाये॥
प्रथमहि देवन गिरि गुहा, राखी रुचिर बनाय।
राम कृपानिधि कछुक दिन, वास करेंगे आय॥
सुन्दर वन कुसुमित तरु शोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा॥
कंद मूल फल पत्र सुहाये। भये बहुत जबते प्रभु आये॥
देखि मनोहर शैल अनूपा। रहे तहं अनुज सहित सुर भूपा॥
मंगलरूप भयो वन तब ते। कीन्ह निवास रमापति जब ते॥
कहत अनुज सन कथा अनेका। भक्ति विरति नृप नीति विवेका॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

सं०—अब वर्षा ऋतु का वर्णन करते हैं:—

स तदा बालिनं हत्वा सुग्रीवमभिषिच्य च ।
वसन्माल्यवतः पृष्ठे रामो लक्ष्मणमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ—बालि को मार सुग्रीव को राज्य देकर माल्यवान् पर्वत पर वास करते हुए राम लक्ष्मण से बोले कि :—

अयं स कालः संप्राप्तः समयोऽद्य जलागमः ।
संपश्य त्वं नभो मेघैः संवृतं गिरिसन्निभैः ॥ २ ॥
नवमासधृतं गर्भं भास्करस्य गभस्तिभिः ।
पीत्वा रसं समुद्राणां द्यौः प्रसूते रसायनम् ॥ ३ ॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! देख अब जल के आने का समय आया अर्थात् वर्षा ऋतु प्राप्त हुई है, देख पर्वत सदृश मेघों से आकाश कैसा ढकगया है, द्यौ लोक समुद्रों के रस को सूर्य्य की किरणों द्वारा धारण कर नौ महीने स्थित किये गर्भ को जलरूप में जन्म देरहा है ॥

शक्यमम्बरमारुह्य मेघसोपानपंक्तिभिः ।
कुटजार्जुनमालाभिरलंकर्तुं दिवाकरः ॥४॥
मन्दमारुतनिःश्वासं सन्ध्याचन्दनरञ्जितम् ।
आपाण्डुजलदं भाति कामातुरमिवाम्बरम् ॥५॥
एषा धर्मपरिक्लिष्टा नववारिपरिप्लुता ।
सीतेव शोकसंतप्ता मही बाष्पं विमुञ्चति ॥६॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! देख इस समय बादलों की सीढ़ी २ द्वारा आकाश पर चढ़कर कुटज तथा अर्जुन के फूलों की माला से सूर्य्य को अलंकृत करसक्ते हैं, मन्द २ वायुरूप श्वास वाला

सन्ध्यारूप चन्दन से रंगा हुआ तथा धूसर बादलों वाला आकाश कामातुर की भांति प्रतीत होता है, और आतप से तपकर नये जल से भीगी हुई यह भूमि शोक से तप्त हुई सीता की भांति बाष्प=गरमी छोड़ रही है ॥

एष फुल्लार्जुनः शैलः केतकैरभिवासितः ।
सुग्रीव इव शान्तारिर्धाराभिरभिषिच्यते ॥७॥
मेघकृष्णाजिनधरा धारा यज्ञोपवीतिनः ।
मारुतापूरितगुहाः प्राधीता इव पर्वताः ॥८॥

अर्थ—यह फूले हुए अर्जुन तथा केतकी के फूलों से सुगन्धित पर्वत शान्त हुए शत्रु वाले सुग्रीव की भांति कैसा अभिषिक्त होरहा है, देख यह मेघरूप श्याम मृगान पहनकर धारारूप यज्ञोपवीत धारण किये हुए वायु से भरी हुई गुफाओं वाले पर्वत शब्द करते हुए मानो ब्रह्मचारियों की भांति अध्ययन कर रहे हैं ॥

रजः प्रशान्तं सहिमोऽद्य वायुर्निदाघतोष
प्रसराः प्रशान्ताः । स्थिता हि यात्रा वसुधा-
धिपाना प्रवासिनो यान्ति नराः स्वदेशान्॥९॥

अर्थ—धूलि मिटगई, वायु शीतल बहता है, गरमी के दोष शान्त होगये, पृथिवीपतियों की यात्रा रुकगई और विदेशी लोग अपने देशों को जारहे हैं ॥

संप्रस्थिता मानसवासलुब्धा प्रियान्विताः
संप्रति चक्रवाकाः । अभीक्ष्ण वर्षोदक
विक्षतेषु यानानि मार्गेषु न संपतन्ति॥१०॥

अर्थ—चकवे अपनी प्यारियों सहित मानस सरोवर में वास के लिये प्रस्थित हुए हैं और लगातार वर्षा होने से जल द्वारा मार्गों के टूट जाने के कारण रथादि यानों का चलना बन्द होगया है॥

क्वचित्प्रकाशं क्वचिदप्रकाशं नभः प्रकीर्णा
बुधरंविभाति । क्वचित् क्वचित्पर्वत सन्नि-
रुद्धं रूपं यथा शान्त महार्णवस्य ॥ ११ ॥

अर्थ—कहीं मेघों के होने और कहीं न होने से कहीं आकाश प्रकाशित और कहीं अप्रकाशित दृष्टिगत होता है, जैसे शान्त समुद्र का रूप पर्वतों से संरुद्ध होने के कारण कहीं प्रकाशित और कहीं अप्रकाशित रहता है ॥

व्यामिश्रितं सर्जकदम्बपुष्पैर्नवं जलं
पर्वतधातुताम्रम् । मयूरकेकाभिरनु-
प्रयातं शैलापगाः शीघ्रतरं वहन्ति ॥१२॥

अर्थ—सर्ज=शाख तथा कदम्ब के फूलों से मिला हुआ पर्वत की धातु तुल्य ताम्रवर्ण वाले जल को पर्वत की नदियें अति शीघ्र बहा रही हैं, और जिन पर मोर अपनी मीठी ध्वनि से के के कर रहे हैं ॥

रसाकुलं षट्पदसन्निकाशं प्रभुज्यते जम्बु
फलं प्रकामम् । अनेकवर्णं पवनावधूतं
भूमौ पतत्याम्रफलं विपक्वम् ॥ १३ ॥

अर्थ—रस से भरे हुए भ्रमरसदृश जम्बूफल=जामुनों को लोग भलेप्रकार खारहे हैं, और अनेक रङ्ग के पके हुए आम्रफल=आम पवन से कम्पाये हुए भूमि पर गिर रहे हैं ॥

विद्युत्पताकाः सबलाकमालाः शैलेन्द्र कूटाकृति सन्निकाशाः। गर्जन्ति मेघाः समुदीर्ण नादा मत्ता गजेन्द्रा इव संयुगस्थाः ॥ १४ ॥

अर्थ—और बिजुली की पताका बनाये हुए बगुलों की पंक्ति सहित पर्वत के शिखर समान आकृति वाले मेघ बड़े उच्च स्वर से गर्ज रहे हैं, जैसे समर में स्थित मदान्ध हाथी गर्जते हैं ॥

समुद्वहन्तः सलिलातिभारं बलाकिनो वारिधरा नदन्तः। महत्सुश्रृंगेषु महीधराणां विश्रम्य विश्रम्य पुनः प्रयान्ति॥१५॥

अर्थ—उन मेघों के आगे २ बगुलों की पंक्तियें उड़ रही हैं, और वह मेघ गर्जते हुए जल के अतिभार को उठाये हुए पर्वतों के बड़े २ शिखरों पर विश्राम कर २ फिर चल पड़ते हैं ॥

बालेन्द्रगोपान्तरचित्रितेन विभाति भूमिर्नवशाद्वलेन। गात्रानुपृक्तेन शुकप्रभेण नारीव लाक्षोक्षिता कम्बलेन ॥ १६ ॥

अर्थ—छोटी २ बीचबहूटियों से बीच २ में युक्त नई हरियाली से भूमि उस स्त्री की भांति शोभायमान होती है जिसने तोते के रङ्ग सदृश, बीच २ में लाल विन्दुओं वाला अङ्गों के साथ लगा हुआ वस्त्र पहना हुआ हो ॥

जाता वनान्ताः शिखिसुप्रनृत्ता जाताः कदम्बाः सकदम्ब शाखाः। जाता वृषा गोषु समान कामा जाता मही सस्यवनाभिरामा ॥ १७ ॥

अर्थ—वनों में जगह २ मोर नाच रहे हैं,कदम्बों की शाखायें फूलों से लद रही हैं, गौओं और सांड़ों में समानरूप से कामना बढ़ रही है और पृथिवी सब हरे बनों से सुहावनी होगई है ॥

वहन्ति वर्षन्ति नदन्ति भान्ति ध्यायन्ति नृत्यन्ति समाश्वसन्ति। नद्यो घना मत्तगजा वनान्ताः प्रियाविहीनाः शिखिनः प्लवङ्गमाः ॥ १८ ॥

अर्थ—इस ऋतु में नदियां बह रही हैं,मेघ बरस रहे हैं, मत्त हाथी चिंघाड़ते हैं, वन सुशोभित होरहे हैं,विरही पुरुष चिन्तातुर होते, मयूर नाचते और वानर आश्वासन प्राप्त किये हुए हैं ॥

धारानिपातैरभिहन्यमानाः कदम्बशाखासु विलम्बमानाः। क्षणार्जितं पुष्परसाव गाढं शनैर्मदं षट्चरणास्त्यजन्ति ॥ १९ ॥

अर्थ—भौंरे कदम की शाखाओं पर लटके हुए जल की धाराओं के गिरने से ताड़न किये गये आनन्द को प्राप्त पुष्परसों से बढ़े हुए मद को धीरे २ त्याग रहे हैं ॥

तडित्पताकाभिरलंकृतानामुदीर्णगम्भीर महारवाणाम्। विभान्ति रूपाणि वलाहकानां रणोत्सुकानामिव वानराणाम्॥२०॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! देख बिजुली के झण्डे से सुशोभित गम्भीर नाद करते हुए मेघों के रूप रणोत्साही वानरों की भांति कैसे शोभायमान प्रतीत होते हैं ॥

मार्गानुगः शैलवनानुसारी संप्रस्थितो मेघ खं

निशम्य । युद्धाभिकामः प्रतिनादशङ्की
मत्तो गजेन्द्रः प्रतिसन्निवृत्तः ॥ २१ ॥

अर्थ—यह देख इस पर्वतवन में विचरने वाला, मार्ग में चलता, युद्धाभिलाषी मत्त गजेन्द्र पीछे से बादल की गर्ज सुन अर्थात् किसी अन्य गजेन्द्र की प्रतिगर्ज समझकर पीछे लौट पड़ा है ॥

क्वचित्प्रगीता इव षट्पदौघैः क्वचित्प्रनृत्ता
इव नीलकण्ठैः । क्वचित्प्रमत्ता इव वारणे-
न्द्रैर्विभान्त्यनेकाश्रयिणो वनान्ताः ॥२२॥

अर्थ—वनप्रदेशों में कहीं भौंरों के गीत, कहीं नीलकण्ठों के नाच और कहीं गजेन्द्रों की मस्तियें हैं, इस प्रकार यह वनप्रदेश अनेक रङ्गों में शोभा को प्राप्त होरहे हैं ॥

मुक्तासमाभं सलिलं पतद्वैसुनिर्मलं
पत्रपुटेषु लग्नम् । हृष्टा विवर्णच्छदना
विहंगा सुरेन्द्रदत्तं तृषिताः पिबन्ति॥२३॥

अर्थ—हे लक्ष्मण देख, मोतियों के तुल्य निर्मल जल जो गिरकर पत्तों के दोनों पर टिका हुआ है उस इन्द्र के दिये हुए जल को भीगे हुए पंखों वाले प्यासे पक्षी प्रसन्न होकर पीरहे हैं ॥

षट्पादतन्त्रीमधुराभिधानं प्लवंगमोदी-
रितकण्ठतालम् । आविष्कृतं मेघमृ-
दंग नादैर्वनेषु संगीतमिव प्रवृत्तम्॥२४॥

अर्थ—भ्रमरों की वीणारूप ध्वनि,बानरों के तालयुक्त गान

तथा मृदङ्ग समान मेघों के शब्द से मानो वनों में सङ्गीत शास्त्र का प्रचार होरहा है ॥

स्वनैर्घनानां प्लवगाः प्रबुद्धा विहाय निद्रां चिरसंनिरुद्धाम् । अनेकरूपाकृतिवर्ण नादानवाम्बुधाराभिहता नदन्ति ॥ २५ ॥

अर्थ—मेघों की ध्वनियों से अपनी निद्रा त्यागकर जागे हुए मेंडक जो अनेक प्रकार की आकृति, रङ्ग और ध्वनियों वाले हैं वह नवीन जल की धाराओं से ताड़ित हुए कैसी उच्चध्वनि से बोल रहे हैं ॥

नीलेषु नीला नववारिपूर्णा मेघेषु मेघाः प्रतिभान्ति सक्ताः। दवाग्निदग्धेषु दवाग्नि-दग्धाः शैलेषु शैला इव बद्धमूलाः॥२६॥

अर्थ—नीले बादलों के ऊपर चढ़े हुए नवीन जलों से भरे दूसरे नील मेघ ऐसे शोभा को प्राप्त होरहे हैं जैसे वन की अग्नि से दग्ध हुए पर्वतों के ऊपर दूसरे जड़ पकड़े हुए पर्वत सुशोभित होते हैं ॥

नवांबुधारा हतकेसराणि ध्रुवं परित्यज्य सरोरुहाणि । कदम्बपुष्पाणि स केस-राणि नवानि हृष्टा भ्रमणः पिवन्ति॥२७॥

अर्थ—नवीन जलधारा से नष्ट हुए कमलपुष्पों के रस को छोड़कर रस वाले कदम्ब के नवीन पुष्पों से हर्षित हुए भ्रमर रस चूसते हैं ॥

मेघाः समुद्धूतसमुद्रनादा महाजलौघै-
गगनावलम्बाः। नदीस्तटाकानि सरांसि
वापीर्महीं च कृत्स्नामपवाहयन्ति॥२८॥

अर्थ—हे लक्ष्मण! समुद्र की गर्ज को अपनी गर्जना से दबाते हुए मेघ आकाश में घूम २ कर महाजल समूहों से नदी, तालाब, सरोवर, बावड़ी और सम्पूर्ण पृथिवी पर जलों को एकरस बहा रहे हैं॥

वर्षप्रवेगा विपुलाः पतन्ति प्रवान्ति वाताः
समुदीर्णवेगाः। प्रनष्टकूलाः प्रवहन्ति शीघ्रं
नद्यो जलं विप्रतिपन्नमार्गाः॥ २९ ॥

अर्थ—वृष्टि बड़े वेग से बलपूर्वक होरही है, वायु बड़े वेग से बहरही है और नदियें किनारों को तोड़ मार्ग रोक कर बड़े वेग से जल बहा रही हैं॥

नरैर्नरेन्द्रा इव पर्वतेन्द्राः सुरेन्द्रनीतैः
पवनोपनीतैः। घनाम्बुकुम्भैरभिषिच्य
माना रूपं श्रियं स्वामिव दर्शयन्ति॥३०॥

अर्थ—मनुष्यों के लाये हुए जल से अभिषिक्त राजों की भांति अर्थात् जैसे मनुष्यों के लाये हुए जल से राजा स्नानकर निर्मल होता है इसीप्रकार मेघों के जलकुम्भों से अभिषिक्त हुए पर्वत अपने निर्मल रूप=अनेक धातुरूप अपनी श्री को दिखला रहे हैं॥

घनोपगूढं गगनं न तारा न भास्करो
दर्शनमभ्युपैति। नवै जलौघैर्धरणीवितृप्ता
तमो विलिप्ता न दिशः प्रकाशाः ॥३१॥

अर्थ—मेघों से आकाश आच्छादित होने के कारण न तारे और न सूर्य्य दृष्टिगत होता है, नवीन जलसमूह से पृथिवी तृप्त होगई है और अन्धकार से आच्छादित होने के कारण दिशायें विदित नहीं होती हैं ॥

महान्ति कूटानि महीधराणां धाराविधौ
तान्यधिकं विभान्ति। महाप्रमाणैर्विपुलैः
प्रपातैर्मुक्ताकलापैरिव लम्बमानैः॥३२॥

अर्थ—जल की धाराओं से धोये हुए पर्वतों के ऊंचे शिखरों पर से बड़े मोटे तथा लम्बे झरने बहते हुए ऐसे प्रतीत होते हैं कि मानो मोतियों की लड़ियां टूटकर गिर रही हैं ॥

विलीयमानैर्विहगैर्निमीलद्भिश्चपङ्कजैः।
विकसन्त्या च मालत्या गतोऽस्तं ज्ञायते रविः॥३३॥

अर्थ—पक्षियों के छिपने, कमलों के मिचने और मालती के खिलने से सूर्य्य का अस्त होना प्रतीत होता है ॥

वृत्ता यात्रा नरेन्द्राणां सेना पथ्येव वर्तते।
वैराणि चैव मार्गाश्च सलिलेन समीकृताः ॥३४॥
मासि पौष्ठपदे ब्रह्म ब्राह्मणानां विवक्षताम्।
अयमध्यायसमयः सामगानामुपस्थितः ॥३५॥

अर्थ—राजाओं की चढ़ाई बन्द होगई, सेना मार्ग में ही स्थित होगई, पानी ने वैर और मार्ग दोनों समान कर रोक दिये हैं, अब भाद्रपद मास में सामवेद पढ़ने वाले ब्राह्मणों का यह अध्ययन समय उपस्थित हुआ है ॥

निवृत्तकर्मा यतनो नूनं संचितसंचयः ।
आषाढीमभ्युपगतो भरतः कोशलाधिपः ॥३६॥
नूनमापूर्यमाणायाः सरय्वावर्धतेरयः ।
मा समीक्ष्य समायान्तमयोध्याया इव स्वनः ॥३७॥

अर्थ—कौशलाधिपति भरत अपने राजकार्य्य से निवृत्त हो सब पदार्थ एकत्रित कर आषाढ़ की पौर्णमासी से अनुष्ठान करने में प्रवृत्त होगये होंगे, जैसे हमको अयोध्या में आया देख प्रजाओं का बड़ा कोलाहल शब्द होगा, इसी प्रकार आजकल सरयू नदी का वेग बढ़ रहा होगा ॥

इमाःस्फीतगुणावर्षा सुग्रीवः सुखमश्नुते ।
विजितारिः सदारश्च राज्ये महति च स्थितः ॥३८॥

अर्थ—शत्रु को जीत बड़े राज्य में स्थित हुआ सुग्रीव स्त्री सहित इस उत्तम गुणों वाली वर्षा में सुख भोग रहा है ॥

अहन्तु हृतदारश्च राज्याच्च महतश्चुतः ।
नदीकूलमिवक्लिन्नमवसीदामि लक्ष्मण ॥३९॥
शोकश्च मम विस्तीर्णो वर्षाश्च भृशदुर्गमाः ।
रावणश्च महाञ्छत्रुरपारः प्रतिभाति मे ॥४०॥

अर्थ–हे लक्ष्मण ! एकतो हमारा बड़ा राज्य हम से छूटा और फिर स्त्री भी हरी गई, इससे कटते हुए नदी के किनारों के समान मैं अति दुःखी हूं, इस समय मेरा शोक बहुत बढ़ रहा है परन्तु वर्षा बड़ी दुर्गम होने के कारण महाशत्रु रावण तक पहुंचना बड़ा कठिन है ॥

अयात्रां चैव दृष्ट्वेमां मार्गांश्च भृशदुर्गमान् ।
प्रणतेचैव सुग्रीवे न मया किंचिदीरितम् ॥४१॥
अपिचापिपरिक्लिष्टं चिरादारैः समागतम् ।
आत्मकार्य्यं गरीयस्त्वाद्वक्तुं नेच्छामि वानरम्॥४२॥

अर्थ–जब सुग्रीव ने आकर मुझे प्रणाम किया था तो मार्ग यात्रा के अयोग्य दुर्गम होने से मैंने उससे कुछ नहीं कहा था, बड़े कष्ट से चिरकाल पश्चात् सुग्रीव ने स्त्री पाई है, और हमारा कार्य्य बहुत बड़ा होने के कारण अभी सुग्रीव से मैं कुछ नहीं कहा चाहता ॥

स्वयमेव हि विश्रम्य ज्ञात्वा कालमुपागतम् ।
उपकारं च सुग्रीवो वेत्स्यते नात्र संशयः ॥४३॥

अर्थ–विश्राम करके समय आने पर सुग्रीव अपने आप ही उपकार जानेगा, इसमें संशय नहीं ॥

राम का लक्ष्मण के प्रति वर्षा का वर्णन

वर्षाकाल मेघ नभ छाये । गर्जत लागत परम सुहाये ॥
लक्ष्मण देखहु मोर गण, नाचत वारिद पेखि ॥
गृही विरति रति हर्ष जस, विष्णु भक्ति कह देखि ॥

घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा । प्रियाहीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रहत घन माहीं । खल की प्रीति यथा थिर नाहीं ॥
वर्षहिं जलद भूमि नियराये । यथा नवहिं बुध विद्या पाये ॥
बूंद अघात सहे गिरि कैसे । खल के वचन सन्त सह जैसे ॥
क्षुद्र नदी भरि चालि उतराई । जिमि थोरे धन खल बौराई ॥
भूमि परत भा डाबर पानी । जिमि जीवहि माया लपटानी ॥
सिमिटि सिमिटि जल भराहिं तलावा। जिमि सद्गुण सज्जन पहं आवा॥
सरिताजल निधिजल में जाई । होय अचल जिमि जन हरि पाई ॥

हरित भूमि तृण संकुलित, समुझि परै नहिं पंथ ॥
जिमि पाखण्ड विवाद ते, लुप्त भये सद्ग्रन्थ ॥

दादुर धुनि चहुं ओर सुहाई । वेद पढ़ें जनु वटु समुदाई ॥
नव पल्लव भये विटप अनेका । साधुक मन जस मिले विवेका ॥
अर्क जवास पात विनु भयऊ । जिमि सुराज्य खल उद्यम गयऊ॥
खोजत पन्थ मिले नहिं धूरी । करे क्रोध जिमि धर्महिं दूरी ॥
शशि सम्पन्न सोह महि कैसी । उपकारी की सम्पति जैसी ॥
निशि तम घन खद्योत विराजा । जिमि दम्भिन कर जुरा समाजा ॥
महावृष्टि चलि फूटि कियारी । जिमि स्वतन्त्र हुई विगरहिं नारी ॥
कृषी नरावहिं चतुर किसाना । जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ॥
देखिय चक्रवाक खग नाहीं । कालेहि पाय जिमि धर्म पराहीं ॥
ऊषर वरसे तृण नहिं जामा । सन्त हृदय जस उपज न कामा ॥
विविध जन्तु संकुल महि भ्राजा । बढ़े प्रजा जिमि पाय सुराजा ॥
जहं तहं पथिक रहे थकि नाना । जिमि इन्द्रिय गण उपजे ज्ञाना ॥

कबहुं प्रबल चल मारुत, जहं तहं मेघ बिलाहिं ॥
जिमि कुपूत कुल उपजे, सम्पति धर्म नशाहिं ॥
कबहुं दिवस महं निबिड़तम, कबहुंक प्रकट पतङ्ग ॥
उपजे विनशै ज्ञान जिमि, पाय सुसङ्ग कुसङ्ग ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

सं०-अब शरद् ऋतु का वर्णन करते हैंः—

गृहं प्रविष्टे सुग्रीवे विमुक्ते गगने घनैः ।
वर्षरात्रे स्थितो रामः कामशोकाभिपीड़ितः ॥१॥
पाण्डुरं गगनं दृष्ट्वा विमलं चन्द्रमण्डलम् ।
शारदीं रजनीं चैव दृष्ट्वा ज्योत्स्नानुलेपनाम् ॥२॥
कामवृत्तं च सुग्रीवं नष्टां च जनकात्मजाम् ।
दृष्ट्वा कालमतीतं च मुमोह परमातुरः ॥३॥

अर्थ-सुग्रीव घर में वास करता है, आकाश मेघों से निर्मुक्त होकर निर्मल होगया है और राम शोक से पीड़ित हुए वर्षाकाल व्यतीत कर चुके हैं, अब आकाश को श्वेत, चन्द्रमण्डल को निर्मल, शरद ऋतु की रात्रि को चांदनी से सुशोभित तथा सुग्रीव को कामवश देखकर और जनकसुता का अभीतक कुछ पता निशान न जानकर समय को व्यतीत हुआ देख परम आतुर हुए राम व्याकुल चित्त होगये ॥

दृष्ट्वा च विमलं व्योम गतविद्युद्बलाहकम् ।
सारसारवसं घुष्टं विललापार्तया गिरा ॥४॥

सरांसि सरिता वापीः काननानि वनानि च ।
तां विना मृगशावाक्षीं चरन्नाद्य सुखं लभे ॥५॥
अपि तां मद्वियोगाश्च सौकुमार्याच्च भामिनीम् ।
सुदूरं पीडयेत्कामः शरद्गुणनिरन्तरः ॥६॥

अर्थ—और विमल आकाश को बिजुली तथा मेघ से शून्य सारसों की ध्वनियों से गूंजता हुआ देखकर आर्त्तवाणी से विलाप करते हुए बोले कि आज उस मृगनयनी के बिना सरोवर, नदी, बावड़ी, वन और बागों में घूमता हुआ सुख को प्राप्त नहीं होता हूं, हा शोक ! शरद् के गुणों से निरन्तर प्रवृत्त हुआ काम सीता को मेरे वियोग और अपनी सुकुमारता के कारण अत्यन्त पीड़ित करता होगा ॥

एवमादि नरश्रेष्ठो विललाप नृपात्मजः ।
विहङ्ग इव सारंगः सलिलं त्रिदशेश्वरात् ॥७॥
ततश्चञ्चूर्य रम्येषु फलार्थी गिरिसानुषु ।
ददर्शपर्युपावृत्तो लक्ष्मीवांल्लक्ष्मणोऽग्रजम् ॥८॥

अर्थ—इसी प्रकार उस नरश्रेष्ठ नृपसुत ने अनेक विलाप किये, जैसे चातक=पपीहा इन्द्र से जल चाहता हुआ विलाप करता है, उसी समय फल लाने को गये हुए रमणीय पर्वत की चोटियों पर घूमकर लौटे हुए लक्ष्मीवान् लक्ष्मण ने बड़े भाई राम को इस अवस्था में देखा ॥

अथ पद्मपलाशाक्षीं मैथिलीमनुचिन्तयन् ।
उवाच लक्ष्मणं रामो मुखेन परिशुष्यता ॥९॥

दीर्घगम्भीरनिर्घोषाः शैलद्रुमपुरोगमाः ।
विसृज्य सलिलंमेघाः परिशान्ता नृपात्मज ॥१०॥

अर्थ–तत्पश्चात् पद्मपत्रतुल्य नेत्रों वाली मैथिली को सोचते हुए राम ने सूखते हुए मुखद्वारा लक्ष्मण से कहा कि हे नृपात्मज ! दीर्घ गम्भीर ध्वनि वाले, पर्वतों, वृक्षों और पुरों पर पहुंचने वाले मेघ जल को त्यागकर अब शान्त होगये हैं ॥

नीलोत्पलदलश्यामाः श्यामी कृत्वा दिशोदश ।
विमदा इव मातंगाः शान्तवेगाः पयोधराः ॥११॥

अर्थ–और नील कमल सम श्याम मेघ दशो दिशाओं को हरी करके मदरहित हाथियों के समान शान्त होगये हैं अर्थात् अब नहीं वरसते हैं ॥

शाखासु सप्तच्छदपादपानां प्रभासु तारार्क निशाकराणाम् । लीलासु चैवोत्तम वारणा ना श्रियं विभज्याद्य शरत्प्रवृत्ता ॥१२॥

अर्थ–शतावरी वृक्ष की शाखाओं पर, तारों, चन्द्र तथा सूर्य्य की प्रभाओं पर और उत्तम हाथियों की लीलाओं में शोभा को धारण कराती हुई अब शरदृतु प्रवृत्त हुई है ॥

संप्रत्यंनकाश्रयचित्रशोभा लक्ष्मीः शर-त्कालगुणोपपन्ना । सूर्य्याग्रहस्तप्रतिबोधि तेषु पद्माकरेष्वभ्यधिकं विभाति ॥१३॥

अर्थ–शरद्काल के गुणों से प्रकट हुई अनेक पदार्थों में

विचित्र शोभावाली लक्ष्मी अब सूर्य्य की प्रथम किरणों से खिले हुए कमलों में अधिक शोभा को प्राप्त होरही है ॥

अभ्यागतैश्चारु विशालपक्षैः स्मरप्रियैः
पद्मरजोवकीर्णैः । महानदीनां पुलिनो-
पयातैः क्रीडन्ति हंसाःसह चक्रवाकैः॥१४॥

अर्थ—सुन्दर विशाल पङ्खों वाले, कमल के पराग से लिप्त, महानदियों के किनारों पर ठहरे हुए कामप्रिय चकवों के साथ हंस क्रीड़ा कर रहे हैं ॥

मदप्रगल्भेषु च वारणेषु गवां समूहेषु
च दर्पितेषु । प्रसन्नतोयासु च निम्नगासु
विभाति लक्ष्मीर्बहुधा विभक्ता ॥ १५ ॥

अर्थ—मदमत्त हाथियों, दर्प वाले बैलसमूहों और निर्मल जल वाली नदियों में अनेक प्रकार से विभक्त हुई लक्ष्मी शोभा को प्राप्त होरही है ॥

नभः समीक्ष्याम्बुधरैर्विमुक्तं विमुक्तबर्हा-
भरणा वनेषु । प्रियास्वरक्ता विनिवृत्त
शोभा गतोत्सवा ध्यानपरा मयूराः॥१६॥

अर्थ—मोर आकाश को मेघों से मुक्त हुआ देख अर्थात निर्मल हुआ देखकर वनों में अपने चंबररूपी भूषण त्यागकर शोभा रहित हुए प्यारियों में रागरहित हो अब उत्सव के चले जाने पर ध्यानपरायण हुए प्रतीत होते हैं ॥

मनोज्ञगन्धैः प्रियकैरनल्पैः पुष्पाग्रभारा
वनताग्रशाखैः । सुवर्णगौरैर्नयनाभिरा-
मैरुद्द्योतितानीववनान्तराणि ॥ १७ ॥

अर्थ—मनोहर गन्धयुक्त पुष्पों के भार से झुके हुए तथा सुवर्ण रङ्ग के फूलों से लदे हुए मन को अति प्रिय असना के वृक्षों से मानो अब वन प्रकाशित होरहे हैं ॥

प्रियान्विताना नलिनी प्रियाणां वनप्रिया-
णां कुसुमोद्गतानाम् । मदोत्कटानां मदलाल-
साना गजोत्तमानां गतयोऽद्य मन्दाः ॥१८॥

अर्थ—अपनी प्रिय हथिनियों के साथ रहने वाले, तड़ाक तथा बन प्रिय, कुसुमों से प्यार करने वाले, कटुमद बहाकर प्रियमद की लालसा वाले उत्तम हाथियों की चालें अब मन्द होगई हैं ॥

व्यक्तं नभः शस्त्रविधौतवर्णंकृशप्रवा
हानि नदीजलानि । कह्लारशीताःपवनाः
प्रवान्ति तमो विमुक्ताश्च दिशःप्रकाशाः॥१९॥

अर्थ—तलवार की भांति नील रंग वाला आकाश अब निर्मल होगया है, नदियों के जल मन्द प्रवाह वाले होगये हैं, कमलफूलों की शीतल सुगन्ध लिये पवन वह रहे हैं और दिशायें अन्धकार से मुक्त होकर अब स्पष्ट दृष्टिगत होती हैं ॥

सूर्यातपक्रामणनष्टपङ्का भूमिश्चिरोद्घाटित-

सान्द्ररेणुः । अन्योन्यवैरेण समायुतानामु-
द्योगकालोऽद्य नराधिपानाम् ॥ २० ॥

अर्थ—सूर्य्य की धूप के आक्रमण से पृथिवी पर कीचड़ नष्ट होगया है और चिरकाल पश्चात फिर घनी रेणु उठी है, अब परस्पर वैर वाले राजाओं के लिये उद्योग का समय आगया है ॥

शरद्गुणाप्यायितरूपशोभाः प्रहर्षिताः
पांसुसमुत्थिताङ्गाः । मदोत्कटाः संप्रति
युद्धलुब्धा वृषा गवां मध्यगता नदन्ति॥२१॥

अर्थ—शरद के गुणों से जिनके रूप की शोभा पुष्ट होगई है ऐसे हर्षित हुए बैल धूल उखाड़ २ अपने अंगों पर डालकर मदान्ध हुए दूसरे बैलों से युद्ध की इच्छा वाले गौओं के बीच में गर्ज रहे हैं ॥

समन्मथातीव्रतरानुरागाकुलान्विता
मन्दगतिःकरेणूः । मदान्वितं संपरिवार्य
यां तं वनेषु भर्तारमनुप्रयाति ॥ २२ ॥

अर्थ—अति कामातुर हुई अनुराग से अपने बच्चे को साथ लेकर मन्द चाल से चलती हुई हथिनी वन को जाते हुए मतवाले अपने पति के पीछे जारही है ॥

त्यक्त्वा वराण्यात्मविभूषितानि बर्हाणि-
तीरोपगतानदीनाम् । निर्भर्त्स्यमाना इव
सारसौघैःप्रयान्ति दीना विमना मयूराः॥२३॥

अर्थ—अपने विभूषित पंख गिराकर नदियों के तीरपर बैठे

हुए मोर मानो सारसों से निरादर पाये हुए उदास हो उड़े जारहे हैं ॥

वित्रास्यकारण्डव चक्रवाकान्महारवैर्भि-
न्नकटा गजेन्द्राः । सरस्सुबद्धाम्बुजभूष
णेषु विक्षोभ्य विक्षोभ्य जलं पिबन्ति॥२४॥

अर्थ—जिनके कपोलों से मद बह रहे हैं ऐसे हाथी बड़ी गर्जों से बतख़ और चकवों को डराकर खिले हुए कमलरूपी भूषणों वाले सरोवरों में हिला हिलाकर जल पीते हैं ॥

रात्रिःशशांकोदित सौम्यवक्त्रातारागणोन्मी-
लितचारुनेत्रा । ज्योत्स्नांशुकप्रावरणा वि-
भाति नारीव शुक्लांशुकसंवृताङ्गी ॥ २५ ॥

अर्थ—उदय हुए चन्द्र से सौम्यमुख वाली रात्रि जिसने तारागणरूपी सुन्दर नेत्र खोले हुए हैं और चांदनीरूप दुपट्टा धारण किये श्वेतवस्त्र से ढके हुए शरीर वाली नारी की भांति शोभा को प्राप्त होरही है ॥

विपक्वशालिप्रसवानि भुक्त्वा प्रहर्षिता सारस
चारुपंक्तिः । नभः समाक्रमति शीघ्रवेगा
वाता वधूता ग्रथितेव माला ॥ २६ ॥

अर्थ—और पके हुए चावलों को खाकर प्रहर्षित हो शीघ्र वेगवाली सारसों की सुन्दर पंक्ति वायु से उड़ाई हुई गुंदी माला की भांति आकाश में उड़ रही है ॥

जलं प्रसन्नं कुसुमप्रहासं क्रौञ्चस्वनं शालि-

वनं विपक्वम् । मृदुश्च वायुर्विमलश्च चन्द्रः
शं सन्ति वर्षव्यपनीतकालम् ॥ २७ ॥

अर्थ—जल का निर्मल होना, पुष्पों का विकाश=हास्य, चकवों की ध्वनि, शालि चावल समूह का पकना, पवन का मन्द २ बहना और चन्द्रमा का निर्मल होना, यह सब वर्षा की समाप्ति को बतला रहे हैं ॥

स चक्रवाकानि स शैवलानि काशैर्दुकूलै-
रिव संवृतानि । स पत्ररेखाणि सरोचनानि
वधुमुखानीव नदी मुखानि ॥ २८ ॥

अर्थ—चकई, चकवा तथा सेवार के होने और काशरूप दुकूल के धारण करने से मानो नदियों के मुख पत्ररेख वा रोचना लगाये हुए स्त्रियों के मुख समान होगये हैं ॥

लोकं सुवृष्ट्या परितोषयित्वा नदीस्तटाकानि
च पूरयित्वा । निष्पन्नसस्यां वसुधां च कृत्वा
त्यक्त्वा नभस्तोयधराः प्रनष्टाः ॥ २९ ॥

अर्थ—लोक को सुवृष्टि से प्रसन्न तथा नदी, तालावों को जल से पूर्ण कर और पृथिवी को खेती से सुशोभित करके मेघ आकाश को त्यागकर चले गये हैं ॥

अन्योन्य बद्ध वैराणां जिगीषूणां नृपात्मज ।
उद्योगसमयः सौम्य पार्थिवानामुपस्थितः॥३०॥
इयं सा प्रथमा यात्रा पार्थिवानां नृपात्मज ।
न च पश्यामि सुग्रीवमुद्योगं च तथाविधम् ॥३१॥

अर्थ—हे नृपात्मज ! आपस में परस्पर वैर रखकर जीतने की इच्छा वाले राजाओं का यह उद्योग समय उपस्थित हुआ है, हे नृपनन्दन ! यह राजाओं की प्रथम यात्रा है परन्तु मैं इस समय तक न सुग्रीव को देखता और न उसके वैसे उद्योग को देखता हूं ॥

चत्वारो वार्षिका मासा गता वर्षशतोपमा ।
मम शोकाभितप्तस्य तथा सीतामपश्यतः ॥३२॥
प्रियाविहीने दुःखार्ते हृतराज्ये विवासिते ।
कृपां न कुरुते राजा सुग्रीवो मयि लक्ष्मण ॥३३॥

अर्थ—सीता को न देखकर शोक से तप्त हुए मुझे वर्षाकाल के चारमास सौवर्ष तुल्य व्यतीत हुए हैं, हे लक्ष्मण ! प्रिया से हीन, दुःख से पीड़ित तथा जिसका राज्य हरा गया है ऐसे परदेशी पर क्या राजा सुग्रीव कृपा नहीं करेंगे ॥

स किष्किन्धां प्रविश्य त्वं ब्रूहि वानरपुंगवम् ।
मूर्खं ग्राम्यसुखे सक्तं सुग्रीवं वचनान्मम ॥३४॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! तुम किष्किन्धापुरी में प्रवेश कर वानर श्रेष्ठ ग्राम्यसुख में फसे हुए मूर्ख सुग्रीव को मेरी ओर से कहो कि :—

अर्थिनामुपपन्नानांपूर्वंचाप्युपकारिणाम् ।
आशां संश्रुत्ययो हन्ति सलोके पुरुषाधमः ॥३५॥
शुभं वा यदि वा पापं यो हि वाक्यमुदीरितम् ।
सत्येन परिगृह्णाति स वीरः पुरुषोत्तमः ॥ ३६ ॥

अर्थ-प्रथम जिसने उपकार किया है ऐसे अर्थी को आशा देकर फिर उसका जो कार्य्य नहीं करता वह लोक में अधम पुरुष कहाता है, और शुभ वा अशुभ जो बचन कहा हो उसको जो सत्य कर दिखलाता है वही पुरुषोत्तम है ॥

कृतार्थाः ह्यकृतार्थानां मित्राणां न भवन्ति ये ।
तान्मृतानपि क्रव्यादाः कृतघ्नान्नोपभुञ्जते ॥३७॥

अर्थ-जो मित्र कृतार्थ होकर अकृतार्थ मित्रों के सहायक नहीं बनते ऐसे कृतघ्नों के मरने पर उनको गीध भी नहीं खाते हैं॥

उच्यतां गच्छ सुग्रीवस्त्वयावीर महाबल ।
मम रोषस्य यद्रूपं ब्रूयाश्चैनं मिदं वचः ॥३८॥

अर्थ-हे वीर लक्ष्मण ! तुम सुग्रीव के निकट जाओ और मेरे रोष का यथार्थरूप उससे जाकर कहो, और यह भी कहना किः-

कुरुष्व सत्यं मम वानरेश्वर प्रतिश्रुतंधर्म-
मवेक्ष्य शाश्वतम् । मा बालिनं प्रेतं गतोयम-
क्षयेत्व मद्यपश्येर्ममचोदितः शरैः ॥ ३९ ॥

अर्थ-हे वानरेश्वर ! जो तुमने प्रतिज्ञा की है उसको धर्म समझकर पूर्ण करो, क्योंकि प्रतिज्ञा करके पूर्ण करना सनातन धर्म है, यदि ऐसा न करोगे तो मेरे बाणों से प्रेरित यमपुर गये हुए बाली को देखोगे ॥

राम का लक्ष्मण के प्रति शरदृऋतु का वर्णन

बर्षा विगत शरदऋतु आई । लक्ष्मण देखहु परम सुहाई ॥

फूले कांस सकल महि छाई। जनु वर्षा कृति प्रकट बुढाई ॥
उदित अगस्त्य पन्थजल शोषा। जिमि लोभहिं शोषै सन्तोषा ॥
सरिता सरजल निर्मल सोहा। सन्त हृदय जस गत मद मोहा ॥
रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी॥
जानि शरदऋतु खंजन आये। पाय समय जिमि सुकृत सुहाये ॥
पंक न रेणु सोह अस धरणी। नीति निपुण नृप की जस करणी॥
जल संकोच विकल भये मीना। विविध कुटुम्बी जिमि धन हीना॥
बिनु घन निर्मल सोह अकाशा जिमि हरिजन परिहरि सब आशा॥

चले हर्ष तजि नगर नृप, तापस वणिक भिखारि ॥
जिमि हरिभक्ति पाय जन, तजहिं आश्रमी चारि ॥

सुखी मीन जहं नीर अगाधा। जिमि हरि शरण न एकौ बाधा ॥
फूले कमल सोह सर कैसे। निर्गुण ब्रह्म सगुण भये जैसे ॥
गुंजत मधुकर निकर अनूपा। सुन्दर खग रव नाना रूपा ॥
चक्रवाक मन दुःख निशि पेखी। जिमि दुर्जन पर सम्पति देखी॥
चातक रटत तृषा अति वोही। जिमि सुख लहै न शङ्कर द्रोही ॥
शरद ताप निशि शशि अपहरई। सन्त दरश जिमि पातक टरई॥
मशक दंश बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नाशा॥

भूमि जीव संकुल रहे, गये शरद ऋतु पाय ॥
सद्गुरु मिले ते जाहिं जिमि, संशय भ्रम समुदाय ॥

वर्षा विगत शरदऋतु आई। सुधि न तात सीता की पाई ॥
एक वार कैसेहु सुधि पावों। कालहु जीत निमिष महं लावों ॥
कतहुं रहे जो जीवति होई। तात यतन कर आनों सोई ॥
सुग्रीवहु सुधि मोर विसारी। पावा राज्य कोश पुर नारी ॥
जेहि सायक मैं मारा वाली। तेहि शर हतों मूढ कहं काली ॥
लक्ष्मण क्रोधवन्त प्रभु जाना। धनुष चढ़ाय गहे कर बाना ॥

तब अनुजहि समुझायहु, रघुपति करुणासींव ॥
भय दिखाय ले आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥

इति अष्टादशःसर्गः

अथ एकोनविंशतिःसर्गः

सं०-अब लक्ष्मण का किष्किन्धापुरी में सुग्रीव के समीप जाना कथन करते हैं :—

अथ प्रतिसमादिष्टो लक्ष्मणः परवीरहा ।
प्रविवेश गुहां रम्यां किष्किन्धां रामशासनात् ॥१॥
द्वारस्था हरयस्तत्र महाकाया महाबलाः ।
बभूवुर्लक्ष्मणं दृष्ट्वा सर्वे प्रांजलयः स्थिताः ॥२॥
स तां रत्नमयीं दिव्यां श्रीमान् पुष्पित काननाम् ।
रम्यां रत्नसमाकीर्णां ददर्श महतीं गुहाम् ॥३॥

अर्थ-इसके अनन्तर राम का आज्ञाकारी तथा वीर शत्रुओं का घातक लक्ष्मण राम की आज्ञानुसार रमणीय किष्किन्धा गुहा में प्रविष्ट हुआ, महावली तथा महाकाय द्वारपाल जो गुहा के द्वार पर स्थित थे वह सब लक्ष्मण को देख हाथ जोड़कर खड़े होगये, लक्ष्मण ने भीतर प्रवेश कर दिव्य, रत्नमयी, फूले हुए बगीचों वाली,रत्नों से भरी हुई तथा रमणीयबड़ी गुहा को देखा॥

हर्म्यप्रासादसम्बाधां नानारत्नोपशोभिताम् ।
सर्वकामफलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभिताम् ॥४॥
देवगन्धर्वपुत्रैश्च वानरैः कामरूपिभिः ।
दिव्यमाल्याम्बरधरैः शोभितां प्रियदर्शनैः ॥५॥

चन्दनागुरुपद्मानां गन्धैः सुरभिगन्धिताम् ।
मैरेयाणां मधूनां च संमोदित महापथाम् ॥६॥

अर्थ—जो बड़े२ मन्दिर तथा प्रासाद=महलों से भरी हुई, उत्तम२ पदार्थों से सजी हुई और जो सदा इच्छानुसार फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से सुशोभित, दिव्य माला तथा वस्त्र धारण किये हुए प्रियदर्शन कामरूप वानरों और देव गन्धर्वों के पुत्रों से शोभायमान, और जो चन्दन, अगर तथा कमल के गन्धों से सुगन्धित तथा मैरेय और महुए के वृक्षसमूह से महकती हुई सड़कों वाली थी॥

अंगदस्य गृहं रम्यं मैन्दस्य द्विविदस्य च ।
गवयस्य गवाक्षस्य गजस्य शरभस्य च ॥७॥
विद्युन्मालेश्च संपातेः सूर्य्याक्षस्य हनूमतः ।
वीरबाहोः सुबाहोश्च नलस्य च महात्मनः ॥८॥
कुमुदस्य सुषेणस्य तारजाम्बवतोस्तथा ।
दधिवक्त्रस्य नीलस्य सुपाटल सुनेत्रयोः ॥९॥

एतेषां कपिमुख्यानां राजमार्गे महात्मनाम् ।
ददर्श गृहमुख्यानि महासाराणि लक्ष्मणः ॥१०॥

अर्थ—और राजमार्ग पर लक्ष्मण ने अङ्गद, मैन्द, द्विविद, गवय, गवाक्ष, गज, शरभ, विद्युन्मालिका, सम्पाती, सूर्याक्ष, हनुमान, वीरबाहु, सुबाहु, नल, कुमुद, सुषेण, तार, जाम्बवान्, दधिवक्त्र, नील, सुपाटल और सुनेत्र, इन मुख्य वानर महात्माओं के बड़े २ रमणीय महल देखे ॥

पाण्डुभ्रप्रकाशानिगन्धमाल्ययुतानि च ।
प्रभूत धनधान्यानि स्त्रीरत्नैः शोभितानि च ॥११॥
पाण्डरेण तु शैलेन परिक्षिप्तं दुरासदम् ।
वानरेन्द्रगृहं रम्यं महेन्द्रसदनोपमम् ॥१२॥
सर्व[illegible]फलैर्वृक्षैः पुष्पितैरुपशोभितम् ।
दिव्यमाल्यावृत्तं शुभ्रं तप्तकांचनतोरणम् ॥१३॥
सुग्रीवस्य गृहंरम्यं प्रविवेश महाबलः ।
अवार्यमाणः सौमित्रिर्महाभ्रमिव भास्करः ॥१४॥

अर्थ–जो अभ्रक के समान प्रकाशित, गन्धयुक्त पदार्थ तथा मालाओं से सुभूषित, प्रभूत धन धान्य से भरे हुए तथा सुन्दर गुणवती स्त्रियों से सुशोभित, श्वेत परकोटे द्वारा चारो ओर से घिरे हुए, कैलास सदृश श्वेत चोटियों तथा सर्वदा यथेच्छ फल देने वाले फूले हुए वृक्षों से सुशोभित और दिव्य मालाओं से ढके हुए, शुभ्र, शुद्ध सुवर्ण की तोरणों वाले सुग्रीव के रमणीय गृह में वह महाबली लक्ष्मण बिना रोक टोक के प्रविष्ट हुआ, जैसे सूर्य्य बड़े मेघ में प्रवेश करता है ॥

स सप्त कक्षा धर्मात्मा यानासनसमावृताः ।
ददर्श सुमहद्गुप्तं ददर्शान्तःपुरं महत् ॥१५॥
प्रविशन्नेव सततं शुश्राव मधुरस्वनम् ।
तंत्रीगीतसमाकीर्णं समतालपदाक्षरम् ॥ १६ ॥
बह्वीश्च विविधाकारा रूपयौवनगर्विताः ।
स्त्रियः सुग्रीवभवने ददर्श स महाबलः ॥१७॥

अर्थ—धर्मात्मा लक्ष्मण ने नाना जनों से भरी हुई सात डेउढ़ियें लङ्घकर आगे पूर्ण प्रकार से सुरक्षित बहुत बड़े अन्तःपुर को देखा, और वहां प्रवेश करते ही लक्ष्मण ने वीणा की ध्वनि से पूरित समताल पद तथा अक्षरों वाला मधुर गीत सुना, और वहां रूप यौवन से गर्वित विविध प्रकार की बहुत स्त्रियें सुग्रीव के महल में देखीं ॥

कूजितं नूपुराणां च काञ्चीनां निःस्वनं तथा ।
स निशम्य ततः श्रीमान् सौमित्रिर्लज्जितोऽभवत् १८॥
रोषवेगप्रकुपितः श्रुत्वा चाभरणस्वनम् ।
चकार ज्यास्वनं वीरो दिशः शब्देन पूरयन् ॥१९॥

अर्थ—और वहां स्त्रियों के नूपुर तथा पायल आदि भूषणों के शब्द सुनकर श्रीमान् लक्ष्मण लज्जित होगये, उन भूषणों के शब्द सुन बड़े क्रोध में आकर वीर लक्ष्मण ने धनुष के चिल्ले की ध्वनि से सब दिशाओं को पूर्ण किया ॥

ततस्तारां हरिश्रेष्ठः सुग्रीवः प्रियदर्शनाम् ।
उवाच हितमव्यग्रस्त्राससंभ्रान्तमानसः ॥२०॥
किं नु रुट्कारणं सुभ्रप्रकृत्या मृदुमानसः ।
सरोष इव संप्राप्तो येनायं राघवानुजः ॥२१॥

अर्थ—तब वानरश्रेष्ठ सुग्रीव भयभीत होकर प्रियदर्शना तारा से यह हितकर शुभ बचन बोला कि हे प्रिये ! रोष करने का क्या कारण है ? जो स्वभाव से मृदुचित्त=कोमल स्वभाव यह राघव के छोटे भाई क्रोधित होकर यहां आये हैं ॥

अथवा स्वयमेवैनं द्रष्टुमर्हसि भामिनि ।
वचनैःसान्त्वयुक्तैश्चप्रसादयितुमर्हसि ॥२२॥
त्वद्दर्शने विशुद्धात्मानस्मकोऽपं करिष्यति ।
नहि स्त्रीषु महात्मानः क्वचित्कुर्वन्तिदारुणम्॥२३॥
त्वयासांत्वैरुपक्रान्तं प्रसन्नेन्द्रियमानसम् ।
ततःकमलपत्राक्षं द्रक्ष्याम्यहमरिन्दमम् ॥२४॥

अर्थ—अथवा हे सुन्दरि ! आप जाकर उन्हें देखने योग्य और शान्तियुक्त बचनों से प्रसन्न करने योग्य हैं, वह शुद्धात्मा लक्ष्मण तुम्हें देखकर कोप नहीं करेंगे, क्योंकि स्त्रियों पर महात्मा लोग दारुण कोप नहीं करते, और जब वह तुम्हारे समझाने से प्रसन्नचित्त होजावेंगे तब मैं उन कमलपत्र समान नेत्रोंवाले तथा शत्रुओं पर जय प्राप्त करने वाले लक्ष्मण के दर्शन करुंगा ॥

साप्रस्खलन्ती मदाविह्वलाक्षी प्रलम्बका
ञ्चीगुणहेमसूत्रा । सलक्षणा लक्ष्मण
संनिधानं जगाम तारा नमितांगयष्टिः॥२५॥

अर्थ—तदनन्तर वह मद से पूर्ण नेत्रों वाली, लटकती हुई सुवर्ण की मेखला=जञ्जीर वाली तथा सुन्दराङ्गी तारा अङ्गरूप यष्टि को नम्र करके लक्ष्मण के समीप गई ॥

स तां समीक्ष्यैव हरीशपत्नीं तस्थावुदासीन-
तया महात्मा । अवाङ्मुखोऽभून्मनुजेन्द्र-
पुत्रःस्त्रीसन्निकर्षाद्विनिवृत्तकोपः ॥ २६ ॥

अर्थ—तब उस महात्मा वानरों के राजा की पत्नी को देखकर उदासीनता से बैठे हुए लक्ष्मण ने अपना मुख नीचे करलिया और स्त्री के निकट आने से उनका क्रोध भी शान्त होगया॥

सा पानयोगाच्च निवृत्तलज्जा दृष्टिप्रसादाच्च नरेन्द्रसूनोः । उवाच तारा प्रणयप्रगल्भं वाक्यं महार्थं परिसान्त्वरूपम् ॥ २७ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् मधुपान के कारण दूर हुई लज्जा वाली तारा लक्ष्मण की प्रसन्न दृष्टि देखकर निर्भय हुई प्रेमपूर्वक बड़े अर्थवाला तथा आश्वासन देने वाला वाक्य बोली कि:—

किं कोपमूलं मनुजेन्द्रपुत्र कस्ते न संतिष्ठति वाङ्निदेशे । कः शुष्कवृक्षं वनमापतन्तं दावाग्निमासीदति निर्विशंकः ॥ २८ ॥

अर्थ—हे नरेन्द्रपुत्र ! आपके कोप का कारण क्या है ? ऐसा कौन है जो आपकी आज्ञापालन नहीं करता, वह कौन है जो सूखे वृक्षों वाले वन में लगी अग्नि से भयभीत नहीं होता॥

न कोपकालः क्षितिपालपुत्र न चापिकोपः स्वजनेविधेयः । त्वदर्थकामस्य जनस्य तस्य प्रमादमप्यर्हसि वीरमोढुम् ॥ २९ ॥

अर्थ—हे पृथिवीपाल के पुत्र ! यह काल आपके कोप का नहीं है और नाही अपने जनों में कोप करना चाहिये, हे वीर ! आपका भला चाहते हुए अपने किसी जन का प्रमाद भी हो वह भी क्षमा करने योग्य है॥

तं कामवृत्तं मम सन्निकृष्टंकामाभियोच्च
विमुक्तलज्जम् । क्षमस्व तावत्परवीर
हन्तस्त्वद्भ्रातरंवानरवंशनाथम् ॥३०॥

अर्थ—कामवश हुआ मेरे समीप स्थित तथा काम के आवेश से लज्जारहित हुए उस अपने भाई वानरवंश के नाथ को आप क्षमा करने योग्य हैं ॥

उद्योगस्तु चिराज्ञप्तः सुग्रीवेण नरोत्तम ।
कामस्यापि विधेयेन तवार्थप्रतिसाधने ॥ ३१ ॥

अर्थ—हे नरोत्तम ! काम का वशवर्ती सुग्रीव इस अवस्था में भी आपके अर्थसाधन में चिरकाल से यत्न कर रहा है ॥

तदागच्छ महावाहो चारित्रं रक्षितं त्वया ।
अच्छलं मित्रभावेन सतां दारावलोकनम् ॥ ३२ ॥
तारया चाप्यनुज्ञातस्त्वरयावापि चोदितः ।
प्रविवेश महावाहुरभ्यन्तरमरिन्दमः ॥ ३३ ॥

अर्थ—हे महाबाहो ! आइये आपने हमारे चरित्र की रक्षा की है, बिना छल के मित्रभाव से स्त्री को देखना सत्पुरुषों का धर्म है, तारा के बार २ कथन करने पर शीघ्रता से प्रेरा हुआ महाबाहु लक्ष्मण भीतर प्रविष्ट हुआ ॥

इति एकोनविंशतिः सर्गः

अथ विंशतिः सर्गः

सं०—अब लक्ष्मण का सुग्रीव के प्रति उपदेश कथन करते हैं :—

तमप्रतिहतं क्रुद्धं प्रविष्टं पुरुषर्षभम् ।
सुग्रीवो लक्ष्मणं दृष्ट्वा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥ १ ॥
उत्पपात हरिश्रेष्ठो हित्वा सौवर्णमासनम् ।
महान्महेन्द्रस्य यथा स्वलंकृत इवध्वजः ॥ २ ॥
रुमाद्वितीयं सुग्रीवं नारीमध्यगतं स्थितम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणः क्रुद्धः स तारं शशिनं यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—बिना रोक टोक भीतर प्रविष्ट हुए उस पुरुषश्रेष्ठ लक्ष्मण को क्रोधित देखकर सुग्रीव के इन्द्रिय व्यथा को प्राप्त होगये, और वह वानरश्रेष्ठ सुग्रीव सुवर्ण के आसन को त्यागकर अलंकृत महेन्द्रध्वजा की भांति उठकर खड़ा होगया. तारा तथा रुमा के बीच स्थित सुग्रीव ऐसे शोभा को प्राप्त होते थे जैसे तारों के बीच चन्द्रमा सुशोभित होता है, इस अवस्था में सुग्रीव को देखकर क्रुद्ध हुए लक्ष्मण बोले कि :—

सत्त्वाभिजनसम्पन्नः सानुक्रोशो जितेन्द्रियः ।
कृतज्ञः सत्यवादी च राजा लोके महीयते ॥ ४ ॥
यस्तु राजा स्थितोऽधर्मे मित्राणामुपकारिणाम् ।
मिथ्या प्रतिज्ञां कुरुते कोनृशंसतरस्ततः ॥ ५ ॥
शतमश्वानृते हन्ति सहस्रं तु गवानृते ।
आत्मानं स्वजनं हन्ति पुरुषः पुरुषानृते ॥ ६ ॥

अर्थ—हे सुग्रीव! शुद्ध मन,परिवार वाला,दयावान्,जितेन्द्रिय, कृतज्ञ=दूसरे के किये उपकार को मानने वाला और सत्यवादी राजा लोक में पूजा जाता है, और जो राजा अधर्म में स्थित हुआ उपकारी मित्रों के साथ मिथ्या प्रतिज्ञा करता है उससे अधिक कोई हिंसक नहीं अर्थात् वह महापापी है, घोड़ा देने आदि की प्रतिज्ञा करके अनृतवादी=न देने से सौ घोड़े की हत्या का पाप लगता है, गौ विषयक झूठ में हज़ार गौ की हत्या का, और पुरुषविषयक झूठ से आत्महत्या तथा स्वजनहत्या के पाप का भागी होता है ॥

पूर्वंकृतार्थो मित्राणां न तत्प्रतिकरोति यः ।
कृतघ्नः सर्वभूतानां सवध्यः प्लवगेश्वर ॥ ७ ॥
गीतोऽयं ब्रह्मणाः श्लोकः सर्वलोक नमस्कृतः ।
दृष्ट्वा कृतघ्नं क्रुद्धेन तन्निवोध प्लवंगम ॥ ८ ॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! जो पुरुष मित्रों द्वारा पूर्व कृतार्थ होचुका है अर्थात् उनकी ओर से प्रथम उपकार प्राप्त करके फिर उनका प्रत्युपकार न करने वाला सब प्राणियों में कृतघ्न कहा जाता और वह बध योग्य है, हे सुग्रीव ! कृतघ्न को देखकर क्रुद्ध हुए ब्रह्मा ने यह श्लोक गाया=लिखा है जो सब लोकों में माननीय है वह तुम्हें भी जानना चाहिये ॥

गोघ्ने चैव सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा ।
निष्कृतिर्विहिता सद्भिःकृतघ्ने नास्तिनिष्कृतिः ॥९॥
अनार्यस्त्वं कृतघ्नश्च मिथ्यावादी च वानर ।
पूर्वं कृतार्थो रामस्य न तत्प्राति करोषियत् ॥१०॥

नतु नाम कृतार्थेन त्वया रामस्य वानर ।
सीताया मार्गणे यत्नः कर्तव्यः कृतमिच्छता ॥११॥

अर्थ—गौ घातक, सुरा पीने वाले, चौर और व्रत भङ्ग करने वाले के लिये सत्पुरुषों ने प्रायश्चित्त कहा है परन्तु कृतघ्न के लिये कोई प्रायश्चित्त नहीं, इसलिये हे वानर ! तुम अनार्य, कृतघ्न और मिथ्यावादी हो, क्योंकि राम के पूर्व उपकार करने पर तैने उनका प्रत्युपकार नहीं किया, अतएव तुम्हारे लिये आवश्यक है कि तुम राम के किये उपकार का प्रत्युपकार करते हुए सीता की खोज में यत्न करो ॥

सं०—अब लक्ष्मण के प्रति सुग्रीव का नम्रतापूर्वक उत्तर कथन करते हैं :—

स लक्ष्मणं भीमबलं सर्ववानरसत्तमः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सुग्रीवं संप्रहर्षयन् ॥१२॥
प्रनष्टा श्रीश्च कीर्त्तिश्च कपिराज्यं च शाश्वतम् ।
रामप्रासादात्सौमित्रे पुनश्चाप्तमिदं मया ॥१३॥
कःशक्तस्तस्य देवस्य ख्यातस्य स्वेन कर्मणा ।
तादृशं प्रतिकुर्वीत अंशेनापि नृपात्मज ॥१४॥

अर्थ—तत्पश्चात् सब वानरों में श्रेष्ठ सुग्रीव महाबली लक्ष्मण को प्रसन्न करता हुआ नम्रतापूर्वक बोला कि हे लक्ष्मण ! मैंने राम ही की कृपा से नष्ट हुई श्री, कीर्ति तथा प्राचीन राज्य प्राप्त किया है, सो हे नृपात्मज ! अपने कर्मों से विख्यात उस देव का अंशमात्र भी बदला देसके ऐसा कौन पुरुष है ॥

सीतां प्राप्स्यति धर्मात्मा वधिष्यति च रावणम् ।
सहायमात्रेण मया राघवः स्वेन तेजसा ॥१५॥
अनुयात्रां नरेन्द्रस्य करिष्येऽहं नरर्षभ ।
गच्छतो रावणं हन्तुं वैरिणं सपुरःसरम् ॥१६॥
यदि किंचिदतिक्रान्तं विश्वासात्प्रणयेन वा ।
प्रेष्यस्य क्षमितव्यं मे न कश्चिन्नापराध्यति ॥१७॥

अर्थ–धर्मात्मा राघव मेरी सहायतामात्र और वस्तुतः अपने ही तेज से निःसन्देह सीता को प्राप्त होकर रावण का वध करेंगे, हे नरश्रेष्ठ ! वैरी रावण को मारने जाते हुए नरेन्द्र राम के पीछे मैं अपनी सेना सहित जाउंगा, यदि विश्वास अथवा प्रेम से राघव के वचनों का कुछ उल्लङ्घन भी हुआ हो तब भी मैं दास क्षमा योग्य हूं, क्योंकि दुनियां में ऐसा कोई नहीं जिससे अपराध न हुआ हो ॥

इति तस्य ब्रुवाणस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ।
अभवल्लक्ष्मणः प्रीतः प्रेम्णा चेदमुवाच ह ॥१८॥
सर्वथा हि मम भ्राता सनाथो वानरेश्वर ।
त्वया नाथेन सुग्रीव प्रश्रितेन विशेषतः ॥१९॥

अर्थ–महात्मा सुग्रीव के उक्त प्रकार कथन करने पर प्रसन्न हुआ लक्ष्मण प्रेमपूर्वक बोला कि हे सुग्रीव ! तुम्हारे जैसे नम्र स्वभाव नाथ से मेरा भाई सर्वदा सनाथ है ॥

यस्ते प्रभावः सुग्रीव यच्च ते शौचमीदृशम् ।
अर्हस्त्वं कपिराज्यस्य श्रियं भोक्तुमनुत्तमाम् ॥२०॥
सहायेन तु सुग्रीव त्वया रामः प्रतापवान् ।
वधिष्यति रणे शत्रूनचिरान्नात्र संशयः ॥२१॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! यदि तुम्हारा ऐसा प्रभाव वा शौच है तो तुम अवश्य राज्य अथवा अनुत्तम लक्ष्मी भोगने योग्य हो, हे सुग्रीव ! आपकी सहायता से प्रतापी राम शीघ्र ही रण में शत्रुओं का बध करेंगे, इसमें संशय नहीं ॥

धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य संग्रामेष्वनिवर्तिनः ।
उपपन्नं च युक्तं च सुग्रीव तव भाषितम् ॥२२॥
किं तु शीघ्रमितो वीर निष्क्रम त्वं मया सह ।
सान्त्वयस्व वयस्यं च भार्याहरणदुःखितम् ॥२३॥
यच्च शोकाभिभूतस्य दृष्ट्वा रामस्य भाषितम् ।
मया त्वं परुषाण्युक्तस्तत् क्षमस्व सखे मम ॥२४॥

अर्थ—धर्मज्ञ, कृतज्ञ और संग्राम में पीठ न दिखाने वाले सुग्रीव तुम्हारा भाषण बड़ा मधुर तथा युक्तियुक्त है, हे वीर सुग्रीव ! अब यहां से शीघ्र ही मेरे साथ चल और स्त्रीहरण से दुःखित अपने मित्र राम को आश्वासन दे, और शोक से आर्त्त हुए राम का विलाप देखकर जो मैंने आपसे कठोर कहा है उसके लिये हे मित्र ! मैं क्षमा चाहता हूं ॥

इति विंशतिः सर्गः

अथ एकविंशतिः सर्गः

सं०-अब सुग्रीव का राम के समीप जाना और वानरों को सीता की खोज के लिये भेजना कथन करते हैं:—

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो लक्ष्मणेन महात्मना ।
हनूमन्तं स्थितं पार्श्वे वचनं चेदमब्रवीत् ॥१॥
तांस्तांस्त्वमानय क्षिप्रं पृथिव्यां सर्ववानरान् ।
सामदानादिभिः कल्पैर्वानैरैर्वेगवत्तरैः ॥२॥
प्रेषिताः प्रथमं ये च मया ज्ञाता महाजवाः ।
त्वरणार्थं तु भूयस्त्वं संप्रेषय हरीश्वरान् ॥३॥

अर्थ-महात्मा लक्ष्मण के उक्त बचन सुनकर समीप बैठे हुए हनुमान् से सुग्रीव बोला कि हे हनुमन् ! पृथिवी पर से उन २ सम्पूर्ण वानरों को अति वेगवाले वानरों द्वारा साम तथा दान आदि उपायों से शीघ्र ही बुलाओ, जो बड़े वेगवाले वानर पहले भेजे गये हैं वह सब मुझे ज्ञात हैं परन्तु शीघ्रता के कारण उनको बुलाने के लिये तुम और सरदारों को भेजो ॥

ये प्रसक्ताश्च कामेषु दीर्घसूत्राश्च वानराः ।
इहानयस्वताञ्छीघ्रं सर्वानेक कपीश्वरान् ॥ ४ ॥
अहोभिर्दशभिर्येच नागच्छन्ति ममाज्ञया ।
हन्तव्यास्ते दुरात्मानो राजशासन दूषकाः ॥ ५ ॥

अर्थ-और जो काम में असक्त तथा दीर्घसूत्र=ढिलमठ वानर हैं

उन सब को शीघ्र ही यहां हमारे पास लाओ, जो आज से दश दिन तक हमारी आज्ञानुसार न आवेंगे वह दुष्ट वानर राजा की आज्ञा भंग करने के कारण हनन के अधिकारी होंगे अर्थात् उनका बध कियाजायगा ॥

तस्य वानरराजस्य श्रुत्वा वायुसुतो वचः ।
दिक्षु सर्वासु विक्रान्तान्प्रेषयामास वानरान् ॥६॥
मृत्युकालोपमस्याज्ञां राज राजस्य वानराः ।
सुग्रीवस्या ययुः श्रुत्वा सुग्रीव भय शङ्किताः ॥७॥
वनेभ्यो गह्वरेभ्यश्च सरिद्भ्यश्च महाबलाः ।
आगच्छद्वानरी सेना पिबन्तीव दिवाकरम् ॥८॥

अर्थ–सुग्रीव के उक्त बचन सुनकर हनुमान् ने सब दिशाओं में पराक्रमी वानरों को भेजा, और मृत्युकाल के तुल्य अपने राजराजेश्वर सुग्रीव की आज्ञा सुनकर भयभीत हुए सब वानर आगये, वन कन्दरा तथा नदियों पर से बड़े वेगवाली वानरों की सेना मानो सूर्य्य को स्वतेज से ढांपती हुई आई ॥

स वानरशतैस्तीक्ष्णैर्बहुभिः शस्त्रपाणिभिः ।
परिकीर्णो ययौ तत्र यत्र रामो व्यवस्थितः ॥ ९ ॥
आसाद्य च ततो रामं कृताञ्जलि पुटोऽभवत् ।
कृताञ्जलौ स्थिते तस्मिन्वानराश्चाभवंस्तथा ॥१०॥

अर्थ–सेना के आने पर सुग्रीव हाथ में शस्त्र लिये बड़े तीक्ष्ण वानरों से घिरा हुआ अर्थात् उनको साथ लिये हुए वहां

गया जहां राम स्थित थे, और राम के समीप जाकर हाथ जोड़ खड़ा होगया, सुग्रीव के हाथ जोड़कर खड़ा होने से सभी सैनिक योद्धा हाथ जोड़कर खड़े होगये ॥

तटाकमिव तं दृष्ट्वा रामः कुड्मलपंकजम् ।
वानराणां महत्सैन्यं सुग्रीवे प्रीतिमानभूत् ॥ ११ ॥
पादयोः पतितं मूर्ध्ना तमुत्थाप्य हरीश्वरम् ।
प्रेम्णा च बहुमानाच्च राघवः परिषस्वजे ॥ १२ ॥

अर्थ–राम कमलों की कलियों वाले तालाब के तुल्य वानरों की बड़ी सेना देखकर सुग्रीव से अति प्रसन्न हुए, और पावों पर मस्तक टेके हुए उस सुग्रीव को प्रेम तथा बड़े मानपूर्वक उठाकर राम ने गले लगाया ॥

अथ राजा समृद्धार्थः सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
उवाच नरशार्दूलं रामं परबलार्दनम् ॥ १३ ॥
आगता विनिविष्टाश्च बलिनः कामचारिणः ।
वानरेन्द्रा महेन्द्राभा ये मद्विषयवासिनः ॥ १४ ॥
त इमे बहुविक्रान्तैर्बलिभिर्भीमविक्रमैः ।
आगता वानरा घोरा दैत्य दानव सन्निभाः ॥१५॥

अर्थ–इसके अनन्तर कृतार्थ हुए राजा सुग्रीव ने शत्रुओं के बल को मर्दन करने वाले नरश्रेष्ठ राम से कहा कि हे राम ! मेरे देशवासी महेन्द्रतुल्य, कामचारी तथा बलवान् सब सेनापति अपनी २ सेना लेकर आगये हैं और वह छावनियें डालकर टिक

गये हैं, यह सब सेनापति बड़े २ पराक्रमी तथा भीमविक्रम वाले वानरों को अपने साथ लाये हैं जिनमें दैत्य दानवों के समान बलवान् भी हैं ॥

ख्यातकर्मापदानाश्च बलवन्तो जितक्लमाः ।
पराक्रमेषु विख्याता व्यवसायेषु चोत्तमाः ॥१६॥
यन्मन्यसे नरव्याघ्रं प्राप्तकालं तदुच्यताम् ।
त्वत्सैन्यं त्वद्वशे युक्तमाज्ञापयितुमर्हसि ॥ १७ ॥
तथा ब्रुवाणं सुग्रीवं रामो दशरथात्मजः ।
बाहुभ्यां संपरिष्वज्य इदं वचनमब्रवीत् ॥ १८ ॥

अर्थ–यह सब युद्ध में शौर्यसम्पन्न, बलवान्, थकावट को जीते हुए, पराक्रमों में विख्यात और कर्मों में उत्तम हैं, हे नरश्रेष्ठ! जो कुछ इस समय के योग्य हो वह आज्ञा दें, आपकी सेना सर्वथा आज्ञाकारी है उसको उचित आज्ञा दीजिये, इस प्रकार सुग्रीव के कथन करने पर दशरथसुत राम भुजाओं से उसको गले लगाकर यह बचन बोले कि :—

ज्ञायतां सौम्य वैदेही यदि जीवति वा नवा ।
स च देशो महाप्राज्ञ यस्मिन्वसति रावणः ॥१९॥
नाहमस्मिन् प्रभुः कार्ये वानरेन्द्र न लक्ष्मणः ।
त्वमस्य हेतुः कार्यस्य प्रभुश्च प्लवगेश्वर ॥ २० ॥

अर्थ–हे सौम्य! वैदेही का पता लगाइये कि वह जीवित है वा नहीं, और हे महाप्राज्ञ! उस देश का भी पता लगावें जहां रावण वसता है, हे सुग्रीव! इस कार्य्य के करने में न मैं और नाही

लक्ष्मण समर्थ है, आपही इस कार्य्य क कर्त्ता और आपही समर्थ हैं॥

त्वमेवाज्ञापय विभो ममकार्य्यं विनिश्चयम् ।
त्वं हि जानासि मे कार्यं मम वीर न संशयः॥२१॥
सुहृद् द्वितीयोविक्रान्तः प्राज्ञः कालविशेषवित् ।
भवानस्मद्धिते युक्तः सुहृदाप्तोर्थवित्तमः ॥ २२ ॥

अर्थ—हे मित्र सुग्रीव ! आपही हमारे कार्य्य का निश्चय करें कि क्या कर्तव्य है और उसी के अनुसार इन सब को आज्ञा देवें, क्योंकि आप हमारे कार्य्य को भले प्रकार जानते हैं, इसमें संशय नहीं, आप हमारे सुहृद्, बलवान्, चतुर और सब देशकाल जानने वाले होने से आप हमारे हित में प्रवृत्त हों तो हमारा कार्य्य पूर्ण होने में कोई सन्देह नहीं ॥

एवमुक्तस्तु सुग्रीवो वीरः कपिगणेश्वरः ।
वेगविक्रमसंपन्नान्संदिदेश विशेषवित् ॥२३॥
यश्च मासान्निवृत्तोऽग्रे दृष्टा सीतेति वक्ष्यति ।
मत्तुल्यविभवो भोगैः सुखं स विहरिष्यति ॥२४॥
विशेषेण तु सुग्रीवो हनूमन्तमर्थमुक्तवान् ।
स हि तस्मिन् हरिश्रेष्ठे निश्चितार्थोऽर्थसाधने ॥२५॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर वानरों की विशेषता को जानने वाले वीर सुग्रीव ने वेग तथा पराक्रम सम्पन्न प्रसिद्ध वानरों को आज्ञा दी कि जो एक मास के भीतर आकर मुझे यह बतलायेगा कि मैंने सीता देखी है वह भोगों में मेरे तुल्य ऐश्वर्य्यवाला होकर सुखपूर्वक विचरेगा, और अर्थसाधन

विषय में हनुमान् पर पूर्ण भरोसा रखने वाले सुग्रीव ने उससे विशेष कर कहा कि :—

न भूमौ नान्तरिक्षे वा नाम्बरे नामरालये ।
नाप्सु वा गतिभङ्गं ते पश्यामि हरिपुंगव ॥ २६ ॥
सासुराः सहगन्धर्वाः सनागनरदेवताः ।
विदिताः सर्वलोकास्ते स सागरधराधराः ॥ २७ ॥
तेजसा चापि ते भूतं न समं भुवि विद्यते ।
तद्यथा लभ्यते सीता तत्त्वमेवानुचिन्तय ॥ २८ ॥

अर्थ—हे वानरश्रेष्ठ ! न भूमि, न अन्तरिक्ष, न आकाश, न देवलोक और न जलों में कहीं भी तेरी गति का रुकना नहीं देखता, और तुझको असुर, गन्धर्व, नाग, नर तथा. देवताओं के सम्पूर्ण स्थान समुद्र पर्वतों सहित विदित हैं,और तेज में भी तेरे समान पृथिवी पर कोई प्राणधारी नहीं, सो जिसप्रकार सीता का पता चले वह तुम्हें सोचकर यत्न करना चाहिये ॥

त्वय्येव हनुमन्नस्ति बलं बुद्धिः पराक्रमः ।
देशकालानुवृत्तिश्च नयश्च नयपण्डित ॥२९॥
ततः कार्य्यसमासंगमवगम्य हनूमति ।
विदित्वा हनुमन्तं च चिन्तयामास राघवः ॥३०॥
सर्वथा निश्चितार्थोऽयं हनूमति हरीश्वरः ।
निश्चितार्थतरश्चापि हनूमान्कार्य्यसाधने ॥३१॥

अर्थ—हे नीति में पण्डित हनुमान ! तुझ में ही बल, बुद्धि, पराक्रम, देशकाल का विचार और नीति है, सुग्रीव के उक्त

प्रकार कथन करने पर हनुमान् में कार्य्यसिद्धि तथा उसको उक्त गुणसम्पन्न जानकर राम ने सोचा कि सुग्रीव हनुमान् पर पूर्ण भरोसा रखता है और मुझे भी दृढ़निश्चय है कि कार्य्यसिद्धि इसी से होगी, क्योंकि यह कार्य्यसाधन में अतिशय निश्चय वाला है ॥

तदेव प्रस्थितस्यास्य परिज्ञातस्य कर्मभिः ।
भर्त्रा परिगृहीतस्य ध्रुवः कार्य्यफलोदयः ॥३२॥
ददौ तस्य ततः प्रीतः स्वनामाङ्कोपशोभितम् ।
अंगुलीयमभिज्ञानं राजपुत्र्याः परंतपः ॥३३॥
अनेन त्वां हरिश्रेष्ठ चिन्हेन जनकात्मजा ।
मत्सकाशादनुप्राप्तमनुद्विग्नाऽनुपश्यति ॥३४॥

अर्थ—अतएव सब कार्य्यों में कुशल हनुमान् के भेजे जाने पर स्वामी से आदर पाये हुए को कार्य्य में अवश्य सफलता होगी, तत्पश्चात् परंतप राम ने प्रसन्न होकर अपने नाम के चिन्ह से अङ्कित सुन्दर अंगूठी राजपुत्री के लिये निशानी दी, और कहा कि हे वानरश्रेष्ठ ! अनुद्विग्नहुई जनकसुता इस निशानी से तुझे मेरे पास से आया हुआ जानेगी ॥

व्यवसायश्च ते वीर सत्त्वयुक्तश्च विक्रमः ।
सुग्रीवस्य च सन्देशः सिद्धिं कथयतीव मे ॥३५॥
स तद्गृह्य हरिश्रेष्ठः कृत्वा मूर्ध्निकृताञ्जलिः ।
वन्दित्वा चरणौ चैव प्रस्थितः प्लवगर्षभः ॥३६॥

अर्थ—हे वीर ! तेरा निश्चय, साहस वाला पराक्रम और

सुग्रीव का सन्देश इन चिन्हों से ज्ञात होता है कि अवश्य सिद्धि होगी, तब हनुमान् उस अंगूठी को ले हाथ जोड़ मस्तक पर रख राम के चरणों की बन्दना करके चलपड़ा ॥

एवं संचोदिताः सर्वे राज्ञा वानरयूथपाः ।
स्वां स्वां दिशमभिप्रेत्य त्वरिताः संप्रतस्थिरे ॥३७॥
ते सरांसि सरित्कक्षानाकाशं नगराणि च ।
नदी दुर्गांस्तथादेशान्विचिन्वन्ति समन्ततः ॥३८॥

अर्थ—उक्त प्रकार राजा सुग्रीव से प्रेरित हुए सम्पूर्ण सेना पति शीघ्र ही अपनी २ दिशा को लक्ष्य करके चल पड़े, और उन्होंने सरोवर, नदी, बेले, उजाड़, नगर और पर्वतीय देशों में सर्वत्र घूम २ कर सीता की खोज की ॥

इति एकविंशतिः सर्गः

अथ द्वाविंशतिःसर्गः

सं०—अब सम्पाती द्वारा सीता का पता लगना कथन करते हैं:—

सह तारांगदाभ्यां तु सहसा हनुमान्कपिः ।
सुग्रीवेण यथोद्दिष्टं गन्तुं देशं प्रचक्रमे ॥१॥
स तु दूरमुपागम्य सर्वैस्तैः कपिसत्तमैः ।
ततो विचित्य विन्ध्यस्य गुहाश्च गहनानि च ॥२॥
पर्वताग्र नदीदुर्गान्सरांसि विपुलद्रुमान् ।

वृक्षखण्डांश्च विविधान्पर्वतान्वनपादपान् ॥३॥
अन्वेषमाणास्ते सर्वे वानराः सर्वतो दिशम् ।
न सीतां ददृशुर्वीरा मैथिलीं जनकात्मजाम् ॥४॥

अर्थ—तदनन्तर तार और अङ्गद सहित हनुमान् सुग्रीव के बतलाये हुए देश की ओर चला, और उन सब वानरों के साथ दूर जाकर विन्ध्याचल की गहन गुहा और जङ्गलों को ढूंढकर फिर पर्वत की चोटियां, नदीतटों के दुर्गम स्थान, सरोवर, बड़े २ वृक्ष, भांति २ के वृक्ष समूह और पर्वत आदि स्थानों को दशो दिशाओं में हनुमान् आदि सब ने ढूंढा परन्तु जनकसुता सीता को कहीं न देखा ॥

ते विचित्य पुनः खिन्ना विनिष्पत्य समागताः ।
एकान्ते वृक्षमूलेतु निषेदुर्दीनमानसाः ॥५॥
ते मुहूर्त्तं समाश्वस्ताः किंचिद्भग्नपरिश्रमाः ।
पुनरेवोद्यताः कृत्स्नां मार्गितुं दक्षिणां दिशम् ॥६॥

अर्थ—फिर वह ढूढकर थके हुए वन पर्वतादिकों से निकल दीन मन हुए एकान्त में एक वृक्ष के नीचे बैठ गये, और चिरकाल तक आराम करके कुछ दूर हुए परिश्रम वाले फिर सारी दक्षिण दिशा ढूंढने को उद्यत होगये ॥

हनुमत्प्रमुखास्तावत्प्रस्थिताः प्लवगर्षभाः ।
विन्ध्यमेवादितः कृत्वा विचेरुश्च समन्ततः ॥७॥
ततस्ते ददृशुर्घोरं सागरं वरुणालयम् ।
अपारमभिगर्जन्तं घोरैरूर्मिभिराकुलम् ॥८॥

विन्ध्यस्य तु गिरेः पादे संप्रपुष्पित पादपे ।
उपविश्य महात्मानश्चिन्तामापेदिरे तदा ॥९॥

अर्थ—तदनन्तर हनुमान् आदि सब महाशय ढूंढने को तैयार हुए और विन्ध्याचल से प्रारम्भ कर सब ओर घूमे, तब उन्होंने जल से भरे हुए अपार समुद्र को देखा जो बड़ी घोर लहरों से आकुल हुआ गर्ज रहा था, तब वह महात्मा फूले हुए वृक्षों वाले विन्ध्यपर्वत के पाद=एक किनारे बैठकर सोचने लगे कि :—

इदानीमकृतार्थानां मर्तव्यं नात्र संशयः ।
प्रधानभूताश्च वयं सुग्रीवस्य समागताः ॥ १० ॥
इहैव सीतामन्वीक्ष्य प्रवृत्तिमुपलभ्य वा ।
नो चेद्गच्छाम तं वीरं गमिष्यामो यमक्षयम् ॥११॥

अर्थ—अब सीता का पता बिना पाये सुग्रीव के समीप जाना ठीक नहीं, क्योंकि हम लोग उनके प्रधानभूत मन्त्री हैं, हमको अब मरना ही उत्तम है, इसमें संशय नहीं, या तो यहां ही सीता को खोजकर, उसका समाचार लेकर उस बीर के समीप चलें नहीं तो यम के घर जाना ही उचित है ॥

उपविष्टास्तु ते सर्वे यस्मिन्प्रायं गिरिस्थले ।
हरयो गृध्रराजश्च तं देशमुपचक्रमे ॥ १२ ॥
संपातिर्नाम नाम्ना तु चिरजीवी विहङ्गमः ।
भ्राता जटायुषः श्रीमान्विख्यातबलपौरुषः ॥१३॥

अर्थ—यह सोचकर वह सब महाशय पर्वत के जिस स्थल पर खाना पीना छोड़ बैठे थे उसी स्थान पर एक गृध्रराज आया

जो सम्पाती नामक बहुत बूढ़ा श्रीमान् जटायु का विख्यात भाई और जो बल पौरुष वाला था ॥

अंगदः परमायस्तो हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
प्रियं कुर्वन्ति रामस्यत्यक्त्वाप्राणान्यथावयम्॥१४॥

अर्थ—इसके अनन्तर परम दुःखित हुए अङ्गद ने हनुमान् से कहा कि हमारे समान जिसने प्राणों को त्यागकर राम का प्रिय किया अर्थात् सीता का समाचार दिया उस जटायु का भाई यह सम्पाती है, " तब अङ्गद ने उससे कहा कि :—

राघवार्थे परिश्रान्ता वयं संत्यक्तजीविताः ।
कान्ताराणि प्रपन्नाःस्म नच पश्याम मैथिलीम्॥१५॥
तत्तु श्रुत्वा तथा वाक्यमंगदस्य मुखोद्गतम् ।
सबाष्पो वानरान्गृध्रः प्रत्युवाच महास्वनः ॥१६॥

अर्थ—हमने जीवन से निरास होकर राम के लिये परिश्रम किया, सब स्थानों में खोजा पर मैथिली का कुछ पता न मिला, अङ्गद के मुख से निंकले उक्त वाक्य को सुनकर वह बड़ी ध्वनि वाला गृध्र नेत्रों में आंसु भरकर सब वानरों से बोला कि :—

यवीयान्स ममभ्राता जटायुर्नाम वानराः ।
यमाख्यातं हतं युद्धे रावणेन बलीयसा ॥ १७॥
नहि मे शक्तिरस्त्यद्य भ्रातुर्वैरविमोक्षणे ।
वाङ्मात्रेणापि रामस्य करिष्ये साहाय्यमुत्तमम्॥१८॥

अर्थ—हे वानरो ! जटायु नामक मेरा ही छोटा भाई था जिसको तुम युद्ध में बली रावण से मारा गया कहते हो, अब

मेरी इतनी तो शक्ति नहीं कि भाई का वैर रावण से लूं परन्तु वाणीमात्र से मैं राम की भले प्रकार सहायता करूंगा ॥

रामस्य यदिदं कार्यं कर्तव्यं प्रथमं मया ।
जरया च हृतं तेजः प्राणाश्च शिथिला मम ॥१९॥

अर्थ—राम का यह कार्य्य मेरे लिये सब से प्रथम कर्तव्य है परन्तु क्या करूं बुढ़ापे ने मेरा तेज हरलिया और प्राण भी शिथिल होगये हैं ॥

तरुणी रूपसम्पन्ना सर्वाभरणभूषिता ।
ह्रियमाणा मया दृष्टा रावणेन दुरात्मना ॥२०॥
क्रोशन्ती रामरामेति लक्ष्मणेति च भामिनी ।
तां तु सीतामहं मन्ये रामस्य परिकीर्तनात् ॥२१॥

अर्थ—रूपवती तथा सारे भूषणों से भूषित एक युवति दुरात्मा रावण से हरी जाती हुई मैंने देखी है, जो सुन्दरी हा राम!! हा राम !! हा लक्ष्मण !! पुकार रही थी, सो राम के कीर्तन से मैं उसको सीता समझता हूं ॥

इतो द्वीपे समुद्रस्य सम्पूर्णे शतयोजने ।
तस्मिल्लङ्कापुरी रम्या निर्मिता विश्वकर्मणा ॥२२॥
जांबूनदमयैर्द्वारैश्चित्रैः कांचन वेदिकैः ।
प्रासादैर्हेमवर्णैश्च महद्भिः सुसमाकृता ॥ २३ ॥
प्राकारेणार्कवर्णेन महता च समन्विता ।
तस्यां वसति वैदेही दीना कौशेयवासिनी ॥२४॥

अर्थ—यहां से पूरे सौ योजन पर समुद्र के द्वीप में विश्वकर्मा

की बनाई हुई रमणीय लङ्कापुरी है, जो चित्रित सुनहरी द्वारों, सुनहरी वेदियों और सुनहरी रंग के बड़े २ मन्दिरों से सजी हुई, और जो बराबर=एक जैसे चमकते हुए बड़े परकोटे वाली है उसमें रेशमी वस्त्र धारण कीहुई वैदेही वास करती है ॥

रावणान्तःपुरे रुद्धा राक्षसीभिः सुरक्षिता ।
जनकस्यात्मजां राज्ञस्तस्यां द्रक्ष्यथ मैथिलीम्॥२५॥
उपायो दृश्यतां कश्चिदुलङ्घने लवणाम्भसः ।
अभिगम्य तु वैदेहीं समृद्धार्था गमिष्यत ॥२६॥

अर्थ—रावण के अन्तःपुर में राक्षसियों से रुकी हुई सुरक्षित जनकराज की कन्या मैथिली को तुम वहां देखोगे, समुद्र से पार लङ्घने का उपाय सोचो फिर वैदेही के समीप पहुंचकर सफल मनोरथ वाले हुए लौटोगे, इसमें सन्देह नहीं॥

इति द्वाविंशतिः सर्गः

अथ त्रयोविंशतिःसर्गः

सं०—अब समुद्र पर पहुंच लंका में जाने के लिये हनुमान् को उत्साहित करना कथन करते हैं :—

सम्पातेर्वचनं श्रुत्वा हरयो रावणक्षयम् ।
हृष्टाः सागरमाजग्मुः सीतादर्शन कांक्षिणः ॥१॥

अभिगम्य तु तं देशं ददृशुर्भीमविक्रमाः ।
कृत्स्नंलोकस्य महतः प्रतिविंवमवस्थितम् ॥२॥
दक्षिणस्य समुद्रस्य समासाद्योत्तरां दिशम् ।
सन्निवेशं ततश्चक्रुर्हरिवीरा महाबला ॥३॥

अर्थ–सम्पाती के उक्त वचन सुनकर प्रसन्न हुए सीता के दर्शन की अभिलाषा वाले वानर समुद्र पर आये, और वहां पहुंचकर बड़े पराक्रम वाले वानरों ने समुद्र को देखा जो मानो सब लोकों का प्रतिविम्वरूप स्थित था, फिर वह महाबली वानर दक्षिण समुद्र की उत्तर दिशा में पहुंचकर वहीं ठहरगये ॥

प्रसुप्तमिव चान्यत्र क्रीडन्तमिव चान्यतः ।
क्वचित्पर्वतमात्रैश्च जलराशिभिरावृतम् ॥४॥
आकाशमिव दुष्पारं सागरं प्रेक्ष्य वानराः ।
विषेदुः सहिताः सर्वे कथं कार्यमिति ब्रुवन् ॥५॥
ततस्तान्हरिवृद्धांश्च तच्च सैन्यमरिन्दमः ।
अनुमान्यांगदः श्रीमान्वाक्यमर्थवदब्रवीत् ॥६॥

अर्थ–वह सागर जो कहीं सोये हुए की भांति, कहीं खेलते हुए के समान और कहीं पर्वत समान ऊंची लहरों से युक्त था, आकाश की भांति बड़े कष्ट से पार होने योग्य सागर को देखकर "कैसे कार्य्यसिद्धि हो" यह कहते हुए सब वानर निरास होगये तब उन वृद्धों तथा सैनिकों का मान करते हुए शत्रुओं के तपाने वाले श्रीमान् अगद उनसे यह अर्थयुक्त वाक्य बोले कि :—

क इदानीं महातेजा लङ्घयिष्यति सागरम् ।
कः करिष्यति सुग्रीवं सत्यसन्धमरिन्दमम् ॥७॥
को वीरो योजनशतं लङ्घयेत प्लवंगमः ।
इमांश्च यूथपान्सर्वान् मोचयेत् को महाभयात् ॥८॥
कस्य प्रसादाद्रामं च लक्ष्मणं च महाबलम् ।
अभिगच्छेम संहृष्टाः सुग्रीवं च वनौकसम् ॥९॥

अर्थ–कौन महातेजस्वी इस सागर को लङ्घेगा और शत्रुओं के दमन करने वाले सुग्रीव को कौन सत्यप्रतिज्ञ बनायेगा, ऐसा कौन वीर है जो इस सौ योजन समुद्र को लांघकर इन यूथपों=सेनापतियों को महाभय से अभय करेगा, ऐसा कौन वीर है जिसकी कृपा से हम सब महाबली राम, लक्ष्मण और सुग्रीव को जाकर प्रसन्न हुए देखेंगे ॥

यदि कश्चित्समर्थो वः सागरप्लवने हरिः ।
स ददात्विह नः शीघ्रं पुण्यामभयदक्षिणाम् ॥१०॥
अंगदस्य वचः श्रुत्वा न कश्चित्किञ्चदब्रवीत् ।
स्तिमितेवाभवत्सर्वा सा तत्र हरिवाहिनी ॥ ११ ॥
जाम्बवान्समुदीक्ष्यैवं हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
वीर वानरलोकस्य सर्वशास्त्रविदांवर ॥१२॥
तूष्णीमेकान्तमाश्रित्य हनूमन् किं न जल्पसि ॥१३॥

अर्थ–यदि आप में से कोई महात्मा सागर पार जाने में

समर्थ है तो वह शीघ्र ही हमको पवित्र अभय दान दे, अङ्गद के उक्त वचन सुनकर कोई कुछ न बोला वह सारी सेना मानो स्थित सी होगई, तब जाम्बवान् यह दशा देखकर हनुमान् से बोला कि हे हनुमन् ! आप वीर तथा सब शास्त्र जानने वालों में श्रेष्ठ होने के कारण आप एकान्त में चुपचाप कैसे बैठे हैं बोलते क्यों नहीं॥

बलं बुद्धिश्च तेजश्च सत्त्वं च हरिपुंगव ।
विशिष्टं सर्वभूतेषु किमात्मानं न सज्जसे ॥१४॥
वयमद्यगतप्राणा भवानस्मासु साम्प्रतम् ।
दाक्ष्यविक्रमसम्पन्नः कपिराज इवापरः ॥१५॥
त्वद्वीर्य्यं द्रष्टुकामा हि सर्वा वानरवाहिनी ।
उत्तिष्ठ हरिशार्दूल लङ्घयस्व महार्णवम् ॥१६॥

अर्थ—हे वानर श्रेष्ठ ! आपका बल, बुद्धि, तेज और साहस सब लोगों से बढ़कर है, सो आप समुद्र लङ्घने के लिये क्यों तैयार नहीं होते, अब मेरी शक्ति घट गई है और इस समय आप हम सब में फुर्तीले तथा पराक्रमसम्पन्न मानो दूसरे सुग्रीव हैं, यह सारी सेना तुम्हारी शक्ति देखना चाहती है, सो हे हनुमान ! उठ और महासागर से पार हो ॥

इति त्रयोविंशतिः सर्गः

अथ चतुर्विंशतिः सर्गः

सं०—अब हनुमान् के समुद्र लंघने का स्वीकार करना कथन करते हैं :—

तं दृष्ट्वा जृम्भमाणं ते क्रमितुं शतयोजनम् ।
वेगेनापूर्यमाणं च सहसा वानरोत्तमम् ॥ १ ॥
सहसाशोकमुत्सृज्य प्रहर्षेण समन्विताः ।
विनेदुस्तुष्टुवुश्चापि हनूमन्तं महाबलम् ॥ २ ॥
तस्य संस्तूयमानस्य वृद्धैर्वानरपुंगवैः ।
तेजसापूर्यमाणस्य रूपमासीदनुत्तमम् ॥३॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह सब वानर सौ योजन समुद्र पार होने के लिये उत्साहित तथा तत्क्षण वेग से पूर्ण हुए उस हनुमान् को देखकर शोक त्याग हर्षित हो बड़ी ध्वनि करने लगे और सबने महाबली हनुमान् की स्तुति की, वृद्ध पुरुषों द्वारा स्तुति किये जाने और तेज से पूर्ण हुए हनुमान् का रूप सर्वोत्तम होगया ॥

हरीणामुत्थितो मध्यात्संप्रहृष्टतनूरुहः ।
अभिवाद्य हरीन्वृद्धान्हनूमानिदमब्रवीत् ॥ ४ ॥
बुद्ध्या चाहं प्रपश्यामि मनश्चेष्टा च मे तथा ।
अहं द्रक्ष्यामि वैदेहीं प्रमोदध्वं प्लवंगमाः ॥ ५ ॥

अर्थ—वह वीर वानरों के मध्य से उठ हर्षित हुआ सब वृद्धों को अभिवादन करके बोलाकि हे वानरो ! तुम प्रसन्न होओ, मैं बुद्धिपूर्वक निश्चय जानता हूं और मेरे मन की चेष्टा भी ऐसी ही है कि मैं वैदेही को अवश्य देखुंगा ॥

तच्चास्य वचनं श्रुत्वा ज्ञातीनां शोकनाशनम् ।
उवाच परिसंहृष्टो जाम्बवान्प्लवगेश्वरः ॥ ६ ॥

वीर केसरिणः पुत्र वेगवन्मारुतात्मज ।
ज्ञातीनां विपुलः शोकस्त्वया तात प्रणाशितः॥७॥
तव कल्याणरुचयः कपिमुख्याः समागताः ।
मंगलान्यर्थं सिद्ध्यर्थं करिष्यन्ति समाहिताः ॥ ८॥

अर्थ—अपने सुहृदों के शोकनाशक हनुमान् के उक्त वचन सुनकर परमप्रसन्न हुआ जाम्बवान् बोला कि हे वीर ! हे केसरी पुत्र ! हे वेगवान् पवन के पुत्र ! हे तात ! तैने बन्धुवर्ग का बड़ा शोक दूर किया है, यह सब मुख्य योद्धा जो तुम्हारे साथ आये हैं तुम्हारा कल्याण चाहते हुए तेरी अर्थसिद्धि के लिये एकाग्र हो मङ्गलकार्य्य करेंगे अर्थात् यह सब एकाग्रचित्त हुए परमात्मा से प्रार्थना करेंगे कि आप सीता का पता लेकर सकुशल लौटें ॥

ऋषीणां च प्रसादेन कपिवृद्धमतेन च ।
गुरूणां च प्रसादेन संप्लव त्वं महार्णवम् ॥ ९ ॥
स्थास्यामश्चैकपादेन पादागमनं तव ।
त्वद्गतानि च सर्वेषां जीवनानि वनौकसाम् ॥१०॥

अर्थ—ऋषियों के प्रसाद तथा वृद्ध वानरों के आशीर्वाद और गुरुओं की कृपा से तू महासागर से पार हो, तेरे आगमन पर्य्यन्त " तुम्हारे लिये वर मांगते हुए " हम सब एक पाद से तप में खड़े रहेंगे, क्योंकि हम सबका जीवन तेरे ही अधीन है ॥

स वेगवान्वेगसमाहितात्मा हरिप्रवीरः

परवीरहन्ता । मनः समाधाय महा-
नुभावो जगाम लङ्कां मनसा मनस्वी॥११॥

अर्थ—तदनन्तर वह महावेगवान्, वेग से एकाग्र मन वाला, वीर शत्रुओं का हनन करने वाला तथा उदार मन महानुभाव हनुमान् एकाग्र मन द्वारा लङ्का में प्रविष्ट हुआ अर्थात् उसने मन से लङ्का का ध्यान किया ॥

इति चतुर्विंशतिः सर्गः

समाप्तश्चेदं किष्किन्धाकाण्डम्

ओ३म्

अथ सुन्दरकाण्डं प्रारभ्यते
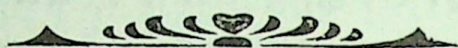
सं०—अब हनुमान् का समुद्रपार होना कथन करते हैं :—

दुष्करं निष्प्रतिद्वन्द्वं चिकीर्षन्कर्म वानरः ।
समुदग्र शिरोग्रीवो गवांपतिरिवावभौ ॥ १ ॥
प्लवगप्रवरैर्दृष्टः प्लवने कृतनिश्चयः ।
ववृधे रामवृध्यर्थं समुद्र इव पर्वसु ॥ २ ॥

अर्थ—दुष्कर=कठिनता से होने योग्य तथा शक्ति से बढ़कर कर्म करने की इच्छा वाला और ऊंचे शिर तथा लम्बी ग्रीवा वाला हनुमान् बड़े वृषभ के समान सुशोभित हुआ, प्लव=नौका द्वारा तैरने में निश्चय वाला तथा जल की विद्या जानने वालों से सुशिक्षित हनुमान् राम के लिये अर्थवृद्धि को इस प्रकार प्राप्त हुआ जैसे अमावस्या तथा पूर्णमासी आदि पर्वों में समुद्र वृद्धि को प्राप्त होता है ॥

निकर्षन्नूर्मिजालानि बृहन्ति लवणाम्भसि ।
पुप्लुवे कपिशार्दूलो विकिरन्निव रोदसी ॥ ३ ॥
मेरुमन्दरसङ्काशानुद्गतान्सुमहार्णवे ।
अत्यक्रामन्महावेगस्तरङ्गान्गणयन्निव ॥ ४ ॥

अर्थ—वह वानरश्रेष्ठ समुद्र के उस खारी जल में बड़ी २ लहरों के समूहों को चीरकर मानो ऊपर नीचे जल के फूल

बिखेरता हुआ नौका को खेवने लगा, और महासागर में मेरुपर्वत के समान उठती हुई लहरों को मानो गिनता हुआ बड़े वेग से गया ॥

तिमिनक्रझषाः कूर्मा दृश्यन्ते विवृतास्तदा ।
वस्त्रापकर्षणेनेव शरीराणि शरीरिणाम् ॥ ५ ॥
येनासौ याति बलवान्वेगेन कपिकुंजरः ।
तेन मार्गेण सहसा द्रोणीकृत इवार्णवः ॥६॥

अर्थ—लहरों द्वारा जल के उछलने पर मछलियें, मगर, मच्छ इस प्रकार नग्न हुए दीखते थे जैसे वस्त्र के खींच लेने से शरीरधारियों के शरीर दृष्टिगत होते हैं, बलवान् हनुमान् बड़े वेग से जिस मार्ग द्वारा जारहा था उस मार्ग से समुद्र भी सहसा द्रोण=पतनाले की भांति होता जाता था अर्थात् उसकी नौका का जल में आकार बनता जाता था ॥

प्राप्तभूयिष्ठपारस्तु सर्वतः परिलोकयन् ।
योजनानां शतस्यान्ते वनराजीं ददर्श सः ॥७॥
सागरं सागरानूपान्सागरानूपजान्द्रुमान् ।
सागरस्य च पत्नीनां मुखान्यपि विलोकयत् ॥८॥

अर्थ—सागर का बहुत बड़ा भाग पार करके सब ओर देखते हुए हनुमान् ने सौ योजन की समाप्ति पर वनसमूह को देखा, और सागर, सागर के किनारे का देश तथा उस देश में होने वाले वृक्ष और सागर की पत्नियें=नदियों के मुहाने भी देखे ॥

स चारुनानाविधरूपधारी परं समासाद्य

समुद्रतीरम् । निपत्य तीरे च महोदधस्तदा
ददर्श लङ्काममरावतीमिव ॥ ९ ॥

अर्थ—सुन्दर नानाविधरूपधारी हनुमान् ने समुद्र के परले तीर पर पहुंच महासागर के किनारे उतरकर वहां से अमरावती के तुल्य लङ्का को देखा ॥

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

सं०—अब हनुमान् का लङ्का में प्रवेशविषयक विचार कथन करते हैं :—

योजनानां शतं श्रीमांस्तीर्त्वाप्युत्तमविक्रमः ।
अनिःश्वसन्कपिस्तत्र न ग्लानिमधिगच्छति ॥१॥
स तु वीर्यवतां श्रेष्ठः प्लवतामपि चोत्तमः ।
जगाम वेगवांल्लङ्कां लङ्घयित्वा महोदधिम् ॥२॥

अर्थ—वह बड़े पराक्रम वाला श्रीमान् हनुमान् सौ योजन समुद्र लङ्घकर भी न हांपा और न खेद को प्राप्त हुआ, वह बलवानों में श्रेष्ठ तथा कूदने फांदने वाले फुरतीलों में श्रेष्ठ हनुमान् महासागर को लङ्घकर बड़े वेग से लङ्का को गया ॥

शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्ति वनानि च ।
मधुमन्ति च मध्यन जगाम नगवन्ति च ॥३॥

समासाद्य च लक्ष्मीवांल्लङ्कां रावण पालिताम् ।
परिखाभिः स पद्माभिः सोत्पलाभिरलंकृताम् ॥४॥

अर्थ—वह हनुमान् नील तथा हरित घास और उत्तम गन्ध तथा मधु वाले वृक्षों के वन में होकर लङ्का में पहुंचा. और उस ऐश्वर्य्यसम्पन्न हनुमान् ने वहां पहुंचकर पद्मपत्र तथा उत्पलों वाली खाइयों से अलंकृत रावण पालित लङ्का को देखा ॥

सीतापहरणात्तेन रावणेन सुरक्षिताम् ।
समन्ताद्विचरद्भिश्च राक्षसैरुग्रधन्विभिः ॥५॥
काञ्चनेनावृतां रम्यां प्राकारेण महापुरीम् ।
गृहैश्च गिरिसंकाशैः शारदांबुदसन्निभैः ॥६॥
पाण्डुराभिः प्रतोलीभिरुच्चाभिरभिसंवृताम् ।
अट्टालकशताकीर्णां पताकाध्वज शोभिताम् ॥७॥

अर्थ—जिसकी सीता हरलाने के कारण रावण से विशेष रक्षा कीहुई है अर्थात् जिसके चारो ओर प्रचण्ड धनुषों वाले राक्षस घूम रहे हैं, ऐसी रमणीय महापुरी जिसके चारो ओर सुनहरी परकोटा और शरदृऋतु के बादल समान उज्वल पर्वताकार ऊंचे २ महलों वाली, चन्दनमिश्रित जल के छिड़काव से उज्वल तथा सुगन्धित सड़कों वाली और जो सैकड़ों ऊंची २ अटारियों से युक्त तथा झण्डिओं और झण्डों से सजी हुई सुशोभित थी ॥

तोरणैः कांचनैर्दिव्यैर्लता पंक्ति विराजितैः ।
ददर्श हनुमांल्लङ्कां देवो देवपुरीमिव ॥८॥

गिरिमूर्ध्नि स्थितां लङ्कां पाण्डुरैर्भवनैः शुभैः ।
ददर्श स कपिः श्रीमान्पुरीमाकाशगामिव ॥९॥

अर्थ—जिसके सुवर्ण के पत्रों के दिव्य बन्दनवार तथा लतायें जगह २ किनारे २ लगी हुई इन्द्रपुरी के समान लङ्का को हनुमान् ने देखा, श्वेत सुन्दर भवनों वाली, पर्वत की चोटी पर स्थित लङ्का को श्रीमान् हनुमान् ने आकाशगामी पुरी की भांति देखा ॥

ततः स चिन्तयामास मुहूर्त्तं कपिकुञ्जरः ।
गिरेश्शृंगे स्थितस्तस्मिन् रामस्याभ्युदयं ततः ॥१०॥
अनेन रूपेण मया न शक्या रक्षसां पुरी ।
प्रवेष्टुं राक्षसैर्गुप्ताक्रूरैर्बलसमन्वितैः ॥११॥

अर्थ—तत्पश्चात् हनुमान् कुछ काल पर्वत की चोटी पर ठहरकर राम की कार्य्यसिद्धि का उपाय सोचने लगा कि मैं बलवान् क्रूर राक्षसों से रक्षा कीहुई इस पुरी में इस रूप से प्रवेश नहीं करसक्ता हूं ॥

महौजसो महावीर्या बलवन्तश्च राक्षसाः ।
वंचनीया मया सर्वे जानकीं परिमार्गता ॥१२॥
केनोपायेन पश्येयं मैथिलीं जनकात्मजाम् ।
अदृष्टो राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ॥१३॥

अर्थ—जानकी को ढूंढते हुए मैंने इन सब महापराक्रमी, महावीर्य्य बलवान् राक्षसों को बञ्चन करना है, कोई ऐसा उपाय

हो जिससे राक्षसेन्द्र दुरात्मा रावण मुझे न देखे और मैं सीता को देख सकूं ॥

न विनश्येत्कथं कार्यं रामस्य विदितात्मनः ।
एकामेकस्तु पश्येयं रहिते जनकात्मजाम् ॥१४॥
मयि दृष्टे तु रक्षोभी रामस्य विदितात्मनः ।
भवेद्व्यर्थमिदं कार्यं रावणानर्थमिच्छतः ॥१५॥

अर्थ—किसप्रकार विदितात्मा=विज्ञानी राम का कार्य्य नष्ट न हो और मैं अकेला कैसे अकेली जनकसुता को एकान्त में देखूं, यदि राक्षसों ने मुझे जान लिया तो रावण के वध की इच्छा वाले विज्ञानी राम का कार्य्य व्यर्थ होजायगा ॥

नहि शक्यं क्वचित्स्थातुमविज्ञातेन राक्षसैः ।
अपि राक्षसरूपेण किमुतान्येन केनचित् ॥१६॥
वायुरप्यत्र नाज्ञातश्चरेदिति मतिर्मम ।
नह्यत्राविदितं किञ्चिद्रक्षसां भीमकर्मणाम् ॥१७॥

अर्थ—और ऐसा कोई स्थान नहीं जहां मैं ठहर जाऊं, और मुझको राक्षस न जाने, चाहे राक्षसों के वेष में ही ठहरूं, फिर अन्य रूप धारण करने से क्या वह तो प्रकट होही जायगा, मेरा निश्चय है कि मेरी तो कथा ही क्या यहां वायु भी छिपकर नहीं जासक्ता और न यहां भयङ्कर कर्म्मों वाले राक्षसों से बिना ज्ञात हुए कुछ रहसक्ता है ॥

तदहं स्वेन रूपेण रजन्यां ह्रस्वतां गतः ।
लङ्कामभिपतिष्यामि राघवस्यार्थसिद्धये ॥१८॥

इति निश्चित्य हनुमान्सूर्यस्यास्तमयं कपिः ।
आचकांक्षे तदावीरो वैदेह्यादर्शनोत्सुकः ॥१९॥

अर्थ—सो मैं रात्रि के समय अपने ही वेष में एक साधारण सा बनकर राघव की कार्यसिद्धि के लिये लङ्का में प्रवेश करूंगा, यह निश्चय कर वीर हनुमान् सीता के दर्शनों की उत्कण्ठा में सूर्य्य के अस्त होने की प्रतीक्षा करने लगा ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

सं०—अब हनुमान् का लङ्का में प्रवेश और रावण के अन्तःपुर में सीता का ढूंढना कथन करते हैं :—

अद्वारेण महावीर्यः प्राकारमवपुप्लुवे ।
निशि लङ्कां महासत्वो विवेश कपिकुंजरः ॥ १ ॥
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कपिराजहितंकरः ।
चक्रेऽथ पादं सव्यं च शत्रूणां स तु मूर्धनि ॥ २ ॥

अर्थ—वह महा बलवान्, महान् हृदय वाला हनुमान् रात्रि के समय अद्वार=परकोटा को फांद कर लङ्का में प्रविष्ट हुआ, और सुग्रीव के उस हितैषी हनुमान् ने लङ्का नगरी में प्रवेश करके मानो अपना बायां पैर शत्रु के शिर पर रख दिया ॥

प्रजज्वाल तदा लंका रक्षोगणगृहैः शुभैः ।
सिताभ्र सदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः ॥ ३ ॥

वर्धमान गृहैश्चापि सर्वतः सुविभूषितैः ।
राघवार्थे चरञ्श्रीमान्ददर्श च ननन्द च ॥ ४ ॥

अर्थ—उस समय सुन्दर सब ओर से सजे हुए श्वेत बादल के समान राक्षसों के पद्माकार तथा स्वस्तिकादि घरों से लङ्का सुशोभित हुई जगमगा रही थी, वह श्रीमान् हनुमान् राघव के अर्थ लङ्का में घूमकर सब ओर देखता हुआ अति प्रसन्न हुआ ॥

भवनाद्भवनं गच्छन्ददर्श कपिकुञ्जरः ।
विविधाकृतिरूपाणि भवनानि ततस्ततः ॥ ५ ॥
शुश्राव जपतां तत्र मन्त्रान्रक्षो गृहेषु वै ।
स्वाध्यायनिरतांश्चैव यातुधानान्ददर्श सः ॥ ६ ॥
गृहाद्गृहं राक्षसानामुद्यानानि च सर्वशः ।
वीक्षमाणोऽप्यसंत्रस्तः प्रासादांश्च चचार सः ॥७॥

अर्थ—एक भवन से दूसरे भवन को जाते हुए हनुमान् ने वहां विविध आकृति और रूपों वाले भवन देखे, वहां राक्षसों के घरों में उसने जप करते हुओं के मन्त्र सुने और स्वाध्याय में रत राक्षसों को देखा, राक्षसों के एक घर से दूसरा और दूसरे से तीसरा इत्यादि घर और बगीचों को देखता हुआ वह निर्भय होकर रावण के महलों के समीप घूमने लगा ॥

ददर्श भवनश्रेष्ठं हनुमान्मारुतात्मजः ।
भवनं राक्षसेन्द्रस्य बहुप्रासादसंकुलम् ॥ ८ ॥
मार्गमाणस्तु वैदेहीं सीतामायतलोचनाम् ।
सर्वतः परिचक्रमा हनूमानरिसूदनः ॥ ९ ॥

उत्तमं राक्षसावासं हनूमानवलोकयन् ।
आससादाथ लक्ष्मीवान् राक्षसेन्द्र निवेशनम्‌ ॥ १० ॥

अर्थ–तदनन्तर पवनपुत्र हनुमान् ने राक्षसपति रावण का श्रेष्ठभवन देखा जो बहुत महलों से भरपूर था, फिर वह विशाल नेत्रों वाली वैदेही को ढूंढ़ता हुआ शत्रुओं का दमन करने वाला हनुमान् उस भवन के चारो ओर घूमा, पश्चात् रावण का उत्तम स्थान देखता हुआ श्रीमान् हनुमान् उसके शयनस्थान की ओर गया।

ततस्तां प्रस्थितः शालां ददर्श महतीं शिवाम् ।
रावणस्य महाकान्तां कान्तामिव वरास्त्रियम् ॥ ११ ॥
मणिसोपानविकृतां हेमजालविराजिताम् ।
स्फाटिकैरावृततलां दन्तान्तरितरूपिकाम् ॥ १२ ॥
मुक्तावज्रप्रवालैश्चरूप्यचामी करैरपि ।
विभूषितां मणिस्तम्भैः सुबहुस्तम्भ भूषिताम् ॥ १३ ॥

अर्थ–और वह उस सुन्दर बड़ी शयनशाला की ओर प्रस्थित हुआ जो उत्तम स्त्री की भांति रावण की बड़ी प्यारी होने से जिसकी सीढ़ियों में मणियें जड़ी हुई थीं, जो सुवर्ण के झरोकों से भूषित, संगमर्मर के फर्श वाली और जिसके बीच दांत का काम किया हुआ तथा मोती, हीरा, मूंगा, चांदी, सुवर्ण के काम से सजी हुई बहुत से स्तम्भ=खम्भों वाली और वह सब खम्भे मणियों के काम से सुशोभित थे ॥

समैर्ऋजुभिरत्युच्चैः समन्तात्सुविभूषितैः ।
स्तम्भैः पक्षैरिवात्युच्चैर्दिवं संप्रस्थितामिव ॥ १४ ॥

परार्ध्यास्तरणोपेतां रक्षोधिपनिषेविताम् ।
मनसो मोदजननीं वर्णस्यापि प्रसाधिनीम्॥१५॥

अर्थ—और जो सम, सीधे तथा बड़े ऊंचे २ सजे हुए खम्भों तथा अति ऊंचे पंखों से सुशोभित मानो आकाश को उड़ी जाती थी, जिसमें सर्वोत्तम गलीचा बिछा हुआ, राक्षसों के अधिपति रावण से सेवित, मन को प्रसन्न करने वाली और जो शरीर की कान्ति को बढ़ाने वाली थी ॥

दीपानां च प्रकाशेन तेजसा रावणस्य च ।
अर्चिभिर्भूषणानां च प्रदीप्तेत्यभ्यमन्यत ॥१६॥
तत्र दिव्योपमं मुख्यं स्फाटिकं रत्नभूषितम् ।
अवेक्षमाणो हनुमान्ददर्श शयनासनम् ॥१७॥
पीत्वाप्युपरतं चापि ददर्श स महाकपिः ।
भास्वरे शयने वीरं प्रसुप्तं राक्षसाधिपम् ॥१८॥

अर्थ—जो दीपकों के प्रकाश, रावण के तेज और भूषणों की चमक से मानो जलती हुई प्रतीत होती थी, उस शाला में देखते हुए हनुमान् ने रत्नों से भूषित एक दिव्य बिलौरी पत्थर का शयनासन=पलङ्ग देखा, और उस भास्वर=चमकते हुए पलङ्ग पर मद्यपान कर लेटे हुए राक्षसाधिपति को वीर हनुमान् ने देखा ॥

आसाद्य परमोद्विग्नः सोपासर्पत्सुभीतवत् ।
पत्नीः स प्रियभार्यस्य तस्य रक्षः पतेर्गृहे ॥१९॥

शशिप्रकाशवदनावरकुण्डलभूषणाः ।
अम्लानमाल्याभरणा ददर्श हरियूथपः ॥२०॥
तासामेकान्तविन्यस्ते शयानां शयने शुभे ।
ददर्शरूपसम्पन्नामथ तां स कपि स्त्रियम् ॥२१॥

अर्थ–और उसके समीप आकर बड़ा उद्विग्न=उदास हुआ अत्यन्त भयभीत की भांति पीछे हट गया, और स्त्रियों से प्यार करने वाले उस रावण के गृह में हनुमान् ने चन्द्रतुल्य मुख वाली, सुन्दर कुण्डल पहने हुई, फूलों की मालायें और आभूषणों से सुशोभित पत्नियों को देखा, और उनमें से उसने एकान्त स्थित एक उत्तम शय्या पर लेटी हुई बड़ी रूपवती एक स्त्री देखी ॥

विभूषयन्तीमिव च स्वश्रिया भवनोत्तमम् ।
कपिर्मन्दोदरीं तत्र शयानां चारुरूपिणीम् ॥२२॥
स तां दृष्ट्वा महाबाहुर्भूषितां मारुतात्मजः ।
तर्कयामास सीतेति रूपयौवनसम्पदा ॥२३॥

अर्थ–जो अपनी शोभा से मानो उस उत्तम भवन को शोभायमान करती हुई वह मन्दोदरी थी जो सुन्दर रूपवती वहां लेटी हुई थी, महाबाहु हनुमान् उस परम सुन्दरी स्त्री को देखकर उसके रूप यौवन की सम्पत्ति से यह विचारने लगा कि कदाचित् यही सीता हो ॥

अवधूय च तां बुद्धिं बभूवावस्थितस्तदा ।
जगाम चापरां चिन्तां सीतां प्रति महाकपिः ॥२४॥

न रामेण वियुक्ता सा स्वप्तुमर्हति भामिनी ।
न भोक्तुं नाप्यलंकर्तुं न पानमुपसेवितुम् ॥२५॥

अन्येयमिति निश्चित्य भूयस्तत्र चचार सः ।
एवं सर्वमशेषेण रावणान्तःपुरं कपिः ॥२६॥
ददर्श स महातेजा न ददर्श च जानकीम् ॥२७॥

अर्थ—पर उसी समय उस निश्चय को हटाकर हनुमान् सीताविषयक दूसरा विचार करने लगा कि राम से वियुक्त हुई वह सुन्दरी सीता न सो सकती, न भोग विलास कर सकती, न अलङ्कार करसक्ती और न पान सेवन कर सक्ती है, निःसन्देह यह कोई अन्य है, ऐसा निश्चय करके फिर वहां विचरने लगा, इस प्रकार रावण का सम्पूर्ण अन्तःपुर=रनिवास उस महातेजस्वी हनुमान् ने भलेप्रकार देखा परन्तु जानकी को न पाया ॥

निरीक्षमाणश्च ततस्ताः स्त्रियः स महाकपिः ।
जगाम महतीं शङ्कां धर्मसाध्वसशङ्कितः ॥२८॥
परदारावरोधस्य प्रसुप्तस्य निरीक्षणम् ।
इदं खलु ममात्यर्थं धर्मलोपं करिष्यति ॥२९॥
नहि मे परदाराणां दृष्टिर्विषयवर्तिनी ।
अयं चात्र मया दृष्टः परदारपरिग्रहः ॥३०॥

अर्थ—उन स्त्रियों को देखकर धर्मभय से भयभीत हुए हनुमान् को बड़ी शङ्का उत्पन्न हुई कि शयन कीहुई कुलीन परस्त्रियों को देखना मेरा अत्यन्त धर्म लोप करेगा, मेरी दृष्टि आजतक

ऐसी अवस्था में कभी परस्त्रियों पर नहीं पड़ी थी और यहां मैंने परस्त्रियों को देखा है ॥

तस्य प्रादुरभूच्चिन्ता पुनरन्या मनस्विनः ।
निश्चितैकान्तचित्तस्य कार्यनिश्चयदर्शिनी ॥३१॥
कामं दृष्टा मया सर्वा विश्वस्ता रावणस्त्रियः ।
न तु मे मनसा किंचिद्वैकृत्यमुपपद्यते ॥३२॥
मनो हि हेतुः सर्वेषामिन्द्रियाणां प्रवर्तने ।
शुभाशुभास्ववस्थासु तच्च मे सुव्यवस्थितम् ॥३३॥

अर्थ—फिर उस एकाग्रचित्त हनुमान् को ठीक निश्चय पर पहुंचाने वाला एक निश्चित दूसरा विचार उत्पन्न हुआ कि निःसन्देह मैंने लेटी हुई रावण की सब स्त्रियें देखी हैं परन्तु मेरे मन में कोई विकार उत्पन्न नहीं हुआ, और शुभाशुभ अवस्थाओं में मन ही सारे इन्द्रियों की प्रवृत्ति में हेतु है अर्थात् मन के जाने पर ही सब इन्द्रियां विषयों में प्रवृत्त होती हैं सो वह मेरा मन स्थिर है तनिक भी चलायमान नहीं हुआ ॥

नान्यत्र हि मया शक्या वैदेही परिमार्गितुम् ।
स्त्रियो हि स्त्रीषु दृश्यन्ते सदा संपरिमार्गणे॥३४॥
तदिदं मार्गितं तावच्छुद्धेन मनसा मया ।
रावणान्तःपुरं सर्वं दृश्यते नच जानकी ॥३५॥
तामपश्यन्कापिस्तत्र पश्यश्चान्यावरस्त्रियः ।
अपक्रम्य तदा वीरः प्रस्थातुमुपचक्रमे ॥३६॥

अर्थ-और सीता कहीं अन्यत्र ढूंढी जाही नहीं सक्ती है, क्योंकि ढूंढने में स्त्रियें सदा स्त्रियों में ही देखी जाती हैं.सो मैंने शुद्ध मन द्वारा रावण का सारा अन्तःपुर ढूंढलिया पर जानकी नहीं दीखती, जब उस बीर हनुमान् ने वहां और ही सुन्दर स्त्रियों को देखा और सीता को न देखा तब वह वहां से निकलकर चल पड़ा ॥

इति तृतीयः सर्गः

अथ चतुर्थः सर्गः

सं०-अब सीता के न मिलने से हनुमान् की चिन्ता तथा अनेकविध विचार कथन करते हैं:—

स चिन्तयामास ततो महाकपिः प्रियामपश्यन् रघुनन्दनस्यताम् । ध्रुवं न सीता भ्रियते यथा न मे विचिन्वतो दर्शनमेति मैथिली ॥ १ ॥

अर्थ-तदनन्तर वह हनुमान् राम की प्यारी सीता को न देखता हुआ सोचने लगा कि निःसन्देह मैथिली जीवित नहीं है, क्योंकि वह मेरे ढूंढते हुए कहीं नहीं दीखती ॥

सा राक्षसानां प्रवरेण बाला स्वशील संरक्षण तत्परासती । अनेन नूनं प्रतिदुष्टकर्मणा हता भवेदार्य्यपथे परे स्थिता ॥ २ ॥

अर्थ-इससे ज्ञात होता है कि पवित्र आर्यपथ में स्थित

अर्थात् सदाचार में रत तथा अपने शील रक्षण में तत्पर उस बाला को इस दुष्ट कर्मों वाले राक्षस ने मारडाला होगा ॥

दृष्टमन्तःपुरं सर्वं दृष्टा राक्षसयोषितः ।
न सीता दृश्यते साध्वी वृथा जातो मम श्रमः ॥३॥
किं नु मां वानराः सर्वे गतं वक्ष्यन्ति संगताः ।
गत्वा तत्र त्वया वीर किं कृतं तद्वदस्व नः ॥ ४ ॥

अर्थ—मैंने सारा अन्तःपुर देखा तथा रावण की स्त्रियें देखीं परन्तु पतिव्रता सीता कहीं दृष्टि नहीं पड़ी, मेरा सारा परिश्रम व्यर्थ गया, मेरे यहां से जाने पर वह सारे वानर मिलकर मुझे पूछेंगे कि हे वीर ! वहां जाकर तैने क्या किया सो हमसे कहो ॥

अदृष्ट्वा किं प्रवक्ष्यामि तामहं जनकात्मजम् ।
किं वा वक्ष्यति वृद्धश्च जाम्बवानङ्गदश्च सः ॥५॥
अनिर्वेदः श्रियो मूलमनिर्वेदः परं सुखम् ।
भूयस्तत्र विचेष्यामि न यत्र विचयः कृतः ॥ ६ ॥
अनिर्वेदो हि सततं सर्वार्थेषु प्रवर्तकः ।
करोति सफलं जन्तोः कर्म यच्च करोति सः ॥ ७ ॥

अर्थ—मैं उस जनकसुता को न देखकर क्या कहूंगा और वृद्ध जाम्बवान् तथा अङ्गद मुझे क्या कहेंगे, " फिर मन ही मन विचारकर " उत्साह न हारना कल्याण का मूलकारण और उत्साहसम्पन्न होना ही परमसुख है, सो जहां २ नहीं ढूंढा वहां २ फिर ढूंढुंगा, उत्साह न हारना ही सारे कार्य्यों में प्रवृत्ति कराता अर्थात् सब काम उत्साह से ही सिद्ध होते

और मनुष्य जिस कार्य्य को करना चाहता है वह उत्साह से ही सफल होता है ॥

इति संचिन्त्य भूयोऽपि विचेतुमुपचक्रमे ।
सर्वमप्यवकाशं स विचचार महाकपिः ॥ ८ ॥
चतुरंगुलमात्रोऽपि नावकाशः स विद्यते ।
रावणान्तःपुरे तस्मिन्यं कपिर्न जगाम सः ॥ ९ ॥
रूपेणाप्रतिमा लोके परा विद्याधरस्त्रियः ।
दृष्टा हनुमता तत्र नतु राघवनन्दिनी ॥ १० ॥

अर्थ—यह सोचकर फिर ढूंढने लगा और वह महाकपि प्रत्येक स्थान में फिरा, और रावण के अन्तःपुर में चार अंगुल का भी कोई स्थान ऐसा न बचा जहां वह हनुमान् न पहुंचा हो, लोक में रूप से अतुल विद्याधरों की स्त्रियें हनुमान् ने देखीं पर वहां राघव की प्यारी सीता को कहीं न देखा ॥

प्रमथ्य राक्षसेन्द्रेण नागकन्यावलाद्धृताः ।
दृष्टा हनुमता तत्र न सा जनकनन्दिनी ॥ ११ ॥
सोऽपश्यंस्तां महाबाहुः पश्यंश्चान्या वरस्त्रियः ।
विषसाद महाबाहुर्हनूमान्मारुतात्मजः ॥ १२ ॥
उद्योगं वानरेन्द्राणां प्लवनं सागरस्य च ।
व्यर्थं वीक्ष्यानिलसुतश्चिन्तां पुनरुपागतः ॥ १३ ॥

अर्थ—राक्षसराज रावण ने जो नाग कन्यायें बल से हरी हुई थीं वह सब हनुमान् ने देखीं पर वहां भी वह जनकनन्दिनी न

देखी, तब वह महाबाहु पवनसुत सीता को न देखकर और अन्य सुन्दर स्त्रियों को देखता हुआ निराश होगया, वानरपतियों का इतना उद्योग तथा समुद्र का पार होना यह सब व्यर्थ देखकर पवनसुत फिर चिन्ता को प्राप्त होकर सोचने लगा ॥

सम्परिक्रम्य हनुमान् रावणस्य निवेशनात् ।
अदृष्ट्वा जानकीं सीतामब्रवीद्वचनं कपिः ॥ १४ ॥
भूयिष्ठं लोलिता लङ्का रामस्य चरता प्रियम् ।
नहिपश्यामि वैदेहीं सीतां सर्वांगशोभनाम् ॥१५॥
किं तु सीताथ वैदेही मैथिली जनकात्मजा ।
उपतिष्ठत विवशा रावणेन हृता बलात् ॥ १६ ॥
तया मन्ये विशालाक्ष्या त्यक्तं जीवितमार्यया॥१७॥

अर्थ—हनुमान् रावण के सारे महलों में फिरा परन्तु वहां जानकी को न देखकर बोला कि राम का हित चाहते हुए मैंने लङ्का बहुत ढूंढी पर सर्वाङ्गसुन्दरी वैदेही को नहीं देखता हूं, क्या विदेहों की कन्या जनकसुता बल से हरी हुई तथा बेबस हुई भी रावण का सेवन करसकती है, कदापि नहीं, सो मैं मानता हूं कि उस विशालनेत्रा आर्या ने अपना जीवन त्याग दिया है ॥

अथवा निहिता मन्ये रावणस्य निवेशने ।
भृशं लालप्यते बाला पंजरस्थेव सारिका ॥ १८ ॥
जनकस्य कुले जाता रामपत्नी सुमध्यमा ।
कथमुत्पलपत्राक्षी रावणस्य वशं व्रजेत् ॥ १९ ॥

विनष्टा वा प्रणष्टा वा मृता वा जनकात्मजा ।
रामस्य प्रियभार्यस्य न निवेदयितुं क्षमम् ॥२०॥

अर्थ—अथवा रावण के महल में कहीं गुप्त पड़ी हुई यह बाला पिंजरे में स्थित मैना की भांति अतीव विलप रही होगी, जनक के कुल में उत्पन्न हुई, कमल तुल्य नेत्रों वाली तथा सुमध्यमा राम की पत्नी सीता कैसे रावण के वश होसक्ती है, जनकसुता नहीं मिली वा नष्ट होगई अथवा मरगई, यह स्त्री में प्यार वाले राम को नहीं कहाजासकता, क्योंकि :—

निवेद्यमाने दोषः स्याद्दोषः स्यादनिवेदने ।
कथं नु खलु कर्तव्यं विषमं प्रतिभाति मे ॥२१॥
यदि सीतामदृष्ट्वाहं वानरेन्द्रपुरीमितः ।
गमिष्यामि ततः को मे पुरुषार्थो भविष्यति॥२२॥
ममेदं लङ्घनं व्यर्थं सागरस्य भविष्यति ।
प्रवेशश्चैव लंकायां राक्षसानां च दर्शनम् ॥२३॥

अर्थ—इस प्रकार कथन करने में यह दोष होगा कि "शायद राम प्राण सागदें" और न कहने में भी दोष होगा अर्थात् न कहना स्वामी को बञ्चन करना है, अब मैं क्या करूं, मुझको बड़ा कठिन प्रतीत होता है, यदि मैं सीता को न देखकर यहां से सुग्रीव की पुरी को चला जाऊं तो मेरा पुरुषार्थ क्या होगा अर्थात् निष्फल होगा, मेरा समुद्र का लङ्घना, लङ्का में प्रवेश करना और राक्षसों का दर्शन यह सब व्यर्थ होजायगा ॥

गत्वा तु यदि काकुत्स्थं वक्ष्यामि परुषं वचः ।
न दृष्टेति मया सीता ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२४॥
कृतज्ञः सत्यसंधश्च सुग्रीवः प्लवगाधिपः ।
रामं तथागतं दृष्ट्वा ततस्त्यक्ष्यति जीवितम् ॥२५॥
सोऽहं नैव गमिष्यामि किष्किन्धां नगरीमितः ।
नहि शक्ष्याम्यहं द्रष्टुं सुग्रीवं मैथिलीं विना ॥ २६ ॥

अर्थ—यदि मैं राम को जाकर यह कठोर बचन कहुंगा कि मैंने सीता नहीं देखी तो वह प्राण त्याग देंगे, और राम को इस अवस्था में देखकर कृतज्ञ तथा सत्यप्रतिज्ञ वानरों का अधिपति सुग्रीव भी जीवित न रहेगा, सो मेरा यहां से किष्किन्धा नगरी को जाना ठीक नहीं, मैथिली के बिना मैं सुग्रीव को कभी नहीं देख सक्ता अर्थात् नहीं मिलसक्ता ॥

मय्यगच्छति चेहस्थे धर्मात्मानौ महारथौ ।
आशयातौ धरिष्येते वानराश्च तरस्विनः ॥२७॥
इति चिन्तासमापन्नः सीतामनधिगम्यताम् ।
ध्यानशोकपरीतात्मा चिन्तयामास वानरः ॥२८॥

अर्थ—जबतक मैं वहां नहीं जाता यहां स्थित हूं तब तक वह दोनों महारथी धर्मात्मा और बलवान् सुग्रीव भी आशा से जीते हैं, इस प्रकार सीता को न पाकर चिन्तातुर हुआ और चिन्ता तथा शोक से युक्त अन्तःकरण वाला हनुमान् सोचने लगा कि :—

यावत्सीतां न पश्यामि रामपत्नीं यशस्विनीम् ।
तावदेतां पुरीं लंकां विचिनोमि पुनः पुनः ॥२९॥
अशोकवनिका चापि महतीयं महाद्रुमा ।
इमामधिगमिष्यामि नहीयं विचिता मया ॥३०॥

अर्थ—जबतक यशस्विनी रामपत्नी सीता को नहीं देख पाता तबतक इस लङ्कापुरी को फिर २ कर सब ओर ढूढुंगा, और यह जो बड़े २ वृक्षों वाली अशोकवाटिका है इसको भी खोजुंगा, यह मैंने अभीतक नहीं देखी है ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पञ्चमः सर्गः

सं०—अब हनुमान् का अशोकवाटिका में सीता को खोजना कथन करते हैं :—

स मुहूर्तमिवध्यात्वा मनसा चाधिगम्यताम् ।
अवप्लुतो महातेजाः प्राकारं तस्य वेश्मनः ॥१॥

अर्थ—वीर हनुमान् मुहूर्तभर सोच मन से निश्चय करके वह महातेजस्वी उस महल के कोट को फांद गया ॥

स प्रविश्य विचित्रां तां पादपैः सर्वतो वृताम् ।
उदितादित्यसंकाशां ददर्श हनुमान्बली ॥२॥
वृतैर्नानाविधैर्वृक्षैः पुष्पोपभोगफलोपगैः ।
कोकिलैर्भृङ्गराजैश्चमत्तैर्नित्यनिषेविताम् ॥३॥

प्रहृष्टमनुजां काले मृगपक्षिमदाकुलाम् ।
मत्तबर्हिणसंघुष्टां नानाद्विजगणायुताम् ॥४॥

अर्थ—और विचित्र वृक्षों वाली, चहुं ओर फूलों से ढकी हुई तथा उदय हुए सूर्य्य के तुल्य उस अशोकवाटिका को बली हनुमान् ने देखा, जो पुष्प तथा फलों से युक्त, नानाविध वृक्षों, मत्त कोयलों और भौरों से सेवित, जिसमें सर्वदा सब मनुष्य प्रसन्न रहते, जो मत्त मृग, पक्षियों से भरी हुई, मत्त मयूरों से गूंजती हुई और जो नाना द्विजगणों से युक्त थी ॥

वृक्षेभ्यः पतितैः पुष्पैरवकीर्णा पृथग्विधैः ।
रराज वसुधा तत्र प्रमदेव विभूषिता ॥५॥
स तत्र मणिभूमिश्च राजतीश्च मनोरमाः ।
तथा कांचनभूमिश्च विचरन्ददृशे कपिः ॥६॥
वापीश्च विविधाकाराः पूर्णाः परमवारिणा ।
महार्हैर्मणिसोपानैरुपपन्नास्ततस्ततः ॥७॥
दीर्घाभिर्द्रुमयुक्ताभिः सरिद्भिश्च समन्ततः ।
अमृतोपमतोयाभिः शिवाभिरुपसंस्कृतः ॥८॥

अर्थ—और वहां की भूमि वृक्षों से गिरे हुए नानाविध पुष्पों से भरी हुई विभूषित स्त्री की भांति शोभायमान थी, वहां विचरते हुए हनुमान् ने मनोरम मणिभूमियें=मणियों की सी भूमियें, चांदी तथा सुनहरी भूमियें देखीं, और वहां निर्मल जल से पूर्ण तथा विविध आकृतियों वाली मणियों की सीढ़ियों से सुशोभित बावड़ियें देखीं, और वह वाटिका बड़े २ वृक्षों से युक्त अमृततुल्य जल वाली सुन्दर नहरों से सजी हुई थी ॥

ततोऽम्बुधारासंकाशं प्रवृद्धशिखरं गिरिम् ।
विचित्रकूटं कूटैश्च सर्वतः परिवारितम् ॥९॥
ददर्श च नगात्तस्मान्नदीं निपतितां कपिः ।
जलेन पतिताग्रैश्च पादपैरुपशोभिताम् ॥१०॥
कांचनीं शिंशपामेकां ददर्श स महाकपिः ।
वृतां हेममयीभिस्तु वेदिकाभिः समन्ततः ॥११॥

अर्थ—तत्पश्चात् हनुमान् ने वहां विचित्रकूट नामक एक पर्वत देखा जो बहुत सुहावना तथा सब ओर चोटियों से घिरा हुआ था, उस पर्वत से निकलती हुई उसने एक नदी देखी जो जल से स्पर्श करती हुई शाखाओं वाले वृक्षों से सुशोभित थी, और वहां ही उसने एक सुनहरी रङ्ग की शीशम देखी जो चारो ओर सुनहरी वेदियों से युक्त थी ॥

तामारुह्य महावेगः शिंशपां पर्णसंवृत्ताम् ।
इतो द्रक्ष्यामि वैदेहीं रामदर्शनलालसाम् ॥१२॥

अर्थ वह हनुमान् पत्तों से पूर्ण उस शीशम पर चढ़गया कि मैं यहां से राम के दर्शन की लालसा वाली वैदेही को देखुंगा ॥

सन्ध्याकालमनाः श्यामा ध्रुवमेष्यति जानकी ।
नदीं चेमां शुभजलां सन्ध्यार्थे वरवर्णिनी ॥१३॥

अर्थ—सन्ध्याकाल में मनवाली अर्थात् सायं प्रातः सन्ध्या करने वाली जानकी निःसन्देह इस शुभ जलवाली नदी पर आवेगी ॥

तस्याश्चाप्यनुरूपेयमशोकवनिका शुभा ।
शुभा या पार्थिवेन्द्रस्य पत्नी रामस्य संमता ॥१४॥

यदि जीवति सा देवी ताराधिपनिभानना ।
आगमिष्यति सावश्यमिमां शीतजलां नदीम् ॥ १५ ॥

अर्थ-यह शुभ अशोकवाटिका सीता के योग्य है, क्योंकि वह राजराजेश्वर राम की शुभ पत्नी है, यदि वह चन्द्रमुखी देवी जीवित है तो इ। शीतल जलवाली नदी पर अवश्य आवेगी ॥

एवं तु गत्वा हनुमान्महात्मा प्रतीक्षमाणो
मनुजेन्द्रपत्नीम् । अवेक्षमाणश्च ददर्श
सर्वं सुपुष्पिते पर्णघने निलीनः ॥ १६ ॥

अर्थ-इस प्रकार विचारता हुआ वहां अशोकवाटिका में महात्मा हनुमान् मानवेन्द्र राम की पत्नी सीता को ढूंढने की इच्छा वाला फूले हुए पत्तों के समूह में छिपा हुआ सब ओर दृष्टि डालकर सब कुछ देखने लगा ॥

इति पंचमः सर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

सं०-अब हनुमान् का सीता को देखना कथन करते हैं :—

सर्वर्तुपुष्पैर्निचितं पादपैर्मधुगन्धिभिः ।
नानानिनादैरुद्यानं रम्यं मृगगणैर्द्विजैः ॥ १ ॥
अशोकवनिकायां तु तस्यां वानरपुङ्गवः ।
स ददर्शाविदूरस्थं चैत्यप्रासादमूर्जितम् ॥ २ ॥

अर्थ-तत्पश्चात् हनुमान् ने उस अशोकवाटिका के भीतर

निकट ही एक बगीचा देखा जो सब ऋतुओं के फूलों वाले तथा मीठी गन्धवाले वृक्षों से युक्त, नानाध्वनियों वाले मृग, पक्षियों से शोभायमान् और जो चैत्य तथा मन्दिरों वाला था ॥

ततो मलिनसंवीतां राक्षसीभिः समावृताम् ।
उपवासकृशां दीनां निःश्वसन्तीं पुनः पुनः ॥३॥
ददर्श शुक्लपक्षादौ चन्द्ररेखामिवामलाम् ।
पीतनैकेन संवीता क्लिष्टेनोत्तमवाससा ॥ ४ ॥

अर्थ–उस बगीचे में मलीन वस्त्रों से ढकी हुई, राक्षसियों से घिरी हुई, उपवासों से दुर्बल हुई, बड़ी दीन, बार २ ऊंची सांसें भरती हुई, शुक्लपक्ष के आदि में निर्मल चन्द्ररेखा की भांति सीता को देखा जो एक पीत रंग के छोटे उत्तम वस्त्र से ढकी हुई थी ॥

पीड़ितां दुःखसंतप्तां परिक्षीणां तपस्विनीम् ।
अश्रुपूर्णमुखीं दीनां कृशामनशनेन च ॥ ५ ॥
प्रियंजनमपश्यन्तीं पश्यन्तीं राक्षसीगणम् ।
स्वगणेन मृगीं हीनां श्वगणेनावृतामिव ॥ ६ ॥
नीलनागाभया वेण्या जघनं गतयैकया ।
नीलया नीरदापाये वनराज्या महीमिव ॥ ७ ॥

अर्थ–पीड़ित, दुःख से संतप्त, दुर्बल, तपस्विनी, आंसुओं से पूर्णमुखवाली, दीन और भोजन न करने से दुर्बल, प्रियजनों को न देखती हुई तथा राक्षसीगण को देखती हुई अपने समुदाय से निकली हुई और कुत्तों से घिरी हुई मृगी की भांति थी, नील नाग की आभा वाली जघनों तक पहुंची हुई एकवेणी वाली सीता

बादर के न हाने पर नीलवन की पंक्ति से पृथिवी के समान सुशोभित थी ॥

कुर्वन्ती प्रभया देवीं सर्वावितिमरा दिशः ।
भूमौ सुतनुमासीनां नियतामिव तापसीम् ॥ ८ ॥
विहतामिव च श्रद्धामाशां प्रतिहतामिव ।
अभूतेनापवादेन कीर्तिं निपतितामिव ॥ ९ ॥
तां समीक्ष्य विशालाक्षीं राजपुत्रीमनिन्दिताम् ।
तर्कयामास सीतेति कारणैरुपपादयन् ॥ १० ॥

अर्थ—अपनी प्रभा से सारी दिशाओं को अन्धकारहीन बनाती हुई, सुकुमारी, नियमवाली, तपस्विनी की भांति भूमि पर लेटी हुई, नष्ट हुई श्रद्धा की भांति तथा दूर हुई आशा और झूठे अपवाद से पतित कीर्ति के समान, उस विशालनेत्रा तथा अनन्दित राजपुत्री को देखकर इत्यादि कारणों से निश्चय करते हुए हनुमान् ने विचार किया कि यही सीता है ॥

इयं कनकवर्णांगी रामस्य महिषी प्रिया ।
प्रणष्टापि सती यस्य मनसो न प्रणश्यति ॥ ११ ॥
इयं सा यत्कृते रामश्चतुर्भिरिह तप्यते ।
कारुण्येनानृशंस्येन शोकेन मदनेन च ॥ १२ ॥
स्त्री प्रणष्टेति कारुण्यादाश्रितेत्यानृशंस्यतः ।
पत्नीनष्टेति शोकेन प्रियेति मदनेन च ॥ १३ ॥

अर्थ—यही सुवर्ण के वर्ण वाली राम की प्यारी रानी है जो प्रणष्ट होने पर भी सती सीता उनके मन से कभी पृथक नहीं

होती, वह यही सीता है जिसके लिये राम करुणा, दया, शोक और काम इन चारों से तप रहे हैं, स्त्री खोई गई इसलिये करुणा, मेरे आश्रित थी इसलिये दया, पत्नी हरी जाने के कारण शोक और अपनी प्यारी होने के कारण काम से संतप्त होरहे हैं ॥

अस्या देव्या मनस्तस्मिंस्तस्य चास्यां प्रतिष्ठितम् ।
तेनेयं सच धर्मात्मा मुहूर्तमपि जीवति ॥ १४ ॥
एवं सीतां तथा दृष्ट्वा हृष्टः पवनसम्भवः ।
जगाम मनसा रामं प्रशशंस च तं प्रभुम् ॥१५॥

अर्थ–इस देवी का मन राम में और राम का इसमें स्थित है, इस कारण यह और वह धर्मात्मा मुहूर्त भर जीते हैं, इस प्रकार सीता को देखकर प्रसन्न हुआ हनुमान् मन से राम को प्राप्त हो उस प्रभु की प्रशंसा करने लगा ॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

सं०–अब राक्षसियों से घिरी हुई सीता को देखकर हनुमान् का उसके निकट जाना कथन करते हैं :—

तां दृष्ट्वा नवहेमाभां लोककान्तामिव श्रियम् ।
जगाम मनसा रामं वचनं चेदमब्रवीत् ॥ १ ॥

अर्थ–उस सुवर्ण की आभा वाली युवति को लोक की सुन्दर श्री की भांति देखकर मन से राम को स्मरण करता हुआ हनुमान् बोला कि :—

ऐश्वर्यं वानराणां च दुर्लभं बालिपालितम् ।
अस्यानिमित्ते सुग्रीवः प्राप्तवांल्लोकविश्रुतः ॥२॥
सागरश्च-मयाक्रान्तः श्रीमान्नदनदीपतिः ।
अस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः पुरी चेयं निरीक्षिता ॥३॥
यदि रामः समुद्रान्तां मेदिनीं परिवर्तयेत् ।
अस्याः कृते जगच्चापि युक्तमित्येव मे मति ॥४॥

अर्थ—यह वही सुन्दरी है जिसके निमित्त लोक विख्यात सुग्रीव बालि से रक्षित वानरों के दुर्लभ ऐश्वर्य्य को प्राप्त हुआ है, इसी के निमित्त नद तथा नदियों का पति श्रीमान् सागर मैंने लङ्घा और इसी विशालनेत्रा के कारण मैंने यह सारी लङ्का पुरी ढूंढी है, इसके लिये यदि राम समुद्रपर्य्यन्त सारी पृथिवी और जगत् को उलट दें तो युक्त ही है यह मेरी मति है ॥

राज्यं वा त्रिषु लोकेषु सीता वा जनकात्मजाः ।
त्रैलोक्यराज्यं सकलं सीताया नाप्नुयात्कलाम्॥५॥
इयं सा धर्म शीलस्य जनकस्य महात्मनः ।
सुता मैथिलराजस्य सीता भर्तृदृढव्रता ॥६॥
धर्मज्ञस्य कृतज्ञस्य रामस्य विदितात्मनः ।
इयं सा दयिता भार्या राक्षसीवशमागता ॥७॥

अर्थ—एक ओर तीनो लोकों का राज्य और दूसरी ओर जनकसुता सीता हो तो तीनो लोकों का राज्य सीता की कला को नहीं पासक्ता, यह वही धर्म तथा शीलसम्पन्न मैथिलराज

महात्मा जनक की पुत्री सीता है जो अपने भर्त्ता में दृढ़ व्रतवाली है, सो यह अपने आत्मा को जानने वाली, धर्मज्ञ तथा कृतज्ञ सीता राम की प्यारी भार्या आज राक्षसियों के वश में पड़ी है ॥

सर्वान्भोगान्परित्यज्य भर्तृस्नेहबलात्कृता ।
अचिन्तयित्वा कष्टानि प्रविष्टा निर्जनंवनम् ॥८॥
सन्तुष्टा फलमूलेन भर्तृशुश्रूषणापरा ।
या परां भजते प्रीतिं वनेऽपि भवने यथा ॥९॥
सेयं कनकवर्णांगी नित्यं सुस्मितभाषिणी ।
सहते यातनामेतामनर्थानामभागिनी॥१०॥

अर्थ—जो भर्त्ता के स्नेहवश सब भोगों को त्यागकर कष्टों को सहन करके निर्जन बन में प्रविष्ट हुई है, और जो फल मूल से प्रसन्न भर्त्ता की सेवा करती हुई बन में भी भवन की भांति परमप्रीति को भोगती थी, सो यह सुवर्णसमान वर्ण वाली तथा नित्य हंसकर बोलने वाली आज इस तीव्र दुःख को सह रही है जिन अनर्थों के योग्य न थी ॥

इमां तु शीलसम्पन्नां द्रष्टुमिच्छति राघवः ।
रावणेन प्रमथितां प्रपामिव पिपासितः ॥११॥
अस्या नूनं पुनर्लाभाद्राघवः प्रीतिमेष्यति ।
राजा राज्यपरिभ्रष्टःपुनः प्राप्येव मेदिनीम् ॥१२॥

अर्थ—रावण द्वारा बलात्कार हरी जाने पर भी अपने चरित्र में दृढ़ इस सीता को राम इस प्रकार देखने की इच्छा रखते हैं

जैसे प्यासा चातक स्वांती की बून्द को तरसता है, इसको प्राप्त कर राम निःसन्देह फिर प्रीति को प्राप्त होंगे, जैसे राज्य से च्युत हुआ राजा फिर पृथिवी को प्राप्तकर हर्षित होता है ॥

काम भोगैः परित्यक्ता हीना बन्धुजनेन च ।
धारयतात्मनो देहं तत्समागमकांक्षिणी ॥१३॥
नैषा पश्यति राक्षस्यो नेमान्पुष्पफलद्रुमान् ।
एकस्थहृदया नूनं राममेवानुपश्यति ॥१४॥
भर्ता नाम परं नार्याः शोभनं भूषणादपि ।
एषा हि रहिता तेन शोभनार्हा न शोभते ॥१५॥

अर्थ—यह कायिक भोगों से पृथक् तथा बन्धुजनों से हीन हुई केवल राम के समागम की इच्छावाली अर्थात् उनके दर्शनों के लिये ही अपने देह को धारण कररही है, न यह इन राक्षसियों को देखती और न पुष्प फलों वाले वृक्षों की ओर देखती है यह एक ही स्थान पर चित्त को स्थिर किये हुए केवल राम की ही ओर देख रही है, पति स्त्री को भूषणों से भी अधिक शोभा देने वाला होता है सो यह पति से रहित हुई शोभा के योग्य होने पर भी सुन्दर प्रतीत नहीं होती ॥

दुष्करं कुरुते रामो हीनो यदनया प्रभुः ।
धारयत्यात्मनो देहं न दुःखेनावसीदति ॥१६॥
इमामसितकेशान्तां शतपत्रनिभेक्षणाम् ।
सुखार्हां दुःखितां ज्ञात्वा ममापि व्यथितं मनः ॥१७॥

अर्थ—राम बड़ा दुष्कर कर्म कर रहे हैं जो इस देवी से हीन हुए अपने देह को धारण किये हुए हैं, दुःख से विशीर्ण नहीं होजाते, इस काले केशों वा ऽी, पद्मपत्र तुल्य नेत्रों वाली तथा सुख के योग्य सीता को दुःखिया देखकर मेरा हृदय भी दुःखित होरहा है ॥

क्षिति क्षमा पुष्कर सन्निभेक्षणायारक्षिता राघव
लक्ष्मणाभ्याम् । सा राक्षसीभिर्विकृते क्षणाभिः
संरक्ष्यते संप्रतिवृक्षमूले ॥ १८ ॥

अर्थ—पृथिवी के तुल्य क्षमा वाली, कमलदल नयनी और राम तथा लक्ष्मण से सुरक्षित रहने वाली सीता अब इस वृक्षतल में विकराल नेत्रों वाली राक्षसियों से रक्षित रहती है ॥

हिमहत नलिनीवनष्टशोभा व्यसनपरं
परया निपीड्यमाना । सहचर रहिते चक्र
वाकी जनकसुता कृपणां दशां प्रपन्ना॥१९॥

अर्थ—पाले से मारी हुई कमलिनी के समान शोभारहित तथा बार २ दुःख को प्राप्त होने से पीड़ित और चकवा से रहित चकवी के समान जानकी कृपण दशा को प्राप्त होरही है ॥

इत्येवमर्थं कपिरन्ववेक्ष्य सीतेयमित्येव
तु जातबुद्धिः । संश्रित्य तस्मिन्निषसाद
वृक्षैर्बली हरीण।मृषभस्तरस्वी ॥ २० ॥

अर्थ—इत्यादि बातें देखकर "यही सीता" है, इस प्रकार

निश्चयवाला हुआ २ बड़ा वेगवान् हनुमान् जिस वृक्ष के तले सीता रहती थी उसी वृक्ष पर बैठगया ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

सं०—अब प्रभात समय रावण का अशोकवाटिका में आना कथन करते हैं :—

ततः कुमुदखण्डाभो निर्मलं निर्मलोदयः ।
प्रजगाम नभश्चन्द्रो हंसो नीलमिवोदकम् ॥ १ ॥
साचिव्यमिव कुर्वन्स प्रभया निर्मलप्रभः ।
चन्द्रमा रश्मिभिः शीतैः सिषेवे पवनात्मजम् ॥२॥

अर्थ—उक्त विचार करते २ ही कुमुदखण्ड के तुल्य निर्मल चन्द्रमा नीले जल पर हंस की न्याईं निर्मल आकाश में उदय हो आया, वह निर्मल प्रभा वाला चन्द्र मानो हनुमान् की सहायता करता हुआ शीतल किरणों द्वारा उन्हें सुखकारी हुआ ॥

स ददर्श ततः सीतां पूर्णचन्द्रनिभाननाम् ।
शोकभारैरिव न्यस्तां भारैर्नावमिवाम्भसि ॥ ३ ॥
हर्षजानि च सोऽश्रूणितां दृष्ट्वा मदिरेक्षणाम् ।
मुमोच हनुमांस्तत्र नमश्चक्रे च राघवम् ॥ ४ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् हनुमान् ने चन्द्र तुल्य मुखवाली सीता को

जल में भार से दबी हुई नौका के समान शोक के भारों से दबी हुई देखा, तब उस मत्त नेत्रों वाली जानकी को देखकर हर्ष से हनुमान् के अश्रुपात होगये अर्थात् सीता को पाकर प्रसन्न हुआ और राम को नमस्कार किया ॥

तथा विप्रेक्षमाणस्य वनं पुष्पितपादपम् ।
विचिन्वतश्च वैदेहीं किंचिच्छेषा निशाभवत् ॥५॥
षडङ्गवेदविदुषां वेदविदुषां क्रतुप्रवरयाजिनाम् ।
शुश्राव ब्रह्मघोषान् स विरात्रे ब्रह्मरक्षसाम् ॥ ६ ॥

अर्थ—इस प्रकार फूले हुए वृक्षों वाले वन को देखते और सीता को ढूंढते हुए हनुमान् को थोड़ीसी रात शेष रहगई, फिर उसने पिछली रात्रि के समय षडङ्ग वेद के जानने वाले तथा उत्तम यज्ञों के करने वाले ब्राह्मण राक्षसों की वेदध्वनियें सुनीं ॥

अथ मंगलवादित्रैः शब्दैः श्रोत्र मनोहरैः ।
प्राबोध्यत महाबाहुर्दशग्रीवो महाबलः ॥ ७ ॥
विबुध्य तु महाभागो राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ।
स्रस्तमाल्यांबरधरो वैदेही मन्वचिन्तयत् ॥ ८ ॥
नाना मृगगणा कीर्णां फलैःप्रपतितैर्वृताम् ।
अशोकवनिकामेव प्राविशत्सन्ततद्रुमाम् ॥ ९ ॥

अर्थ—तदनन्तर मंगलवादित्र=शुभ बाजे और कानों को प्रिय मनोहर शब्दों से महाबाहु महाबली रावण जागा, और जागकर वह महाप्रतापी महाभाग,राक्षसेन्द्र नवीन वस्त्र तथा नवीन

माला धारणकर जानकी का चिन्तन करता हुआ नानाप्रकार के मृगगणों से सेवित, गिरे हुए फलों से सुशोभित तथा घने वृक्षों वाली अशोकवाटिका में आया ॥

निद्रामदपरीताक्ष्यो रावणस्योत्तमास्त्रियः ।
अनुजग्मुः पतिं वीरं घनं विद्युल्लता इव ॥ १० ॥
स च कामपराधीनः पतिस्तासां महाबलः ।
सीतासक्तमना मन्दो मन्दाञ्चित गतिर्बभौ ॥११॥
ततः कांचीनिनादं च नूपुराणां च निःस्वनम् ।
शुश्राव परम स्त्रीणां कपिर्मारुतनन्दनः ॥ १२ ॥

अर्थ–और निद्रा तथा मद से भरे हुए नेत्रों वाली रावण की सुन्दरी स्त्रियें मेघ के साथ विजुलियों की भांति वीरपति के साथ आईं, वह महाबली उनका पति रावण काम के अधीन हुआ २ सीता में लगे हुए मन वाला मन्द २ उत्तम चाल से शोभायमान था, तदनन्तर उन उत्तम स्त्रियों के नूपुर आदि भूषणों का शब्द हनुमान् ने सुना ॥

तं पत्र विटपे लीनः पत्र पुष्पशतावृतः ।
समीपमुपसंक्रान्तं विज्ञातुमुपचक्रमे ॥ १३ ॥
अवेक्षमाणस्तु तदा ददर्श कपिकुंजरः ।
रूपयौवनसम्पन्ना रावणस्य वरस्त्रियः ॥ १४ ॥
तं ददर्श महातेजास्तेजोवंतं महाकपिः ।
रावणोऽयं महाबाहुरिति संचिन्त्य वानरः ॥ १५ ॥
पत्रे गुह्यान्तरे सक्तो मतिमान्संवृतोऽभवत् ॥१६॥

अर्थ—और जब वह समीप आगये तब घने पत्तों के बीच पत्र तथा पुष्पों से ढके हुए उसी वृक्ष पर बैठे हनुमान् ने रावण के जानने की इच्छा की, जब हनुमान् उसको देखने लगे तब रूप यौवनसम्पन्न रावण की उत्तम स्त्रियें प्रथम देख पड़ीं, तदनन्तर उस महातेजस्वी हनुमान् ने तेजस्वी रावण को देखा, तब वह बुद्धिमान् हनुमान् "यह महावाहु रावण है" इस प्रकार देखभाल कर सोचता हुआ शाखाओं के भीतर पत्तों में छिपगया ॥

स तामसित केशान्तां सुश्रोणिं संहतस्तनीम् ।
दिदृक्षुरसितापाङ्गीमुपावर्तत रावणः ॥ १७ ॥

अर्थ—वह रावण उस काले बालों वाली सर्वाङ्गसुन्दरी जानकी को देखने की इच्छा वाला हुआ २ उसके समीप आया ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

सं०—अब रावण को देखकर सीता का भयभीत होना तथा रावण का उसको प्रेम दिखलाना कथन करते हैं :—

ततो दृष्ट्वैव वैदेही रावणं राक्षसाधिपम् ।
प्रावेपत वरारोहा प्रवाते कदली यथा ॥ १ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् राक्षसाधिपति रावण को देखते ही वरारोहा सीता प्रबल वायु में केले की न्याईं कांपने लगी ॥

उरुभ्यामुदरं छाद्य बाहुभ्यां च पयोधरौ ।
उपविष्टा विशालाक्षी रुदती वरवर्णिनी ॥२॥
दशग्रीवस्तु वैदेहीं रक्षितां राक्षसीगणैः ।
ददर्श दीनां दुःखार्तां नावं सन्नामिवार्णवे ॥३॥

अर्थ—और जंघों से पेट तथा भुजाओं से स्तनों को ढांप कर वह विशालनेत्रा सीता रोती हुई सिमटकर बैठ गई, तब रावण ने राक्षसीगणों से रक्षा कीहुई, दीन तथा दुःख से पीड़ित सीता को समुद्र में टूटी हुई नौकास्थ पुरुष के समान भयभीत देखा ॥

असंवृतायामासीनां धरण्यां संशितव्रताम् ।
छिन्नां प्रपतितां भूमौ शाखामिव वनस्पतेः ॥४॥
मलमण्डनदिग्धांगीं मण्डनार्हाममण्डनाम् ।
मृणाली पङ्कदिग्धेव विभाति न विभाति च ॥५॥
समीपं राजसिंहस्य रामस्य विदितात्मनः ।
संकल्पहयसंयुक्तैर्यान्तीमिव मनोरथैः ॥६॥

अर्थ—आसनादि के बिना ही भूमि पर बैठी हुई, तीक्ष्ण व्रतों वाली, कटकर भूमि पर गिरी हुई बनस्पति की शाखा की भांति तथा मैलरूप भूषण से लिपटे हुए अङ्गों वाली, भूषणों के योग्य होने पर भूषणों से रहित, कीचड़ से लिपटी हुई कमलिनी की भांति भासती और नहीं भासती अर्थात् सुशोभित नहीं होती थी, और जो संकल्प के घोड़े जोतकर मानो मनोरथों से विदितात्मा=आत्मज्ञानी राम के समीप जा रही है ॥

शुष्यन्तीं रुदतीमेकां ध्यानशोकपरायणाम् ।
दुःखस्यान्तमपश्यन्तीं रामां राममनुव्रताम् ॥७॥
पौर्णमासीमिव निशां तमोग्रस्तेन्दु मण्डलाम् ।
पद्मिनीमिव विध्वस्तां हतशूरां चमूमिव ॥८॥
पतिशोकातुरा शुष्कां नदीं विस्रावितामिव ।
परया मृजया हीनां कृष्णपक्षे निशामिव ॥९॥

अर्थ—दिन २ सूखती हुई, रोती हुई, अकेली, ध्यान शोक परायण हुई तथा दुःख का अन्त न देखती हुई, राम की आज्ञाकारिणी, राहु से ग्रसे हुए चन्द्रमण्डल वाली पौर्णमासी की रात्रि समान, सूखी हुई पद्मिनी की भांति तथा हत हुए शूरों वाली सेना के समान शोक से पीड़ित, सम्पूर्ण जल दूसरी ओर बह जाने से सूखी हुई नदी के समान और अङ्गशुद्धि से सर्वथा हीन होने के कारण कृष्णपक्ष की रात्रि के तुल्य स्थित थी ॥

स तां परिवृतां दीनां निरानन्दां तपस्विनीम् ।
साकारैर्मधुरैर्वाक्यैर्न्यदर्शयत रावणः॥१०॥
मां दृष्ट्वा नागनासोरु गूहमाना स्तनोदरम् ।
अदर्शनमिवात्मानं भयान्नेतुं त्वमिच्छसि ॥११॥
कामये त्वां विशालाक्षि वहुमन्यस्व मां प्रिये ।
सर्वांगगुणसम्पन्ने सर्वलोकमनोहरे ॥१२॥

अर्थ—तदनन्तर उस राक्षसियों से घिरी हुई, दीन, आनन्द रहित तपस्विनी को अपने प्रयोजनसिद्धि वाले मधुर वाक्यों द्वारा अपना अभिप्राय जतलाता हुआ रावण बोला कि हे हाथी

के सूंड़ समान जङ्घों वाली तू मुझे देखकर स्तन तथा उदर को छिपाती हुई मानो भय से अपने आपको ढांप रही है, हे विशाल नेत्रों वाली ! मैं तेरी कामना वाला हूं, हे सर्वाङ्गसुन्दरी, हे सब जगत् के मन हरण करने वाली मेरी प्यारी तू मेरा बहुमान कर॥

एवं चैवमकामां त्वां नच प्रक्ष्यामि मैथिलि।
कामं कामः शरीरे मे यथाकामं प्रवर्तताम् ॥१३॥
देवि नेह भयं कार्यं मयि विश्वसिहि प्रिये ।
प्रणयस्व च तत्त्वेन मैवं भूः शोकलालसा ॥१४॥

अर्थ—हे मैथिलि ! चाहे काम मेरे देह में यथेच्छ प्रवृत्त होने पर भी मैं तुझ अकामा को नहीं छूंगा, हे देवि ! इसका तुझे भय नहीं होना चाहिये, हे प्यारी ! मुझपर विश्वास और मेरे साथ पूर्ण प्रेम कर इस प्रकार शोकपरायण न रह ॥

एकवेणी अधःशय्या ध्यानं मलिनमम्बरम् ।
अस्थानेषूपवासश्च नैतान्यौपयिकानि ते ॥१५॥
विचित्राणि च माल्यानि चन्दनान्यगरूणि च ।
विविधानि च वासांसि दिव्यान्याभरणानि च॥१६॥
स्त्रीरत्नमसि मैवं भूः कुरु गात्रेषु भूषणम् ।
मां प्राप्य हि कथं वा स्यास्त्वमनर्हा सुविग्रहे ॥१७॥

अर्थ—एक वेणी धारण करना, बिना बिछाये भूमिपर सोना, किसी ध्यान में रहना, मलीनवस्त्र धारण करना और असमय में उपवास करना, यह उपयोगी कार्य्य नहीं, यहां पर विचित्र मालायें, चन्दन, अगर, विविध प्रकार के वस्त्र और आभूषण

उपस्थित हैं सो तू स्त्रीरत्न होने से ऐसी अवस्था में न रह अङ्गों पर वस्त्र भूषणादि धारणकर, हे सुन्दरि ! तू मुझे प्राप्त कर किस प्रकार भूषणों के अयोग्य होसकती है ॥

इदं ते चारु संजातं यौवनं ह्यतिवर्तते ।
यदतीतं पुनर्नैति स्रोतः स्रोतस्विनामिव ॥१८॥
त्वां कृत्वोपरतो मन्ये रूपकर्त्ता च विश्वकृत् ।
नहि रूपोपमा ह्यन्या तवास्तिशुभदर्शने ॥१९॥
यद्यत्पश्यामि ते गात्रं शीतांशुसदृशानने ।
तस्मिंस्तस्मिन्पृथुश्रोणि चक्षुर्ममनिबध्यते ॥२०॥

अर्थ—हे सीते ! यह तेरा सुन्दर बना हुआ यौवन चला जा रहा है जो नदियों के प्रवाह की भांति गया हुआ फिर वापिस नहीं आता, मैं भले प्रकार जानता हूं कि तुझे उत्पन्न करके रूप के बनाने वाले विश्वकर्म्मा ने रूप बनाना छोड़दिया है, हे शुभ दर्शन वाली ! तेरे तुल्य और रूप की उपमा नहीं है, हे चन्द्रमुखि ! मैं तेरे जिस २ अङ्ग को देखता हूं उस २ अङ्ग में मेरी दृष्टि गड़ जाती है ॥

भव मैथिलि भार्या मे मोहमेतं विसर्जय ।
बह्वीनामुत्तमस्त्रीणां ममाग्र महिषी भव ॥ २१ ॥
लोकेभ्यो यानि रत्नानि संप्रमथ्या हृतानि मे ।
तानि ते भीरु सर्वाणि राज्यं चैव ददामि ते ॥२२॥
विजित्य पृथिवीं सर्वां नानानगरमालिनीम् ।
जनकाय प्रदास्यामि तव हेतोर्विलासिनी ॥२३॥

अर्थ–सो हे मैथिलि ! तू इस मोह को छोड़कर मेरी भार्या बन, और तू इन बहुत उत्तम स्त्रियों में मेरी मुख्य पटरानी हो, हे भीरु ! मैं सब लोकों से बल द्वारा हरकर जो रत्न लाया हूं वह सब और यह राज्य तुझे देता हूं, हे विलासिनि ! अनेक नगरों की माला वाली यह सारी पृथिवी तेरे कारण जीतकर जनक को दूंगा ॥

भुङ्क्ष्व भोगान्यथाकामं पिब भीरु रमस्व च ।
यथेष्टं च प्रयच्छ त्वं पृथिवीं वा धनानि च ॥२४॥
निक्षिप्त विजयो रामो गतश्रीर्वनगोचरः ।
व्रती स्थण्डिलशायी च शङ्के जीवति वा न वा॥२५॥
नहि वैदेही रामस्त्वां द्रष्टुं वाप्युपलभ्यते ।
पुरो बलाकैरसितैर्मेघैर्ज्योत्स्नामिवावृताम् ॥ २६ ॥

अर्थ–हे भीरु ! तू यथारुचि भोगों को भोग, पान करके रमण कर और यथारुचि पृथिवी तथा धन का दान दे, अब राम के विजय की आशा छोड़, वह श्री से रहित हो वन में घूमता हुआ, व्रती और भूमि पर लेटता हुआ सन्देह है कि जीता हो वा न हो, हे वैदेहि ! जिनके आगे २ बगले उड़ रहे हैं ऐसे श्याम मेघों से ढकी हुई चांदनी की भांति अब राम तुझे नहीं देखसक्ता अर्थात् जैसे काले बादलों से छिपी हुई चन्द्रमा की प्रभा किसी को दृष्टिगत नहीं होती इसी प्रकार अब न राम तुझे और न तू राम को देख सकेगी ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमःसर्गः

सं०—अब रावण के उक्त कथन का सीता उत्तर देती है :—

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा सीता रौद्रस्य रक्षसः ।
दुःखार्ता रुदती सीता वेपमाना तपस्विनी ॥१॥
चिन्तयन्ती वरारोहा पतिमेव पतिव्रता ।
तृणमन्तरतः कृत्वा प्रत्युवाच शुचिस्मिता ॥ २ ॥

अर्थ—उस दुष्ट कर्मों वाले राक्षस के बचन सुनकर रोती तथा कांपती हुई बेचारी दुःखिया सीता जो पतिव्रता, शुद्ध हंसी वाली और पति का ही चिन्तन करती हुई मध्य में तृण * रखकर रावण से बोली कि :—

निवर्तय मनो मत्तः स्वजने प्रीयतां मनः ।
न मां प्रार्थयितुं युक्तस्त्वं सिद्धिमिव पापकृत् ॥३॥
अकार्य्यं न मया कार्यमेकपत्न्या विगर्हितम् ।
कुले संप्राप्तया पुण्यं कुले महति जातया ॥ ४ ॥

अर्थ—हे रावण ! तू मुझसे मन को हटाकर अपनी स्त्रियों में प्रीति वाला हो, जिसप्रकार पापी पुरुष सिद्धि को प्राप्त नहीं होसक्ता इसी प्रकार तू मुझे पाने योग्य नहीं, मैं पतिव्रता बड़े उच्च कुल में उत्पन्न हुई और रघुओं के महान् कुल को प्राप्त होकर ऐसा निन्दित कर्म कदापि न करूंगी ॥

---

* दुष्ट अभिप्राय वाले परपुरुष से कुलीन स्त्रियों को साक्षात् बात करना भी पाप है, इसीलिये सीता ने बीच में तृण रखा ॥

यथा तव तथान्येषां रक्ष्या दारा निशाचर ।
आत्मानमुपमां कृत्वा स्वेषुदारेषु रम्यताम् ॥ ५ ॥
अतुष्टं स्वेषु दारेषु चपलं चपलेन्द्रियम् ।
नयन्ति निकृतिप्रज्ञं परदाराः पराभवम् ॥ ६ ॥
इह सन्तो न वा सन्ति सतो वा नानुवर्तसे ।
यथा हि विपरीता ते बुद्धिराचार वर्जिता ॥ ७ ॥
वचो मिथ्या प्रणीतात्मा पथ्यमुक्तं विचक्षणैः ।
राक्षसानामभावाय त्वं वा न प्रतिपद्यसे ॥ ८ ॥

अर्थ—हे निशाचर ! जैसे तू अपनी स्त्रियों की रक्षा करता है वैसे ही तुझे परस्त्रियों की रक्षा करनी चाहिये, सो तू अपने आपको ही दृष्टान्त बनाकर अपनी स्त्रियों मेंही रमण कर, जो पुरुष अपनी स्त्रियों में असन्तुष्ट रहकर परस्त्रियों में अपनी चञ्चल इन्द्रियों को चलाता है वह सज्जनों में तिरस्कृत होता और परदारा उसको नरक की प्राप्ति कराती हैं, क्या यहां भले पुरुष नहीं अथवा तू भलों का अनुगामी नहीं, जैसा कि यह तेरी उलटी बुद्धि सदाचार से विपरीत है अथवा तू आपही कुमार्ग में प्रवृत्त हुआ विद्वानों के कथन किये हुए पथ्यरूप बचनों को नहीं सुनता है ॥

अकृतात्मानमासाद्य राजानमनये रतम् ।
समृद्धानि विनश्यन्ति राष्ट्राणि नगराणि च ॥९॥
तथैव त्वां समासाद्य लङ्का रत्नौघ संकुला ।
अपराधात्तवैकस्य न चिराद्विनशिष्यति ॥ १० ॥

शक्या लोभयितुं नाहमैश्वर्येण धनेन वा ।
अनन्या राघवेणाहं भास्करेण यथा प्रभा ॥ ११ ॥

अर्थ—अजितेन्द्रिय और अनीति में रत राजा को पाकर समृद्धिशाली नगर तथा देश भी नष्ट होजाते हैं, वैसे ही तुझको प्राप्त हुई रत्नसमूहों से भरी सारी लङ्का तेरे अकेले के अपराध से शीघ्र ही नाश को प्राप्त होजायगी, मैं ऐश्वर्य्य तथा धन से लुभाई नहीं जासकती, मैं उस राघव से इस प्रकार अभिन्न हूं, जैसे सूर्य्य की प्रभा सूर्य्य से अभिन्न=पृथक् नहीं ॥

उपधाय भुजं तस्य लोकनाथस्य सत्कृतम् ।
कथं नामोपधास्यामि भुजमन्यस्य कस्यचित्॥१२॥
अहमौपयिकी भार्या तस्यैव च धरापतेः ।
व्रतस्नातस्य विद्येव विप्रस्य विदितात्मनः ॥१३॥
साधु रावण रामेण मां समानय दुःखिताम् ।
अन्यथा त्वं हि कुर्वाणः परां प्राप्स्यसि चापदम्॥१४॥

अर्थ—उस लोकनाथ की पूज्य भुजा को सिर के नीचे रखकर अब कैसे किसी दूसरे की भुजा को सिर के नीचे रखुंगी, मैं उसी पृथिवीपति के योग्य भार्या हूं जैसे विद्या व्रतस्नात तथा साधनों के जानने वाले ब्राह्मण के ही योग्य होती है, हे रावण ! तू मुझ दुःखिया को राम से मिलादे, इसी में तेरा कल्याण है, इससे अन्यथा करता हुआ तू परम आपद् को प्राप्त होगा ॥

वर्जयेद्वज्रमुत्सृष्टं वर्जयेदन्तकश्चिरम् ।
त्वद्विधं न तु संक्रुद्धो लोकनाथः स राघवः ॥१५॥

रामस्य धनुषः शब्दं श्रोष्यसि त्वं महास्वनम् ।
शतक्रतुविसृष्टस्य निर्घोषमशनेरिव ॥१६॥
इह शीघ्रं सुपर्वाणो ज्वलितास्या इवोरगाः ।
इषवो निपतिष्यन्ति रामलक्ष्मण लक्षिताः ॥१७॥

अर्थ—इन्द्र का छोड़ा हुआ वज्र चाहे तुझे छोड़दे, यम चिरकाल तक छोड़दे पर क्रुद्ध हुआ वह लोकनाथ राघव तेरे जैसे को कदापि नहीं छोड़ेगा, मुझे जान पड़ता है कि इन्द्र के छोड़े हुए वज्रसमान राम के धनुष का भारी शब्द तू अवश्य सुनेगा, राम, लक्ष्मण के चलाये हुए तीक्ष्ण नोकोंदार तीर जो जलते हुए मुख वाले सांपों के समान हैं वह यहीं शीघ्र ही लङ्का में गिरेंगे ॥

क्षिप्रं तव सनाथो मे रामः सौमित्रिणा सह ।
तोयमल्पमिवादित्याः प्राणानादास्य ते शरैः ॥१८॥

अर्थ—और शीघ्र ही मेरे नाथ राम लक्ष्मणसहित यहां आकर बाणों से तेरे प्राणों को इस प्रकार हरेंगे, जैसे थोड़े जल को सूर्य्य शोष लेता है ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

सं०—अब सीता के उक्त कथन करने पर रावण का क्रोध वर्णन करते हैं :—

सीताया वचनं श्रुत्वा परुषं राक्षसेश्वरः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां विप्रियं प्रियदर्शनाम् ॥१॥

अर्थ–रावण सीता के उक्त कठोर वचन सुनकर उस प्रियदर्शना सीता को यह अप्रिय वचन बोला किः—

सन्नियच्छति मे क्रोधं त्वयि कामः समुत्थितः ।
द्रवतो मार्गमासाद्य हयानिव सुसारथिः ॥२॥
वामः कामो मनुष्याणां यस्मिन्किल निबध्यते ।
जने तस्मिंस्त्वनुक्रोशः स्नेहश्च किल जायते ॥३॥
एतस्मात्कारणान्न त्वां घातयामि वरानने ।
वधार्हामवमानार्हां मिथ्या प्रव्रजने रताम् ॥४॥

अर्थ–हे सीते ! तेरे विषय में उत्पन्न हुआ काम मेरे क्रोध को रोकता है, जैसे मार्ग से च्युत हुए दौड़ते घोड़ों को योग्य सारथि रोकता है, मनुष्यों में यह काम बड़ा दुष्ट है जिससे वह बन्धन में आजाने के कारण उस पर दया तथा स्नेह होजाता है, हे वरानने ! इसी कारण मैं तुझे नहीं मारता, तू वध तथा अपमान के योग्य और वनवासी राम में मिथ्या रत है ॥

परुषाणि हि वाक्यानि यानि यानि ब्रवीषि माम् ।
तेषु तेषु वधो युक्तस्तव मैथिलि दारुणः ॥५॥
एवमुक्त्वा तु वैदेहीं रावणो राक्षसाधिपः ।
क्रोधसंरम्भसंयुक्तः सीतामुत्तरमब्रवीत् ॥६॥

अर्थ–हे मैथिलि ! जो २ कठोर वाक्य तू मुझे कहती है उन २ में तेरा दारुण वध युक्त ही है अर्थात् तेरा वध अवश्य

होना चाहिये, राक्षसाधिपति रावण सीता को उक्त प्रकार कहकर फिर क्रोध के आवेश में भरा हुआ बोला कि:—

द्वौमासौ रक्षितव्यौ मे योऽवधिस्ते मया कृतः।
ततः शयनमारोह मम त्वं वरवर्णिनि ॥७॥
द्वाभ्यामूर्ध्वं तु मासाभ्यां भर्तारं मामनिच्छतीम्।
मम त्वां प्रातराशार्थे सूदाश्छेत्स्यन्ति खण्डशः ॥८॥
तां भर्त्स्यमानां संप्रेक्ष्य राक्षसेन्द्रेण जानकीम्।
देवगन्धर्वकन्यास्ता विषेदुर्विकृतेक्षणाः ॥९॥
ओष्ठप्रकारैरपरानेत्रैर्वक्त्रैस्तथापराः।
सीतामाश्वासयामासुस्तर्जितां तेन रक्षसा ॥१०॥

अर्थ—हे वरवर्णिनि! मैंने दो मास तुझे और देखना है जो अवधि नियत कीहुई है उसके पश्चात् तुझे मेरी शय्या पर अवश्य आना पड़ेगा, यदि दो मास पश्चात् तू मुझे अपना भर्त्ता बनाना न चाहेगी तो मेरे रसोइये प्रातराश=प्रातः जलपान के लिये तेरे टुकड़े २ करेंगे, जब रावण ने सीता को इस प्रकार झिड़ककर कहा तो उसको देखकर देव गन्धर्वों की उन कन्याओं की दृष्टि में विकार आगया " जो सीता की भांति बल से लाई गई थीं " और वह बहुत उदास होकर मुख, नेत्र तथा अंगुली द्वारा रावण से भयभीत हुई सीता को आश्वासन देने लगीं॥

ताभिराश्वासिता सीता रावणं राक्षसाधिपम्।
उवाचात्महितं वाक्यं वृत्तशौटीर्य गर्वितम् ॥११॥

नूनं न ते जनः कश्चिदस्मिन्निःश्रेयसि स्थितः ।
निवारयति यो न त्वां कर्मणोऽस्माद्विगर्हितात् ॥१२॥
मां हि धर्मात्मनः पत्नीं शचीमिव शचीपतेः ।
त्वदन्यस्त्रिषु लोकेषु प्रार्थयेन्मनसापि कः ॥ १३ ॥

अर्थ—उन स्त्रियों से आश्वासन पाये हुए सीता राक्षसपति रावण को अपने आचरण तथा पतिशौर्य्य से गर्वित, आत्महित-कारक यह वाक्य बोली कि क्या इस नगर में कोई भी पुरुष तेरी भलाई चाहने वाला नहीं जो तुझको इस निन्दित कर्म से नहीं रोकता है, महाराज इन्द्र की इन्द्राणी की भांति धर्मात्मा राम की पत्नी मेरी कौन तीनो लोकों में तेरे बिना मन से भी इच्छा करसक्ता है ॥

राक्षसाधम रामस्य भार्याममित तेजसः ।
उक्तवानसि यत्पापं क्व गतस्तस्य मोक्षसे ॥१४॥
इमे ते नयने क्रूरे विकृते कृष्णपिङ्गले ।
क्षितौ न पतिते कस्मान्मामनार्य निरीक्षितः॥१५॥
तस्य धर्मात्मनः पत्नीं स्नुषां दशरथस्य च ।
कथं व्याहरतो मां ते न जिह्वा पाप शीर्यति ॥१६॥

अर्थ—हे राक्षसाधम ! अमित=परिमाण से अधिक तेज वाले राम की भार्या को जो तैने पाप दृष्टि से देखा है इस पाप से तू कहां जाकर मुक्त होगा, हे अनार्य्य ! यह तेरे काले टेढे विकृत क्रूर नेत्र जिनसे तू मेरी ओर ताक रहा है यह पृथिवी पर क्यों नहीं गिर पड़ते, और हे पापी ! उस धर्मात्मा राम की पत्नी

और दशरथ की स्नुषा मुझको ऐसी पापमय बात कहते हुए तेरी जिह्वा क्यों नहीं फट जाती ॥

असंदेशात्तु रामस्य तपसश्चानुपालनात् ।
न त्वां कुर्मि दशग्रीव भस्म भस्मार्ह तेजसा॥१७॥
नापहर्तुमहं शक्या तस्य रामस्य धीमतः ।
विधिस्तव वधार्थाय विहितो नात्र संशयः ॥१८॥
शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
अपोह्य रामं कस्माच्चिहार चौर्यं त्वयाकृतम् ॥१९॥

अर्थ–हे रावण ! मुझे धर्मात्मा राम की आज्ञा नहीं और तप का पालन करना है इसलिये मैं भस्म के योग्य तुझे अपने पतिव्रता धर्म के तेज से भस्म नहीं करती हूं, मुझको उस बुद्धिमान् राम से कोई छीन नहीं सक्ता, विधाता ने यह सारी घटना तेरे बध के लिये बनाई है, इसमें संशय नहीं, तू शूरवीर, कुवेर का भाई सेनाओं से युक्त होने पर भी तैने अकेले राम को क्यों दूर करके उसकी भार्या को चुराया ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

सं०–अब रावण का सीता पर पुनः क्रोध कथन करते हैं :—

सीताया वचनं श्रुत्वा रावणो राक्षसाधिपः ।
विवृत्य नयने क्रूरे जानकीमन्ववैक्षत ॥ १ ॥

अवेक्षमाणो वैदेहीं कोपसंरक्त लोचनः ।
उवाच रावणः सीतां भुजंग इव निःश्वसन् ॥ २ ॥
अनयेनाभिसम्पन्नमर्थहीनमनुव्रते ।
नाशयाम्यहमद्य त्वां सूर्यः सन्ध्यामिवौजसा ॥३॥

अर्थ—सीता के उक्त वचन सुनकर राक्षसपति रावण ने अपने क्रूर नेत्र मोड़कर जानकी को देखा, और क्रोध से लाल नेत्रों वाला, भुजङ्ग की भांति सांस लेता हुआ सीता की ओर देखकर बोला कि हे अनीति से युक्त तथा अर्थ से हीन राम के पीछे चलने वाली मैं तुझे अभी बल से नाश करता हूं, जैसे सूर्य्य अन्धकार का नाश करदेता है ॥

इत्युक्त्वा मैथिलीं राजा रावणः शत्रुरावणः ।
संददर्श ततः सर्वा राक्षसीर्घोरदर्शनाः ॥ ४ ॥
यथा मद्वशगा सीता क्षिप्रं भवति जानकी ।
तथा कुरुत राक्षस्यः सर्वाः क्षिप्रं समेत्य वा ॥ ५ ॥

अर्थ—शत्रुओं के रुलाने वाले राजा रावण ने सीता को उक्त प्रकार कहकर फिर भयङ्कर दर्शन वाली राक्षसियों की ओर देखा और उनको आज्ञा दी कि हे राक्षसियो! तुम सब मिलकर ऐसा यत्न करो जिससे सीता शीघ्र ही मेरे वश में होजाय॥

प्रतिलोमानुलोमैश्च सामदानादिभेदनैः ।
आवर्जयत वैदेहीं दण्डस्योद्यमनेन च ॥ ६ ॥
इति प्रतिसमादिश्य राक्षसेन्द्रः पुनः पुनः ।
काममन्युपरीतात्मा जानकीं प्रतिगर्जत ॥ ७ ॥

उपगम्य ततः क्षिप्रं राक्षसी धान्यमालिनी।
परिष्वज्य दशग्रीवमिदं वचनमब्रवीत् ॥ ८ ॥

अर्थ—हे राक्षसियो ! प्रतिकूल तथा अनुकूल व्यवहार, साम, दाम, भेद और दण्ड से जिस प्रकार होसके वैदेही को मेरी ओर झुकाओ, राक्षसियों को इस प्रकार बार २ आज्ञा देकर काम क्रोध से पूर्ण मन वाला राक्षसेन्द्र जानकी के प्रति गर्जा, उसी समय धान्यमालिनी राक्षसी रावण के निकट जाकर उसको आलिङ्गन करके बोली कि :—

मया क्रीड महाराज सीतया किं तवानया।
निवर्णया कृपणया मानुष्या राक्षसेश्वर ॥ ९ ॥
नूनमस्यां महाराज न देवा भोगसत्तमान्।
विदधत्यमरश्रेष्ठास्तव बाहुबलार्जितान् ॥ १० ॥

अर्थ—हे महाराज ! हे राक्षसेश्वर ! आप मुझसे क्रीड़ा करें, इस सफेद फीके रङ्ग वाली मानुषी सीता से आपको क्या, हे महाराज ! निःसन्देह आपके भुजबल से कमाये हुए उत्तम भोग देवताओं ने इसके लिये नहीं बनाये ॥

अकामां कामयानस्य शरीरमुपतप्यते।
इच्छन्तीं कामयानस्य प्रीतिर्भवति शोभना ॥११॥
एवमुक्तस्तु राक्षस्या समुत्क्षिप्तस्ततो बली।
प्रहसन्मेघसंकाशो राक्षसः स न्यवर्तत ॥ १२ ॥

अर्थ—न चाहती हुई स्त्री को चाहने वाले का शरीर तपता और चाहती हुई को चाहने वाले की शोभन प्रीति होती है, अब

उस राक्षसी ने मेघतुल्य बली राक्षस से इस प्रकार कहा तब वह हंसता हुआ वहां से हटकर चलागया ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

सं०—अब राक्षसियों का सीता को समझाना तथा सीता का उनके प्रति उत्तर कथन करते हैं:—

ततः सीतामुपागम्य राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परं परुषया वाचा वैदेहीमिदमब्रुवन् ॥१॥

अर्थ—रावण के चले जाने पर सीता के निकट पहुंच क्रोध से मूर्च्छित राक्षसियें उसको परम कठोर बचन बोलीं कि:—

किं त्वमन्तःपुरे सीते सर्वभूतमनोरमम् ।
महार्हशयनोपेतं न वासमनुमन्यसे ॥२॥
मानुषे मानुषस्यैव भार्या त्वं बहुमन्यसे ।
प्रत्याहारमनोरामान्नैवं जातु भविष्यति ॥३॥
त्रैलोक्यवसुभोक्तारं रावणं राक्षसेश्वरम् ।
भर्तारमुपसंगम्य विहरस्व यथासुखम् ॥४॥

अर्थ—हे सीते ! बहुमूल्य शय्याओं से युक्त तथा सब मनुष्यों के मन को लुभाने वाले अन्तःपुर में वास करना तू क्यों नहीं मानती, तू मानुषी होने के कारण मानुषपति को बहुत चाहती है, सो तू राम की ओर से अपना मुख मोड़ले अब उससे

तेरा समागम कभी न होगा, अब तू त्रिलोकी के ऐश्वर्य्य को भोगने वाले राक्षसों के राजा रावण को अपना भर्त्ता बना के सुखपूर्वक विहार कर ॥

मानुषी मानुषं तं तु राममिच्छसि शोभने ।
राज्याद्भ्रष्टमसिद्धार्थंविक्लवंतमनिन्दिते ॥५॥

अर्थ–हे शोभने ! तू मानुषी होने के कारण मानुष राम को चाहती है, हे अनिन्दिते ! जो राज्य से भ्रष्ट तथा अर्थ से हीन व्याकुल हुआ फिर रहा है ॥

राक्षसीनां वचः श्रुत्वा सीता पद्मनिभेक्षणा ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यामिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥

अर्थ–राक्षसियों के उक्त वचन सुनकर कमलतुल्य नेत्रों वाली सीता आंसू भरे हुए नेत्रों से यह बचन बोली किः—

यदिदं लोकविद्विष्टमुदाहरत सङ्गता ।
नैतन्मनसि वाक्यं मे किल्विषं प्रतितिष्ठति ॥७॥
न मानुषी राक्षसस्य भार्या भवितुमर्हति ।
कामं खादत मां सर्वा न करिष्यामि वो वचः ॥८॥
दीनो वा राज्यहीनो वा यो मे भर्ता स मे गुरुः ।
तं नित्यमनुरक्तास्मि यथा सूर्यं सुवर्चला ॥९॥

अर्थ–तुम सब राक्षसी इकट्ठी होकर जो उक्त लोकनिन्दित वाक्य कहती हो सो यह पाप भरा वाक्य मेरे मन में स्थान नहीं पकड़सक्ता, मैं मानुषी होकर राक्षस की भार्या नहीं होसक्ती आप सब मिलकर निःशङ्क मुझे भक्षण कर जाओ पर तुम्हारी

इस अनुचित बात को कदापि न मानुंगी, चाहे दीन और चाहे राज्यहीन है पर जो मेरा भर्त्ता है वही मेरा गुरु=शिक्षक और उसी पर मैं सदा अनुरक्त हूं, जैसे सूर्य्य पर सुवर्चला अनुरक्त है ॥

यथा शची महाभागं शक्रं समुपतिष्ठति ।
अरुन्धती वसिष्ठं च रोहिणी शशिनं यथा ॥१०॥
लोपामुद्रा यथागस्त्यं सुकन्या च्यवनं यथा ।
सावित्री सत्यवन्तं च कपिलं श्रीमती यथा ॥११॥
सौदासं मदयन्तीव केशिनी सगरं यथा ।
नैषधं दमयन्तीव भैमी पतिमनुव्रता ॥१२॥
तथाहमिक्ष्वाकुवरं रामं पतिमनुव्रता ॥१३॥

अर्थ–जैसे महाभागा इन्द्राणी इन्द्र पर, अरुन्धती वसिष्ठ पर रोहिणी चन्द्रमा पर, लोपामुद्रा अगस्त्य पर, सुकन्या च्यवन पर, सावित्री सत्यवान् पर, श्रीमती कपिल पर, मदयन्ती सौदास पर, केशिनी सगर पर और भीम की पुत्री दमयन्ती निषध के राजा पर अनुरक्त है अर्थात् अपने २ पति के अनुव्रता=अनुकूल वर्त्तने वाली हैं, इसी प्रकार मैं भी इक्ष्वाकुवर पति राम की अनुव्रता हूं ॥

सीताया वचनं श्रुत्वा राक्षस्यः क्रोधमूर्च्छिताः ।
भर्त्सयन्ति स्म परुषैर्वाक्यै रावण चोदिताः ॥१४॥
अवलीनः स निर्वाक्यो हनूमाञ्छिंशपाद्रुमे ।
सीतां संतर्जयन्तीस्ता राक्षसीरशृणोत्कपिः ॥१५॥

सा भर्त्स्यमाना भीमाभी राक्षसीभिर्वरांगना ।
सा बाष्पमपमार्जन्ती शिंशपां तामुपागमत् ॥१६॥

अर्थ–सीता के उक्त बचन सुनकर रावण से प्रेरित हुई राक्षसियें क्रोधातुर हो कठोर वाक्यों से उसको झिड़कने लगीं, और उस शीशम के वृक्ष पर चुपचाप छिपकर बैठे हुए हनुमान् ने सीता को राक्षसियों से झिड़कते हुए सुना, उन भयङ्कर राक्षसियों की झिड़कें सहकर वह उत्तम नारी सीता आंसुओं को पोंछती हुई उसी शीशम की ओर आगई जिस पर हनुमान् बैठा था ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

सं०–अब सीता का अति करुणामय विलाप कथन करते हैं:—

वेपते स्माधिकं सीता विशन्तीवांगमात्मनः ।
वने यूथपरिभ्रष्टा मृगी कोकैरिवार्दिता ॥ १ ॥
सा त्वशोकस्य विपुलां शाखामालम्ब्य पुष्पिताम् ।
चिन्तयामास शोकेन भर्तारं भग्नमानसा ॥ २ ॥

अर्थ–वन में अपने साथियों से बिछुड़कर भेड़ियों से घिरी हुई हरिणि की भांति भय से पीड़ित हुई सीता मानो अपने अङ्गों में प्रवेश करती हुई बहुत कांप रही थी, वह गिरे हुए मन वाली सीता अशोक वृक्ष की एक फूली हुई शाखा को पकड़कर शोक से अपने भर्त्ता का स्मरण करने लगी ॥

सा स्नापयन्ती विपुलौ स्तनौ नेत्रजलस्रवैः ।
चिन्तयन्ती न शोकस्य तदान्तमधिगच्छति ॥३॥
सा निःश्वसन्ती शोकार्ता कोपोपहतचेतना ।
आर्ता व्यसृजदश्रूणि मैथिली विललाप च ॥४॥

अर्थ—वह नेत्रों द्वारा जल बहने से अपने विपुल स्तनों को स्नान कराती हुई शोकसागर में निमग्न अपने शोक का अन्त नहीं पाती थी, वह शोक से पीड़ित तथा कोप से अचेतन हुई मैथिली बार २ रोती और विलाप करती थी ॥

हा रामेति च दुःखार्ता हा पुनर्लक्ष्मणेति च ।
हा श्वश्रूर्मम कौसल्ये हा सुमित्रेति भामिनी ॥५॥
लोकप्रवादः सत्योऽयं पण्डितैः समुदाहृतः ।
अकाले दुर्लभो मृत्युः स्त्रिया वा पुरुषस्य वा ॥६॥
यत्राहमाभिः क्रूराभी राक्षसीभिरिहार्दिता ।
जीवामि हीना रामेण मुहूर्तमपि दुःखिता ॥ ७ ॥

अर्थ—वह दुःखिया सुन्दरी सीता हा राम !! हा लक्ष्मण !! हा मेरी सास कौसल्या !! हा सुमित्रा !! यह बार २ कहती और सोचती थी कि विद्वानों ने यह कहावत ठीक कही है कि विना काल स्त्री वा पुरुष को मृत्यु दुर्लभ है ॥

एषाल्पपुण्या कृपणाविनशिष्याम्यनाथवत् ।
समुद्रमध्ये नौः पूर्णा वायुवेगैरिवाहता ॥ ८ ॥
भर्तारं तमपश्यन्ती राक्षसीवशमागता ।
सीदामि खलु शोकेन कूलं तोयहतं यथा ॥ ९ ॥

तं पद्मदल पत्राक्षं सिंह विक्रान्त गामिनम् ।
धन्याः पश्यन्ति मे नाथं कृतज्ञं प्रियवादिनम् ॥१०॥

अर्थ—मेरे जैसी अल्प पुण्य वाली कृपण अनाथ के समान अवश्य मृत्यु को प्राप्त होजायगी, जैसे बहुत भार से भरी हुई नाव पवन के वेगद्वारा समुद्र में डूब जाती है, भर्त्ता को न देखती हुई, राक्षसियों के वस पड़ी हुई, जल से तोड़े हुए किनारे की भांति शोक से गिर रही हूं, कमल के पत्र समान नेत्रोंवाले, सिंह जैसी चाल वाले, कृतज्ञ तथा प्रिय बोलने वाले मेरे नाथ को जो इस समय देखते होंगे वह धन्य हैं ॥

सर्वथा तेन हीनाया रामेण विदितात्मना ।
तीक्ष्णं विषमिवास्वाद्य दुर्लभं मम जीवनम् ॥११॥
कीदृशं तु महापापं मया देहान्तरे कृतम् ।
येनेदं प्राप्यते घोरं महादुःखं सुदारुणम् ॥ १२ ॥

अर्थ—उस विज्ञानी राम से हीन हुई मेरा तीक्ष्ण विष खाने वाले के समान जीना दुर्लभ है, मैंने देहान्तर में कैसा महापाप किया है जिससे यह बड़ा दारुण घोर महा दुःख भोग रही हूं ॥

जीवितं त्यक्तुमिच्छामि शोकेन महता वृता ।
राक्षसीभिश्च रक्षन्त्या रामो नासाद्यतेमया ॥१३॥
धिगस्तु खलु मानुष्यंधिगस्तु परवश्यताम् ।
न शक्यं यत्परित्यक्तुमात्मच्छन्देन जीवितम् ॥१४॥

अर्थ—मैं इस समय बड़े शोक से आवृत्त हुई अपना जीवन त्यागने की इच्छा करती हूं, क्योंकि इन राक्षसियों से रक्षा की

हुई मैं अब राम को नहीं पासकुंगी. धिक्कार है मनुष्यपन को और धिक्कार है पराधीनता को जिसमें अपनी इच्छा से जीवन भी नहीं त्यागा जाता ॥

अश्मसारमिदं नूनमथवाप्यजरामरम् ।
हृदयं मम येनेदं न दुःखेन विशीर्यते ॥ १५ ॥
धिङ्मामनार्यामसतीं याहं तेन विना कृता ।
मुहूर्तमपि जीवामि जीवितं पापजीविका ॥ १६ ॥

अर्थ—निःसन्देह यह मेरा हृदय पत्थर का बना हुआ अथवा अजर अमर है जो इतने महान् दुःख से भी नहीं फटता, मुझ अनार्या, असती को धिक्कार है जो मैं पति से पृथक् कीहुई मुहूर्त भर भी पाप का जीवन जीती हूं ॥

चरणेनापि सव्येन न स्पृशेयं निशाचरम् ।
रावणं किं पुनरहं कामयेयं निशाचरम् ॥ १७ ॥
इहस्थां मां न जानीते शङ्के लक्ष्मणपूर्वजः ।
जानन्नपि स तेजस्वी धर्षणां मर्षयिष्यति ॥१८॥
हृतेति मां योऽधिगत्य राघवाय निवेदयेत् ।
गृध्रराजोऽपि स रणे रावणेन निपातितः ॥ १९ ॥
कृतं तेन महत्कर्म मां तदाभ्यवपद्यता ।
तिष्ठता रावणवधे वृद्धेनापि जटायुषा ॥ २० ॥

अर्थ—मैं उस राक्षस रावण को बांये पैर से भी नहीं छूंगी, फिर क्या मैं उसकी कभी कामना करसक्ती हूं, मुझे पूर्ण निश्चय है कि लक्ष्मण का बड़ा भाई मुझे यहां स्थित नहीं जानता नहीं

तो वह तेजस्वी मेरे हरण रूप अपमान को कदापि नहीं सहारेगा रावण हरकर लेगया है, यह जानने वाला गृध्रराज जो मेरा पता राघव को देता वह भी रावण ने रण में मार दिया है, मेरे ऊपर अनुग्रह करते हुए जटायु ने बड़ा काम किया जो वृद्ध होकर भी रावण के वध के लिये खड़ा होगया ॥

यदि मामिह जानीयाद्वर्तमानां हि राघवः ।
अद्य वाणैरभिक्रुद्धः कुर्याल्लोकमराक्षसम् ॥ २१ ॥
यादृशानि तु दृश्यन्ते लङ्कायामशुभानि तु ।
अचिरेणैव कालेन भविष्यति हत प्रभा ॥ २२ ॥

अर्थ—यदि मेरा यहां होना राघव को विदित होजाय तो वह क्रुद्ध हुए अभी वाणों से लोक को बिना राक्षसों के करदेंगे, लङ्का में आजकल जैसे अशुभकार्य्य होरहे हैं, इससे जानपड़ता है कि थोड़े ही काल में इसकी प्रभा उड़ जायगी ॥

रामं रक्तान्तनयनमपश्यन्तीसुदुःखिता ।
क्षिप्रं वैवस्वतं देवं पश्येयं पतिना विना ॥ २३ ॥
ना जानाज्जीवतीं रामः स मां भरतपूर्वजः ।
जानन्तौ तु न कुर्यातां नोर्व्यां हि परिमार्गणम् ॥ २४ ॥

अर्थ—रक्त नेत्रों वाले राम को न देखती हुई पति वियोग से असन्त दुःखित मैं शीघ्र ही यम देव को देखना चाहती हूं अर्थात् इस जीवन से मृत्यु को प्राप्त होना ही श्रेष्ठ है, वह भरत के बड़े भाई राम मुझको जीवित नहीं जानते, यदि वह मुझको जीवित जानते होते तो क्या पृथिवी पर मेरी खोज न करते अर्थात् अवश्य ढूंढते ॥

नूनं ममैव शोकेन स वीरो लक्ष्मणाग्रजः ।
देवलोकमितो यातस्त्यक्त्वा देहं महीतले ॥२५॥
किं वा मय्यगुणाः केचित्किं वा भाग्यक्षयो हि मे ।
या हि सीता वरार्हेण हीना रामेण भामिनी ॥२६॥

अर्थ–अथवा निःसन्देह मेरे ही शोक से वह वीर लक्ष्मण का बड़ा भाई पृथिवी पर देह त्याग के यहां से देवलोक को चला गया है अथवा मुझ में कोई अवगुण है वा मेरे भाग्य का ही क्षय होगया है जो प्यारी सीता प्यारे राम से वियुक्त है ॥

अथवा राक्षसेन्द्रेण रावणेन दुरात्मना ।
छद्मना घातितौ शूरौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥२७॥
साहं त्यक्ता प्रियेणैव रामेण विदितात्मना ।
प्राणांस्त्यक्ष्यामि पापस्य रावणस्य गतावशम् ॥२८॥

अर्थ–अथवा दुरात्मा राक्षसेन्द्र रावण ने उन शूरबीर राम लक्ष्मण दोनो भाइयों को छल से मरवा डाला है, सो मैं विज्ञानी प्यारे राम से त्यागी हुई और पापी रावण के वश पड़ी हुई अवश्य प्राणों को त्याग दूंगी ॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पञ्चदशः सर्गः

सं०–अब हनुमान् सीता से बातचीत करने का विचार करते हुए राम के गुण वर्णन करते हैं:—

हनुमानपि विक्रान्तः सर्वं शुश्राव तत्त्वतः ।
ततो बहुविधां चिन्तां चिन्तयामास वानरः ॥१॥
यां कपीनां सहस्राणी सुबहून्ययुतानि च ।
दिक्षु सर्वासु मार्गन्ते सेयमासादिता मया ॥२॥
यदि ह्येवं सतीमेनां शोकोपहत चेतनाम् ।
अनाश्वास्य गमिष्यामि दोषवद्गमनं भवेत् ॥३॥
गते हि मयि तत्रेयं राजपुत्री यशस्विनी ।
परित्राणामपश्यन्ती जानकी जीवितं त्यजेत् ॥४॥

अर्थ—हनुमान् सीता का उक्त सम्पूर्ण विलाप ठीक २ सुनकर अनेक प्रकार का विचार करने लगा कि जिसको अनेक वानर सारी दिशाओं में ढूंढ़ रहे हैं वह यह सीता मैंने पाली है, अब यदि मैं शोक से व्याकुल इस पतिव्रता को आश्वासन किये बिना चला जाऊं तो मेरा जाना दोषवाला होगा, और मेरे चले जाने पर यह यशस्विनी राजपुत्री जानकी कोई अव-लम्ब न देखती हुई जीवन को त्याग देगी ॥

अनेन रात्रिशेषेण यदि नाश्वास्यते मया ।
सर्वथा नास्ति सन्देहः परित्यक्षाति जीवितम् ॥५॥
रामस्तु यदि पृच्छेन्मां किं मां सीताब्रवीद्वचः ।
किमहं तं प्रतिब्रूयामसम्भाष्य सुमध्यमाम् ॥६॥
अन्तरं त्वहमासाद्य राक्षसीनामवस्थितः ।
शनैराश्वासयाम्यद्य सन्तापबहुलामिमाम् ॥७॥

अर्थ—यदि मैं इसी रात्रिशेष में इसको आश्वासन न देसका तो निःसन्देह यह मृत्यु को प्राप्त होजायगी, और वहां जाने पर यदि राम पूछेंगे कि सीता ने मेरे लिये क्या कहा तो मैं इस सुमध्यमा से बात किये बिना उनको क्या उत्तर दूंगा, इसलिये राक्षसियों से यहां कुछ अन्तर पर खड़े हुए ही इस अति संतप्त हुई को धीरे२ मुझे आश्वासन देना चाहिये ॥

कथं नु खलु वाक्यं मे शृणुयान्नोद्विजेत् च ।
इति संचिन्त्य हनुमांश्चकार मतिमान्मतिम् ॥८॥
राममक्लिष्टकर्माणं सुबन्धुमनुकीर्तयन् ।
नैनामुद्वेजयिष्यामितद्बन्धुगतचेतनाम् ॥९॥
श्रावयिष्यामि सर्वाणि मधुरां प्रब्रुवन् गिरम् ।
श्रद्धास्यति यथा सीता तथा सर्वं समादधे ॥१०॥

अर्थ—सीता कैसे मेरे वाक्य को सुने और भयभीत न हो, "इस प्रकार मुझे कहना चाहिये" यह सोचकर बुद्धिमान् हनुमान् ने यों विचार किया कि शुभकर्मों वाले इसके बन्धु राम का कीर्तन करता हुआ इसको भय से बचाऊंगा, क्योंकि इसका चित्त उसी अपने प्रिय में लगरहा है, मधुर बाणी द्वारा राम के सारे चरित्र कीर्तन करुंगा, जिससे सीता को विश्वास हो वही सब मुझे कहना चाहिये ॥

एवं बहुविधां चिन्तां चिन्तयित्वा महामतिः ।
संश्रवे मधुरं वाक्यं वैदेह्या व्याजहार ह ॥११॥

राजा दशरथो नाम रथकुंजर वाजिनाम् ।
पुण्यशीलो महाकीर्तिरिक्ष्वाकूणां महायशाः ॥१२॥
अहिंसारतिरक्षुदोघृणी सत्यपराक्रमः ।
मुख्यस्येक्ष्वाकुवंशस्य लक्ष्मीवांल्लक्ष्मिवर्धनः ॥१३॥

अर्थ–महामति हनुमान् उक्त प्रकार चिन्तन करता हुआ सीता को सुनाई देने वाले मधुरस्वर से यह वाक्य बोला कि इक्ष्वाकुओं का राजा दशरथ जो अनेक रथ, हाथी तथा घोड़ों का स्वामी और जो पुण्यशील, महाकीर्तिवान् तथा महायशस्वी, अहिंसा में तत्पर, बड़े प्रशस्त, दयावान, इक्ष्वाकुवंशियों की लक्ष्मी बढ़ाने वाले तथा लक्ष्मीवान् थे ॥

तस्य पुत्रः प्रियो ज्येष्ठस्ताराधिपनिभाननः ।
रामो नाम विशेषज्ञः ज्येष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥१४॥
रक्षिता स्वस्य वृत्तस्य स्वजनस्यापि रक्षिता ।
रक्षिता जीवलोकस्य धर्मस्य च परंतपः ॥१५॥
तस्य सत्याभिसन्धस्य वृद्धस्य वचनात्पितुः ।
सभार्यः सह च भ्रात्रा वीरः प्रव्राजितोवनम् ॥१६॥

अर्थ–उनका प्रिय ज्येष्ठ पुत्र चन्द्रतुल्यमुखवाला राम जो विशेष गुणों वाला, सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ, अपने आचार तथा स्वजनों का रक्षक, जीव लोक की रक्षा करने वाला, धर्म का रक्षक और शत्रुओं का दमन करने वाला है, उस सत्यप्रतिज्ञ राम ने अपने वृद्ध पिता की आज्ञानुसार भार्या तथा भाई सहित वन को प्रस्थान किया ॥

तेन तत्र महारण्ये मृगयां परिधावता।
राक्षसा निहताः शूरा बहवः कामरूपिणः ॥१७॥
जनस्थानवधं श्रुत्वा निहतौ खरदूषणौ।
ततस्त्वमर्षापहृता जानकी रावणेन तु ॥१८॥
वंचयित्वा वने रामं मृगरूपेण मायया।
स मार्गमाणस्तां देवीं रामः सीतामनिन्दिताम् ॥१९॥

अर्थ—वहां महावन में मृगया खेलते हुए उन्होंने काम रूप बहुत से शूरवीर राक्षसों का हनन किया, फिर जनस्थान का बध तथा खर दूषण को मरा हुआ सुनकर क्रोधित हुए रावण ने मायामृग द्वारा वन में राम को छलकर जानकी को हरलिया है, सो वह राम उस अनिन्दिता=निन्दा के अयोग्य सीता को ढूंढते फिरते थे कि :—

आससाद वने मित्रं सुग्रीवं नाम वानरम्।
ततः स बालिनं हत्वा रामः परपुरञ्जयः ॥ २० ॥
आयच्छत्कपिराज्यं तु सुग्रीवाय महात्मने।
सुग्रीवेणाभिसंदिष्टा हरयः कामरूपिणः ॥ २१ ॥
दिक्षु सर्वासु तां देवीं विचिन्वन्तः सहस्रशः।
अहं सम्पातिवचनाच्छतयोजनमायतम् ॥ २२ ॥

अर्थ—वन में सुग्रीव नामक वानर मिला उसको मित्र बनाया और शत्रुओं के किले जीतने वाले राम ने बालि को मार वानरों का राज्य महात्मा सुग्रीव को दिया, और सुग्रीव से आज्ञा पाये

हुए कामरूपी अनेक वानर उस देवी को ढूंढते हुए सब दिशाओं में गये और मैं सम्पाती के कथनानुसार सौ योजन फाट वाले :—

तस्या हेतोर्विशालाक्ष्याः समुद्रं वेगवान् प्लुतः ।
यथा रूपां यथा वर्णां यथा लक्ष्मवतीं च ताम्॥२३॥
अश्रौषं राघवस्याहं सेयमासादिता मया ।
विररामैवमुक्त्वा स वाचं वानरपुंगवः ॥ २४ ॥

अर्थ—समुद्र को उस विशाल नेत्रों वाली सीता के कारण बड़े वेग से पार हुआ, सो जैसी आकृति, रंग तथा चिन्हों वाली मैंने राम से सुनी थी वह यह सीता मैंने प्राप्त करली है, इतना कहकर वह हनुमान् चुप होगया ॥

निशम्य सीता वचनं कपेश्च दिशश्च सर्वाः
प्रदिशश्च वीक्ष्य । स्वयं प्रहर्षं परमं जगाम
सर्वात्मना राममनुस्मरन्ती ॥ २५ ॥

अर्थ—सीता हनुमान् के बचन सुनकर सब दिशा तथा उपदिशाओं की ओर देखने लगी और सर्वात्मरूप से राम को स्मरण कर परम आनन्द को प्राप्त हुई ॥

सा तिर्यमूर्ध्वं च तथाह्यधस्तान्निरीक्षमाणा
तमचिन्त्यबुद्धिम् । ददर्श पिंगाधिपते-
रमात्यं वातात्मजं सूर्यमिवोदयस्थम् ॥२६॥

अर्थ—वह इधर उधर ऊपर नीचे उस अचिन्त्य बुद्धिमान्

को देख रही थी कि उदय होते हुए सूर्य्य की भांति सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् दीख पड़ा ॥

इति पंचदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

सं०-अब हनुमान् का सीता के निकट आना और सीता का उस पर सन्देह करना कथन करते हैं :—

सोऽवतीर्यद्रुमात्तस्माद्विद्रुमप्रतिमाननः ।
विनीतवेषः कृपणः प्रणिपत्योपसृत्य च ॥ १ ॥
तामब्रवीन्महातेजा हनुमान्मारुतात्मजः ।
शिरस्यंजलिमाधाय सीतां मधुरया गिरा ॥ २ ॥

अर्थ-तदनन्तर अग्नि के समान देदीप्यमान् हनुमान् ने उस शीशम के वृक्ष से उतर अतिनम्र हो जानकी के निकट जाकर प्रणाम किया, और दोनों हाथ जोड़कर शिर पर धर महातेजस्वी हनुमान् सीता से बोले कि :—

अहं रामस्य सन्देशाद्देवि दूतस्तवागतः ।
वैदेहि कुशली रामः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥ ३ ॥
यो ब्राह्ममस्त्रं देवांश्च वेद वेदविदां वरः ।
स त्वां दाशरथी रामो देवि कौशलमब्रवीत् ॥४॥

अर्थ–हे देवि ! राम का सन्देश लेकर मैं उनका दूत तुम्हारे पास आया हूं, हे वैदेहि ! राम कुशलपूर्वक हैं और उन्होंने तुम्हें कुशल कहा है, जो वेद के जानने वालों में श्रेष्ठ और जो ब्राह्म अस्त्र तथा देवों को जानने वाले हैं उन दाशरथि=दशरथ के पुत्र राम ने हे देवि ! तुम्हारे प्रति कुशल कहा है ॥

लक्ष्मणश्च महातेजा भर्तुस्तेऽनुचरः प्रियः ।
कृतवाञ्छोकसन्तप्तः शिरसा तेऽभिवादनम् ॥५॥
सा तयोः कुशलं देवी निशम्य नरसिंहयोः ।
प्रतिसंहृष्ट सर्वाङ्गी हनुमन्तमथाब्रवीत् ॥ ६ ॥

अर्थ–और महातेजस्वी लक्ष्मण जो तुम्हारे भर्त्ता राम के प्रिय सहगामी हैं, उस शोक से तपे हुए ने तुम्हें अभिवादन कहा है, तब वह देवी उन दोनों सिंहरूप नरों का कुशल सुनकर सब अङ्गों में प्रफुल्लित हो हनुमान् से बोली कि :—

कल्याणीवत गाथेयं लौकिकी प्रतिभाति मां ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ ७ ॥
तयोः समागमे तस्मिन्प्रीतिरुत्पादिताद्भुता ।
परस्परेण चालापं विश्वस्तौ तौ प्रचक्रतुः ॥ ८ ॥

अर्थ–यह लौकिक कहावत मुझे बड़ी आनन्ददायक प्रतीत होती है कि जीवित पुरुष को सौ वर्ष के पीछे भी प्रसन्नता प्राप्त होती है, उन दोनों के इस समागम में उनको बड़ी प्रसन्नता हुई और वह दोनों आपस में विश्वस्त होकर वार्त्तालाप करने लगे ॥

तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
सीताया शोकतप्तायाः समीपमुपचक्रमे ॥ ९ ॥
यथा यथा समीपं स हनूमानुपसर्पति ।
तथा तथा रावणं सा तं सीता परिशङ्कते ॥१०॥

अर्थ—शोक से संतप्त सीता के वचन सुनकर पवनपुत्र हनुमान् उसके समीप २ होता गया, परन्तु ज्यों २ हनुमान् सीता के समीप जाता था त्यों २ सीता को उसमे रावण का सन्देह होता था ॥

अहो धिग्धिकूकृतमिदं कथितं हि यदस्य मे ।
रूपान्तरमुपागम्य स एवायं हि रावणः ॥ ११ ॥
अवन्दत महाबाहुस्ततस्तां जनकात्मजाम् ।
सा चैनं भयसंत्रस्ता भूयो नैनमुदैक्षत ॥ १२ ॥
तं दृष्ट्वा वन्दमानं च सीता शशिनिभानना ।
अब्रवीद्दीर्घमुच्छ्वस्य वानरं मधुरस्वरा ॥ १३ ॥

अर्थ—अहो धिक्, धिक् जो मैंने इसके साथ बातें कीं, यह तो वही राक्षस रावण ही भेष बदलकर आया है, तदनन्तर उस महाबाहु हनुमान् ने जनकसुता को प्रणाम किया परन्तु उस भयभीत हुई सीता ने फिर उसकी ओर नहीं देखा, पर उसको प्रणाम करता हुआ देख चन्द्रमुखी तथा मधुर स्वर वाली सीता लम्बा सांस भरकर हनुमान् से बोली कि :—

मायां प्रविष्टो मायावी यदि त्वं रावणः स्वयम् ।
उत्पादयसि मे भयः संतापं तन्न शोभनम् ॥१४॥

स्वं परित्यज्य रूपं यः परिव्राजकरूपवान् ।
जनस्थाने मया दृष्टस्त्वं स एव हि रावणः ॥१५॥

अर्थ—यदि तू मायावी रावण मेरे साथ छल करके फिर मुझे सन्ताप उत्पन्न करता है तो यह कर्म तेरे लिये शोभा नहीं देता, अपना रूप त्यागकर संन्यासी के भेष में जो मैंने तुझे जनस्थान में देखा था वही तू मायावी=छलिया रावण है ॥

उपवासकृशां दीनां कामरूप निशाचर ।
संतापयसि मां भूयः सन्तापं तन्न शोभनम् ॥१६॥
एतां बुद्धिं तदा कृत्वा सीता सा तनुमध्यमा ।
न प्रतिव्याजहाराथ वानरं जनकात्मजा ॥ १७ ॥

अर्थ—हे कामरूप निशाचर ! उपवास से दुर्बल हुई मुझ दीन को तू बार २ संतप्त करता है यह तेरे लिये अच्छा नहीं, हनुमान् में ऐसी बुद्धि करके वह तनुमध्यमा जनकसुता सीता उसको कुछ उत्तर न देती हुई चुप होगई ॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

सं०—अब सीता तथा हनुमान् का वार्त्तालाप कथन करते हैं :—

सीताया निश्चितं बुद्ध्वा हनूमान्मारुतात्मजः ।
श्रोत्रानुकूलैर्वचनैस्तदा तां संप्रहर्षयन् ॥ १ ॥

अर्थ—सीता में निश्चित बुद्धि करके अर्थात् यह जानकर कि यही सीता है तब पवनसुत हनुमान् उसके कानों को प्रिय अनुकूल वचन कहकर उसको प्रसन्न करता हुआ बोला कि :—

आदित्य इव तेजस्वी लोककान्तः शशी यथा ।
राजा सर्वस्य लोकस्य देवो वै श्रवणो यथा ॥२॥
विक्रमेणोपपन्नश्च यथा विष्णुर्महायशाः ।
सत्यवादी मधुरवाग्देवो वाचस्पतिर्यथा ॥ ३ ॥

अर्थ—सूर्य्य की भांति तेजस्वी, चन्द्रमा के समान लोकप्रिय, कुबेर के समान सब लोकों का राजा, वह महायशस्वी विक्रम में विष्णु की भांति और सत्यभाषण करने तथा मधुर बोलने में बृहस्पति के समान है ॥

शून्ये येनापनीतासि तस्य द्रक्ष्यसि तत्फलम् ।
अचिराद्रावणं संख्ये यो वधिष्यति वीर्यवान् ॥४॥
क्रोध प्रमुक्तैरिषुभिर्ज्वलद्भिरिव पावकैः ।
तनाहं प्रेषितो दूतस्त्वत्सकाशमिहागतः ॥ ५ ॥

अर्थ—जो रावण शून्य में अर्थात् अकेली होने पर तुम्हें हरलाया है उसका फल तुम देखोगी, उस रावण का शीघ्र ही बलवान् राम क्रोध से प्रेरित अग्नि के समान जलते हुए बाणों से वध करेंगे, उन्हीं का भेजा हुआ मैं दूत तुम्हारे पास यहां आया हूं ॥

त्वद्वियोगेन दुःखार्तः स त्वां कौशलमब्रवीत् ।
लक्ष्मणश्चमहातेजाः सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ ६ ॥
अभिवाद्य महाबाहुः स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥७॥

अर्थ—वह राम तुम्हारे वियोगरूप दुःख से अति पीड़ित हैं, उन्होंने अपना कुशल कहकर तुम्हारा कुशल पूछा है, और सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले महातेजस्वी लक्ष्मण ने आपको अभिवादन कहकर उस महाबाहु ने आपका कुशल पूछा है ॥

रामस्य च सखा देवि सुग्रीवो नाम वानरः ।
अहं सुग्रीव सचिवो हनूमान्नाम वानरः ॥ ८ ॥

अर्थ—हे देवि ! सुग्रीव नाम वानरराज राम का सखा=मित्र और मैं उस सुग्रीव का मन्त्री हनुमान् नामक वानर हूं ॥

प्रविष्टो नगरीं लङ्कां लंघयित्वा महोदधिम् ।
कृत्वा मूर्ध्नि पदान्यासं रावणस्य दुरात्मनः ॥९॥
त्वां द्रष्टुमुपयातोऽहं समाश्रित्य पराक्रमम् ।
नाहमस्मि तथा देवि यथा मामवगच्छसि ॥१०॥
विशङ्का त्यजतामेषा श्रद्धस्व वदतो मम ॥ ११ ॥

अर्थ—और मैं समुद्र लांघ दुरात्मा रावण के शिर पर पैर रखकर यहां लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ हूं, मैं अपने पराक्रम के सहारे तुम्हें देखने के लिये यहां आया हूं, हे देवि ! मैं वह नहीं जो तू समझती है, अब तू इस शङ्का को छोड़कर विश्वासपूर्वक मुझसे बात चीत कर॥

यान्याभरण जालानि पातितानि महीतले ।
तानि रामाय दत्तानि मयैवोपहृतानि च ॥१२॥
तेन देवप्रकाशेन देवेन परिदेवितम् ।
शायितं च चिरं तेन दुःखार्तेन महात्मना ॥१३॥

अर्थ—"रावण से बलात्कार हरी जाती हुई" तैने जो भूषण

पृथिवी पर गिराये वह मैंने ही राम की भेट किये थे " जिनको देखकर" वह देवतुल्य महाराज राम बहुत रोये और दुःख से पीड़ित हुए २ वह महात्मा चिरकाल तक भूमि पर लेटे रहे ॥

मयापि विविधैर्वाक्यैः कृच्छ्रादुत्थापितः पुनः ।
तानि दृष्ट्वा महार्हाणि दर्शयित्वा मुहुर्मुहुः ॥१४॥
राघवः सहसौमित्रिः सुग्रीवे संन्यवेशयत् ॥१५॥

अर्थ—तब मैंने भी विविध प्रकार की बातें कह बड़ी कठिनता से उठाया, फिर वह बहुमूल्य भूषण लक्ष्मण सहित राम ने वार २ देखकर सुग्रीव को देदिये कि सम्भालकर रखो ॥

स तवादर्शनादार्ये राघवः परितप्यते ।
महता ज्वलता नित्यमग्निनेवाग्निपर्वतः ॥१६॥
काननानि सुरम्याणि नदी प्रस्रवणानि च ।
चरन्नरतिमाप्नोति त्वामपश्यन्नृपात्मजे ॥१७॥
स त्वां मनुजशार्दूलः क्षिप्रं प्राप्स्यति राघवः ।
समित्रबान्धवं हत्वा रावणं जनकात्मजे ॥१८॥

अर्थ—हे आर्ये ! तेरे बिना देखे वह राघव नित्य जलती हुई महान् अग्नि से अग्निपर्वत की भांति तप्त होरहे हैं,हे राजपुत्रि ! तुझे न देखते हुए राम सुरम्य वनों तथा नदियों के झरनों पर विचरते हुए आनन्द को प्राप्त नहीं होते हैं, हे जनकपुत्री सीते ! वह पुरुषश्रेष्ठ राम मित्र तथा बान्धवों सहित रावण को मारकर तुम्हें शीघ्र ही प्राप्त होंगे ॥

भूय एव महातेजा हनूमान्पवनात्मजः ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं सीता प्रत्ययकारणात् ॥१९॥
वानरोहं महाभागे दूतो रामस्य धीमतः ।
राम नामांकितं चेदं पश्य देव्यंगुलीयकम् ॥२०॥
प्रत्ययार्थं तवानीतं तेन दत्तं महात्मना ।
समाश्वसिहि भद्रं ते क्षीण दुःख फलाह्यसि ॥२१॥

अर्थ–महातेजस्वी पवनसुत हनुमान सीता के विश्वासार्थ फिर नम्रतापूर्वक बोला कि हे महाभागे ! मैं बुद्धिमान् राम का दूत हूं, हे देवि ! राम नाम से अङ्कित यह अंगुठी देख जो उस महात्मा से दीहुई तेरे निश्चयार्थ लाया हूं, अब तू धैर्य धारण कर तेरा कल्याण हो, हे सीते ! अब तेरा दुःख क्षीण होगया है ॥

गृहीत्वा प्रेक्षमाणा सा भर्तुः करविभूषितम् ।
भर्तारमिव संप्राप्तं जानकी मुदिताभवत् ॥२२॥
चारु तद्वदनं तस्यास्ताम्रशुक्लायतेक्षणम् ।
बभूव हर्षोदग्रं च राहुमुक्त इवोडुराट् ॥२३॥
ततः सा ह्रीमती बाला भर्तुःसन्देशहर्षिता ।
परितुष्टा प्रियं कृत्वा प्रशशंस महाकपिम् ॥२४॥

अर्थ–भर्त्ता के हाथ की उस सुभूषित अंगुठी को लेकर देखती हुई जानकी पति से मिलने के समान अति प्रसन्न हुई, और उसका लाल तथा श्वेत विशाल नेत्रों वाला सुन्दर मुख राहु से छूटे हुए चन्द्रमा की भांति हर्ष से प्रफुल्लित होगया, तदनन्तर वह लज्जावती बाला भर्त्ता का उक्त सन्देश पाकर अति हर्ष को

प्राप्त हो बड़ी सन्तुष्ट हुई और हनुमान् का आदर करती हुई उस की बहुत प्रशंसा करके बोली कि:—

विक्रान्तस्त्वं समर्थस्त्वं प्राज्ञस्त्वं वानरोत्तम ।
येनेदं राक्षसपदं त्वयैकेन प्रधर्षितम् ॥२५॥
शतयोजन विस्तीर्णः सागरोमकरालयः ।
विक्रमश्लाघनीयेन क्रमता गोष्पदीकृतः ॥२६॥
नहि त्वां प्राकृतं मन्ये वानरं वानरर्षभ ।
यस्य ते नास्ति संत्रासो रावणादपि संभ्रमः ॥२७॥

अर्थ—हे वानरोत्तम ! तू पराक्रमी, समर्थ और बुद्धिमान् है, क्योंकि तैने अकेले ने ही राक्षसों के इस स्थान को दबा दिया है, और हे प्रशंसा के योग्य विक्रम वाले हनुमान् ! मगर मच्छादिकों का आलय=स्थान सौ योजन समुद्र तैने लांघकर गाय के खुर समान तुच्छ कर दिया है, हे श्रेष्ठ हनुमान् ! मैं तुझे साधारण नहीं समझती, क्योंकि तुझको रावण से भी भय वा घबराहट नहीं है॥

दिष्ट्या च कुशली रामो धर्मात्मा सत्यसंगरः ।
लक्ष्मणश्च महातेजा सुमित्रानन्दवर्धनः ॥२८॥
कुशली यदि काकुत्स्थः किं न सागरमेखलाम् ।
महीं दहति कोपेन युगान्ताग्निरिवोत्थितः ॥२९॥

अर्थ—बड़े भाग्य की बात है कि धर्मात्मा तथा सत्यप्रतिज्ञ राम और सुमित्रा का आनन्द बढ़ाने वाला महातेजस्वी लक्ष्मण कुशलपूर्वक हैं, यदि राम सर्वप्रकार आनन्दित हैं तो बढ़े हुए प्रलयाग्नि की भांति क्रोध से पृथिवी को क्यों नहीं जला देते ॥

अथवा शक्तिमन्तौ तौ सुराणामपि निग्रहे ।
ममैव तु न दुःखानामस्ति मन्ये विपर्ययः ॥३०॥
कच्चिन्न व्यथते रामः कच्चिन्न परितप्यते ।
उत्तराणि च कार्याणि कुरुते पुरुषोत्तमः ॥३१॥
कच्चिन्न विगतस्नेहो विवासान्मयि राघवः ।
कच्चिन्मां व्यसनादस्मान्मोक्षयिष्यति राघवः॥३२॥

अर्थ—अथवा वह दोनों शूरवीर तो देवताओं के विजय करने में भी शक्तिमान् हैं परन्तु मैं जानती हूं कि अभी मेरे दुःखों का अन्त नहीं आया, क्या पुरुषोत्तम राम अति पीड़ित तथा संतप्त तो नहीं होते और क्या अगले कार्यों को कर रहे हैं अर्थात मेरे छुड़ाने के प्रयत्न में लगे हुए हैं, क्या दूर वास के कारण राघव का मुझ में स्नेह तो कम नहीं हुआ ? क्या राघव मुझे इस विपत्ति से शीघ्र छुड़ावेंगे ॥

सुखानामुचितो नित्यमसुखानामनूचितः ।
दुःखमुत्तरमासाद्य कच्चिद्रामो नसीदति ॥ ३३ ॥
कौसल्यायास्तथा कच्चित्सुमित्रायास्तथैव च ।
अभीक्ष्णं श्रूयते कच्चित्कुशलं भरतस्य च ॥ ३४ ॥
कच्चिदक्षौहिणीं भीमां भरतो भ्रातृवत्सलः ।
ध्वजिनीं मन्त्रिभिर्गुप्तां प्रेषयिष्यति मत्कृते ॥३५॥

अर्थ—सदा सुखों के योग्य राम अब दुःखों के योग्य हो अति पीड़ित हुए अधिक क्लेशित तो नहीं होते, और क्या कौसल्या, सुमित्रा तथा भरत का कुशल क्षेम तो शीघ्र २ सुना

जाता है, क्या भ्रातृवत्सल भरत मेरे निमित्त मन्त्रियों से सुरक्षित कोविदार झण्डे वाली बड़ी अक्षौहिणी सेना भेजेंगे ॥

कच्चिच्चलक्ष्मणः शूरः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
अस्त्रविच्छरजालेन राक्षसान्वधमिष्यति ॥३६॥
रौद्रेण कच्चिदस्त्रेण रामेण निहतं रणे ।
द्रक्ष्याम्यल्पेन कालेन रावणं ससुहृज्जनम् ॥३७॥

अर्थ—क्या सुमित्रा के आनन्द को बढ़ाने वाले, अस्त्र शस्त्र चलाने में निपुण शूरवीर लक्ष्मण बाणों से राक्षसों का वध करेंगे, क्या वह समय शीघ्र आयेगा जब मैं सुहृदजनों सहित रावण को राम के रौद्र अस्त्र द्वारा मरा हुआ देखुंगी ॥

कच्चिन्न तद्धेमसमानवर्णं तस्याननं
पद्मसमानगंधि । मया विना शुष्यति
शोकदीनं जलक्षये पद्मभिवातपेन॥३८॥

अर्थ—क्या सुवर्ण तुल्य वर्ण वाला तथा पद्मसमान गन्ध वाला राम का मुख मेरे बिना शोक से दीन हुआ जल के क्षय होने पर धूप से कमल की न्याईं सूख तो नहीं गया ॥

धर्मापदेशात्त्यजतः स्वराज्यं मां चाप्य-
रण्यं नयतः पदातेः । नासीद्व्यथा यस्य
न भीर्न शोकः कच्चित्सधैर्यं हृदये करोति ॥३९॥

अर्थ—धर्म के कारण अपने राज्य को त्यागते हुए तथा मुझे बन में पैदल साथ लाते हुए राम को उस समय जैसे भय तथा शोक नहीं था क्या अब भी उसी प्रकार हृदय में धैर्य धारण किये हुए हैं ॥

इतीव देवी वचनं महार्थं तं वानरेन्द्रं
मधुरार्थमुक्त्वा । श्रोतुं पुनस्तस्य वचो-
भिरामं रामार्थ युक्तं विरराम रामा ॥४०॥

अर्थ–सीता उक्त प्रकार हनुमान् से अर्थयुक्त मधुर वचन कहकर राम के अर्थ से युक्त अर्थात् राम का समाचार सुनने के लिये चुप होगई ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

सं०–अब हनुमान् सीता के उक्त प्रश्नों का उत्तर देते हैं:–

सीताया वचनं श्रुत्वा मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरस्यञ्जलिमाधाय वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ–सीता के उक्त बचन सुनकर बड़े पराक्रम वाला हनुमान् हाथ जोड़ माथे पर रखकर यह उत्तर वाक्य बोला कि:—

नत्वामिहस्थां जानीते रामः कमललोचनः ।
तेन त्वां नानयत्याशु शचीमिव पुरंदरः ॥२॥
श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंयुतम् ॥३॥

अर्थ–हे सीते ! कमलदललोचन राम तुम्हें यहां स्थित नहीं जानते इसीलिये तुम्हारे लेने को यहां शीघ्र नहीं आये, जैसे दैत्य से हरी हुई शची को लेने के लिये इन्द्र नहीं गये, हे देवि !

अब राघव मुझसे सुनते ही वानर और ऋक्षों की बड़ी सेना लेकर शीघ्र ही यहां आवेंगे ॥

विष्टंभयित्वा बाणौघैरक्षोभ्यं वरुणालयम् ।
करिष्यति पुरीं लङ्कां काकुत्स्थः शान्तराक्षसाम् ॥४॥
तत्र यद्यन्तरामृत्युर्यदि देवा महासुराः ।
स्थास्यन्ति पथि रामस्य स तानपि वधिष्यति ॥५॥

अर्थ—और इस क्षोभरहित समुद्र का पुल बांधकर अपने बाणसमूह से इस लङ्कापुरी को राक्षसों से रहित करदेंगे, और जो इन राक्षसों के बीच में देवता, असुर अथवा मृत्यु भी पड़ेगा तो उसका भी राम अवश्य वध करेंगे ॥

तवादर्शनजेनार्ये शोकेन परिपूरितः ।
न शर्म लभते रामः सिंहार्दित इव द्विपः ॥६॥
नैव दंशान्न मशकान्न कीटान्न सरीसृपान् ।
राघवोऽपनयेद्गात्रात्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥७॥
नित्यं ध्यानपरो रामो नित्यं शोकपरायणः ।
नान्यच्चिन्तयते किंचित्स तु कामवशं गतः ॥८॥

अर्थ—हे आर्ये ! तेरे अदर्शन=न देखने के शोक से व्याकुल हुए राम सिंह से पीड़ित हाथी की भांति कहीं भी चैन नहीं पाते और उनका चित्त तुम्हारी ओर लगे रहने के कारण वह अपने शरीर से डांस, मच्छर, कीट तथा सरीसृपों को भी नहीं हटाते, राम सदा चिन्ता तथा शोक परायण हैं और काम के वशीभूत हुए २ तुम से भिन्न कुछ नहीं सोचते ॥

अनिद्रः सततं रामः सुप्तोऽपि च नरोत्तमः ।
सीतेति मधुरां वाणीं व्याहरन्प्रतिबुध्यते ॥९॥
दृष्ट्वा फलं वा पुष्पं वा यच्चान्यत्स्त्रीमनोहरम् ।
बहुशो हा प्रियेत्येवं श्वसंस्त्वामभिभाषते ॥१०॥

अर्थ—राम ने तुम्हारे वियोग में निरन्तर निद्रा का त्यागकर दिया है और वह नरोत्तम सोया हुआ भी "सीता" यह मधुर वाणी बोलता हुआ जाग उठता है, फल पुष्प अथवा जो कुछ स्त्रियों को प्रिय है उसको देखकर अनेक बार "हा प्यारी" ऐसा कह ऊर्ध्व श्वास भरकर बोलते हैं ॥

सा सीता वचनं श्रुत्वा पूर्णचन्द्रनिभानना ।
हनूमन्तमुवाचेदं धर्मार्थसहितं वचः ॥११॥
अमृतं विषसंपृक्तं त्वया वानर भाषितम् ।
यच्च नान्यमना रामो यच्च शोकपरायणः ॥१२॥

अर्थ—पूर्णचन्द्रतुल्य मुख वाली सीता हनुमान् के उक्त वचन सुनकर उससे धर्म, अर्थ युक्त यह वचन बोली कि हे हनुमान् ! तैने विष मिला हुआ अमृत भाषण किया है, राम का मन किसी दूसरी ओर नहीं यह "अमृत" और शोकपरायण रहते हैं यह "विषतुल्य" है ॥

ऐश्वर्ये वा सुविस्तीर्णे व्यसने वा सुदारुणे ।
रज्ज्वेव पुरुषं बद्ध्वा कृतान्तः परिकर्षति ॥१३॥
विधिर्नूनमसंहार्यः प्राणिनां प्लवगोत्तम ।
सौमित्रिं मां च रामं च व्यसनैः पश्य मोहितान् ॥१४॥

राक्षसानां वधं कृत्वा सूदयित्वा च रावणम् ।
लङ्कामुन्मथितां कृत्वा कदा द्रक्ष्यति मां पतिः॥१५॥

अर्थ—महान् ऐश्वर्य्य अथवा दारुण विपद् में दैव पुरुष के रस्सी बांधकर मानो खींचता है, निःसन्देह दैव को कोई नहीं रोकसक्ता, देख राम, लक्ष्मण और मैं कैसी विपत्ति में ग्रसित होरहे हैं, राक्षसों का बध कर रावण को मार और लङ्का को उलट पलट करके मेरे पति राम कब मुझे देखेंगे ॥

स वाच्यः सत्वरस्वेति यावदेव न पूर्यते ।
अयं संवत्सरः कालस्तावद्धि मम जीवितम् ॥१६॥
वर्तते दशमो मासो द्वौ तु शेषौ प्लवंगम ।
रावणेन नृशंसेन समयो यः कृतो मम ॥ १७ ॥
विभीषणेन च भ्रात्रा मम निर्यातनं प्रति ।
अनुनीतः प्रयत्नेन नच तत्कुरुते मतिम् ॥ १८ ॥

अर्थ—तुम उन्हें कहना शीघ्रता करें. जब तक यह वर्ष पूर्ण नहीं होता तब तक ही मेरा जीवन है, हे हनुमान! यह दशवां महीना है अब केवल दो मास शेष हैं जो दुर्जन रावण ने मेरे लिये सङ्केत किया है, "इसके अनन्तर मार डालेगा" रावण के भाई विभीषण ने मेरे लौटा देने के लिये बहुत प्रयत्न किया पर रावण यह बुद्धि नहीं करता अर्थात् मुझे वापिस भेजना नहीं चाहता है ॥

मम प्रति प्रदानं हि रावणस्य न रोचते ।
रावणं मार्गते संख्ये मृत्युः कालवशंगतम् ॥१९॥

ज्येष्ठा कन्या कला नाम विभीषणसुता कपे ।
तया ममैतदाख्यातं मात्रा प्रहितया स्वयम् ॥२०॥

अर्थ—काल के वशीभूत हुए रावण को संग्राम में मृत्यु ढूढ़ रही है, इससे उसको मेरा देना नहीं रुचता, हे वानर! स्वयं अपनी माता से भेजी हुई विभीषण की बड़ी कन्या कला ने यह सब समाचार मुझे बतलाया था ॥

अविंध्यो नाम मेधावी विद्वान् राक्षस पुंगवः ।
धृतिमाञ्छीलवान्वृद्धो रावणस्य सुसंमतः ॥२१॥
रामक्षयमनुप्राप्तं रक्षसां प्रत्यचोदयत् ।
नच तस्य स दुष्टात्मा शृणोति वचनं हितम् ॥२२॥

अर्थ—रावण का एक बड़ा बुद्धिमान, विद्वान, धृतिमान=धैर्य्य वाला, शीलवान तथा वृद्ध अविंध्य नाम मन्त्री है, उसने रावण को बहुत समझाया कि राम के द्वारा सम्पूर्ण राक्षसों का नाश हुआ चाहता है, इसलिये यही उचित है कि जानकी को वापिस देदें परन्तु उस दुष्टात्मा रावण ने अपना हितकर वचन नहीं सुना ॥

आशंसेयं हरिश्रेष्ठ क्षिप्रं मां प्राप्स्यते पतिः ।
अन्तरात्मा हि मे शुद्धस्तस्मिंश्च बहवो गुणाः॥२३॥
उत्साहः पौरुषं सत्त्वमानृशंस्यं कृतज्ञता ।
विक्रमश्च प्रभावश्च सन्ति वानर राघवे ॥ २४ ॥
चतुर्दश सहस्राणि राक्षसानां जघान यः ।
जनस्थानेविनाभ्रात्राशत्रुःकस्तस्य नोद्विजेत्॥२५॥

अर्थ—हे हनुमान! मुझे पूर्ण आशा है कि मेरे पति मुझे शीघ्र ही प्राप्त होंगे, क्योंकि मेरा आत्मा शुद्ध है और राम में बहुत से गुण हैं. हे वानर! राम में उत्साह, पौरुष, हृदय की शुद्धता, दया, कृतज्ञता, पराक्रम और उत्तम प्रभाव है, जिसने जनस्थान में भाई के बिना ही चौदह सहस्र राक्षसों को मार गिराया उनसे कौन शत्रु नहीं कांपता है ॥

इति संजल्पमानां तां रामार्थे शोककर्षिताम् ।
अश्रुसम्पूर्णवदनामुवाच हनुमान्कपिः ॥ २६ ॥

अर्थ—इस प्रकार कहती हुई राम के अर्थ शोक से दुर्बल सीता का मुख आंसुओं से भरगया, यह दशा देखकर हनुमान् बोला कि :—

श्रुत्वैव च वचो मह्यं क्षिप्रमेष्यति राघवः ।
चमूं प्रकर्षन्महतीं हर्यृक्षगणसंकुलाम् ॥ २७ ॥
अथवा मोचयिष्यामि त्वामद्यैव सराक्षसात् ।
अस्माद्दुःखादुपारोह मम पृष्ठमनिन्दिते ॥ २८ ॥

अर्थ—मेरे वचन सुनते ही अर्थात् मुझसे तुम्हारा सन्देश पाते ही ऋक्ष वानरों की भारी सेना लेकर राम शीघ्र ही यहां आवेंगे अथवा हे अनिन्दिते! तू मेरी पीठ पर सवार हो, मैं अभी राक्षसों द्वारा प्राप्त हुए दुःख से तुझे छुड़ाता हूं ॥

मैथिली तु हरिश्रेष्ठाच्छ्रुत्वा वचनमद्भुतम् ।
हर्ष विस्मित सर्वाङ्गी हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥ २९ ॥
भर्तृभक्तिं पुरस्कृत्य रामादन्यस्य वानर ।
नाहं स्प्रष्टुं स्वतो गात्रमिच्छेयं वानरोत्तम ॥३०॥

अर्थ–जानकी हनुमान् के ऐसे अद्भुत वचन सुनकर हर्ष से पुलकित सर्वाङ्गसुन्दरी उससे बोली कि हे वानरोत्तम हनुमान! मैं पतिभक्ति का आदर करती हुई राम के विना किसी के शरीर को स्वतः स्पर्श नहीं करना चाहती ॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं रावणस्य गता बलात् ।
अनीशा किंकरिष्यामि विनाथा विवशा सती ॥३१॥
यदि रामो दशग्रीवमिह हत्वा सराक्षसम् ।
मामितो गृह्य गच्छेत तत्तस्य सदृशं भवेत् ॥३२॥

अर्थ–और जो मैं " हरण समय " बल से रावण के अङ्ग स्पर्श को प्राप्त हुई हूं अर्थात् उस समय जो मैंने उसके अङ्ग स्पर्श किये हैं, उसमें मैं असमर्थ, अनाथ तथा विवस हुई कुछ नहीं कर सकती थी, यदि राम राक्षसों सहित रावण को मारकर मुझे यहां से लेजायं तब वह उसके बराबर हो ॥

स मे कपिश्रेष्ठ सलक्ष्मणं प्रियं स यूथपं क्षिप्र-
मिहोपपादय । चिराय रामं प्रति शोकक-
र्षितां कुरुष्व मां वानर वीर हर्षिताम् ॥३३॥

अर्थ–हे श्रेष्ठ हनुमान्! लक्ष्मण वा सुग्रीवादिकों के सहित मेरे प्रिय पति राम को शीघ्र ही यहां ला और चिरकाल से राम के शोक से संतप्त मुझको हर्षित कर ॥

इति अष्टादशः सर्गः

अथ एकोनविंशतिः सर्गः

सं०-अब राम के लिये सीता का सन्देश देना कथन करते हैं:—

ततः स कपिशार्दूलस्तेन वाक्येन तोषितः ।
सीतामुवाच तच्छ्रुत्वा वाक्यं वाक्यविशारदः ॥१॥
युक्तरूपं त्वया देवि भाषितं शुभदर्शने ।
सदृशं स्त्रीस्वभावस्य साध्वीनां विनयस्य च ॥२॥

अर्थ-सीता के उक्त वचन सुन सन्तुष्ट हुआ वाक्य के जानने वाला हनुमान् उससे बोला कि हे शुभदर्शने ! तैने स्त्रीस्वभाव और पतिव्रताओं के वृत्त अनुकूल कहा है अर्थात् पतिव्रता स्त्रियों को अपना आचरण इसी प्रकार रखना चाहिये ॥

एतत्ते देवि सदृशं पत्न्यास्तस्य महात्मनः ।
कान्यन्या त्वा मृते देवि ब्रूयाद्वचनमीदृशम् ॥३॥
श्रोष्यते चैव काकुत्स्थः सर्वं निरवशेषतः ।
अभिज्ञानं प्रयच्छ त्वं जानीयाद्राघवो हि यत् ॥४॥

अर्थ-हे देवि ! यह तेरा वचन उस महात्मा की पत्नी के सदृश ही है तुम्हारे बिना कौन ऐसा बचन कहने को समर्थ है, राम मुझसे तुम्हारा यह सब वृत्त पूरा २ सुनेंगे, अब तुम मुझे कोई अभिज्ञान=निशानी दो जिसको पहचानकर राम मुझे तुम्हारे समीप आया हुआ जानलें ॥

ततो वस्त्रगतं मुक्त्वा दिव्यं चूडामणिं शुभम् ।
प्रदेयो राघवायेति सीता हनुमते ददौ ॥५॥

मणिं दत्त्वा ततः सीता हनूमन्तमथाब्रवीत् ।
अभिज्ञानमभिज्ञातमेतद्रामस्य तत्त्वतः ॥६॥

अर्थ—तदनन्तर वस्त्र के नीचे से सुन्दर दिव्य चूड़ामणि "जो शिर में धारण कीहुई थी" खोलकर "यह राम को देना" इस प्रकार कहती हुई सीता ने हनुमान् को दी, और मणि देकर हनुमान् से बोलीं कि इस मेरी निशानी को राम भले-प्रकार जानते हैं ॥

मणिं दृष्ट्वा तु रामो वै त्रयाणां संस्मरिष्यति ।
वीरो जनन्या मम च राज्ञो दशरथस्य च ॥७॥
स भूयस्त्वं समुत्साह चोदितो हरिसत्तम ।
अस्मिन्कार्य समुत्साहे प्रचिन्तय यदुत्तरम् ॥८॥

अर्थ—इस मणि को देखकर राम मुझे, अपनी माता और महाराज दशरथ हम तीनों को स्मरण करेंगे, हे श्रेष्ठ हनुमान! अब तू उत्साह से प्रेरित हुआ अर्थात् उत्साह सम्पन्न हुआ २ इस कार्य्य के लिये जो आगे कर्तव्य है उसका चिन्तन कर ॥

स तथेति प्रतिज्ञाय मारुतिर्भीमविक्रमः ।
शिरसा वन्द्य वैदेहीं गमनायोपचक्रमे ॥९॥
ज्ञात्वा संप्रस्थितं देवी वानरं पवनात्मजम् ।
वाष्पगद्गदया वाचा मैथिली वाक्यमब्रवीत् ॥१०॥

अर्थ—भीमपराक्रम वाले हनुमान् ने सीता से तथास्तु कहा अर्थात् जो तुम चाहती हो वही होगा, ऐसी प्रतिज्ञा करके शिर

से वैदेही को प्रणाम कर जाने के लिये आज्ञा मांगी, तब हनुमान् को जाता हुआ जानकर बाष्प से गद्गद वाणी द्वारा जानकी देवी यह वाक्य बोली किः—

हनुमन्कुशलं ब्रूयाः सहितौ राम लक्ष्मणौ ।
सुग्रीवं च सहामात्यं सर्वान्वृद्धांश्च वानरान् ॥११॥

अर्थ—हे हनुमन् ! राम, लक्ष्मण, मन्त्रियों सहित सुग्रीव और सब वृद्ध वानरों को मेरा कुशल कहना ॥

यथा च स महाबाहुर्मां तारयति राघवः ।
अस्माद्दुःखाम्बुसंरोधात्त्वमाख्यातुमर्हसि ॥१२॥

अर्थ—और जिस प्रकार वह महाबाहु राम मुझको इस दुःख सागर से पार करसकें वैसा ही उचित यत्न करना ॥

जीवतीं मां यथा रामः संभावयति कीर्तिमान् ।
तत्त्वया हनुमन्वाच्यं वाचाधर्ममवाप्नुहि ॥१३॥

अर्थ—हे हनुमन् ! तुम राम से कहकर ऐसा यत्न करना जिस से वह मुझे यहां जीती हुई पावें, इससे उनकी कीर्ति बढ़ेगी और तुम वाचिकधर्म को प्राप्त होगे अर्थात तुम्हारी वाणी में सदा बल की वृद्धि होगी ॥

इदं च तीव्रं मम शोकवेगं रक्षोभिरेभिः परिभर्त्सनं च । ब्रूयास्तु रामस्य गतः समीपं शिवश्च तेऽध्वास्तु हरिप्रवीर ॥ १४ ॥

अर्थ—हे हनुमन् ! यह मेरा तीव्रशोक का वेग और इन राक्षसों से इस प्रकार झिड़कें खाना, इत्यादि यह सब तुम शीघ्र ही राम के समीप जाकर कहो, हे वानरश्रेष्ठ तेरा मार्ग शुभ हो ॥

स राजपुत्र्या प्रतिवेदितार्थः कपिः कृतार्थः
परिहृष्टचेताः । तदल्पशेषं प्रसमीक्ष्य कार्य्यं
दिशं ह्युदीचीं मनसा जगाम ॥ १५ ॥

अर्थ–राजकुमारी जानकी से उक्त प्रकार सन्देश ले अपने को कृतार्थ मान अति हर्षित हुआ और यह जानकर कि अब अल्पकार्य्य शेष रहा है अर्थात् राम को सन्देश पहुंचाना है, यह विचार मन से चिन्तन करता हुआ हनुमान् उत्तर दिशा को चला ॥

इति एकोनविंशतिःसर्गः

अथ विंशतिः सर्गः

सं०–अब हनुमान् का अशोकवाटिका को उजाड़ना तथा उसके संरक्षकों से युद्ध करना कथन करते हैं :—

सच वाग्भिः प्रशस्ताभिर्गमिष्यन्पूजितस्तया ।
तस्माद्देशादपाक्रम्य चिन्तयामास वानरः ॥ १ ॥
अल्पशेषमिदं कार्य्यं दृष्टेयमसितेक्षणा ।
त्रीनुपायानतिक्रम्य चतुर्थ इह दृश्यते ॥ २ ॥

अर्थ–जब हनुमान् सीता से प्रशस्त वाणियों द्वारा पूजित हो अर्थात् आशीर्वाद लेकर चला तब उस देश से दूर हटकर अर्थात् सीता से अलग जाकर सोचने लगा कि इस श्याम नेत्रों वाली सीता को तो खोज ही लिया अब शत्रु का बल देखना

रूप यह थोड़ासा कार्य्य रहगया है सो इसमें साम, दाम, भेद इन तीन उपायों को अतिक्रम्य=उलांघकर चौथा दण्डरूप उपाय ही दृष्टिगत होता है अर्थात् रावण को वश करने के लिये दण्ड से भिन्न अन्य कोई उपाय नहीं ॥

कार्ये कर्मणि निर्वृत्ते यो बहून्यपि साधयेत् ।
पूर्वकार्याविरोधेन स कार्यं कर्तुमर्हति ॥ ३ ॥
न ह्येकः साधको हेतुः स्वल्पस्यापीह कर्मणः ।
यो ह्यर्थं बहुधा वेद स समर्थोऽर्थसाधने ॥ ४ ॥

अर्थ—मुख्यकार्य्य करके उसके अविरोधी अन्य बहुत से कार्यों को करने वाला कार्य करने के योग्य होता है, जगत् में ऐसा कोई छोटासा भी कार्य्य नहीं जो एक ही साधक से सिद्ध होसके, जो अपने प्रयोजन को अनेक प्रकार से साधना जानता है वह कार्य्यसाधन में समर्थ होता है ॥

कथं नु खल्वद्य भवेत्सुखागतं प्रसह्य युद्धं
मम राक्षसैः सह । तथैव खल्वात्मबलं च
सारवत्समान येन्मां च रणे दशाननः ॥५॥

अर्थ—अब यह कैसे सुगमता से होसक्ता है कि राक्षसों के साथ प्रबल युद्ध हो ताकि रावण रण में अपने सार वाले बल को मेरे सन्मुख लावे अर्थात् मैं रावण के आत्मिक बल की रण में परीक्षा करसकूं ॥

इदमस्य नृशंसस्य नन्दनोपममुत्तमम् ।
वनं नेत्रमनः कान्तं नाना द्रुम लतायुतम् ॥ ६ ॥

इदं विध्वंसयिष्यामि शुष्कं वनमिवानलः ।
अस्मिन्भग्ने ततः कोपं करिष्यति स रावणः ॥७॥

अर्थ–सो इसका उपाय यह है कि इस निर्दय रावण का नन्दन तुल्य बाग जो नेत्र तथा मन को प्रिय और जो नाना वृक्ष लताओं से युक्त है इसको विध्वंस करूं, जैसे सूखे वन का अग्नि नाश करती है, इसके नष्ट होने पर रावण अवश्य कोप करेगा ॥

ततस्तद्धनुमान्वीरो बभंज प्रमदा वनम् ।
मत्तद्विज समाघुष्टं नाना द्रुम लतायुतम् ॥ ८ ॥
न बभौ तद्वनं तत्र दावानल हतं यथा ।
व्याकुलावरणा रेजुर्विह्वला इव ता लताः ॥ ९ ॥

अर्थ–तदनन्तर हनुमान ने उस प्रमदावन को तोड़ना प्रारम्भ किया जिसमें अनेक मत्त पक्षी बोल रहे थे और जो विविध प्रकार के बेल बूटों से युक्त था, वह वन अल्पकाल में ही वनाग्नि से दग्ध हुए की भांति नष्ट होकर शोभावाला न रहा, और वृक्षों के टूटने से लतायें व्याकुल स्त्रियों की भांति मूर्च्छित सी होकर भूमि पर गिरपड़ी ॥

रावणस्य समीपे तु राक्षस्यो विकृताननाः ।
विरूपं वानरं भीमं रावणाय न्यवेदिषुः ॥ १० ॥
अशोकवनिकामध्ये राजन्भीमवपुः कपिः ।
सीतया कृतसंवादस्तिष्ठत्यमितविक्रमः ॥ ११ ॥

अर्थ–पश्चात विकृत मुखों वाली राक्षसियों ने रावण के

समीप जाकर कहा कि महाराज एक भयङ्कर विरूप वानर आया है, हे राजन् ! भयङ्कर तथा अपरिमित पराक्रम वाला वह वानर अशोकवाटिका के मध्य में खड़ा है और जिसने सीता से बात चीत की है ॥

तस्योग्र रूपस्योग्रं त्वं दण्डमाज्ञातुमर्हसि ।
सीता संभाषिता येन वनं तेन विनाशितम् ॥१२॥
राक्षसीनां वचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
चिताग्निरिव जज्वाल कोप संवर्त्तितेक्षणः ॥१३॥

अर्थ—उस भयङ्कर रूप वाले को आप क्रूर दण्ड की आज्ञा देने योग्य हैं जिसने सीता से सम्भाषण किया और बन का नाश करदिया है, राक्षसियों के ऐसे बचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण के क्रोध से नेत्र लाल होगये और चिताग्नि की भांति जलने लगा ॥

तस्य क्रुद्धस्य नेत्राभ्यां प्रापतन्नश्रुबिन्दवः ।
दीप्ताभ्यामिव दीपाभ्यां सार्चिषः स्नेहबिन्दवः॥१४॥
आत्मनः सदृशान्वीरान्किंकरान्नाम राक्षसान् ।
व्यादिदेश महातेजा निग्रहार्थं हनूमतः ॥१५॥

अर्थ—उस क्रुद्ध हुए रावण के नेत्रों से जलते हुए दीपकों से चिनगारियों वाली तैल की बूंदों की भांति आंसुओं की बूंदें गिरने लगीं, तत्पश्चात् उस महातेजस्वी रावण ने अपने तुल्य बलवाले बीर और किंकर=नौकर राक्षसों को आज्ञा दी कि शीघ्र जाकर हनुमान् का निग्रह करो ॥

ते कपिं तं समासाद्य तोरणस्थमवस्थितम् ।
अभिपेतुर्महाभागाः पतंगा इव पावकम् ॥ १६ ॥

अर्थ—" रावण से आज्ञा पाये हुए वह राक्षस " बाहर की डेवढ़ी पर खड़े हुए हनुमान् के समीप पहुंच उस पर इस प्रकार टूट कर पड़े जैसे पतङ्ग अग्नि पर गिरते हैं ॥

मुद्गरैः पट्टिशैः शूलैः प्रासतोमरपाणयः ।
परिवार्य हनूमन्तं सहसा तस्थुरग्रतः ॥ १७ ॥
स तैः परिवृतः शूरैः सर्वतः स महाबलः ।
आससादायसं भीमं परिघं तोरणाश्रितम् ॥१८॥

अर्थ—और वह राक्षस मुद्गर, पट्टिश, शूल तथा तोमर हाथों में लिये हुए सहसा हनुमान् को घेरकर उसके आगे खड़े होगये, उन शूरवीरों द्वारा चारो ओर से घिरे हुए उस महाबली हनुमान् ने बाहरी द्वार पर पड़ा हुआ एक लोहे का परिघ=मुद्गर उठा लिया ॥

स तं परिघमादाय जघान रजनीचरान् ।
स पन्नगमिवादाय स्फुरंतं विनतासुतः ॥१९॥
विचचारांबरे वीरः परिगृह्य च मारुतिः ।
सूदयामास वज्रेण दैत्यानिव सहस्रदृक् ॥२०॥

अर्थ—और उससे सब राक्षसों को इस प्रकार मारा जैसे चमकते वा फरफराते सर्प को पकड़कर गरुड़ मारता है, वीर हनुमान् उस परिघ को पकड़कर राक्षसों को मार उसको आकाश में घुमाते हुए विचरने लगे, जैसे इन्द्र दैत्यों का हनन करते हैं इसी प्रकार हनुमान् ने अनेक राक्षसों का वध किया ॥

स हत्वा राक्षसान्वीरः किंकरान्मारुतात्मजः ।
युद्धाकांक्षी महावीरस्तोरणे समवस्थितः ॥२१॥
ततस्तस्माद्भयान्मुक्ताः कतिचित्तत्र राक्षसाः ।
निहतान् किंकरान् सर्वान् रावणाय न्यवेदयन् ॥२२॥

अर्थ—पवनपुत्र वीर हनुमान् उन किंकरों को मारकर वह महावीर युद्ध चाहता हुआ डेउढ़ी पर स्थित रहा तब उसके भय से मुक्त होकर कई राक्षस भागे और उन्होंने उन सारे राक्षसों का मरना रावण के प्रति जाकर निवेदन किया ॥

इति विंशतिः सर्गः

अथ एकविंशः सर्गः

सं०—अब युद्ध में हनुमान् द्वारा अक्षकुमार आदि का वध कथन करते हैंः—

संदिष्टो राक्षसेन्द्रेण प्रहस्तस्य सुतो बली ।
जम्बुमाली महादंष्ट्रो निर्जगाम धनुर्धरः ॥१॥
रथेन खरयुक्तेन तमागतमुदीक्ष्य सः ।
हनूमान्वेगसम्पन्नो जहर्ष च ननाद च ॥२॥

अर्थ—तदनन्तर रावण से आज्ञा दिया हुआ प्रहस्त का पुत्र बड़ी दाढ़ों वाला धनुर्धारी तथा बली जम्बुमाली बाहर निकला, तब उसको खच्चरों के रथ पर चढ़कर आया हुआ देख वेग-

सम्पन्न=बड़े] जोश में भरा हुआ हनुमान् प्रसन्न हुआ और बल से गर्जा ॥

तं तोरणविटंकस्थं हनूमन्तं महाकपिम् ।
जम्बुमाली महातेजा विव्याध निशितैः शरैः ॥३॥
स शरैः पूरिततनूः क्रोधेन महतावृतः ।
तमेव परिघं गृह्य भ्रामयामास वेगितः ॥४॥
अतिवेगोऽतिवेगेन भ्रामयित्वा महोत्कटः ।
परिघं पातयामास जम्बुमालेर्महोरसि ॥५॥

अर्थ–तब डेउढ़ी के विटङ्क=दर्वाज़े पर स्थित हनुमान् को महातेजस्वी जम्बुमाली ने तीक्ष्ण तीरों से बींध दिया, वह तीरों से भरे हुए शरीर वाला हनुमान् बड़े क्रोध से भरा हुआ उसी मुद्गर को उठाकर वेग से घुमाने लगा, और बड़े वेग वाले उस बलवान् हनुमान्. ने उस मुद्गर को जम्बुमाली की छाती पर मारा ॥

स हतस्तरसा तेन जम्बुमाली महारथः ।
पपात निहतो भूमौ चूर्णिताङ्ग इव द्रुमः ॥६॥

अर्थ–और बड़े वेग से उसकी छाती में लगते ही उस महारथी जम्बुमाली के अङ्ग चूर २ होजाने से वह कटे हुए वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़ा ॥

जम्बुमालिं सुनिहतं किंकरांश्च महाबलान् ।
चुक्रोध रावण श्रुत्वा क्रोधसंरक्तलोचनः ॥७॥

अर्थ–तब रावण जम्बुमाली तथा महाबली अपने नौकर

राक्षसों को हत हुआ सुनकर क्रोध से भरगया और उसके नेत्र लाल होगये ॥

सरोष संवर्तित ताम्रलोचनः प्रहस्त पुत्रे
निहते महाबले । अमात्यपुत्रानतिवीर्य
विक्रमान्समादिदेशाशु निशाचरेश्वरः ॥८॥

अर्थ—जब महाबली प्रहस्त का पुत्र मारागया तब रोष से लाल हुए नेत्रों वाले रावण ने अति पराक्रमी अपने मन्त्री के पुत्रों को शीघ्र ही युद्ध के लिये आज्ञा दी ॥

ततस्ते राक्षसेन्द्रेण चोदिता मन्त्रिणः सुताः ।
निर्ययुर्भवनात्तस्मात्सप्तसप्तार्चिवर्चसः ॥९॥

अर्थ—तदनन्तर उस राक्षसेन्द्र रावण से प्रेरित हुए अग्नि तुल्य कान्तिवाले सात मन्त्रीपुत्र उस भवन से निकले ॥

ते परस्पर संघर्षास्तप्तकांचनभूषणाः ।
अभिपेतुर्हनूमन्तं तोरणस्थमवस्थितम् ॥१०॥

अर्थ—तपाये हुए सुवर्ण के भूषणों वाले एक दूसरे से आगे लड़ने के लिये बढ़े जाते हुए उन मन्त्रीपुत्रों ने हनुमान् को चारो ओर से घेर लिया ॥

स कृत्वा निनदं घोरं त्रासयंस्तां महाचमूम् ।
चकार हनुमान्वेगं तेषु रक्षःसु वीर्यवान् ॥११॥

अर्थ—तब हनुमान् ने भयङ्कर नाद करके उस सेना को भयभीत कर दिया और उन राक्षसों पर अपना बड़ा वेग किया॥

तलेनाभिहनत्कांश्चित्पादैः कांश्चित्परंतपः ।
मुष्टिभिश्चाहनत्कांश्चिन्नखैःकांश्चिद्व्यदारयत्॥१२॥
प्रममाथोरसाकांश्चिदूरुभ्यामपरानपि ।
केचित्तस्यैवनादेन तत्रैव पतिता भुवि ॥१३॥
ततस्तेष्ववपन्नेषु भूमौ निपतितेषु च ।
तत्सैन्यमगमत्सर्वं दिशो दश भयार्दितम् ॥१४॥

अर्थ–किसी को थप्पड़, किसी को लात पांव, किसी को मुक्कों और कइयों को नखों से घायल किया, कइयों को छाती से रगड़ डाला, बहुतों को जङ्घों से पीस डाला और कई हनुमान् का नाद ही सुनकर जहां तहां पृथिवी पर गिर पड़े, तब उनके मरने और भूमि पर गिरने से भयभीत हुई वह सारी सेना दशो दिशाओं में भाग गई ॥

हतान्मंत्रिसुतान्बुद्ध्वा वानरेण महात्मना ।
स विरूपाक्षयूपाक्षौ दुर्धर्षं चैव राक्षसम् ॥१५॥
प्रघसं भासकर्णं च पंच सेनाग्रनायकान् ।
संदिदेश दशग्रीवो वीरान्नयविशारदान् ॥ १६ ॥

अर्थ–तब महात्मा हनुमान् से मन्त्रीसुतों का मरना सुनकर रावण ने विरूपाक्ष, यूपाक्ष, दुर्धर्ष, प्रघस और भासकर्ण इन नीति निपुण सेनापतियों को युद्ध के लिये आज्ञा दी ॥

ततः कपिस्तान्ध्वजिनी पतीन् रणे निहत्य
वीरान्सबलान्सवाहनान् । तथैव वीरः परि-
गृह्य तोरणं कृतक्षणः काल इव प्रजाक्षये॥१७॥

अर्थ—तदनन्तर वह वीर हनुमान् उन सेनापतियों को सेना और वाहनों सहित मारकर प्रजा का नाश करने के लिये काल की भांति डेउढ़ी पर उत्सव मनाने लगा ॥

सेनापतीन्पञ्च स तु प्रमापितान्हनूमता सानुचरान्सवाहनान् । निशम्य राजा समरोद्धतोन्मुखं कुमारमक्षं प्रसमैक्षताक्षम् ॥ १८ ॥

अर्थ—अनुचर और वाहनों सहित उक्त पांचों सेनापतियों को मरा हुआ सुनकर युद्ध के लिये सन्नद्ध सन्मुख खड़े हुए राजा रावण ने कुमार अक्ष को युद्ध के लिये आज्ञा दी ॥

स हेमनिष्कांगद चारुकुण्डलः समाससादाशु पराक्रमः कपिम् । तयोर्बभूवाप्रतिमः समागमः सुरासुराणामपि संभ्रमप्रदः ॥ १९ ॥

अर्थ—वह रावण की आज्ञानुसार सुवर्ण के हार, बाहुबन्द तथा कुण्डलों वाला, तीव्रपराक्रमी अक्ष हनुमान् के समीप पहुंचा और वहां उन दोनों का अतुल समागम हुआ जो देव तथा दैत्यों को भी भयप्रद था ॥

स तं समाविध्य सहस्रशः कपिर्महोरगं गृह्य इवाण्डजेश्वरः । मुमोच वेगात्पितृ तुल्यविक्रमो महीतले संयति वानरोत्तमः॥२०॥

अर्थ—तब पिता के तुल्य पराक्रम वाले हनुमान् ने अक्ष को बींध दिया और जैसे गरुड़ बड़े सर्प को उठाता है इस प्रकार उसको उठाकर बड़े वेग से पृथिवी पर दे मारा ॥

स भग्नबाहूरुकटीपयोधरः क्षरन्नसृङ्निर्मथिता-
स्थिलोचनः। संभिन्नसन्धिः प्रविकीर्णबन्धनो
हतः क्षितौ वायुसुतेन राक्षसः ॥ २१ ॥

अर्थ—उस पवनपुत्र हनुमान् ने अक्ष को पृथिवी पर ऐसा पटका कि उसकी भुजा, जङ्घें, कमर तथा छाती टूटगई, रुधिर बहने लगा, हड्डियां चूर २ होगई और जोड़ तथा बन्धन टूट गये ॥

इति एकविंशः सर्गः

अथ द्वाविंशः सर्गः

सं०—अब मेघनाद के युद्ध में हनुमान् का बन्धना कथन करते हैं:—

ततस्तु रक्षोधिपतिर्महात्मा हनूमताक्षे
निहते कुमारे। मनः समाधाय स देव-
कल्पं समादिदेशेन्द्रजितं सरोषः॥१॥

अर्थ—जब हनुमान् ने कुमार अक्ष को मार दिया तब महात्मा रावण ने मन को एकाग्र करके देवतुल्य इन्द्रजित=मेघनाद को युद्ध के लिये आज्ञा दी ॥

ततस्तैः स्वगणैरिष्टैरिन्द्रजित्प्रतिपूजितः।
युद्धोद्धतकृतोत्साहः संग्रामं संप्रपद्यत ॥ २ ॥
श्रीमान्पद्मविशालाक्षो राक्षसाधिपतेः सुतः।
निर्जगाम महातेजाः समुद्र इव पर्वणि ॥ ३ ॥

अर्थ–तदनन्तर अपने प्रिय सुहृद्गणों से पूजित होकर मेघनाद युद्ध के लिये उद्धत तथा उत्साहित होकर संग्राम को चला, कमलतुल्य विशाल नेत्रों वाला राक्षसाधिपति महातेजस्वी श्रीमान् पर्व में समुद्र की भांति बाहर निकला ॥

आयान्तं सरथं दृष्ट्वा पूर्णमिन्द्रध्वजं कपिः ।
ननाद च म ानादं व्यवर्धत च वेगवान् ॥ ४ ॥
तावुभौ वेगर न्नौ रणकर्मविशारदौ ।
सर्वभूतमनोग्रा चक्रतुर्युद्धमुत्तमम् ॥ ५ ॥

अर्थ–रथ पर चढ़कर आते हुए पूर्ण इन्द्रध्वज वाले मेघनाद को देखकर हनुमान् महानाद करता हुआ बड़े वेग से गर्जा और विशाल होगया, रणकर्म में निपुण वेग से भरे हुए उन दोनों ने सब लोगों के मन को आकर्षण करने वाला उत्तम युद्ध किया ॥

अवध्योऽयमिति ज्ञात्वा तमस्त्रेणास्त्रतत्त्ववित् ।
निजग्राह महाबाहुं मारुतात्मजमिन्द्रजित् ॥ ६ ॥

अर्थ–यह अवध्य है ऐसा जानकर अस्त्रविद्या के जानने वाले मेघनाद ने उस महाबाहु पवनसुत हनुमान् को ब्रह्म अस्त्र से बांध लिया ॥

तेन बद्धस्ततोऽस्त्रेण राक्षसेन स वानरः ।
अभवन्निर्विचेष्टश्च पपात च महीतले ॥ ७ ॥
ततस्ते राक्षसा दृष्ट्वा विनिश्चष्टमरिंदमम् ।
बबन्धुः शण वल्कैश्च द्रुमचीरैश्च संहतैः ॥ ८ ॥

अर्थ–तब मेघनाद द्वारा उक्त अस्त्र से बन्धा हुआ हनुमान्

अचेत होकर पृथिवी पर गिर पड़ा, तत्पश्चात् शत्रुओं के दमन करने वाले हनुमान् को निश्चेष्ट देखकर राक्षसों ने उसको सन की रस्सियों और वृक्षों की छालों से बांध लिया ॥

तं मत्तमिव मातंगं बद्धं कपिवरोत्तमम् ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥९॥

अर्थ—तब मत्त हाथी की भांति बन्धे हुए उस हनुमान् को राक्षस लोग रावण के समीप लेगये ॥

उपोपविष्टं रक्षोभिश्चतुर्भिर्बलदर्पितम् ।
अपश्यद्राक्षसपतिं हनुमानति तेजसम् ॥१०॥
भ्राजमानं ततो दृष्ट्वा हनूमान्राक्षसेश्वरम् ।
मनसा चिन्तयामास तेजसा तस्य मोहितः॥११॥

अर्थ—हनुमान् ने गर्वित तथा अति तेजस्वी राक्षसपति रावण को देखा जिसके चारो ओर चार राक्षस=मुख्यमन्त्री बैठे हुए थे, तेज से देदीप्यमान उस रावण को देखकर उसके तेज से मोह को प्राप्त हुए हनुमान् ने मन में सोचा किः—

अहो रूपमहो धैर्य्यमहोसत्त्वमहो द्युतिः ।
अहो राक्षसराजस्य सर्व लक्षण युक्तता ॥१२॥
यद्यधर्मो न बलवान्स्यादयं राक्षसेश्वरः ।
स्यादयं सुरलोकस्य सशक्रस्यापि रक्षिता ॥१३॥

अर्थ—इस रावण का अहो=बड़े आश्चर्य्य वाला रूप, धैर्य्य, सत्त्व=साहस तथा तेज है और बड़े आश्चर्य्ययुक्त सब लक्षणों

से युक्त है, यदि इसमें अधर्म की प्रबलता न होतो यह राक्षसपति रावण इन्द्र सहित सुरलोक का भी राजा होने योग्य है ॥

अस्य क्रूरैर्नृशंसैश्च कर्मभिर्लोक कुत्सितैः ।
सर्वेबिभ्यति खल्वस्माल्लोकाः सामरदानवाः ॥१४॥

अर्थ-परन्तु इसके लोकनिन्दित, निर्दय, क्रूर कर्मों के कारण इससे देव दानवों सहित सब लोक कांप रहे हैं ॥

इति चिन्तां बहुविधामकरोन्मतिमान्कपिः ।
दृष्ट्वा राक्षस राजस्य प्रभावममितौजसः ॥१५॥

अर्थ-रावण का ऐसा अमित बल तथा प्रभाव देखकर हनुमान् विविध प्रकार की चिन्ता करने लगा ॥

इति द्वाविंशः सर्गः

अथ त्रयोविंशः सर्गः

सं०-अब हनुमान् तथा रावण का वार्त्तालाप कथन करते हैंः-

तमुद्वीक्ष्य महाबाहुः पिङ्गाक्षं पुरतः स्थितम् ।
स राजा रोष ताम्राक्षः प्रहस्तं मन्त्रिसत्तमम् ॥१॥
कालयुक्तमुवाचेदं वचो विपुलमर्थवत् ।
दुरात्मा पृच्छ्यतामेष कुतः किं वास्य कारणम् ॥२॥
वनभङ्गे च कोऽस्यार्थो राक्षसानां च तर्जने ।
मत्पुरीमप्रधृष्यां वै गमने किं प्रयोजनम् ॥३॥

आयोधने वा किं कार्यं पृच्छतामेष दुर्मतिः ।
रावणस्य वचः श्रुत्वा प्रहस्तो वाक्यमब्रवीत् ॥४॥

अर्थ–पीत नेत्रों वाले हनुमान् को सन्मुख खड़ा देखकर महाबाहु राजा रावण क्रोध से लाल नेत्रों वाला हुआ २ मन्त्रि-श्रेष्ठ प्रहस्त से अवसर के योग्य अर्थ वाला यह बड़ा वचन बोला कि इस दुरात्मा से पूछ, यह कहां से आया है? बाग तोड़ने तथा राक्षसों को मर्दन करने में इसका क्या प्रयोजन है? हमारी अगम्य पुरी लङ्का में यह कैसे आया और संग्राम करने से इसका क्या प्रयोजन है? यह सब बातें इस दुर्मति से पूछ, रावण की आज्ञा को सुनकर मन्त्री प्रहस्त हनुमान् से बोलाकि:–

समाश्वसिहि भद्रं ते न भीः कार्यात्वयाकपे ।
तत्त्वमाख्याहि मा ते भूद्भयं वानर मोक्षसे ॥५॥

अर्थ–हे वानर! सावधान होजा, तेरा कल्याण हो, तू भय मतकर, सत्य २ कहदे तुझे छोड़ दिया जायगा ॥

तं समीक्ष्य महासत्त्वं सत्त्ववान् हरिसत्तमः ।
वाक्यमर्थवदव्यग्रस्तमुवाच दशाननम् ॥६॥
अहं सुग्रीवसन्देशादिह प्राप्तस्तवान्तिके ।
राक्षसेश हरीशस्त्वां भ्राता कुशलमब्रवीत् ॥७॥

अर्थ–उस महान् हृदय रावण को देख महानात्मा हनुमान् सावधान होकर यह अर्थयुक्त वाक्य बोला कि मैं सुग्रीव का सन्देश लेकर यहां तुम्हारे समीप आया हूं, हे राक्षसपाति! तुमारे भाई सुग्रीव ने तुम्हें कुशल कहा है ॥

भ्रातुः शृणु समादेशं सुग्रीवस्य महात्मनः ।
धर्मार्थसंहितं वाक्यमिह चामुत्र च क्षमम् ॥८॥
तद्भवान्दृष्टधर्मार्थस्तपः कृतपरिग्रहः ।
परदारान्महाप्राज्ञ नोपरोद्धुं त्वमर्हसि ॥९॥

अर्थ-और अपने भाई महात्मा सुग्रीव का सन्देश सुनें जो धर्म अर्थ से युक्त इस लोक और परलोक की भलाई का वचन है, आप अर्थ के तत्व को भलेप्रकार जानने वाले और तप से आप के पास सब ऐश्वर्य्य है, सो हे महाप्राज्ञ ! आपको परस्त्री नहीं रोकनी चाहिये ॥

नहि धर्मविरुद्धेषु बह्वपायेषु कर्मसु ।
मूलघातिषु सज्जन्ते बुद्धिमन्तो भवद्विधाः ॥१०॥
कश्च लक्ष्मणमुक्तानां रामकोपानुवर्तिनाम् ।
शराणामग्रतः स्थातुं शक्तो देवासुरेष्वपि ॥११॥

अर्थ-आप जैसे बुद्धिमान् को धर्मविरुद्ध, अनर्थग्राही तथा जड़ उखाड़ने वाले कर्मों में नहीं फंसना चाहिये, राम के क्रोधानुसारी लक्ष्मण से छोड़े हुए बाणों के आगे देव और दैत्यों में से कौन ठहरसक्ता है ॥

नचापि त्रिषु लोकेषु राजन्विपद्येत कश्चन ।
राघवस्य व्यलीकं यः कृत्वा सुखमवाप्नुयात् ॥१२॥
तत्त्रिकालहितं वाक्यं धर्ममर्थानुयायि च ।
मन्यस्व नरशार्दूले जानकी प्रतिदीयताम् ॥१३॥

अर्थ–हे राजन् ! तीनों लोकों में ऐसा कोई भी नहीं जो राम का अपराध करके सुख को प्राप्त हो, सो तीनों काल में हितकारी धर्म अर्थ युक्त मेरा वचन मानकर उस नरश्रेष्ठ को जानकी वापिस देदीजिये ॥

दृष्टाहीयं मयादेवी लब्धं यदिह दुर्लभम् ।
उत्तरं कर्म यच्छेषं निमित्तं तत्र राघवः ॥१४॥

लक्षितेयं मया सीता तथा शोकपरायणा ।
गृहेयां नाभिजानासि पंचास्यामिवपन्नगीम् ॥१५॥
नेयं जरयितुं शक्या सासुरैरमरैरपि ।
विषं संस्पृष्टमत्यर्थंभुक्तमन्नमिवौजसा ॥१६॥

अर्थ–मैंने यहां सीता को देखा जो यह लाभ दूतों को अति दुर्लभ है, अब जो उत्तरकर्म=सीता का लेजाना रूप आगे का कार्य्य शेष है उसको राम स्वयं करेंगे, मैंने जो सीता को देखा तो वह बहुत शोकपरायण दीखपड़ी जिसको तुम घर में पांच मुखवाली सर्पिणी के समान नहीं जानते, चाहे देवता, चाहे दैत्य हो इस सीता को अधिक काल तक कोई नहीं रखसक्ता, जैसे विष मिला अन्न चाहे कोई अपने पराक्रम से खा भी ले परन्तु वह उसको पचा नहीं सक्ता ॥

जनस्थान वधं बुद्ध्वा बालिनश्च वधं तथा ।
राम सुग्रीव सख्यं च बुध्यस्व हितमात्मनः ॥१७॥

अर्थ–सो हे राजन ! जनस्थान का वध, बाली का हनन,

राम तथा सुग्रीव की मित्रता जानकर और अपना हित समझ "सीता को वापिस देदो, इसी में कल्याण है" ॥

इति त्रयोविंशःसर्गः

अथ चतुर्विंशः सर्गः

सं०—अब रावण का हनुमान् के लिये बध की आज्ञा देना तथा हनुमान् का लङ्कापुरी को जलाना कथन करते हैं :—

स तस्य वचनं श्रुत्वा वानरस्य महात्मनः ।
आज्ञापयद्वधं तस्य रावणः क्रोधमूर्च्छितः ॥ १ ॥
वधे तस्य समाज्ञप्ते रावणेन दुरात्मना ।
निवेदितवतो दौत्यं नानुमेने विभीषणः ॥ २ ॥

अर्थ—महात्मा हनुमान् के उक्त बचन सुनकर क्रोध से व्याकुल हुए रावण ने उसके बध की आज्ञा दी, परन्तु विभीषण ने हनुमान् के बध में अपनी सम्मति नहीं दी, क्योंकि वह अपना दूत होना प्रथम कह चुका था ॥

राजन्धर्मविरुद्धं च लोकवृत्तेश्चगर्हितम् ।
तव चासदृशं वीर कपेरस्य प्रमापणम् ॥ ३ ॥
साधुर्वा यदि वाऽसाधुः परैरेष समर्पितः ।
ब्रुवन्परार्थं परवान्न दूतो वधमर्हति ॥ ४ ॥

अर्थ—विभीषण ने कहा कि हे राजन् ! इस हनुमान् दूत को मारना धर्मविरुद्ध, लोकविरुद्ध और तेरे लिये यह निन्दित कार्य्य

है, चाहे भला हो चाहे बुरा हो यह दूसरे का सन्देश लेकर आया है और उसका सन्देश कहता हुआ पराधीन दूत बध के योग्य नहीं होता ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा दशग्रीवो महात्मनः ।
देशकालहितं वाक्यं भ्रातुरुत्तरमब्रवीत् ॥ ५ ॥
सम्यग्गुक्तं हि भवता दूतवध्या विगर्हिता ।
अवश्यं तु वधायान्यः क्रियतामस्य निग्रहः ॥६॥

अर्थ—उस महात्मा विभीषण के बचन सुनकर रावण ने भाई को देशकाल के योग्य यह उत्तर दिया कि आपने ठीक कहा दूत का मारना निन्दित कर्म है परन्तु इसके बध के स्थान में इसको कोई और दण्ड अवश्य मिलना चाहिये ॥

ततस्ते संवृताकारं सत्त्ववन्तं महाकपिम् ।
परिगृह्य ययुर्हृष्टा राक्षसाः कपिकुंजरम् ॥ ७ ॥
शंखभेरीनिनादैश्च घोषयन्तः स्वकर्मभिः ।
राक्षसाः क्रूरकर्माणश्चारयन्ति स्म तां पुरीम् ॥ ८ ॥

अर्थ—इसके अनन्तर गूढ़ अभिप्राय वाले तथा बड़े दिल वाले उस वानरश्रेष्ठ हनुमान् को बांधकर राक्षस लोग बहुत हर्षित हो लेचले, और शंख तथा भेरी की ध्वनियों के साथ उसके राजविद्रोहरूप कर्म का ढिंढोरा देते हुए क्रूरकर्मा राक्षसों ने उसको बड़ी दुर्गति से लङ्कापुरी में घुमाया ॥

ततश्छित्त्वा च तान्पाशान्वेगवान्वै महाकपिः ।
उपपाताथ वेगेन ननाद च महाकपिः ॥ ९ ॥

पुरद्वारं ततः श्रीमाञ्शैलश्रृंगमिवोन्नतम् ।
वीक्षमाणश्च ददृशे परघं तोरणाश्रितम् ॥ १० ॥
स तं गृह्य महाबाहुः कालाय स परिष्कृतम् ।
रक्षिणस्तान्पुनः सर्वान्सूदयामास मारुतिः ॥११॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह वेगवान्=फुरतीला हनुमान् उन पाशों को जिनमें बन्धा हुआ था तोड़ वेग से उछलकर निकल गया और सिंह समान बड़ा नाद किया, तब पर्वत की चोटी के समान ऊंचे पुर द्वार को देखते हुए उस श्रीमान् हनुमान् ने वहीं द्वार पर एक मुद्गर देखा. जो काल लोह से सजा हुआ था उसको पकड़कर हनुमान् ने फिर उन सारे बाग के रक्षकों=रखवालों को मारा ॥

वीक्षमाणस्ततो लङ्कां कपिः कृतमनोरथः ।
वर्धमानसमुत्साहः कार्यशेषमचिन्तयत् ॥ १२ ॥
किं नु खल्ववशिष्टं मे कर्तव्यमिह साम्प्रतम् ।
यदेषां रक्षसां भूयः संतापजननं भवेत् ॥ १३ ॥
वनं तावत्प्रमथितं प्रकृष्टा राक्षसा हताः ।
बलैकदेशः क्षपितः शेषं दुर्गविनाशनम् ॥ १४ ॥

अर्थ—हनुमान् का मनोरथ पूर्ण होने पर उसने लङ्का की ओर देखा, उस बढ़े हुए उत्साह वाले ने पुनः कार्य्यशेष का विचार किया कि अब मेरा क्या कर्तव्य शेष रहा है जो इन राक्षसों को फिर सन्ताप जनक हो. मैंने बगीचे का विनाश किया, उत्तम राक्षसों को मारा, कुछ सेना का भी बध किया, अब मेरे लिये लङ्का के किले का विनाश करना शेष रहा है, यह सोचकरः—

हनूमता वेगवता वानरेण महात्मना ।
लङ्कापुरं प्रदग्धं तद्रुद्रेण त्रिपुरं यथा ॥ १५ ॥
भंक्त्वा वनं महातेजा हत्वा रक्षांसि संयुगे ।
दग्ध्वा लङ्कापुरीं भीमां रराज स महाकपिः ॥१६॥

अर्थ—बड़े वेग वाले महात्मा हनुमान् ने उस लङ्कापुरी को दग्ध किया अर्थात् उसके कुछेक देश में आग लगादी, जैसे रुद्र ने त्रिपुर को दग्ध किया था, वह महातेजस्वी हनुमान् वन को तोड़, युद्ध में राक्षसों को मार और लङ्कापुरी को जलाकर अति प्रसन्न हुआ ॥

भाष्य—पाठकवृन्द ! इस स्थल में यह लिखा है कि जब विभीषण के कथनानुसार रावण ने हनुमान् को बधदण्ड न देना मान लिया तब यह विचार निश्चित हुआ कि पूंछ वानरों का प्यारा भूषण होता है, अतएव इसकी पूंछ को शीघ्र ही प्रदीप्त करो, यह जली हुई पूंछ के साथ अपने घर जाय ताकि अङ्ग की विरूपता से दुर्बल दीन हुए इसको इसके मित्र, ज्ञाति, बान्धव और सुहृदजन देखें, यह सुनकर क्रोध से प्रचण्ड राक्षसों ने सब पुराने वस्त्र तथा कपास, सन आदि लाकर उसकी पूंछ से लपेट दिये और फिर तैल से तर करके आग लगादीं, ऐसा करके फिर स्त्री, बाल, वृद्ध सब निशाचर परम प्रसन्न हुए, तत्पश्चात् हनुमान् ने अवसर पाकर उन पाशों को जिनमें बन्धा हुआ था काट डालीं और उछलकर लङ्का के महलों पर चढ़गया, लङ्का के सब बड़े २ मकान, अटारियों, रावण के महल और किला आदि सब स्थानों को घूम २ जलाया, केवल विभीषण का मकान छोड़ दिया, इत्यादि ॥

हमारे विचार में यह लङ्कादाह का प्रकरण युक्तिशून्य होने से सर्वथा असम्भव है, भला इस बात को कौन बुद्धिमान् मानसक्ता है कि इतने प्रबल योद्धा राक्षसों की राजधानी को अकेला हनुमान् जलाता फिरे और पकड़ा न जाय, दूसरी बात यह है कि हनुमान् पूंछ वाला बन्दर न था, जैसाकि आजकल के हमारे पौराणिक भाई रामलीला में पूंछ बनाकर दिखलाते हैं, यह वानरजाति में मुख्य पुरुष था, जो बलवान्, शूरवीर, धर्मज्ञ और बड़ा पण्डित था जिसका प्रमाण यह है कि जब प्रथम ही सुग्रीव का भेजा हुआ हनुमान् राम लक्ष्मण से किष्किन्धा के जङ्गल में मिला तब वहां उसने राम से बड़ी प्रगल्भ पाण्डित्य की बातें कीं जिनको सुनकर राम लक्ष्मण से बोले किः—

तमभ्यभाष सौमित्रे सुग्रीव सचिवं कपिम् ।
वाक्यज्ञं मधुरैर्वाक्यैः स्नेहयुक्तमरिन्दमम् ॥
नानृग्वेद विनीतस्य नायजुर्वेद धारिणः ।
ना सामवेद विदुषः शक्यमेवं विभाषितुम् ॥
नूनं व्याकरणं कृत्स्नमनेन बहुधा श्रुतम् ।
बहु व्याहरताऽनेन न किंचिदपशब्दितम् ॥

किष्किन्धा-काण्ड द्वि० स० २७।२८।२९

अर्थ—हे सौमित्रे ! स्नेह से भरे हुए, शत्रुओं को दमन करने वाले तथा वाक्य के जानने वाले सुग्रीव के इस मन्त्री ने मधुर वाणी द्वारा ऐसा भाषण किया है कि न ऋग्वेद का शिक्षा पाया हुआ, न यजुर्वेद को धारण करने वाला और न सामवेद का

जानने वाला ऐसा भाषण करसक्ता है, निःसन्देह इसने अनेकबार व्याकरण श्रवण किया है, क्योंकि चिरकाल से बात करते हुए इसने कहीं भी अपभ्रंश नहीं बोला, इत्यादि, जो अधिक देखना चाहें वह उस प्रकरण को देखें ॥

पाठकगण ! यह महात्मा हनुमान् बन्दर न था, भला किसी ने बन्दर को व्याकरण तथा वेद पढ़ते हुए भी सुना है अथवा किसी ने किसी बन्दर को किसी से बुद्धिपूर्वक बात चीत करते हुए भी देखा है ? वास्तव में यह वानरजातिविशेष का एक महापुरुष था जिसके पूंछ का होना ही सर्वथा असम्भव है फिर आग लगाने की तो कथा ही क्या, जैसे रामायण में अनेक स्थल असम्भव गाथाओं से पूरित हैं इसी प्रकार एक यह प्रकरण भी सर्वथा असम्भव है, और तर्क यह है कि हनुमान् ने लङ्का के प्रबल योद्धाओं का पता लगाना चाहा था सो वह द्वन्द्वयुद्ध में लग चुका था फिर इसकी भी आवश्यकता न थी, न जाने ऐसा अयुक्त लेख क्यों लिखा गया है, वस्तुतः न हनुमान् की पूंछ थी, न उसने घूम २ कर एक २ घर जलाया किन्तु उसने एक जगह आग लगाई थी और सम्भव है कि वह आग पवन द्वारा फैल गई होगी जिससे बड़ी हानि हुई हो ॥

इति चतुर्थविंशः सर्गः

अथ पञ्चविंशः सर्गः

सं०-अब हनुमान् का लौटकर जाम्बवान् आदि के समीप पहुंचना कथन करते हैं:—

नदन्नादेन महता मेघस्वनमहास्वनः ।
प्रवरान्राक्षसान्हत्वा नाम विश्राव्य चात्मनः ॥१॥
आकुलां नगरीं कृत्वा व्यथयित्वा च रावणम् ।
अर्दयित्वा महावीरान्वैदेहीमभिवाद्य च ॥२॥
आजगाम महातेजाः पुनर्मध्येन सागरम् ।
पर्वतेन्द्रं सुनाभं च समुपस्पृश्य वीर्यवान् ॥३॥

अर्थ—बड़े नाद से गर्जता हुआ, मेघ की ध्वनि तुल्य ध्वनि वाला महातेजस्वी हनुमान् बड़े २ राक्षसों को मार अपना नाम विख्यात कर, नगरी को व्याकुल तथा रावण को व्यथित करके, और बड़े वीरों को पीड़ित तथा सीता को अभिवादन कर समुद्र के मध्य से पर्वतेन्द्र मैनाक का स्पर्श करके लौट आया ॥

ज्यामुक्त इव नाराचो महावेगोऽभ्युपागमत् ।
स तं देशमनुप्राप्तः सुहृद्दर्शन लालसः ॥४॥
निशम्य नदतो नादं वानरास्ते समन्ततः ।
बभूवुरुत्सुकाः सर्वे सुहृद्दर्शन कांक्षिणः ॥५॥
जाम्बवान्स हरिश्रेष्ठः प्रीतिसंहृष्टमानसः ।
उपामन्त्र्य हरीन्सर्वानिदं वचनमब्रवीत् ॥६॥

अर्थ—ज्या से छूटे हुए तीर की भांति बड़े वेग से वह सुहृदों के देखने की लालसा वाला हनुमान उसी स्थान पर आपहुंचा जहां से गया था, तदनन्तर उस गर्जते हुए की ध्वनि

सुनकर वह वानर चारों ओर से अपने सुहृद् हनुमान् के देखने की अभिलाषा से इकट्ठे होगये, तब वानरश्रेष्ठ जाम्बवान् अतीव प्रसन्न हुआ और उन सब वानरों को बुलाकर यह बचन बोला कि :—

सर्वथा कृतकार्योऽसौ हनूमान्नात्र संशयः ।
न ह्यस्याकृतकार्यस्य नाद एवंविधो भवेत् ॥७॥
ते नगाग्रान्नगाग्राणि शिखराच्छिखराणि च ।
प्रहृष्टाः समपद्यन्त हनूमन्तं दिदृक्षवः ॥८॥

अर्थ—हनुमान सर्वथा कृतकार्य्य होकर आया है इसमें संशय नहीं, क्योंकि कार्य्य को किये विना उसकी ऐसी गर्ज नहीं होसक्ती, तब प्रसन्न हुए सभी वानर हनुमान् को देखने की इच्छा से पर्वत की ऊंचाई से दूसरी ऊंचाई पर और एक चोटी से दूसरी चोटी पर चढ़गये ॥

ततस्ते प्रीतमनसः सर्वे वानरपुंगवाः ।
हनूमन्तं महात्मानं परिवार्योपतस्थिरे ॥९॥
उपायनानि चादाय मूलानि च फलानि च ।
प्रत्यर्चयन्हरिश्रेष्ठं हरयो मारुतात्मजम् ॥१०॥

अर्थ—तत्पश्चात वह प्रसन्न मन हुए सभी वानरश्रेष्ठ महात्मा हनुमान् को घेरकर चारों ओर बैठ गये, और वह सब फल मूल की भेटें लेकर पवनपुत्र हमुमान् की पूजा करने लगे ॥

हनूमांस्तु गुरून्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखांस्तदा ।
कुमारमङ्गदं चैव सोऽवन्दत महाकपिः ॥११॥

स ताभ्यां पूजितः पूज्यः कपिभिश्च प्रसादितः ।
दृष्टा देवीति विक्रान्तः संक्षेपेण न्यवेदयत् ॥१२॥

अर्थ–हनुमान् ने जाम्बवान् आदि वृद्धों और कुमार अङ्गद को प्रणाम किया, तत्पश्चात् वह आदरणीय पराक्रमी हनुमान् अङ्गद तथा जाम्बवान् दोनों से सन्मानित और दूसरे वानरों से प्रसन्न होकर सीतादर्शन की सम्पूर्ण कथा संक्षेप से सबको सुनाई ॥

ततो दृष्टेति वचनं महार्थममृतोपमम् ।
निशम्य मारुतेः सर्वे मुदिता वानराभवन् ॥१३॥

अर्थ–तत्पश्चात् "देखी है" इस अमृत तुल्य बड़े अर्थ वाले वचन को सुनकर सम्पूर्ण वानर अति प्रसन्न हुए ॥

इति पञ्चविंशः सर्गः

अथ षड्विंशः सर्गः

सं०–अब हनुमान् का राम के समीप जाकर सीता का सन्देश देना कथन करते हैं :—

प्रीतिमन्तस्ततः सर्वे वायुपुत्रपुरःसराः ।
महेन्द्राग्रात्समुत्पत्य पुप्लुवः प्लवगर्षभाः ॥ १ ॥
सर्वे रामप्रतीकारे निश्चितार्था मनस्विनः ।
नन्दनोपममासेदुर्वनं द्रुमशतायुतम् ॥ २ ॥

अर्थ–तदनन्तर परमप्रीति वाले हुए सब वानर श्रेष्ठ हनुमान्

को आगे करके महेन्द्र की चोटी से उछलकर छलांगें मारते हुए तथा सबके सब राम का रावण से बदला लेने में निश्चय वाले मनस्वी अनेक वृक्षों से पूर्ण नन्दन तुल्य सुग्रीव के बाग में आपहुंचे ॥

यत्तन्मधुवनं नाम सुग्रीवस्याभिरक्षितम् ।
अधृष्यं सर्वभूतानां सर्वभूत मनोहरम् ॥ ३ ॥
यद्रक्षति महावीरः सदादधिमुखः कपिः ।
मातुलः कपिमुख्यस्य सुग्रीवस्य महात्मनः ॥ ४ ॥
ते तद्वनमुपागम्य बभूवुः परमोत्कटाः ।
वानरा वानरेन्द्रस्य मनः कान्तं महावनम् ॥ ५ ॥

अर्थ–सुग्रीव का सुरक्षित मधुवन नामक बगीचा जिसमें कोई नहीं जाने पाता और जो बड़ा मनोहर था, इसकी रक्षा महात्मा सुग्रीव का मामा महाबलवान् दधिमुख नामक वानर करता था, यह सब वानर सुग्रीव के उक्त मनोरम महावन में पहुंचकर अति हर्षित हुए ॥

ततः कुमारस्तान्वृद्धाञ्जाम्बवत्प्रमुखान्कपीन् ।
अनुमान्य ददौ तेषां निसर्गं मधुभक्षणे ॥ ६ ॥
भक्षयन्त सुगन्धीनि मूलानि च फलानि च ।
जग्मुः प्रहर्षं ते सर्वे बभूवुश्च मदोत्कटाः ॥ ७ ॥

अर्थ–और वहां कुमार अङ्गद ने जाम्बवान् आदि पूज्य वानरों को आदरपूर्वक मधुरफल खाने की आज्ञा दी, और

वह सुगन्धित मधुर मूल फलों को भक्षण कर परम हर्ष को प्राप्त हो अति प्रफुल्लित हुए ॥

ततः प्रस्रवणं शैलं ते गत्वा चित्रकाननम् ।
प्रणम्य शिरसा रामं लक्ष्मणं च महाबलम् ॥ ८ ॥
युवराजं पुरस्कृत्य सुग्रीवमभिवाद्य च ।
प्रवृत्तिमथ सीतायाः प्रवक्तुमुपचक्रमे ॥ ९ ॥

अर्थ–तदनन्तर वह सब विचित्र वनों वाले प्रस्रवण पर्वत पर पहुंच महाबली राम और लक्ष्मण को सिर नवाकर प्रणाम किया, और युवराज अङ्गद को आगे करके सुग्रीव को अभिवादन कर सीता का समाचार सुनाना प्रारम्भ किया ॥

तं मणिं कांचनं दिव्यं दीप्यमानं स्वतेजसा ।
दत्वा रामाय हनुमांस्ततः प्राञ्जलिरब्रवीत् ॥ १० ॥

अर्थ–दिव्य सुनहरी मणि जो अपने तेज से दीप्तमान् हो रही थी वह राम को देकर हनुमान् हाथ जोड़ बोला कि :—

समुद्रं लंघयित्वाहं शतयोजनमायतम् ।
अगच्छं जानकीं सीतां मार्गमाणो दिदृक्षया ॥ ११ ॥
तत्र लङ्केति नगरी रावणस्य दुरात्मनः ।
दक्षिणस्य समुद्रस्य तीरे वसति दक्षिणे ॥ १२ ॥
तत्र सीता मया दृष्टा रावणान्तःपुरे सती ।
त्वयि संन्यस्य जीवन्ती रामा राम मनोरथम् ॥ १३ ॥

अर्थ–सौ योजन चौड़े समुद्र को लांघकर सीता के देखने

की इच्छा से उसको ढूढ़ता हुआ गया, दक्षिण समुद्र के दक्षिण तट पर बसी हुई दुरात्मा रावण की लङ्का नगरी है, वहां रावण के अन्तःपुर में मैंने रमणी सती सीता को आपमें अपना मनोरथ धारण किये हुए जीती हुई देखा है ॥

दृष्टा मे राक्षसीमध्ये तर्ज्यमाना मुहुर्मुहुः ।
दुःखमापद्यते देवी त्वया वीर सुखोचिता ॥ १४ ॥
रावणान्तःपुरे रुद्धाराक्षसीभिः सुरक्षिता ।
एकवेणीधरादीना त्वयि चिन्तापरायणा ॥ १५ ॥
अधःशय्या विवर्णांगी पद्मिनीव हिमागमे ।
रावणाद्विनिवृत्तार्थामर्तव्य कृतनिश्चया ॥ १६ ॥
सा मया नरशार्दूल शनैर्विश्वासिता तदा ॥ १७ ॥

अर्थ–मैंने राक्षसियों के मध्य में उसका बार २ झिड़की जाती हुई देखा है, हे वीर! तुम्हारे साथ सुख भोगने योग्य सीता विरूप राक्षसियों से प्रमदा वन में नानाप्रकार के दुःख भोग रही है, रावण के अन्तःपुर में राक्षसियों से रक्षित रुकी पड़ी है और एक वेणी धारण किये नित्य तुम्हारी चिन्ता में मग्न रहती है, भूमि पर लेटी हुई, जाड़े के आने पर पद्मिनी की भांति मुरझाये हुए अङ्गों वाली और रावण से अपने सतीत्व को बचाती हुई मरने का निश्चय किये हुए बैठी है, हे नरश्रेष्ठ! मैंने उसको धीरे २ सब तरह से आश्वासन दिया, और :—

ततः संभाषिता देवी सर्वमर्थं च दर्शिता ।
सम सुग्रीव सख्यं च श्रुत्वा हर्षमुपागता ॥ १८ ॥

अर्थ–मैंने देवी से सम्भाषण कर उसको सारी बातें सुनाईं, और वह राम तथा सुग्रीव की मैत्री सुनकर परमहर्ष को प्राप्त हुई ॥

नियतः समुदाचारो भक्तिश्चास्याः सदा त्वयि ।
एवं मया महाभाग दृष्टा जनकनन्दिनी ॥१९॥
विज्ञाप्यः पुनरप्येष रामो वायुसुत त्वया ।
अखिलेन यथा दृष्टमिति मामाह जानकी ॥२०॥

अर्थ–वह सदा आपके ही नाम का जप करती और सदा आपकी ही भक्ति में रत है, हे महाभाग ! इस प्रकार वह जनकनन्दिनी मैंने देखी है, मुझे जानकी ने फिर कहा कि हे पवनसुत! जैसा तुमने देखा है वह सब राम को जाकर कहना ॥

एष निर्यातितः श्रीमान्मया ते वारिसंभवः ।
एनं दृष्ट्वा प्रमोदिष्ये व्यसने त्वामिवानघ ॥२१॥
जीवितं धारयिष्यामि मासं दशरथात्मज ।
ऊर्ध्वं मासान्न जीवेयं रक्षसां वशमागता ॥२२॥

अर्थ–यह शोभायमान समुद्रिय मणि जो सीता ने मुझे दी है, हे निष्पाप ! आपके दर्शनतुल्य इस मणि के दर्शन करके वह दुःख में आनन्द मनाती थी, हे दशरथसुत ! "सीता ने कहा कि" मैं एकमास और जीवन धारण करूंगी।,फिर महीने पश्चात् राक्षसों के बस पड़ी हुई जीवित नहीं रहुंगी ॥

एवमुक्तो हनुमता रामो दशरथात्मजः ।
तं मणिं हृदये कृत्वा रुरोद सहलक्ष्मणः ॥२३॥

तं तु दृष्ट्वा मणिश्रेष्ठं राघवः शोककर्शितः ।
नेत्राभ्यामश्रुपूर्णाभ्यां सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥२४॥

अर्थ–हनुमान् के उक्त प्रकार कथन करने पर राम उस मणि को हृदय से लगाकर लक्ष्मण सहित बहुत रोये, उस श्रेष्ठ मणि को देखकर शोक से दुर्बल राम नेत्रों में आंसु भरकर सुग्रीव से बोले कि:—

तथैव धेनुः स्रवति स्नेहाद्वत्सस्य वत्सला ।
तथा ममापि हृदयं मणिश्रेष्ठस्य दर्शनात् ॥२५॥
मणिरत्नमिदं दत्तं वैदेह्याः श्वशुरेण मे ।
वधूकाले यथा बद्धमधिकं मूर्ध्निशोभते ॥२६॥

अर्थ–जैसे धेनु बछड़े को देखकर स्नेह से दूध उतारती है इसी प्रकार इस श्रेष्ठ मणि को देखकर मेरा हृदय प्रेम से पिघल आया है, यह मणिरत्न विवाह समय मेरे श्वसुर ने सीता को दी थी जो सिर पर बन्धी हुई अधिक शोभा को बढ़ा रही थी ॥

इतस्तु किं दुःखतरं यमिमं वारिसम्भवम् ।
मणिं पश्यामि सौमित्रे वैदेहीमागतं विना ॥२७॥
चिरं जीवति वैदेही यदि मासं धरिष्यति ।
क्षणं वीर न जीवेयं विना तामसितेक्षणाम् ॥२८॥

अर्थ–इससे अधिक क्या दुःख होगा जब कि मैं इस समुद्रिय मणि को सीता के बिना आया देखता हूं, यदि सीता एकमास तक जीवित रही तो फिर चिरकाल तक जीवेगी, हे वीर! मैं उस श्याम नेत्रों वाली के बिना क्षणभर भी नहीं जीसक्ता ॥

नय मामपि तं देशं यत्र दृष्टा मम प्रिया ।
न तिष्ठेयं क्षणमपि प्रवृत्तिमुपलभ्य च ॥२९॥
कथं सा मम सुश्रोणी भीरुभीरुः सती तदा ।
भयावहानां घोराणां मध्ये तिष्ठति राक्षसाम् ॥३०॥

अर्थ—हे हनुमान ! मुझे भी वहीं लेचल जहां मेरी प्यारी तैंने देखी है उसका समाचार पाकर मैं क्षणभर भी नहीं ठहर सक्ता हूं, वह सुन्दर कमर वाली, पतिव्रता, अतीव भीरु भयङ्कर घोर राक्षसियों के मध्य कैसे रहती होगी ॥

इति षड्विंशःसर्गः

समाप्तश्चेदं सुन्दरकाण्डम्

ओ३म्

अथ युद्धकाण्डं प्रारभ्यते
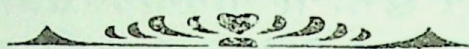
श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदभिभाषितम् ।
रामः प्रीतिसमायुक्तो वाक्यमुत्तरमब्रवीत् ॥१॥

अर्थ—हनुमान् के यथावत् कहे हुए वाक्य सुनकर परमप्रीति युक्त हुए राम यह उत्तर वाक्य बोले कि:—

कृतं हनूमता कार्यं सुमहद्भुवि दुर्लभम् ।
मनसापि यदन्येन न शक्यं धरणीतले ॥२॥

प्रविष्टः सत्वमाश्रित्य जीवन्को नाम निष्क्रमेत ।
कोविशेत्सु दुराधर्षा राक्षसैश्च सुरक्षिताम् ॥३॥

यो वीर्यबलसम्पन्नो न समः स्याद्धनूमतः ।
भृत्यकार्य्यं हनुमता सुग्रीवस्य कृतं महत् ॥४॥

अर्थ—हनुमान् ने भूमि पर बड़ा दुर्लभ कठिन कार्य्य किया है जो किसी अन्य से पृथिवीतल पर मन से भी होना अशक्य है, राक्षसों से रक्षित, बड़े दुःख से निरादार किये जाने योग्य लङ्का में बड़े विक्रम के साथ वेधड़क होकर जाना और जीवित ही निकल आना बड़ा कठिन है, हनुमान् के समान कोई

भी बल सम्पन्न नहीं, क्योंकि इसने सुग्रीव का बहुत बड़ा भृत्य-
कार्य्य=सेवक का काम किया है ॥

यो हि भृत्यो नियुक्तः सन्भर्त्रा कर्माणि दुष्करे ।
कुर्यात्तदनुरागेण तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥५॥
यो नियुक्तः परं कार्यं न कुर्यान्नृपतेः प्रियम् ।
भृत्योयुक्तः समर्थश्च तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥६॥
नियुक्तो नृपतेः कार्यं न कुर्याद्यः समाहितः ।
भृत्योयुक्तः समर्थश्च तमाहुःपुरुषाधमः॥७॥

अर्थ—जो सेवक कठिन कर्म करने के लिये अपने स्वामी की आज्ञा का बड़े हर्ष से पालन करता है उसको उत्तम पुरुष कहते हैं, जो भृत्य उस कार्य्य के करने में सर्वथा समर्थ है परन्तु .जिस कार्य्य के लिये स्वामी की आज्ञा होती है केवल उतना ही करता कुछ अधिक प्रिय नहीं करता वह मध्यम पुरुष कहाता, है, और जो भृत्य उस कार्य्य के करने में समर्थ है पर स्वामी की आज्ञा होने पर जो एकाग्रचित्त से उस काम को नहीं करता उसको अधम कहते हैं ॥

अहं च रघुवंशश्च लक्ष्मणश्च महाबलः ।
वैदेह्यादर्शने नाद्य धर्मतः परिरक्षिताः ॥ ८ ॥
इदं तु मम दीनस्य मनो भूयः प्रकर्षति ।
यदिहास्य प्रियाख्यातुर्न कुर्मिसदृशं प्रियम् ॥९॥

अर्थ—भृत्यधर्म में स्थित हनुमान् ने वैदेही के देखने से मेरी,

रघुवंश और महाबली लक्ष्मण की बड़ी रक्षा की, परन्तु इस दीन अवस्था में यह बात मेरे मन को बहुत ही खेदित करती है कि मैं इस प्रिय कहने वाले के सदृश इसका प्रिय नहीं करसक्ता ॥

एष सर्वस्वभूतस्तु परिष्वंगो हनूमतः ।
मया कालमिमं प्राप्य दत्तस्तस्य महात्मनः ॥१०॥
इत्युक्त्वा प्रीतिहृष्टांगो रामस्तं परिषस्वजे ।
हनूमन्तं कृतात्मानं कृतवाक्यमुपागतम् ॥ ११ ॥
ध्यात्वा पुनरुवाचेदं वचनं रघुसत्तमः ।
हरीणामीश्वरस्यापि सुग्रीवस्योपशृण्वतः ॥ १२ ॥

अर्थ–हां इस समय प्रेम से गले मिलना यही अपना सर्वस्व इस महात्मा हनुमान् को देता हूं, यह कहकर प्रीति से हर्षित अङ्गों वाले राम ने कार्य्य को पूर्ण कर आये हुए जितेन्द्रिय हनुमान् को गले लगाया, फिर थोड़ी देर सोचकर वानरपति सुग्रीव के सुनते हुए राम यह बचन बोले कि :—

सर्वथा सुकृतं तावत्सीतायाः परिमार्गणम् ।
सागरं तु समासाद्य पुनर्नष्टं मनो मम ॥ १३ ॥
कथं नाम समुद्रस्य दुष्पारस्य महाम्भसः ।
हरयो दक्षिणं पारं गमिष्यन्ति समागताः ॥१४॥

अर्थ–सीता का ढूढ़ना तो भले प्रकार होचुका पर समुद्र को पाकर फिर मेरा मन नष्टप्राय होरहा है कि इतने बड़े जल वाले दुष्पार समुद्र के पार दक्षिण तीर पर सब वानर इकट्ठे होकर कैसे पहुंचेंगे ॥

इत्युक्त्वा शोकसंभ्रान्तो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
हनूमंतं महाबाहुस्ततो ध्यानमुपागमत् ॥ १५ ॥
तं तु शोकपरिद्यूनं रामं दशरथात्मजम् ।
उवाच वचनं श्रीमान्सुग्रीवः शोकनाशनम् ॥१६॥

अर्थ–शत्रुओं के नाशक महाबाहु राम शोक से सन्तप्त हुए हनुमान् से उक्त प्रकार कहकर फिर ध्यानावस्थित हो सोचने लगे, तब श्रीमान् सुग्रीव शोक से दबे हुए दशरथसुत राम को यह शोकनाशक बचन बोले कि :—

संतापस्य च ते स्थानं नहि पश्यामि राघव ।
प्रवृत्तावुपलब्धायां ज्ञाते च निलये रिपोः ॥१७॥
मतिमाञ्छास्त्रवित्प्राज्ञः पण्डितश्चासि राघव ।
त्यजे मां प्राकृतां बुद्धिं कृतात्मेवार्थ दूषिणाम् ॥१८॥

अर्थ–हे राघव ! जब सीता का पता मिलगया और शत्रु का घर भी जाना गया तो अब मैं आपके शोक का कोई स्थान नहीं देखता हूं, हे राघव ! आप बुद्धिमान्, शास्त्रविद्, प्राज्ञ तथा पण्डित हैं सो इस प्राकृतबुद्धि को छोड़दें जो अर्थसिद्धि में दोष उत्पन्न करने वाली है ॥

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकुलात्मनः ।
सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनं चाधिगच्छति ॥१९॥

अर्थ–जो पुरुष उत्साहरहित, दीन तथा शोक से आकुल रहता है उसके सब अर्थ नष्ट होजाते और वह अधिक दुःख को प्राप्त होता है ॥

इमे शूराः समर्थाश्च सर्वतो हरियूथपाः ।
त्वत्प्रियार्थं कृतोत्साहाः प्रवेष्टुमपि पावकम् ॥२०॥

अर्थ–यह सब शूरवीर तथा सब प्रकार से समर्थ सेनापति आपका प्रिय करने की इच्छा से अग्नि में भी प्रवेश करने का उत्साह रखते हैं " तब समुद्र से पार होना कौन बड़ी बात है " ॥

सेतुरत्र यथा वध्येद्यथा पश्येम तां पुरीम् ।
तस्य राक्षसराजस्य तथा त्वं कुरु राघव ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा तां हि पुरीं लङ्कां त्रिकूटशिखरे स्थिताम् ।
हतं च रावणं युद्धे दर्शनादवधारय ॥ २२ ॥

अर्थ–सो हे राघव ! अब जैसे समुद्र पर पुल बन्धजाय और हम सब उस राक्षसराज की पुरी को देखें वैसा आप यत्न करें, बस त्रिकूटपर्वत के शिखर पर बसी लङ्कापुरी को देखते ही युद्ध में उस रावण को मरा हुआ ही समझें ॥

तदलं शोक मालंब्य क्रोधमालंब भूपते ।
निश्चेष्टाः क्षत्रिया मन्दाः सर्वे चण्डस्य बिभ्यति॥२३॥

अर्थ–इसलिये आप शोक को त्यागकर क्रोध का अवलम्बन करें, क्योंकि जो क्षत्रिय उद्योग नहीं करता वह नाश को प्राप्त होजाता है, लोक में प्रचण्ड से ही सब भयभीत होते हैं ॥

किमुक्त्वा बहुधा चापि सर्वथापि जयी भवान् ।
निमित्तानि च पश्यामि मनो मे संप्रहृष्यति॥२४॥

अर्थ-अधिक कथन से क्या, आप सब प्रकार से विजय को प्राप्त होंगे, क्योंकि मैं निमित्त ऐसे देखता हूं जिससे मेरा मन हर्ष को प्राप्त होता है ॥

इति प्रथमः सर्गः

अथ द्वितीयः सर्गः

सं०-अब राम का हनुमान से लङ्का का हाल पूछना और उस पर चढ़ाई करने का वर्णन करते हैं:—

सुग्रीवस्य वचः श्रुत्वा हेतुमत्परमार्थवत् ।
प्रतिजग्राह काकुत्स्थो हनूमन्तमथाब्रवीत् ॥१॥

अर्थ-हेतुसहित तथा अर्थयुक्त सुग्रीव के वचन सुन राम ने स्वीकार कर हनुमान से कहा कि:—

तपसा सेतुबन्धेन सागरोच्छोषणेन च ।
सर्वथापि समर्थोस्मि सागरस्यास्य लंघने ॥२॥

अर्थ-हे हनुमन् ! हम अपने तप से समुद्र का पुल बांधने तथा उसको सुखाकर लांघ जाने में सर्वथा समर्थ हैं ॥

कति दुर्गाणि दुर्गाया लङ्कायास्तद्ब्रवीष्व मे ।
ज्ञातुमिच्छामि तत्सर्वं दर्शनादिव वानर ॥३॥
बलस्य परिमाणं च द्वारदुर्गं क्रियामपि ।
गुप्तिकर्म च लङ्काया रक्षसां सदनानि च ॥४॥

अर्थ–हे वानर ! यह बतलाओ कि उस दुर्गम लङ्का में कितने किले हैं ? मैं उन सब को देखने के समान साक्षात्कार करने की इच्छा करता हूं, वहां सेना कितनी है ? किलों के द्वार कितने हैं ? लङ्का की रक्षा के लिये बन्दीगृह आदि कितने तथा कोट=शहरपनाह कितनी ऊंची चौड़ी है ? और राक्षसों के मन्दिर कितने हैं ॥

यथासुखं यथावच्च लङ्कायामसि दृष्टवान् ।
सर्वमाचक्ष्वतत्त्वेन सर्वथा कुशलोह्यसि ॥५॥
श्रुत्वा रामस्य वचनं हनूमान्मारुतात्मजः ।
वाक्यं वाक्यविदां श्रेष्ठो रामं पुनरथाब्रवीत् ॥६॥

अर्थ–जो कुछ तुमने सुखपूर्वक लङ्का में देखा हो वह सब संक्षेप से यथावत् मुझसे कहो, क्योंकि "आप वहां का समाचार सुनाने में" सर्वथा कुशल हैं,राम के वचन सुनकर वाक्य के जानने वालों में श्रेष्ठ हनुमान् राम से फिर बोला कि:—

श्रूयतां सर्वमाख्यास्ये दुर्गकर्म विधानतः ।
गुप्तापुरी यथा लङ्का रक्षिता च यथा बलैः ॥७॥
राक्षसाश्च यथा स्निग्धा रावणस्य च तेजसा ।
परां समृद्धिं लङ्कायाः सागरस्य च भीमताम् ॥८॥
विभागं च बलौघस्य निर्देशं वाहनस्य च ।
एवमुक्त्वा कपिश्रेष्ठः कथयामास तत्त्ववित् ॥९॥

अर्थ–आप सुनें लङ्का की जिसप्रकार किलाबन्दी तथा सेना से रक्षित है वह सब मैं कहता हूं, रावण के तेज द्वारा जिसप्रकार राक्षसों से स्नेह किया जाता अथवा जैसी लङ्का की

बड़ी स्मृद्धि तथा समुद्र का भयानक होना, सेनासमूह का विभाग और वाहन=रथादिकों का निर्देश, यह सब कहकर वानरों में श्रेष्ठ तत्त्ववित् हनुमान् ने कथन किया कि :-

हृष्ट मुदिता लंका मत्तद्विप समाकुला ।
महती रथ सम्पूर्ण रक्षोगण निषेविता ॥१०॥
दृढ बद्ध कपाटानि महापरिघवंति च ।
चत्वारि विपुलान्यस्या द्वाराणि सुमहांति च ॥११॥
तत्रेषूपलयंत्राणि बलवन्ति महान्ति च ।
आगतं प्रतिसैन्यं तैस्तत्र प्रतिनिवार्य ते ॥१२॥
द्वारेषु संस्कृता भीमाः कालाय समयाः शिताः ।
शतशो रचितावीरैः शतघ्न्यो रक्षसां गणैः ॥१३॥

अर्थ-लङ्कापुरी हर्षित राक्षसों, मत्त हाथियों तथा अनेक रथों से पूर्ण और राक्षसों के गणों से सेवित है, उस लङ्कापुरी के चारो ओर चार बड़े द्वार हैं जिनमें परिघ=अरगल तथा जंज़ीर सहित बड़ी दृढ़ किवाड़ें लगी हुई हैं, और उन किवाड़ों में बड़े २ महान् यन्त्र लगे हुए हैं जिनसे आई हुई शत्रु की सेना रुकजाती है, और उन्हीं फाटकों के सन्मुख संस्कृत=बड़ी स्वच्छ भयङ्कर सैंकड़ों शतघ्नी=तोपें धरी हैं जिनको राक्षसों ने यथावस्थित टिकाया है ॥

सौवर्णस्तु महांस्तस्याः प्रकारो दुष्प्रधर्षणः ।
मणि विद्रुमवैदूर्य मुक्ता विरचितां तरः ॥१४॥

सर्वतश्च महाभीमाः शीततोया महाशुभाः ।
आगाधा ग्राहवत्यश्च परिखा मीन सेविताः ॥१५॥
द्वारेषु तासां चत्वारः संक्रमाः परमायताः ।
यंत्रैरुपेता बहुभिर्महद्भिर्गृह पंक्तिभिः ॥१६॥

अर्थ—उस लङ्का का मणि, मूंगा, वैदूर्य्यमणि तथा मोती जटित और सुवर्ण की चित्रकारी वाला बड़ा भारी परकोटा है जिसके पार जाना बड़ा दुस्तर है, और उसके चारो ओर अथाह शीतल जल भरा हुआ है जिसमें बड़े २ घड़ियाल मगर मच्छ हैं और जिसकी खाई मछलियों से सेवित है, उन चारो द्वारों से आने जाने के लिये बड़े २ पुल बने हुए हैं जिनके ऊपर अनेक अस्त्र शस्त्र धरे हैं और युद्ध के उपयोगी बहुत से मकान इधर उधर बने हैं जिन पर मारू तोपें लगी हुई हैं ॥

त्रायंते संक्रमास्तत्र परसैन्या गते सति ।
यंत्रैस्तैरवकीर्यन्ते परिखाः सुसमंततः ॥१७॥
एकस्त्वकंप्यो बलवान्संक्रमः सुमहाहढः ।
कांचनैर्बहुभिःस्तंभैर्वेदिकाभिश्च शोभितः ॥१८॥

अर्थ—जब शत्रु की सेना दैव २ करके वहां फाटकों के सामने पहुंच पुलों पर चढ़ती है तो उनमें ऐसे यन्त्र लगे हुए हैं जिनसे वह सेना खाई में गिर पड़ती है,इस प्रकार वह संक्रम=पुल लङ्कापुरी की रक्षा करते हैं. इनके अतिरिक्त एक बड़ा दृढ़ पुल सुवर्ण भूषितखम्भों तथा वेदियों से सुशोभित बना है यह किसी तरह भी शत्रु की सेना से कम्पायमान नहीं होसक्ता, "इसी मार्ग द्वारा रावण आता जाता है" ॥

स्वयं प्रकृतिमापन्नो युयुत्सू राम रावणः ।
उत्थितश्चाप्रमत्तश्च बलानामनुदर्शने ॥ १९ ॥

अर्थ—हे राम ! यद्यपि रावण स्वयं व्यसनों में प्रवृत्त रहता है परन्तु युद्ध के लिये सदा कटिबद्ध रहता और दूसरे की सेना को देखते ही सावधान होकर लड़ने को तैयार होजाता है ॥

श्रुत्वा हनूमतो वाक्यं यथावदनुपूर्वशः ।
ततोऽब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः ॥ २० ॥
यन्निवेदयसे लङ्कां पुरीं भीमस्य रक्षसः ।
क्षिप्रमेनां वधिष्यामि सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥२१॥

अर्थ—हनुमान के यथावत वचन सुनकर सत्य पराक्रम वाले महातेजस्वी राम फिर बोले कि हे हनुमन ! भयङ्कर कर्मों वाले राक्षस की लङ्कापुरी को विध्वंस करके शीघ्र ही रावण का वध करेंगे, यह मैं तुमसे सत्य ही कहता हूं ॥

अस्मिन्मुहूर्ते सुग्रीव प्रयाणमभिरोचय ।
युक्तो मुहूर्ते विजये प्राप्तो मध्यं दिवाकरः ॥२२॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! इसी समय चढ़ाई करने को तैयार होना चाहिये, सूर्य्य मध्य में होने से यही विजयकारक मुहूर्त्त अतिश्रेष्ठ है ॥

सीता श्रुत्वाभियानं मे आशामेष्यति जीविते ।
जीवितान्तेऽमृतं स्पृष्ट्वा पीत्वामृतमिवातुरः ॥२३॥

अर्थ—सीता मेरी चढ़ाई सुनकर जीवन की आशा धारेगी,

जैसे मरणकाल को प्राप्त हुआ रोगी अमृत का स्पर्श अथवा पीकर जीने की आशा बांध लेता है ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा सुग्रीवो वाहिनीपतिः ।
व्यादिदेश महावीर्यो वानरान्वानरर्षभः ॥ २४ ॥

अर्थ—राघव के उक्त वचन सुनकर वानरश्रेष्ठ महाबली सेनापति सुग्रीव ने सब वानरों को चढ़ाई की आज्ञा दी ॥

ततो वानरराजेन लक्ष्मणेन च पूजितः ।
जगाम रामो धर्मात्मा ससैन्यो दक्षिणां दिशम् ॥२५॥

अर्थ—तत्पश्चात सुग्रीव तथा लक्ष्मण से पूजित हुए राम ने सेनासहित दक्षिण दिशा को प्रस्थान किया ॥

हृष्टाः प्रमुदिताः सर्वे सुग्रीवेणाभिपालिताः ।
आप्लवंतः प्लवंतश्च गर्जन्तश्च प्लवंगमाः ॥ २६ ॥
क्ष्वेलंतो निनदंतश्च जग्मुर्वै दक्षिणां दिशम् ।
भक्षयन्तः सुगन्धीनि मधूनि च फलानि च ॥२७॥

अर्थ—परमप्रसन्न हुए सुग्रीव से पालित सब वानर कूदते फांदते, गर्जते, सुगन्धित मधुर फल खाते, खम ठोकते और सिंहनाद करते हुए दक्षिण दिशा को चले ॥

पुरस्तादृषभो नीलो वीरः कुमुद एव च ।
पन्थानं शोधयन्तिस्म वानरैर्बहुभिः सह ॥२८॥
मध्ये तु राजा सुग्रीवो रामो लक्ष्मण एव च ।
बलिभिर्बहुभिर्भीमैर्वृतः शत्रुनिबर्हणः ॥ २९ ॥

अर्थ—आगे २ वीर ऋषभ, नील तथा कुमुद यह बहुत से वानरों के साथ मार्ग को शोधते=साफ करते हुए जाते थे, और मध्य में राजा सुग्रीव तथा शत्रुओं के हनन करने वाले राम लक्ष्मण अनेक भयङ्कर बलवान् योद्धाओं से युक्त हुए जाते थे ॥

ततः पादपसम्बाधं नानावनसमायुतम् ।
सह्यपर्वतमासाद्य वानरास्ते समारुहन् ॥ ३० ॥
काननानि विचित्राणि नदी प्रस्रवणानि च ।
पश्यन्नपि ययौ राम सह्यस्य मलयस्य च ॥ ३१ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् वृक्षसमूह से भरे हुए नाना वनों से युक्त सह्य पर्वत को प्राप्त होकर वह वानर उस पर चढ़गये, सह्य तथा मलयागिरि के विचित्र वनों और नदियों के झरनों को देखते हुए राम आगे गये ॥

महेन्द्रमथ संप्राप्य रामो राजीवलोचनः ।
आरुरोह महाबाहुः शिखरं द्रुमभूषितम् ॥ ३२ ॥
ततः शिखरमारुह्य रामो दशरथात्मजः ।
कूर्ममीन समाकीर्णमपश्यत्सलिलाकुलम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—तदनन्तर महाबाहु कमलनेत्र राम अनेक वृक्षों से भूषित महेन्द्रपर्वत पर पहुंच उसके शिखर पर चढ़गये, और वहां चढ़कर दशरथसुत राम ने कूर्म तथा मछलियों से पूर्ण जल से भरे हुए समुद्र के दर्शन किये ॥

ते सह्यं समतिक्रम्य मलयं च महागिरिम् ।
आसेदुरानुपूर्व्येण समुद्रं भीमनिःस्वनम् ॥ ३४ ॥

अर्थ–तब वह सब महापर्वत सह्य तथा मलयागिरी को क्रमशः लांघकर भयङ्कर ध्वनि वाले समुद्र पर पहुंचे ॥

अथ धौतोपलतलां तोयौघैः सरसोत्थितैः ।
वेलामासाद्य विपुलां रामो वचनमब्रवीत् ॥३५॥

अर्थ–तत्पश्चात् समुद्र से उठे जलप्रवाहों द्वारा धोई हुई शिलाओं वाले विशाल समुद्र तट पर पहुंचकर राम यह वचन बोले कि:—

एते वयमनुप्राप्ताः सुग्रीव वरुणालयम् ।
इहेदानीं विचिन्ता सा या नः पूर्वमुपस्थिता॥३६॥
अतः परमतीरोयं सागरः सरितांपतिः ।
नचायमनुपायेन शक्यस्तरितुमर्णवः ॥ ३७ ॥
यदिहैव निवेशोऽस्तु मन्त्रः प्रस्तूयतामिह ।
यथेदं वानरबलं परं पारमवाप्नुयात् ॥ ३८ ॥

अर्थ–हे सुग्रीव ! अब समुद्र पर पहुंचकर यहां भी फिर वही पहली चिन्ता हमारे सन्मुख है, क्योंकि यहां से आगे अब समुद्र ही समुद्र है सो विना किसी उपाय के इसको किसी प्रकार भी नहीं लांघ सक्ते. अब यहां ही छावनी डालकर विचारपूर्वक कोई ऐसा उपाय कीजिये जिससे यह सब वानरसेना समुद्र पार होजाय ॥

स्वां स्वां सेनां समुत्सृज्य मा च कश्चित्कुतो व्रजेत् ।
गच्छन्तु वानराः शूराः ज्ञेयं छन्नं भयं च नः ॥३९॥

अर्थ–अपनी २ सेना को छोड़कर कोई कहीं न जाय और सब शूरवीर वानर गुप्त भय का पता लगाते रहें ॥

रामस्य वचनं श्रुत्वा सुग्रीवः सह लक्ष्मणः ।
सेनां निवेशयत्तीरे सागरस्य द्रुमायुते ॥४०॥
विरराज समीपस्थं सागरस्य च तद्बलम् ।
मधुपाण्डुजलः श्रीमान्द्वितीय इव सागरः ॥४१॥

अर्थ–राम की आज्ञानुसार सुग्रीव और लक्ष्मण ने वृक्षों से भरे हुए सागरतीर पर सेना को टिका दिया, सागर के समीप टिकी हुई सेना ऐसी शोभायमान लगती थी कि मानो मधु के से पीले रङ्ग वाला दूसरा शोभाशाली सागर है ॥

दूरपारमसम्बाधं रक्षोगण निषेवितम् ।
पश्यन्तो वरुणावासं निषेदुर्हरियूथपाः ॥४२॥
हसन्तमिव फेनौघैर्नृत्यन्तमिवचोर्मिभिः ।
चन्द्रोदये समुद्भूतं प्रतिचन्द्रसमाकुलम् ॥४३॥

अर्थ–दूर किनारे वाले, अथाह तथा राक्षसगणों से सेवित सागर को देखते हुए सब वानरसेनापति वहां टिक गये, जो सागर मानो अपने फेनसमूह से हंसता, लहरों से नाचता और चन्द्रमा के उदय होने पर लहर २ में पड़ते हुए चन्द्रप्रतिबिम्बों से भरा हुआ प्रतीत होता था ॥

सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
सागरं चाम्बरं चेति निर्विशेषमदृश्यत ॥४४॥
संपृक्तं नभसाप्यम्भः संपृक्तं च नभोऽम्भसा ।
तादृग्रूपेस्म दृश्येते तारा रत्न समाकुले ॥४५॥

अर्थ–समुद्र आकाश के समान तथा आकाश समुद्र के

समान होने से समुद्र और आकाश निर्विशेष=एक जैसे दीखते थे, समुद्र का जल आकाश के प्रतिविम्ब से मिला हुआ और आकाश ऊंची लहरों के जल से मिला हुआ प्रतीत होने के कारण दोनों तारे और रत्नों से भरे हुए एक जैसे रूप वाले प्रतीत होते थे॥

समुत्पतितमेघस्य वीचिमाला कुलस्य च ।
विशेषो न द्वयोरासीत्सागरस्याम्बरस्य च ॥४६॥

अर्थ--आकाश मेघमाला से भरा हुआ और समुद्र तरङ्ग रूप माला से भरा हुआ होने के कारण दोनों में विशेष अन्तर न था॥

रत्नौघ जलसन्नादं विषक्तमिव वायुना ।
उत्पतंतामिव क्रुद्धंयादोगण समाकुलम् ॥४७॥
ददृशुस्ते महात्मानो वाताहत जलाशयम् ।
अनिलोद्धूतमाकाशे प्रलपंतमिवोर्मिभिः ॥४८॥
ततो विस्मयमापन्ना हरयो ददृशुःस्थिताः ।
भ्रान्तोर्मि जालसन्नादं प्रलोलमिव सागरम् ॥४९॥

अर्थ-रत्नों की कान समुद्र वायु से प्रेरित हो जलसमूह को उछालता हुआ इसप्रकार भयङ्कर नाद कर रहा था कि मानो क्रुद्ध हुआ कुछ बोल रहा है, और बड़ी २ लहरों के उठने से मानो आकाश से बातें करता है, ऐसा समुद्र महात्मा वानरों ने देखा, नाना प्रकार की लहरों वाले ऐसे चञ्चल सागर को देखकर सब वानरसेना विस्मय को प्राप्त होगई ॥

इति द्वितीयः सर्गः

अथ तृतीयः सर्गः

सं०—अब रावण का राक्षसों के साथ विचार कथन करते हैं :—

लङ्कायां तु कृतं कर्म घोरं दृष्ट्वा भयावहम् ।
राक्षसेन्द्रो हनुमता शक्रेणेव महात्मना ।
अब्रवीद्राक्षसान्सर्वान् ह्रिया किंचिदवाङ्मुखः ॥१॥

अर्थ—लङ्का में इन्द्र तुल्य महात्मा हनुमान् के किये हुए भयप्रद घोर कर्म को देखकर राक्षसेन्द्र रावण लज्जा से कुछ नीचा मुख करके राक्षसों से बोला कि :—

किं करिष्यामि भद्रं वः किं वो युक्तमनन्तरम् ।
उच्यतां नः समर्थं यत्कृतं च सुकृतं भवेत् ॥२॥
मन्त्रमूलं च विजयं प्रवदन्ति मनस्विनः ।
तस्माद्वै रोचये मन्त्रं रामप्रति महाबलाः ॥३॥

अर्थ—आपका कल्याण हो, आप यह बतलावें कि अब हमारा क्या कर्तव्य है, जिसके करने में हम समर्थ हों वही उत्तम कार्य करना चाहिये, हे महाबली राक्षसो ! मननशील पुरुष कहते हैं कि विजय का मूल सम्मति से कार्य्य करना है इसलिये राम के विषय में सम्मति करके कार्य्य करना ही उचित प्रतीत होता है ॥

त्रिविधाः पुरुषा लोके उत्तमाधममध्यमाः ।
तेषां तु समवेतानां गुणदोषौ वदाम्यहम् ॥ ४ ॥

अर्थ—लोक में उत्तम, मध्यम तथा अधम तीन प्रकार के पुरुष होते हैं उन सब के गुण दोष मैं आपसे कहता हूं ॥

मंत्रैस्त्रिभिर्हि संयुक्तः समर्थैर्मन्त्रनिर्णये ।
मित्रैर्वापि समानार्थैर्बान्धवैरपिवाधिकैः ॥५॥
सहितो मन्त्रयित्वा यः कर्मारंभान्प्रवर्तयेत् ।
दैवे च कुरुते यत्नं तमाहुः पुरुषोत्तमम् ॥६॥

अर्थ—जो पुरुष समर्थ हितकारी मन्त्रियों, मित्रों तथा समान अर्थ वाले बान्धवों से सम्मति करके अपना कार्य्यारम्भ करता तथा परमात्मपरायण होकर यत्न करता है उसको उत्तम पुरुष कहते हैं ॥

एकोर्थं विमृशेदेको धर्मे प्रकुरुते मनः ।
एकः कार्याणि कुरुते तमाहुर्मध्यमं नरम् ॥७॥

अर्थ—जो अकेला ही विचार करता, धर्म में मति करता और अकेला ही कार्य्य करता है उसको मध्यम पुरुष कहते हैं ॥

गुणदोषौ न निश्चित्य त्यक्त्वा दैव व्यपाश्रयम् ।
करिष्यामीति यः कार्यमुपेक्षेत्स नराधमः ॥८॥

अर्थ—गुण दोषों का विचार न करके दैवबल का भी निरादर करता हुआ जो अपने आपही विचार कर उपेक्षा बुद्धि से कार्य्य करता है वह अधम पुरुष कहाता है ॥

तस्मात्सुमंत्रितं साधु भवन्तो मतिसत्तमाः ।
कार्यं संप्रतिपद्यंतामेतत्कृत्यं मतं मम ॥ ९ ॥
वानराणां हि धीराणां सहस्रैः परिवारितः ।
रामोऽभ्येति पुरीं लङ्कामस्माकमुपरोधकः ॥ १० ॥

अर्थ—इसलिये आप सब श्रेष्ठ बुद्धिमान् पुरुष मुझको उत्तम सम्मति दें कि इस समय मेरा क्या कर्तव्य है, क्योंकि बहुत से धीर वानरों की बड़ी सेना से घिरा हुआ राम हमारे शासन करने के लिये लङ्का की ओर आरहा है ॥

तरिष्यति च सुव्यक्तं राघवः सागरं सुखम् ।
तरसायुक्तरूपेण सानुजः सबलानुजः ॥ ११ ॥

अर्थ—और यह स्पष्ट दिखाई देता है कि राम अपने भाई, मन्त्री तथा सेनासहित सुखपूर्वक समुद्र पार होजायगा ॥

तस्मिन्नेवंविधे कार्ये विरुद्धे वानरैः सह ।
हितं पुरे च सैन्ये च सर्वं संमन्त्र्यतां मम ॥१२॥

अर्थ—सो वानरों के साथ विरोध होने से ऐसे विरुद्ध कार्य्य के उपस्थित होने पर मेरे पुर तथा सेना के विषय में आप सब हित विचारें ॥

इत्युक्ता राक्षसेन्द्रेण राक्षसास्ते महाबलाः ।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे रावणं राक्षसेश्वरम् ॥ १३ ॥

अर्थ—राक्षसेन्द्र के उक्त वचन सुनकर सब महाबली राक्षस हाथ जोड़कर रावण से बोले कि :—

सुमहन्नो बलं कस्माद्विषादं भजते भवान् ।
त्वया भोगवतीं गत्वा निर्जिताः पन्नगा युधि ॥१४॥
विनिपात्य च यक्षौघान्विक्षोभ्य विनिगृह्य च ।
त्वया कैलास शिखराद्विमानमिदमाहृतम् ॥१५॥
मयेन दानवेन्द्रेण त्वद्भयात्सख्यमिच्छता ।
दुहिता तव भार्यार्थे दत्ता राक्षसपुंगव ॥ १६ ॥

अर्थ—हे राजन् ! आप उदास न हों हमारी सेना का बल बहुत बड़ा है आपने तो भोगवती में जाकर नाग * जीते हैं " फिर इनका क्या भय " आपतो यक्षों के समूह को गिराकर, हिलाकर और जीतकर कैलास की चोटी से विमान लाये हैं, दानवराज ने आपसे भयभीत होकर मैत्री की इच्छा से आपकी पत्नी होने के लिये अपनी कन्या दी है ॥

शूराश्च बलवंतश्च वरुणस्य सुतारणे ।
निर्जितास्ते महाभाग चतुर्विधबलानुगाः ॥१७॥
क्षत्रियैर्बहुभिर्वीरैः शक्रतुल्य पराक्रमैः ।
आसीद्वसुमती पूर्णा महद्भिरिव पादपैः ॥ १८ ॥

अर्थ—हे महाभाग ! शूरवीर, बड़े बलवान् वरुण राजा के पुत्रों को आपने रण में जीता जिनके साथ चतुरंगिणी सेना थी, इन्द्रतुल्य पराक्रमी बड़े शूरवीर अनेक क्षत्रिय जिनमें बड़े वृक्षों के समान यह पृथिवी पूर्ण थी, "उनको भी आपने रण में जय किया" ॥

---

* वानर की न्याईं नाग भी एक जाति का नाम है ॥

तेषां वीर्यगुणोत्साहैर्न समो राघवो रणे ।
प्रसह्य ते त्वया राजन् हताः समरदुर्जयाः ॥ १९ ॥
तिष्ठ वा किं महाराज श्रमेण तव वानरान् ।
अयमेको महाराज इन्द्रजित् क्षपयिष्यति ॥ २० ॥

अर्थ–हे राजन् ! राम रण में उनके वीर्य्य तथा उत्साह के तुल्य नहीं जो आपने युद्ध में दुर्जय लोग बल से जीते हैं, हे महाराज ! आप ठहरे रहें आपको श्रम से क्या, यह अकेला इन्द्रजित् ही सारे वानरों को मार भगायेगा ॥

राजान्नापदयुक्तेयमागता प्राकृताञ्जनात् ।
हृदिनैव त्वया कार्य्या त्वं वधिष्यसि राघवम् ॥२१॥

अर्थ–हे राजन् ! यह एक प्राकृतजन के समान अनुचित विपत्ति आप अपने मन में न रखें, आप अवश्य राघव सहित सबका बध करेंगे ॥

इति तृतीयः सर्गः

अथ चतुर्थः सर्गः

सं०–अब विभीषण की रावण को सम्मति कथन करते हैं:—

तान्गृहीतायुधान्सर्वान्वारयित्वा विभीषणः ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं पुनः प्रत्युपवेश्य तान् ॥१॥

अर्थ-शस्त्र पकड़कर तैयार हुए उन सब को रोक तथा बिठलाकर विभीषण बोला कि :—

अप्युपायैस्त्रिभिस्तात योऽर्थः प्राप्तुं न शक्यते ।
तस्य विक्रमकालांस्तान्युक्तानाहुर्मनीषिणः ॥२॥
प्रमत्तेष्वभियुक्तेषु दैवेन प्रहतेषु च ।
विक्रमास्तात सिध्यन्ति परीक्षा विधिना कृताः॥३॥

अर्थ-हे तात ! जो काम "साम, दान, दण्ड" इन तीन उपायों से न होसके वहां बुद्धिमान् पुरुष पराक्रम दिखलाने का समय कथन करते हैं, प्रमादी और दैव से हत हुए शत्रुओं में पराक्रम फल वाला होता है यह विधि से परीक्षा कीहुई बात है ॥

अप्रमत्तं कथं तं तु विजिगीषुं बले स्थितम् ।
जितरोषं दुराधर्षं तं धर्षयितुमिच्छथ ॥ ४ ॥
समुद्रं लंघयित्वा तु घोरं नदनदीपतिम् ।
गतिं हनूमतो लोके को विद्यात्तर्कयेत वा ॥५॥

अर्थ-परन्तु आप लोग कैसे उस अप्रमादी, बल में स्थित, जयशील, क्रोध को जीते हुए दुर्धर्ष के जय की इच्छा करते हैं, भयङ्कर नद नदियों के पति समुद्र को लंघकर हनुमान् का यहां आना लोक में कौन जानसक्ता अथवा ख्याल करसक्ता था ॥

बलान्यपरिमेयानि वीर्याणि च निशाचराः ।
परेषां सहसावज्ञा न कर्तव्या कथंचन ॥ ६ ॥

नतु क्षमं वीर्यवता तेन धर्मानुवर्तिना ।
वैरं निरर्थकं कर्तुं दीयतामस्य मैथिली ॥ ७ ॥

अर्थ–हे राक्षसो ! शत्रुओं के बल तथा वीर्य भी अपरिमेय=तुलना से अधिक हैं, सो आप लोगों को किसी प्रकार भी उनकी एकाएक अवज्ञा नहीं करनी चाहिये, उस बलवान् तथा धर्मानुयायी राम के साथ निरर्थक वैर करना ठीक नहीं, इसलिये उसको सीता का देदेना ही उचित है ॥

प्रसादये त्वां बन्धुत्वात् कुरुष्व वचनं मम ।
हितं तथ्यं त्वहं ब्रूमि दीयतामस्य मैथिली ॥८॥

अर्थ–भाई होने से आपको प्रसन्न करता हुआ कहता हूं, आप मेरा कहा मानिये, मैं हितकर और सत्य कहता हूं सीता राम को देदीजिये ॥

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
विसर्जयित्वा तान्सर्वान् प्रविवेश स्वकं गृहम् ॥९॥

अर्थ–विभीषण के उक्त वचन सुनकर राक्षसेश्वर रावण उन सबको विसर्जन करके अपने गृह को चलागया ॥

ततः प्रत्युषसि प्राप्ते भीमकर्मा विभीषणः ।
अग्रजस्यालयं वीरः प्रविवेश महाद्युतिः ॥१०॥
स पूज्यमानो रक्षोभिर्दीप्यमानं स्वतेजसा ।
आसनस्थं महाबाहुर्ववन्देधनदानुजम् ॥११॥
स रावणं महात्मानं विजने मन्त्रिसंनिधौ ।
उवाच हितमत्यर्थं वचनं हेतु निश्चितम् ॥१२॥

अर्थ–दूसरे दिन प्रभात समय बड़े कर्मों वाला महातेजस्वी बीर विभीषण बड़े भाई रावण के घरगया, और राक्षसों से पूजित उस महाबाहु विभीषण ने अपने तेज से देदीप्यमान् तथा आसन पर बैठे हुए रावण को प्रणाम कर एकान्त में मन्त्रियों के सन्मुख उसने महात्मा रावण को कारणसहित अति हितकारी उपदेश किया कि :—

रोचये वीर वैदेही राघवाय प्रदीयताम् ।
प्रापणे चास्य मन्त्रस्य निवृत्ताः सर्वमन्त्रिणः ॥१३॥
अवश्यं च मया वाच्यं यद्दृष्टमथवा श्रुतम् ।
संविधाय यथान्यायं तद्भवान्कर्तुमर्हति ॥१४॥

अर्थ–हे बीर ! मुझको यही रुचता है कि आप सीता राम को देदें, और इस मन्त्र=पथ्यवचन को आप तक पहुंचाने में सब मन्त्री रुकते हैं, परन्तु मुझे अवश्य कहना चाहिये, सो मैंने जैसा समझा वा सुना "वह आपके प्रति निवेदन कर दिया है अब आप जैसा उचित समझें करें" ॥

हितं महार्थं मृदुहेतुसंहितं व्यतीतकाला-
यतिसंप्रति क्षयम् । निशम्य तद्वाक्यमुप-
स्थितज्वरः प्रसङ्गवानुत्तरमेतदब्रवीत् ॥१५॥

अर्थ–इस गम्भीर अर्थ वाले नर्म हेतुओं से युक्त तथा भूत, भविष्यत, वर्त्तमान में उत्तम फल वाले हितकर बचन को सुनकर विषयासक्त रावण ने क्रोधित होकर यह उत्तर दिया कि:—

भयं न पश्यामि कुतश्चिदप्यहं न राघवः

प्राप्स्यति जातु मैथिलीम् । सुरैः महेन्द्रैरपि संगरे कथं ममाग्रतः स्थास्यति लक्ष्मणाग्रजः ॥१६॥

अर्थ—मैं किसी से भय नहीं देखता, राम सीता को कभी नहीं प्राप्त होगा, युद्ध में इन्द्रसहित देवताओं के साथ भी राम मेरे सन्मुख खड़ा नहीं होसक्ता ॥

इत्येवमुक्त्वासुरसैन्यनाशनो महाबलः संयति चण्डविक्रमः । दशाननो भ्रातरमाप्तवादिनं विसर्जयामास तदा विभीषणम् ॥ १७ ॥

अर्थ—यह कहकर देवताओं की सेना के नाशक, रण में प्रचण्ड पराक्रम वाले महाबली रावण ने सत्यवादी भाई विभीषण को विसर्जन किया ॥

इति चतुर्थः सर्गः

अथ पञ्चमः सर्गः

सं०—अब रावण का सभा करना और उस राजसभा में राजा तथा मन्त्रियों का विचार कथन करते हैं:—

स बभूव कृशो राजा मैथिली काममोहितः ।
अतीव कामसम्पन्नो वैदेहीमनुचिन्तयन् ॥१॥
अतीतसमये काले तस्मिन्वै युधि रावणः ।
आमात्यैश्च सुहृद्भिश्च प्राप्तकालममन्यत ॥२॥

अर्थ—वह सीता की कामना से मोहित हुआ राजा अति दुर्बल तथा अत्यन्त काम सम्पन्न हुआ २ सीता का ही चिन्तन करता था, परन्तु अब समय बीत जाने पर रावण ने युद्ध के लिये मन्त्री और अन्य सुहृदों से सम्मति करना उचित समझा ॥

स हेमजालविततं मणिविद्रुमभूषितम् ।
उपगम्य विनीताश्वमारुरोह महारथम् ॥ ३ ॥
तमास्थाय रथश्रेष्ठं महामेघसमस्वनम् ।
प्रययौ रक्षसां श्रेष्ठो दशग्रीवः सभां प्रति ॥४॥

अर्थ—तदनन्तर वह रावण सुवर्ण की जालियों वाले मणि तथा मूंगों से भूषित सधे हुए घोड़ों वाले महारथ पर आकर सवार हुआ, और बड़े मेघतुल्य ध्वनिवाले उस रथ पर चढ़कर सभा की ओर गया ॥

असिचर्मधरा योधाः सर्वायुधधरास्ततः ।
राक्षसा राक्षसेन्द्रस्य पुरस्तात्संप्रतस्थिरे ॥५॥
नाना विकृतवेषाश्च नानाभूषणभूषिताः ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैनं परिवार्य ययुस्तदा ॥६॥

अर्थ—और ढ़ाल, तलवार तथा सारे शस्त्रों से सजे हुए राक्षस योद्धा रावण के आगे २ तथा अनेक प्रकार के अलग २ वेषों वाले नाना भूषणों से भूषित योद्धा उसको पार्श्वों और पीछे से घेरकर चले ॥

ते कृतांजलयः सर्वे रथस्थं पृथिवीस्थिताः ।
राक्षसाराक्षसश्रेष्ठं शिरोभिस्तं ववंदिरे ॥७॥

राक्षसैः स्तूयमानः सञ्जयाशीर्भिररिंदमः ।

आससाद महातेजाः सभां विरचितां तदा ॥८॥

अर्थ—रथ पर चढ़े हुए रावण को मार्ग में स्थित सब राक्षस पृथिवी पर झुक २ शिर से प्रणाम कर हाथ जोड़ खड़े होजाते थे, वह राजा रावण उन राक्षसों से जय के आशीर्वाद लेता हुआ शत्रुओं का दमन करने वाला महातेजस्वी उस सजी हुई सभा में आया ॥

समानयत मे क्षिप्रमिहैतान् राक्षसानिति ।

कृतमस्तिमहज्ज्ञाने कर्तव्यमिति शत्रुभिः ॥ ९ ॥

राक्षसास्तद्वचः श्रुत्वा लङ्कायां परिचक्रमुः ॥१०॥

ते रथान्तचरा एके दृप्तानेके दृढान्हयान् ।

नागानेकेऽधिरुरुहुर्जग्मुश्चैके पदातयः ॥ ११ ॥

ते वाहनान्यवस्थाय यानानि विविधानि च ।

सभां पद्भिः प्रविविशुः सिंहागिरि गुहामिव ॥१२॥

अर्थ—और बैठकर आज्ञा दी कि अन्य प्रसिद्ध २ राक्षसों को भी यहां शीघ्र ही बुलालाओ, क्योंकि शत्रुओं के साथ भारी युद्ध होना है जिसको हम भले प्रकार जानते हैं, राजा की आज्ञा पाते ही परिचारक लङ्का में राक्षसों को बुलाने गये, तब वह राक्षस निमन्त्रित हुए कोई रथों पर, कोई चञ्चल पुष्ट घोड़ों पर, कोई हाथियों पर और कोई पैदल ही चल दिये, और वह सब सभामण्डप के द्वार पर पहुंच अपनी २ सवारियां छोड़ सब पैदल ही सभा में प्रविष्ट हुए, जैसे सिंह पर्वत की गुहा में प्रवेश करते हैं ॥

राज्ञः पादौ गृहीत्वा तु राज्ञा ते प्रतिपूजिताः ।
पीठेष्वन्ये वृसीष्वन्ये भूमौ केचिदुपाविशन् ॥१३॥
ते समेत्य सभायां वै राक्षसा राजशासनात् ।
यथार्हमुपतस्थुस्ते रावणं राक्षसाधिपम् ॥ १४ ॥

अर्थ—सभा में पहुंच सब ने राजा के चरणों की बन्दना की और वह सब राजा से सत्कारित हुए कोई कुरसी, कोई आसन, कोई विस्तर और कुछेक भूमि पर ही बैठगये, वह सब राजशासन से यथायोग्य स्थान पर बैठने के अनन्तर सब एक मन हो राक्षसाधिपति रावण की स्तुति करने लगे ॥

मन्त्रिणश्च यथा मुख्या निश्चितार्थेषुपण्डिताः ।
अमात्याश्च गुणोपेताः सर्वज्ञा बुद्धिदर्शनाः॥१५॥
समीयुस्तत्र शतशः शूराश्च बहवस्तथा ।
सभायां हेमवर्णायां सर्वार्थस्य सुखाय वै ॥ १६ ॥

अर्थ—इस प्रकार विविध निश्चित विषयों में निपुण मन्त्री गण, सर्वज्ञ=सब विषयों को जानने वाला बहुदर्शी अमात्य=प्राइवेट मन्त्री, और सैकड़ों अन्य शूरवीर उस सभा में सब विषयों को सोचकर सुखपूर्वक कार्य्य करने के लिये एकत्रित हुए ॥

ततो महात्मा विपुलं सुयुग्यं रथं वरं
हेमविचित्रिताङ्गम् । शुभ्रं समास्थाय ययौ
यशस्वी विभीषणः संसदमग्रजस्य ॥१७॥

अर्थ—तदनन्तर महात्मा विभीषण सुवर्ण से चित्रित तथा उत्तम घोड़ों वाले शुभ रथ पर चढ़कर बड़े भाई की सभा में आये ॥

स पूर्वजायावरजः शशंस नामाथ
पश्चाच्चरणौ ववंदे । शुकः प्रहस्तश्च
तथैव तेभ्यो ददौ यथार्हं पृथगासनानि॥१८॥

अर्थ—और बड़े भाई रावण से प्रथम अपना नाम कह फिर प्रणाम किया, इसी प्रकार शुक तथा प्रहस्त नामा मन्त्रियों ने भी किया, तब रावण ने सबको पृथक् २ बैठने के लिये आसन दिये॥

नचुक्रुशुर्नानृतमाह कश्चित्सभासदो नापि
जजल्पुरुच्चैः । सं सिद्धार्थाःसर्व एवोग्र
वीर्या भर्तुः सर्वे ददृशुश्चाननन्ते ॥१९॥

अर्थ—वह सब सभासद अर्थसिद्धि में कुशल, उग्रपराक्रम वाले, अपने स्वामी के मुख की ओर ताकते थे, सभा में कोई शोर गुल न था और वहां पर न कोई झूठ बोलता था॥

स तां परिषदं कृत्स्नां समीक्ष्य समितिंजयः ।
प्रबोधयामास तदा प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥२०॥
सेनापते यथा ते स्युः कृतविद्याश्चतुर्विधाः ।
योधा नगररक्षायां तथा व्यादेष्टुमर्हसि ॥ २१ ॥
ततो विनिक्षिप्य बलं सर्वं नगरगुप्तये ।
प्रहस्तः प्रमुखे राज्ञो निषसाद जगाद च ॥२२॥

अर्थ—तदनन्तर रणों के जीतने वाले महाराजा रावण ने उस भरी सभा की ओर देखकर सेनापति प्रहस्त को आज्ञा दी कि हे सेनापते ! "पैदल, घुड़सवार, हाथीसवार और रथसवार" इन चारो प्रकार के सुशिक्षित योद्धाओं को नगर की रक्षा में तत्पर

करो, तब वह सारी सेना नगर की रक्षा के लिये पृथक् स्थित करके फिर प्रहस्त राजा के सन्मुख बैठकर बोला कि :—

विहितं बहिरन्तश्च बलं बलवतस्तव ।
कुरुष्वाविमनाः क्षिप्रं यदभिप्रेतमस्तिते ॥ २३ ॥
प्रहस्तस्य वचः श्रुत्वा राजा राज्यहितैषिणः ।
सुखेप्सुः सुहृदां मध्ये व्याजहार स रावणः ॥२४॥
प्रियाप्रिये सुखे दुःखे लाभालाभे हिताहिते ।
धर्मकामार्थकृच्छ्रेषु यूयमर्हथ वेदितुम् ॥ २५ ॥

अर्थ—हे सेना के स्वामी ! आपकी सब सेना बाहर भीतर स्थित करदी है, अब आप निश्चिन्त होकर अपना अभीष्ट प्रसन्न मन होकर करें, राज्य के हितैषी प्रहस्त के उक्त बचन सुनकर सुखाभिलाषी रावण सब सुहृदों के मध्य में बोला कि धर्म, अर्थ तथा काम विषय में कुछ कठिनता आपड़ने पर प्रिय, अप्रिय, सुख, दुःख, लाभ, हानि और हित, अहित समझने में तुम लोग सर्वथा समर्थ हो ॥

सर्वकृत्यानि युष्माभिः समारब्धानि सर्वदा ।
मन्त्रकर्म नियुक्तानि न जातु विफलानि मे ॥२६॥
अदेया च यथा सीता वध्यौ दशरथात्मजौ ।
भवद्भिर्मन्त्र्यतां मन्त्रः सुनीतं चाभिधीयताम् ॥२७॥

अर्थ—आप लोगों ने सदा विचारपूर्वक मेरे सब कार्य्य आरम्भ किये हैं जो कभी फलहीन नहीं हुए अर्थात् उनका परिणाम बहुत अच्छा हुआ है, अब यह कर्तव्य है कि सीता

देनी नहीं और दशरथ के दोनों पुत्रों का हनन करना है सो इस विषय पर विचारपूर्वक सुनीति युक्त कहें ॥

तस्य कामपरीतस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णः प्रचुक्रोध वचनं चेदमब्रवीत् ॥२८॥
सर्वमेतन्महाराज कृतमप्रतिमं तव ।
विधीयेत सहास्माभिरादावेवास्य कर्मणः ॥२९॥

अर्थ—काम के वशीभूत हुए रावण का रोना सुनकर कुम्भकर्ण क्रोधित हो यह बचन बोला कि हे महाराज! यह सब आपके अतुल काम का फल है, पर इस कार्य्य की सम्मति=सलाह आपने हमारे साथ आरम्भ में ही करनी थी ॥

न्यायेन राजकार्याणि यः करोति दशानन ।
न स संतप्यते पश्चान्निश्चितार्थमतिर्नृपः ॥३०॥

अर्थ—हे रावण! जो न्यायपूर्वक राजकार्यों को करता है वह निश्चित मति वाला राजा पीछे सन्तप्त नहीं होता ॥

अनुपायेन कर्माणि विपरीतानि यानि च ।
क्रियमाणानि दुष्यन्ति हवींष्यप्रयतेष्विव ॥३१॥

अर्थ—बिना उपाय सोचे जितने काम किये जाते हैं वह सब उलटे तथा दूषित होजाते हैं, जैसे अशुद्ध हृदय वालों की हवियें निष्फल जाती हैं ॥

यः पश्चात्पूर्वकार्याणि कर्माण्यभिचिकीर्षति ।
पूर्वं चापरकार्याणि स न वेद नयानयौ ॥३२॥

अर्थ–जो पहले करने योग्य कर्मों को पीछे और पीछे करने वालों को पहले करना चाहता है वह नीति अनीति को नहीं जानता ॥

त्वयेदं महदारब्धं कार्यमप्रतिचिन्तितम् ।
अहं शमीकरिष्यामि हत्वा शत्रूंस्तवानघ ॥३३॥

अर्थ–हे निष्पाप ! आपने विना सोचे यह बहुत बड़ा कार्य्य प्रारम्भ कर दिया है, सो अब मैं तेरे शत्रुओं को मार कर इसे ठीक करूंगा ॥

रावणं क्रुद्धमाज्ञाय महापार्श्वो महाबलः ।
मुहूर्तमनुसंचिन्त्य प्राञ्जलिर्वाक्यमब्रवीत् ॥३४॥

अर्थ–कुम्भकर्ण के उक्त कथन से रावण को क्रुद्ध जानकर महाबली महापार्श्व कुछ काल सोच हाथ जोड़कर बोला कि :—

कुम्भकर्णः सहास्माभिरिन्द्रजिच्च महाबलः ।
प्रतिषेधयितुं शक्तौ सवज्रमपि वज्रिणम् ॥३५॥
इह प्राप्तान्वयं सर्वाञ्छत्रूंस्तव महाबल ।
वशं शस्त्रप्रतापेन करिष्यामो न संशयः ॥३६॥

अर्थ–हे राजन् ! महाबली कुम्भकर्ण तथा इन्द्रजित् हमें साथ लेकर वज्रवाले इन्द्र को भी रोकने में समर्थ हैं, सो हे महाबल ! यहां आये हुए आपके सारे शत्रुओं को हम लोग अस्त्र शस्त्रों के प्रताप से अवश्य बस कर लेंगे, इसमें संशय नहीं ॥

एवमुक्तस्तदा राजा महापार्श्वेन रावणः ।
तस्य संपूजयन्वाक्यमिदं वचनमब्रवीत् ॥२७॥

अर्थ—महापार्श्व के उक्त वचन सुनकर राजा रावण उसके वाक्य का सत्कार करता हुआ बोला किः—

न मत्तो निर्गतान्बाणान्द्विजिह्वान्पन्नगानिव ।
रामः पश्यति संग्रामे तेन मामभिगच्छति ॥३८॥
तच्चास्य बलमादास्ये बलेन महतावृतः ।
उदितः सविता काले नक्षत्राणां प्रभामिव ॥३९॥

अर्थ—रण में मेरी ओर से निकले दो जिह्वा वाले सांपों के तुल्य बाणों को राम न देखता हुआ मेरी ओर आरहा है, सो मैं बड़ी सेना से युक्त हुआ उसकी सेना का इस प्रकार नाश कर दूंगा, जैसे सूर्य्य अपने समय पर उदय होकर नक्षत्रों की प्रभा का नाश कर देता है ॥

इति पञ्चमः सर्गः

अथ षष्ठः सर्गः

सं०—अब विभीषण की सीता को वापिस देने की सम्मति कथन करते हैं :—

निशाचरेन्द्रस्य निशम्य वाक्यं स कुम्भ-

कर्णस्य च गर्जितानि। विभीषणो राक्षस-
राजमुख्यमुवाच वाक्यं हितमर्थयुक्तम्॥१॥

अर्थ–राक्षसेन्द्र रावण के वचन और कुम्भकर्ण की गर्जनाओं को सुनकर बिभीषण रावण का हितकर गम्भीर तात्पर्य्य वाला यह मुख्य वचन बोला किः—

वृतो हि वाह्वन्तरभोगराशिश्चिन्ताविषः
सुस्मिततीक्ष्णदंष्ट्रः। पंचांगुली पंचशिरोऽति-
कायः सीतामहाहिस्तव केन राजन् ॥२॥

अर्थ–हे राजन् ! यह सीता रूपी बड़ा सांप जिसकी छाती फण तुल्य, जिसकी ओर ध्यानपूर्वक देखना ही विष, जिसकी मुस-कराहट ही तीक्ष्ण दाढ़ें और पांच अंगुलियें पांच सिर हैं, सो हे रावण ! यह किस निमित्त आपने विषैला सर्प अपने हाथ में पकड़ा है ॥

यावन्न गृह्णन्ति शिरांसि बाणा रामेरिता
राक्षसपुंगवानाम्। वज्रोपमा वायुसमान
वेगाः प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली ॥३॥

अर्थ–हे राजन् ! जबतक राम से प्रेरे हुए वायु समान वेग वाले वज्र तुल्य बाण राक्षसों के सिरों को नहीं पकड़ते उससे प्रथम ही सीता राम को देदें, इसी में कल्याण है ॥

न कुम्भकर्णेन्द्रजितौ च राजंस्तथा महा-
पार्श्वमहोदरौ वा। निकुम्भकुम्भौ च तथा-
तिकायःस्थातुं समर्थायुधि राघवस्य ॥४॥

अर्थ–हे राजन् ! राम के सन्मुख समर में न कुम्भकर्ण, न मेघनाद, न महापार्श्व, न महोदर, न निकुम्भ, न कुम्भ और नाहीं अतिकाय ठहर सकेगा ॥

जीवंस्तु रामस्य न मोक्ष्यसे त्वं गुप्तं सवि-
त्राप्यथवामरुद्भिः । नवासवस्यांक गतो न
मृत्योर्नभो न पातालमनुप्रविष्टः ॥ ५ ॥

अर्थ–और इसका परिणाम यह होगा कि चाहे तुम्हारी रक्षा सूर्य्य करे, चाहे पवन करे पर तुम राम के बाण से जीवित नहीं रहसकते, यदि इन्द्र की गोद में जा बैठो वा मृत्यु के समीप ही जा छिपो अथवा आकाश, पाताल कहीं जाओ पर तुम राम से नहीं बचसक्के ॥

निशम्य वाक्यं तु विभीषणस्य ततः प्रहस्तो
वचनं बभाषे । न नोभयं विद्म न दैवते-
भ्यो न दानवेभ्योऽप्यथवा कदाचित् ॥ ६ ॥

अर्थ–विभीषण के उक्त वाक्य सुनकर प्रहस्त बोला कि हमको न देवता और न दानवों से कभी भय है ॥

कथंनु रामाद्भविता भयं नो नरेन्द्र
पुत्रात्समरे कदाचित् ॥ ७ ॥

अर्थ–फिर हमें नरेन्द्र पुत्र राम से रण में कैसे भय होसक्ता है ॥

प्रहस्त वाक्यं त्वहितं निशम्य विभीषणो

राजहितानुकांक्षी । ततो महार्थं बचनं
बभाषे धर्मार्थकामेषु निविष्टबुद्धिः ॥ ८ ॥

अर्थ—प्रहस्त के अहित वाक्य को सुनकर राजा का हित चाहने वाला तथा धर्म, अर्थ, काम में स्थित बुद्धि वाला विभीषण बड़े अर्थ वाला यह बचन बोला कि :—

वधस्तु रामस्य मया त्वया च प्रहस्त
सर्वैरपि राक्षसैर्वा । कथं भवेदर्थविशा-
रदस्य महार्णवं तर्तुमिवाप्लवस्य ॥९॥

अर्थ—हे प्रहस्त ! अपना कार्य्य करने में बड़े निपुण राम का बध बिना नौका से समुद्र तरने की भांति मुझसे, तुझसे अथवा सम्पूर्ण राक्षसों से कैसे होसक्ता है ॥

धर्मप्रधानस्य महारथस्य इक्ष्वाकुवंश
प्रवरस्य राज्ञः। पुरोऽस्य देवाश्च तथाविध-
स्य कृत्येषु शक्तस्य भवन्ति मूढाः ॥१०॥

अर्थ—धर्मप्रधान, महारथी, इक्ष्वाकुवंश में उत्पन्न तथा अपने कार्यों में शक्तिमान् राजा राम के सन्मुख देवता भी मूढ़ होजाते हैं॥

न रावणो नाति बलस्त्रि शीर्षो न कुम्भ-
कर्णस्य सुतो निकुम्भः । नचेन्द्रजिद्दाश
रथिं प्रवोढुं त्वं वारणे शक्र समं समर्थाः॥११॥

अर्थ–हे प्रहस्त ! इन्द्र से भी अधिक पराक्रमी राम को समर में जय करने के लिये न रावण, न त्रिशिरा, न कुम्भकर्ण का पुत्र निकुम्भ और नाही मेघनाद समर्थ है ॥

देवान्तको वापि नरान्तको वा तथातिकायो-
तिरथो महात्मा । अकम्पनश्चापि समान
सारः स्थातुं न शक्तायुधि राघवस्य ॥ १२ ॥

अर्थ–और नाही देवान्तक, नरान्तक, महात्मा अतिरथ, अतिकाय और उसी के समान अकम्पन, यह कोई भी राम के सन्मुख संग्राम में खड़े नहीं होसक्ते ॥

अयं च राजा व्यसनाभिभूतो मित्रैरमित्र
प्रतिमैर्भवद्भिः । अन्वास्यते राक्षसनाश-
नार्थे तीक्ष्णः प्रकृत्या ह्यसमीक्ष्यकारी॥१३॥

अर्थ–यह राजा व्यसनों में पड़ा हुआ, स्वभाव से तीक्ष्ण तथा बिना सोचे कार्य्य करने वाला है और तिस पर शत्रु तुल्य आप जैसे मित्र राक्षसों के नाशार्थ उसको सम्मति देरहे हैं ॥

इदं पुरस्यास्य स राक्षसस्य राज्ञश्च पथ्यं स
सुहृज्जनस्य । सम्यग्घि वाक्यं स्वमतं ब्रवीमि
नरेन्द्रपुत्राय ददातु मैथिलीम् ॥ १४ ॥

अर्थ–इस पुर, सुहृदजन तथा अन्य राक्षसों सहित राजा के लिये यह हितकर बचन अपना मत कहता हूं जो बड़ा पथ्य है कि सीता नरेन्द्र पुत्र राम को देदें ॥

परस्य वीर्यं स्वबलं च बुध्वा स्थानं क्षयं

चैव तथैव वृद्धिम्। तथा स्वपक्षेऽप्यनुमृश्य
बुद्ध्या वदेत्क्षमं स्वामिहितं स मन्त्री॥१५॥

अर्थ–शत्रु का बल, अपना बल, देश काल और वृद्धि यह सब बातें बुद्धि से सोचकर जो स्वामी के हितकर बचन कहे वही मन्त्री है॥

इति षष्ठः सर्गः

अथ सप्तमः सर्गः

सं०–अब विभीषण और इन्द्रजित्=मेघनाद का सम्वाद कथन करते हैं:—

बृहस्पतेस्तुल्यमतेर्वचस्तन्निशम्य यत्नेन
विभीषणस्य। ततो महात्मा वचनं बभा
षे तत्रेन्द्रजिन्नैर्ऋतयूथमुख्यः॥ १॥

अर्थ–बृहस्पति के तुल्य मति वाले विभीषण के बचन सुनकर राक्षससमूह का मुखिया=सेनापति महात्मा इन्द्रजित् बोला कि:—

किं नाम ते तात कनिष्ठ वाक्यमनर्थकंवै
बहुभीतवच्च। अस्मिन्कुले योऽपि भवेन्न
जातः सोऽपीदृशं नैव वदेन्न कुर्यात्॥२॥

अर्थ–हे छोटे तात! आप अति भीरु की भांति अनर्थक वाक्य कहते हैं, पौलस्त्यवंशियों की तो बात ही क्या जो इस

वंश में भी उत्पन्न न हुआ हो वह भी ऐसा न कहेगा और न करेगा ॥

सत्त्वेन वीर्येण पराक्रमेण धैर्येण शौर्येण
च तेजसा च । एकः कुलेऽस्मिन्पुरुषो
विमुक्तो विभीषणस्तात कनिष्ठ एषः ॥३॥

अर्थ–इस कुल में एक ही पुरुष सत्त्व=सच्चाई, बल, पराक्रम, धैर्य्य, शौर्य्य और तेज से हीन हुआ है और वह छोटा तात विभीषण है ॥

किं नाम तौ मानुषराजपुत्रावस्माकमेके-
न हि राक्षसेन । सुप्राकृतेनापि निहन्तु-
मेतौ शक्यौ कुतो भीषयसेस्म भीरो ॥४॥

अर्थ–हे भीरु विभीषण! हमारे आगे वह राजपुत्र दोनों भाई क्या हैं उनको तो राक्षसों में छोटा मैं ही मार सक्ता हूं, आप हम लोगों को क्यों भयभीत करते हैं ॥

अथेन्द्रकल्पस्य दुरासदस्य महौजसस्त-
द्वचनं निशम्य । ततो महार्थं वचनं बभाषे
विभीषणः शस्त्रभृतां वरिष्ठः ॥ ५ ॥

अर्थ–तदनन्तर इन्द्रसदृश दुर्जेय, बड़े पराक्रमी मेघनाद के बचन सुनकर शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण बड़े अर्थ वाला यह बचन बोला कि :—

न तात मन्त्रे तव निश्चयोऽस्ति बालस्त्वमद्या-

प्यविपक्कबुद्धिः । तस्मात्त्वयाप्यात्मविनाश-
नाय वचोऽर्थहीनं बहुविप्रलब्धम् ॥ ६ ॥

अर्थ—हे तात ! तू बाल अपक बुद्धि होने से तेरे में अभी बिचार शक्ति नहीं इसी से तैने भी अपने नाश के लिये अर्थ से हीन बहुत कुछ कह डाला है ॥

पुत्रप्रवादेन तु रावणस्य त्वमिन्द्रजिन्मित्र
मुखोसि शत्रुः । यस्येदृशं राघवतो विनाशं
निशम्य मोहादनुमन्यसेत्वम् ॥ ७ ॥

अर्थ—हे इन्द्रजित ! जिस रावण का विनाश राम से सुन मोहवशात युद्ध विषयक जो तुम सम्मति देते हो सो तुम भी रावण के पुत्र रूप मित्र नहीं प्रत्युत पूर्ण शत्रु हो ॥

त्वमेव वध्यश्च सुदुर्मतिश्च स चापि वध्यो
य इहानयत्त्वाम् । बाल दृढं साहसिकं च
योऽद्य प्रावेश यन्मन्त्र कृतां समीपम् ॥८॥

अर्थ—बाल तथा दृढ़ साहसी तुमको जो इन वृद्ध मन्त्रियों के बीच में मन्त्र=सम्मति पूछने के लिये लाया है वह बध करने योग्य है और तुम दुर्मति भी हनन योग्य हो, मेघनाद से इतना कहकर फिर विभीषण रावण से बोला किः—

धनानि रत्नानि सुभूषणानि वासांसि दिव्यानि
मणींश्च चित्रान् । सीतां च रामाय निवेद्य
देवीं वसेम राजन्निह वीतशोकाः ॥ ९ ॥

अर्थ—हे राजन् ! हमको धन, रत्न, भूषण, दिव्य वस्त्र, विचित्र मणियें और देवी सीता राम के अर्पण करके यहां वीत शोक होकर बास करना चाहिये ॥

सुनिविष्टं हितं वाक्यमुक्तवन्तं विभीषणम् ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं रावणः कालचोदितः ॥१०॥
वसेत्सह सपत्नेन क्रुद्धेनाशीविषेण च ।
न तु मित्र प्रवादेन संवसेच्छत्रुसेविना ॥१०॥

अर्थ—अतिसुन्दर हितकर वाक्य कहते हुए काल से प्रेरा हुआ रावण विभीषण को यह कठोर वाक्य बोला कि शत्रु अथवा क्रुद्ध हुए नाग के साथ वास करना श्रेष्ठ है पर अपने शत्रु के सेवन करने वाले मित्र के साथ वास करना ठीक नहीं ॥

नित्यमन्योन्यसंहृष्टा व्यसनेष्वाततायिनः ।
प्रच्छन्नहृदया घोरा ज्ञातयस्तु भयावहाः ॥१२॥
श्रूयन्ते हस्तिभिर्गीताः श्लोकाः पद्मवने पुरा ।
पाशहस्तान्नरान्दृष्ट्वा शृणु त्वं गदतो मम ॥१३॥

अर्थ—एक दूसरे की विपत्ति में सदा प्रसन्न होनें वाले वैरी प्रच्छन्न=ढके हुए हृदय अर्थात् मलीन हृदय वाले अपनी जाति के लोग बड़े भयानक होते हैं, एक पूर्व कालीन गाथा है कि पद्मवन में हाथियों ने हाथ में पाश लिये मनुष्यों को देखकर कुछ श्लोक गाये थे सो उनको सुन ॥

नाग्निर्नान्यानि शस्त्राणि न नः पाशा भयावहाः ।
घोरा स्वार्थप्रयुक्तास्तु ज्ञातयो नो भयावहाः ॥१४॥

अर्थ–हमारे लिये न अग्नि, न शस्त्र और न पाशें भयानक हैं किन्तु यह घोर स्वार्थ के वश हुए ज्ञाती के लोग * हमारे लिये अति भयप्रद हैं, क्योंकिः—

उपायमेते वक्ष्यन्ति ग्रहणे नात्र संशयः ।
कृत्स्नाद्भयाज्ज्ञातिभयं सुकष्टं विदितं च नः ॥१५॥
विद्यते गोषुसम्पन्नं ज्ञातितो भयम् ।
विद्यते स्त्रीषु चापल्यं विद्यते ब्राह्मणे तपः ॥१६॥
ततो नेष्टमिदं सौम्य यदहं लोकसत्कृतः ।
ऐश्वर्यमभिजातश्च रिपूणां मूर्ध्नि च स्थितः॥१७॥

अर्थ–यह हमारे पकड़ने का उपाय बतलायेंगे, इसमें संशय नहीं, सब भयों से हमको जाति वाले का भय बड़ा भयानक प्रतीत होता है,जैसे गौओं में दूध,स्त्रियों में चञ्चलता तथा ब्राह्मणों में तप सम्भव है इसी प्रकार ज्ञातियों में भय का होना सम्भव है, सो हे सौम्य ! लोक में आदर पाना, ऐश्वर्य्य से पूर्ण होना और शत्रुओं के सिर पर पाओं रखकर ठहरना यह मेरा ऐश्वर्य्य तुझे प्रिय नहीं लगता ॥

यथा पुष्करपत्रेषु पतितास्तोय विन्दवः ।
न श्लेषमभिगच्छन्ति तथानार्येषु सौहृदम् ॥१८॥
यथा मधुकरस्तर्षाद्रसंविंदन्नतिष्ठति ।
तथा त्वमपि तत्रैव तथानार्येषु सौहृदम् ॥१९॥

---

* ताको नहिं कछु भय सदा, अपनी जाति न पास ।
काठ बिना न कुठार कहुं, तरु को करत विनाश ॥

अर्थ—जैसे कमल के पत्तों पर पड़ीं जल की बून्दें श्लेषा को प्राप्त नहीं होतीं अर्थात् पत्र से नहीं मिलतीं वैसे ही अनार्य्य पुरुष सौहार्द सम्पन्न नहीं होते, जैसे मधुकर बड़ी अभिलाषा से पुष्पों का रस लेकर चला जाता है वैसे ही अनार्य्य पुरुष में सौहृद नहीं टिकता ॥

योऽन्यस्त्वेवंविधं ब्रूयाद्वाक्यमेतन्निशाचर।
अस्मिन्मुहूर्ते नभवेत्त्वां तु धिक् कुलपांसन ॥२०॥

अर्थ—हे निशाचर! यदि और कोई इस समय मुझसे ऐसा वाक्य कहता तो जीता न रहता, हे कुलकलङ्क! तुझे धिक्कार है ॥

इत्युक्तः परुषं वाक्यं न्यायवादी विभीषणः।
उत्पपात गदापाणिश्चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ २१ ॥
अब्रवीच्च तदा वाक्यं जातक्रोधो विभीषणः।
स त्वं भ्रान्तोऽसि मे राजन्ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि॥२२॥

अर्थ—ऐसे कठोर वचन कहा हुआ न्यायवादी विभीषण गदा हाथ में लिये हुए चार राक्षसों सहित उठ खड़ा हुआ, और क्रुद्ध हुआ विभीषण बोला कि हे राजन्! तू भूला हुआ है जो कुछ चाहे सो मुझसे कहले ॥

ज्येष्ठो मान्यः पितृसमो नच धर्मपथे स्थितः।
इदं हि परुषं वाक्यं न क्षमाम्यग्रजस्य ते ॥ २३ ॥
सुनीतं हितकामेन वाक्यमुक्तं दशानन।
न गृह्णन्त्यकृतात्मानः कालस्य वशमागताः॥२४॥

अर्थ—बड़ा भाई माननीय पिता के तुल्य है, पर धर्म मार्ग

पर स्थित न होने से मैं तुझ बड़े भाई के भी इतने कठोर वाक्य नहीं सहसक्ता हूं,हे रावण ! हितैषी से उत्तम नीति युक्त कहे वाक्य को काल के वस हुए अजितेन्द्रिय पुरुष स्वीकार नहीं करते हैं ॥

सुलभाः पुरुषा राजन्सततं प्रियवादिनः ।
अप्रियस्य च पथ्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः॥२५॥

अर्थ—हे राजन् ! सदा प्रिय बोलने वाले पुरुष सुलभ हैं परन्तु अप्रिय हितकर वाक्य का कहने और सुनने वाला दोनों दुर्लभ हैं॥

तन्मर्षयतु यच्चोक्तं गुरुत्वाद्धितमिच्छता ॥ २६ ॥
आत्मानं सर्वथा रक्ष पुरीं चेमां सराक्षसाम् ।
स्वस्ति तेऽस्तु गमिष्यामिसुखी भव मयाविना॥२७॥

अर्थ—जो आपका हित चाहते हुए मैंने कहा है उसको आप बड़े होने से क्षमा करें, और सर्वथा अपनी तथा राक्षसों सहित इस पुरी की रक्षा करें, आपका कल्याण हो. मैं जाता हूं, आप मेरे बिना सुखपूर्वक रहें ॥

निवार्यमाणस्य मया हितैषिणा न रोचते
ते बचनं निशाचर । परान्तकाले हि गता-
युषो नरा हितं न गृह्णन्ति सुहृद्भिरीरितम्॥२८॥

अर्थ—हे निशाचर ! मैं हितैषी होकर आपको रोकता हूं पर मेरा बचन आपको नहीं रुचता, जिनकी आयु शेष नहीं रही ऐसे पुरुष अन्तकाल के आने पर सुहृदों से कहे हुए हितकारक वाक्यों को ग्रहण नहीं करते हैं ॥

इति सप्तमः सर्गः

अथ अष्टमः सर्गः

सं०—अब विभीषण का राम की शरणागत जाना और राम का उसको स्वीकार करना कथन करते हैं :—

इत्युक्त्वा परुषं वाक्यं रावणं रावणानुजः ।
आजगाम मुहूर्तेन यत्र रामः स लक्ष्मणः ॥ १ ॥

अर्थ—विभीषण रावण को उक्त कठोर वाक्य कहकर शीघ्र ही आकाश मार्ग द्वारा वहां आया जहां लक्ष्मण सहित राम थे॥

स उवाच महाप्राज्ञः स्वरेण महता महान् ।
रावणो नाम दुर्वृत्तो राक्षसो राक्षसेश्वरः ॥ २ ॥
तस्याहमनुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ॥ ३ ॥

अर्थ—वह महाशय महाप्राज्ञ उच्च स्वर से बोला कि रावण नाम दुर्वृत्तराक्षस जो राक्षसों का राजा है मैं उसका छोटा भाई विभीषण हूं ॥

तेन सीता जनस्थानाद्धृता हत्वा जटायुषम् ।
रुद्धा च विवशा दीना राक्षसीभिः सुरक्षिता ॥४॥
तमहं हेतुभिर्वाक्यैर्विविधैश्च न्यदर्शयम् ।
साधु निर्यात्यतां सीता रामायेति पुनः पुनः ॥५॥

अर्थ—वह मेरा बड़ा भाई रावण जटायु को मारकर जनस्थान से सीता को हरलाया है, सो वह विचारी दीन, बेवस वहां रुकी हुई राक्षसियों से सुरक्षित है, मैंने रावण को युक्तियुक्त

अनेक वाक्यों से वार २ दर्शाया कि सीता राम को देदें इसी में कल्याण है ॥

सच न प्रतिजग्राह रावणः कालचोदितः ।
उच्यमानं हितं वाक्यं विपरीत इवौषधम् ॥ ६ ॥

अर्थ–परन्तु काल से प्रेरे हुए रावण ने मेरे कहे हुए हितकर वाक्य को ग्रहण नहीं किया, जैसे निकट मृत्यु वाला पुरुष औषध को ग्रहण नहीं करता ॥

सोऽहं परुषितस्तेन दासवच्चावमानितः ।
त्यक्त्वा पुत्रांश्च दारांश्च राघवं शरणं गतः ॥ ७ ॥
निवेदयत मां क्षिप्रं राघवाय महात्मने ।
सर्वलोकशरण्याय विभीषणमुपस्थितम् ॥ ८ ॥

अर्थ–रावण ने उलटा मुझे कठोर वाक्य कहा और दास की तरह अपमानित किया, सो मैं स्त्री पुत्रादिकों को छोड़कर राम की शरण आया हूं, सब लोकों को शरण देने वाले महात्मा राम को शीघ्र ही बतलावें कि विभीषण आया है ॥

एतत्तु वचनं श्रुत्वा सुग्रीवो लघुविक्रमः ।
लक्ष्मणस्याग्रतो रामं संरब्धमिदमब्रवीत् ॥ ९ ॥
रावणस्यानुजो भ्राता विभीषण इति श्रुतः ।
चतुर्भिः सह रक्षोभिर्भवन्तं शरणं गतः ॥ १० ॥

अर्थ–यह सुनकर सुग्रीव शीघ्र ही राम के समीप गया और वहां लक्ष्मण के सन्मुख बड़े आवेश से भरा हुआ बचन राम से

बोला कि रावण का छोटा भाई विभीषण चार अन्य राक्षसों सहित आपकी शरण आया है ॥

राक्षसो जिह्मया बुद्ध्या संदिष्टोऽयमिहागतः ।
प्रहर्तुंमायया छन्नो विश्वस्ते त्वयि चानघ ॥ ११ ॥
सुग्रीवस्य तु तद्वाक्यं श्रुत्वा रामो महाबलः ।
समीपस्थानुवाचेदं हनुमत्प्रमुखान्कपीन् ॥१२॥

अर्थ–हे राम ! मैं जानता हूं कि यह रावण का भेजा हुआ मायावी राक्षस कुटिल बुद्धि से यहां आया है कि आपके विश्वस्त होने पर आप पर प्रहार करे, सुग्रीव के उक्त वाक्य को सुनकर महाबली राम अपने समीप स्थित हनुमान् आदि वानरों से बोले कि:—

मित्रभावेन संप्राप्तं न त्यजेयं कथंचन ।
दोषो यद्यपि तस्य स्यात्सतामेतदगर्हितम् ॥१३॥

अर्थ–मित्रभाव से प्राप्त हुए को मैं कदापि नहीं त्याग सक्ता, यद्यपि उसका दोष हो पर भलेपुरुषों को शरणागत का त्याग निन्दित है ॥

सुग्रीवस्त्वथ तद्वाक्यमाभाष्य च विमृश्य च ।
ततः शुभतरं वाक्यमुवाच हरिपुंगवः ॥१४॥
स दुष्टो वाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
ईदृशं व्यसनं व्याप्तं भ्रातरं यः परित्यजेत् ॥१५॥
को नाम स भवेत्तस्य यमेष न परित्यजेत् ॥१६॥

अर्थ–सुग्रीव राम के उक्त वाक्य को सुन और सोचकर

यह शुभतर वाक्य बोला कि चाहे यह निशाचर दुष्ट हो अथवा शुभ हो पर ऐसे दुःख समय में जो भाई को त्याग सक्ता है उसके लिये ऐसा अन्य कौन होसक्ता है जिसको वह न त्यागेगा॥

वानराधिपतेर्वाक्यं श्रुत्वा सर्वानुदीक्ष्य तु।
इति होवाच काकुत्स्थो वाक्यं सत्यपराक्रमः॥१७॥

अर्थ—वानराधिपति सुग्रीव के उक्त वचन सुन और सब की ओर देखकर सत्यपराक्रम वाले राम यह वाक्य बोले किः—

अनधीत्य च शास्त्राणि वृद्धाननुपसेव्य च।
न शक्यमीदृशं वक्तुं यदुवाच हरीश्वरः॥१८॥

अस्ति सूक्ष्मतरं किंचिद्यथात्र प्रतिभाति मा।
प्रत्यक्षं लौकिकं चापि वर्ततेसर्वराजसु॥१९॥

अर्थ—शास्त्रों को बिना पढ़े और वृद्धों की सेवा किये बिना ऐसा कोई कहने को समर्थ नहीं जैसा सुग्रीव ने कहा है, सुग्रीव के कथन में एक सूक्ष्म बात है जैसा मुझे प्रतीत होता है और वह लोक तथा राजाओं में वर्त्ती जाने के कारण प्रत्यक्ष है॥

अमित्रास्तत्कुलीनाश्च प्रातिदेश्याश्च कीर्तिताः।
व्यसनेषु प्रहर्तारस्तस्मादयमिहागतः॥२०॥
यस्तु दोषस्त्वया प्रोक्तो ह्यादानेऽरिबलस्य च।
तत्र ते कीर्त्तयिष्यामि यथाशास्त्रमिदं शृणु॥२१॥

अर्थ—शत्रु उस कुल और साथ वाले देश के होते हैं जो व्यसनों में प्रहार करते अर्थात् दुःख पहुंचाते हैं, इसीलिये

यह यहां आया है, जो दोष आपने शत्रुसेना के ग्रहण करने में कहा है उसके उत्तर में शास्त्रानुसार कहता हूं आप सुनें :—

न वयं तत्कुलीनाश्च राज्यकांक्षी च राक्षसः :
पण्डिता हि भविष्यन्ति तस्माद्ग्राह्यो विभीषणः॥२२॥

अर्थ–हम उसके कुल के नहीं और विभीषण राज्याभिलाषी है, यह लोग बड़े बुद्धिमान् होते हैं क्योंकि "भाई के विनाश होने पर इसको राज्य मिलसक्ता है हमारे विनाश में नहीं" इसलिये विभीषण ग्राह्य है ॥

अव्यग्राश्च प्रहृष्टाश्च ते भविष्यन्ति संगताः ।
प्रणादश्च महानेषोऽन्योन्यस्य भयमागतम् ॥२३॥
इति भेदं गमिष्यन्ति तस्मात्प्राप्तो विभीषणः ।
न सर्वेभ्रातरस्तात भवन्ति भरतोपमः ॥२४॥

अर्थ–और हमारे साथ रहने से यह विभीषणादि व्याकुलता से रहित हुए हर्षित होंगे, लङ्का में बड़ा कोलाहल होने से परस्पर सब बड़े भय को प्राप्त होने के कारण उन सब में अवश्य भेद बुद्धि होगी इसी कारण यह विभीषण हमको प्राप्त हुआ है, "और यह ग्रहण करने योग्य है" हे तात ! सब भाई भरत के समान नहीं होते ॥

स दुष्टोवाप्यदुष्टो वा किमेष रजनीचरः ।
सूक्ष्ममप्यहितं कर्तुं मम शक्तः कथंचन ॥२५॥

अर्थ–यह राक्षस चाहे दुष्ट वा अदुष्ट=पवित्रात्मा हो पर हमारे साथ यह थोड़ा भी अहित नहीं करसक्ता, इसलिये इस शरणागत आये को त्रास देना ठीक नहीं ॥

ऋषेः कण्वस्य पुत्रेण कण्डुना परमर्षिणा ।
शृणु गाथा पुरा गीता धर्मिष्ठा सत्यवादिना ॥२६॥

अर्थ—हे सुग्रीव ! कण्डव ऋषि के पुत्र सत्यवादी परमऋषि कण्डु ने पूर्वकाल में एक गाथा कही है सो तुम सुनो :—

बद्धाञ्जलिपुटं दीनं याचन्तं शरणागतम् ।
न हन्यादानृशंस्यार्थमपि शत्रुं परंतप ॥२७॥
आर्तो वा यदि वा दृप्तः परेषां शरणं गतः ।
अरिः प्राणान्परित्यज्य रक्षितव्यः कृतात्मना ॥२८॥

अर्थ—हे परंतप ! दोनों हाथ जोड़े हुए दीन याचना करते हुए शरणागत शत्रु पर भी दया करे उसका कभी हनन न करे, चाहे पीड़ित हो वा दृप्त=अहङ्कारयुक्त भी क्यों न हो पर शरणागत आये हुए शत्रु की अपने प्राण त्यागकर भी बुद्धिमान् पुरुष को रक्षा करनी चाहिये ॥

सचेद्भयाद्वा मोहाद्वा कामाद्वापि न रक्षति ।
स्वया शक्त्या यथान्यायं तत्पापलोक गर्हितम् ॥२९॥
विनष्टः पश्यतस्तस्य रक्षिणः शरणं गतः ।
आदाय सुकृतं तस्य सर्वं गच्छेदरक्षितः ॥३०॥

अर्थ—यदि भय, मोह तथा काम से उसकी शक्तिभर रक्षा न करे तो वह पाप उसको लगता और वह लोक में निन्दित होता हैं, जो शरणागत की रक्षा नहीं करता और वह उसके देखते २ मारा जाता है तो वह उसका पुण्य लेकर चला जाता और अपने वध का पाप उसको दे जाता है ॥

एवं दोषो महानत्र प्रपन्नानामरक्षणे ।
अस्वर्ग्यं चायशस्यं च बलवीर्यविनाशनम् ॥३१॥
सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते ।
अभयं सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद्व्रतं मम ॥३२॥

अर्थ—इस प्रकार शरणागत की रक्षा न करना बड़ा दोष, स्वर्ग तथा यश का विरोधी और बल वीर्य्य का नाशक है, "मैं तेरा हूं" जो एक वार ही ऐसी याचना करते हुए शरण में आते हैं उनको मैं अभय देता हूं यह मेरा व्रत है ॥

आनयैनं हरिश्रेष्ठ दत्तमस्याभयं मया ।
विभीषणो वा सुग्रीव यदि वा रावणःस्वयम् ॥३३॥
रामस्य तु वचः श्रुत्वा सुग्रीवः प्लवगेश्वरः ।
प्रत्यभाषत काकुत्स्थं सौहार्देनाभिपूरितः ॥३४॥

अर्थ—सो हे सुग्रीव ! तुम उसको यहां ले आओ, मैंने उस को अभय दिया है, हे सुग्रीव ! विभीषण हो वा स्वयं रावण भी हो, शरणागत की रक्षा अवश्य कर्तव्य है, राम के उक्त बचन सुनकर सुग्रीव ने सौहार्द=मित्रभाव से भरा हुआ राम को यह उत्तर दिया कि :—

किमत्र चित्रं धर्मज्ञ लोकनाथशिखामणे ।
यत्त्वमार्य प्रभाषेथाः सत्त्ववान्सत्पथे स्थितः ॥३५॥
मम चाप्यन्तरात्मायं शुद्धं वेत्ति विभीषणम् ।
अनुमानाच्च भावाच्च सर्वतः सुपरीक्षितः ॥ ३६ ॥

तस्मात्क्षिप्रं सहास्माभिस्तुल्यो भवतु राघव ।
विभीषणो महाप्राज्ञः सखित्वं चाभ्युपैतु नः ॥३७॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ, हे राजाओं के शिरोमणि महाराज ! सन्मार्ग में स्थित तथा शुद्धहृदय आपने जो श्रेष्ठ बात कही है इसमें कोई सन्देह नहीं, वास्तव में ठीक है, और अनुमान तथा हृदय के भाव द्वारा सब तरह सुपरीक्षित होने से मेरा भी अन्तरात्मा विभीषण को शुद्ध जानता है, इसलिये शीघ्र ही उस महाप्राज्ञ विभीषण को हमसे मित्रता करके हमारे समान होना चाहिये अर्थात् बरावर वाला हो ॥

इति अष्टमः सर्गः

अथ नवमः सर्गः

सं०–अब विभीषण का राम की शरणागत होना कथन करते हैं:—

राघवेणाभये दत्ते सन्नतो रावणानुजः ।
पादयोर्निपपाताथ चतुर्भिः सह राक्षसैः ॥ १ ॥
अब्रवीच्च तदावाक्यं रामं प्रति विभीषणः ।
अनुजो रावणस्याहं तेन चास्म्यवमानितः ॥ २ ॥

अर्थ–राम से अभय दिये जाने पर रावण का छोटा भाई विभीषण चारो राक्षसों सहित झुककर राम के चरणों में सिर रख बोला कि मैं रावण का छोटा भाई हूं और उसने मेरा अपमान किया है ॥

भवन्तं सर्वभूतानां शरण्यं शरणं गतः ।
परित्यक्ता मया लङ्का मित्राणि च धनानि च ॥३॥
भवद्गतं हि मे राज्यं जीवितं च सुखानि च ।
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा रामो वचनमब्रवीत् ॥ ४ ॥
वचसा सान्त्वयित्वैनं लोचनाभ्यां पिबन्निव ।
आख्याहि मम तत्त्वेन राक्षसानां बलाबलम् ॥५॥

अर्थ–सो सब मनुष्यों को शरण देने योग्य आपकी शरण आया हूं और मैंने लङ्का, मित्र तथा धन सब छोड़ दिये हैं, आपके अधीन मेरा राज्य, जीवन तथा सुख है, विभीषण के इस बचन को सुनकर उसको बाणी से आश्वासन देते हुए नेत्रों से पान करते हुए के समान अर्थात् बड़े प्रेमपूर्वक राम उससे यह बचन बोले कि तुम मुझे राक्षसों का बलाबल ठीक २ बतलाओ॥

एवमुक्तं तदा रक्षो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
रावणस्य बलं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥ ६ ॥
अवध्यः सर्वभूतानां गन्धर्वोरगपक्षिणाम् ।
राजपुत्र दशग्रीवो वरदानात्स्वयंभुवः ॥ ७ ॥

अर्थ–उत्तम कर्मों वाले राम के ऐसा कहने पर वह राक्षस विभीषण रावण का सारा बल कहने लगा कि हे राजपुत्र! रावण ब्रह्मा के वरदान से गन्धर्व, नाग और पक्षी * इन सब लोगों से अवध्य=बधरहित है अर्थात् इनसे उसका वध नहीं होसक्ता॥

---

* वानर और नाग के समान "पक्षी" भी एक मनुष्यों की जातिविशेष है ॥

रावणानन्तरो भ्राता मम ज्येष्ठश्च वीर्यवान् ।
कुम्भकर्णो महातेजाः शक्रप्रतिबलो युधि ॥ ८ ॥
राम सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो यदि ते श्रुतः ।
कैलासे येन समरे मणिभद्रः पराजितः ॥ ९ ॥

अर्थ—और रावण से छोटा मेरा बड़ा भाई बलवान् महातेजस्वी कुम्भकर्ण है जो युद्ध में इन्द्र के समान बलवान् है, हे राम ! रावण का सेनापति प्रहस्त आपने सुना होगा जिसने कैलास पर युद्ध में मणिभद्र को पराजित किया था, और :—

संग्रामे सुमहद्व्यूहे तर्पयित्वा हुताशनम् ।
अन्तर्धानगतः श्रीमानिन्द्रजिद्धन्ति राघव ॥१०॥
महोदरमहापार्श्वौ राक्षसश्चाप्यकम्पनः ।
अनीकपास्तु तस्यै ते लोकपालसमा युधि ॥११॥

अर्थ—हे राघव ! श्रीमान् इन्द्रजित् बड़े दलों वाले संग्राम में हवन करके अदृश्य=छिपकर शत्रुओं को मारता है, और महोदर, महापार्श्व तथा अकम्पन यह राक्षस युद्ध में लोकपालों के तुल्य उसके सेनापति हैं ॥

विभीषणस्य तु वचस्तच्छ्रुत्वा रघुसत्तमः ।
अन्वीक्ष्य मनसा सर्वमिदं वचनमब्रवीत् ॥ १२ ॥

अर्थ—विभीषण के उक्त वचन सुन राम मन से सब सोचकर यह वचन बोले कि :—

यानि कर्मापदानानि रावणस्य विभीषण ।
आख्यातानि च तत्त्वेन ह्यवगच्छामि तान्यहम् ॥१३॥

अहं हत्वा दशग्रीवं स प्रहस्तं सहात्मजम् ।
राजानं त्वां करिष्यामि सत्यमेतच्छृणोतु मे ॥१४॥
रसातलं वा प्रविशेत्पातालं वापि रावणः ।
पितामहसकाशं वा न मे जीवन्विमोक्ष्यते ॥१५॥

अर्थ–हे विभीषण ! रावण की जो कर्म करने की शक्तियां आपने कथन की हैं उनको मैं भले प्रकार जानता हूं, मैं पुत्रसहित रावण और प्रहस्त को मारकर आपको राजा बनाउंगा, यह मेरी सत्य प्रतिज्ञा है, रावण रसातल वा पाताल में प्रवेश कर जाय अथवा ब्रह्मा के समीप ही क्यों न चलाजाय पर अब वह मुझसे जीवित नहीं छूटेगा अर्थात् अवश्य मारा जायगा ॥

अहत्वा रावणं संख्ये सपुत्र जनबान्धवम् ।
अयोध्यां न प्रवेक्ष्यामि त्रिभिस्तैर्भ्रातृभिः शपे ॥१६॥

अर्थ–सपरिवार रावण को संग्राम में बिना मारे मैं अयोध्या को नहीं जाउंगा, मुझे तीनों भाइयों की शपथ है ॥

श्रुत्वा तु वचनं तस्य रामस्याक्लिष्टकर्मणः ।
शिरसा बन्द्य धर्मात्मा वक्तुमेवं प्रचक्रमे ॥ १७ ॥
राक्षसानां बधे साह्यं लङ्कायाश्च प्रधर्षणे ।
करिष्यामि यथाप्राणं प्रवेक्ष्यामि च वाहिनीम्॥१८॥
इति ब्रुवाणं रामस्तु परिष्वज्य विभीषणम् ।
अब्रवील्लक्ष्मणं प्रीतः समुद्राज्जलमानय ॥ १९ ॥

अर्थ–श्रेष्ठ कर्मों वाले राम के वचन सुनकर वह धर्मात्मा विभीषण सिर से बन्दना करके फिर बोला कि राक्षसों के बध

और लङ्का के विध्वंस करने में मैं अपने प्राणों के समान आपकी सहायता करुंगा और सेना के साथ रहुंगा, विभीषण के उक्त प्रकार कथन करने पर राम ने उसको गले लगा लिया और प्रसन्न होकर लक्ष्मण को समुद्र से जल लाने की आज्ञा दी ॥

तेन चेमं महाप्राज्ञमभिषिञ्च विभीषणम् ।
राजानं रक्षसां क्षिप्रं प्रसन्ने मयि मानद ॥ २० ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्रिरभ्यषिञ्चद्विभीषणम् ।
मध्ये वानरमुख्यानां राजानं राजशासनात् ॥२१॥

अर्थ–और फिर लक्ष्मण से बोले कि हे मान के देने वाले ! इस जल से मेरी प्रसन्नता में महाप्राज्ञ विभीषण को राक्षसों का राजा होने के लिये शीघ्र ही अभिषेक दे अर्थात् इसको राजा बनादो, राम के इस प्रकार कथन करने पर लक्ष्मण ने सब वानरों के मध्य राजा की आज्ञा से विभीषण को अभिषेक दिया ॥

इति नवमः सर्गः

अथ दशमः सर्गः

सं०–अब राम का समुद्र पर पुल बांधना कथन करते हैं:–

ततो विसृष्टा रामेण सर्वतो हरिपुंगवाः ।
उत्पेतुर्महारण्यं हृष्टाः शतसहस्रशः ॥१॥

अर्थ–तदनन्तर राम से आज्ञा पाये हुए सहस्रों वानर प्रसन्न हुए २ सब ओर बड़े जङ्गल में गये ॥

ते नगान्नग संकाशाः शाखामृगगणर्षभा ।
बभंजुः पादपांस्तत्र प्रचकर्षुश्च सागरम् ॥२॥

अर्थ—और वह पर्वततुल्य वानरश्रेष्ठ पर्वतों से वृक्षों को तोड़कर समुद्र की ओर खींच लाय ॥

ते सालैश्चाश्वकर्णैश्च धवैर्वंशैश्च वानराः ।
कुटजैरर्जुनैस्तालैस्तिलकैस्तिनिशैरपि ॥३॥
विल्वकैः सप्तपर्णैश्च कर्णिकारैश्च पुष्पितैः ।
चूतैश्चाशोकवृक्षैश्च सागरं समपूरयन् ॥४॥

अर्थ—साल, अश्वकर्ण, धवई, वांसा, कुटज, अर्जुन, ताल, तिलक, तिनिश, विल्व, सप्तपर्णी, कठचम्पा, आम और अशोक आदि वृक्षों से वानरों ने समुद्र भर दिया ॥

हस्तिमात्रान्महाकायाः पाषाणांश्च महाबलाः ।
पर्वतांश्च समुत्पाट्य यन्त्रैः परिवहन्ति च ॥५॥

अर्थ—और वह महाबली, महाकाय वानर हाथी समान बड़े २ पत्थरों तथा पर्वतों को यन्त्रों से उखाड़कर बहा लाये ॥

प्रक्षिप्यमाणैरचलैः सहसा जलमुद्धृतम् ।
समुत्ससर्प चाकाशमवासर्पत्ततः पुनः ॥६॥

अर्थ—उन फेंके जाते हुए पत्थरों द्वारा जल वेग से उठकर आकाश की ओर ऊंचा चढ़ जाता और फिर नीचे की ओर आता था ॥

शिलानां क्षिप्यमाणानां शैलानां तत्र पात्यताम् ।
बभूव तुमलः शब्दस्तदा तस्मिन्महोदधौ ॥७॥

अर्थ—और फैंकी जाती हुई शिलाओं तथा गिरते हुए पर्वतों का उस महासागर में बड़ा तुमुल शब्द होता था ॥

कृतानि प्रथमे नान्हा योजनानि चतुर्दश ।
प्रहृष्टैर्गजसंकाशैस्त्वरमाणैः प्लवंगमैः ॥८॥
द्वितीयेन तथैवान्हा योजनानि तु विंशतिः ।
कृतानि प्लवगैस्तूर्णं भीमकायैर्महाबलैः ॥९॥
अन्हातृतीयेन तथा योजनानि तु सागरे ।
त्वरमाणैर्महाकायैरेकविंशतिरेवच ॥१०॥
चतुर्थेन तथा चान्हा द्वाविंशतिरथापि वा ।
योजनानि महावेगैः कृतानि त्वरितैस्ततः ॥११॥
पञ्चमेन तथा चान्हा प्लवगैः क्षिप्रकारिभिः ।
योजनानि त्रयोविंशत्सुवेलमधिकृत्य वै ॥१२॥

अर्थ—इस प्रकार पत्थर और लकड़ी ला २ कर उन प्रसन्न हुए महाकाय वानरों ने प्रथम दिन शीघ्र ही चौदह योजन पुल तैयार किया, दूसरे दिन उन महाबलवान् वानरों ने बीस योजन तीसरे दिन उन महाकाय वानरों इक्कीस ने योजन, चौथे दिन उन महावेगवाले वानरों ने शीघ्र ही बाईस योजन और पांचवें दिन उन शीघ्रकारी वानरों ने तेईस योजन पुल बनाया ॥

स नलेन कृतः सेतुः सागरे मकरालये ।
शुशुभे शुभगः श्रीमान्स्वातीपथ इवाम्बरे ॥१३॥

अर्थ—इस प्रकार मगर मच्छों के घर समुद्र पर पदार्थ विद्या

के ज्ञाता महात्मा नल ने पुल बनाया जो आकाश में स्वातीपथ की भांति शोभायमान् प्रतीत होता था ॥

दश योजन विस्तीर्णं शतयोजनमायतम् ।
ददृशुर्देवगन्धर्वा नलसेतुं सुदुष्करम् ॥१४॥

अर्थ—दशयोजन चौड़ा और सौ योजन लम्बा बड़ा दुष्कर सेतु नल का बनवाया हुआ देव गन्धर्वों ने देखा ॥

तमचिन्त्यमसह्यं च ह्यद्भुतं लोमहर्षणम् ।
ददृशुः सर्वभूतानि सागरे सेतुबन्धनम् ॥१५॥

अर्थ—और उस अचिन्त्य, असह्य तथा रोंगटे खड़े करने वाले अद्भुत सेतुबन्धन को सब भूतों ने देखा ॥

विशालः सुकृतः श्रीमान्सुभूमिः सुसमाहितः ।
अशोभत महान्सेतुः सीमन्त इव सागरे ॥१६॥

अर्थ—वह विशाल, सुन्दर, शोभायमान् उत्तम भूमि वाला तथा समचौरस महान् सेतु सीमन्त=सीमन्तोन्नयनसंस्कार की भांति संस्कृत किया हुआ अति शोभायमान् प्रतीत होता था ॥

अग्रतस्तस्य सैन्यस्य श्रीमान्रामः सलक्ष्मणः ।
जगाम धन्वी धर्मात्मा सुग्रीवेण समन्वितः ॥१७॥
घोषेण महता घोषं सागरस्य समुच्छ्रितम् ।
भीममन्तर्दधे भीमा तरन्ती हरिवाहिनी ॥१८॥

अर्थ—तत्पश्चात् धर्मात्मा श्रीमान् राम धनुष धारण किये हुए लक्ष्मण तथा सुग्रीव के साथ सेना के आगे २ चले, और

पीछे २ समुद्र से पार उतरती हुई वानरसेना अपनी महाध्वनि करती हुई समुद्र की गम्भीर तथा भङ्कयर ध्वनि को ढांपती हुई चली ॥

वानराणां हि सा तीर्णा वाहिनी नलसेतुना ।
तीरे निविविशे राज्ञा बहुमूलफलोदके ॥१९॥

अर्थ—वानरों की वह बड़ी सेना जब नलसेतु द्वारा पार होगई तब मूल, फल तथा उत्तम जल वाले तीर पर राजा ने छावनी डाली ॥

तदद्भुतं राघवकर्म दुष्करं समीक्ष्य देवाः सह सिद्धचारणैः।उपेत्य रामं सहसा महर्षि भिस्त-मभ्यषिञ्चन्सु शुभैर्जलैः पृथक् ॥ २० ॥

अर्थ—राम के इस अद्भुत दुष्करकर्म को देखकर सिद्ध तथा चारणों सहित देव और महर्षि उनके समीप आये और उन्होंने शुभ जलों से पृथक् २ राम का अभिषेक किया ॥

जयस्व शत्रून्नरदेव मेदिनीं स सागरां पालय शाश्वतीः समाः । इतीव रामं नरदेवसत्कृतं शुभैर्वचोभिर्विविधैरपूजयन् ॥ २१ ॥

अर्थ—और हे नरदेव ! सागर सहित सारी पृथिवी को जीत अनेक वर्षों तक उसका पालन कर, इस प्रकार विविध शुभ वचनों द्वारा आशीर्वाद प्राप्त करते हुए मनुष्य और देवताओं से सत्कृत राम का उन्होंने पूजन किया ॥

इति दशमः सर्गः

अथ एकादशः सर्गः

सं०—अब रावण का शुक तथा सारण नामक मन्त्रियों को राम की सेना का पता लगाने के लिये भेजना कथन करते हैं :—

सबले सागरं तीर्णे रामे दशरथात्मजे ।
अमात्यौ रावणः श्रीमानब्रवीच्छुकसारणौ ॥ १ ॥
समग्रं सागरं तीर्णं दुस्तरं वानरं बलम् ।
अभूतपूर्वं रामेण सागरं सेतुबन्धनम् ॥ २ ॥
भवन्तौ वानरं सैन्यं प्रविश्यानुपलक्षितौ ।
परिमाणं च वीर्यं च येच मुख्याः प्लवङ्गमाः ॥ ३ ॥

अर्थ—दशरथसुत राम जब सेना सहित समुद्र पार होगये तब रावण ने शुक तथा सारण नामा मंत्रियों को कहा कि वानर सेना सारे दुस्तर सागर से पार होगई है और राम ने सागर पर अपूर्व पुल बांध लिया है जो ऐसा पहिले कभी नहीं हुआ था, सो तुम दोनों वेश बदल वानरों की सेना में जाकर सेना का परिमाण तथा मुख्य २ वानरों को जांचो ॥

ये पूर्वमभिवर्तन्ते ये च शूराः प्लवङ्गमाः ।
निवेशं च यथा तेषां वानराणां महात्मनाम् ॥४॥
रामस्य व्यवसायं च वीर्यं प्रहरणानि च ।
लक्ष्मणस्य च वीरस्य तत्त्वतो ज्ञातुमर्हथः ॥५॥

कश्च सेनापतिस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
तच्च ज्ञात्वा यथा तत्त्वं शीघ्रमागन्तुमर्हथः ॥६॥

अर्थ—जो युद्ध में अग्रणी सेनापति तथा दूसरे शूरवीर वानरों की भी परीक्षा करो और जैसे उन महात्मा वानरों के युद्ध की तरतीब है वह भी जानो, और तुम राम तथा बीर लक्ष्मण का व्यवसाय, बल तथा शस्त्र आदि सब ठीक २ जानकर और यह भी ज्ञात करके कि महात्मा वानरों का सेनापति कौन है, शीघ्र ही लौट आओ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुक सारणौ ।
हरिरूपधरौ वीरौ प्रविष्टौ वानरं बलम् ॥ ७ ॥
निविष्टं निविशच्चैव भीमनादं महाबलम् ।
तद्बलार्णवमक्षोभ्यं ददृशाते निशाचरौ ॥ ८ ॥
तौ ददर्श महातेजाः प्रतिच्छन्नौ विभीषणः ।
आचचक्षे स रामाय गृहीत्वा शुकसारणौ ॥ ९ ॥

अर्थ—उक्त प्रकार आज्ञा दिये हुए शुक तथा सारण राक्षस वानरों का रूप धारण कर वानरसेना में प्रविष्ट हुए, भयङ्कर गर्जती हुई बड़ी सेना कुछ व्यूह बांध चुकी थी और कुछ बांध रही थी कि उन दोनों राक्षसों ने अक्षोभ्य सेनारूप सागर को देखा, वेश बदले हुए उन दोनों शुक, सारण को बिभीषण ने देख लिया और राम को बतलाया कि :—

तस्यैतौ राक्षसेन्द्रस्य मन्त्रिणौ शुकसारणौ ।
लङ्कायाः समनुप्राप्तौ चारौ परपुरञ्जय ॥ १० ॥

तौ दृष्ट्वा व्यथितो रामं निराशौ जीविते तथा ।
कृतांजलिपुटौ भीतौ वचनं चेदमूचतुः ॥ ११ ॥

अर्थ–हे शत्रुओं के किलों को जय करने वाले राम ! यह शुक तथा सारण दोनों रावण के मन्त्री हैं जो गुप्तचर होकर लङ्का से आये हैं, तब वह दोनों राम को देखकर दुःखित तथा जीवन से निराश हो हाथ जोड़ भयभीत होकर बोले कि :—

आवामिहागतौ सौम्य रावणप्रहिताबुभौ ।
परिज्ञातुं बलं सर्वं तदिदं रघुनन्दन ॥ १२ ॥
तयोस्तद्वचनं श्रुत्वा रामो दशरथात्मजः ।
अब्रवीत्प्रहसन्वाक्यं सर्वभूतहिते रतः ॥ १३ ॥

अर्थ–हे सौम्य रघुनन्दन ! हम दोनों रावण के भेजे हुए आपके इस सारे बल को जानने के लिये आये हैं, उन दोनों के उक्त बचन सुन सब लोगों के हित में रत दशरथसुत राम हंसकर उनसे बोले कि :—

यदि दृष्टं बलं सर्वं वयं वा सुसमाहिताः ।
यथोक्तं वा कृतं कार्यं छन्दतः प्रतिगम्यताम्॥१४॥
अथ किञ्चिददृष्टं वा भूयस्तद्द्रष्टुमर्हथः ।
विभीषणो वा कार्त्स्न्येन पुनःसंदर्शयिष्यति॥१५॥

अर्थ–यदि आप लोगों ने हमारा सारा बल तथा स्थिति को रावण के कथनानुसार यथोक्त=ज्यों का त्यों जान लिया है तो यथेच्छ

जाइये, और यदि कुछ देखना शेष रहगया होतो वह भी देखलें अथवा विभीषण ही तुम्हें सब कुछ दिखला देंगे ॥

न चेदं ग्रहणं प्राप्य भेतव्यं जीवितं प्रति ।
न्यस्तशस्त्रौ गृहीतौ च न दूतौ वधमर्हतः ॥ १६ ॥

अर्थ—पकड़े जाने पर तुम्हें अपने जीवनविषयक भय नहीं होना चाहिये, क्योंकि बिना शस्त्रों के आये हुए दूत वध के योग्य नहीं होते ॥

प्रविश्य महतीं लंकां भवद्भ्यां धनदानुजः ।
वक्तव्यो रक्षसां राजा यथोक्तं वचनं मम ॥ १७ ॥
यद्बलं त्वं समाश्रित्य सीतां मे हृतवानसि ।
तद्दर्शय यथाकामं ससैन्यश्च सबान्धवैः ॥ १८ ॥
श्वः काल्ये नगरीं लङ्कां सप्राकारां सतोरणाम् ।
रक्षसां च बलं पश्य शरैर्विध्वंसितं मया ॥ १९ ॥

अर्थ—सो तुम लङ्का में प्रवेश कर कुवेर के छोटे भाई राक्षसों के राजा रावण को मेरा यह बचन यथोक्त=ज्यों का त्यों कहना कि जिस बल के सहारे पर तैने मेरी प्यारी सीता को हरा है वह बल अब सेना और बान्धवों के साथ मिलकर यथारुचि दिखला, तू कल प्रातः कोट, डेवढ़ियों समेत लङ्का और राक्षसों की सेना को मेरे बाणों से नष्ट होता हुआ देखेगा ॥

इति प्रतिसमादिष्टौ राक्षसौ शुकसारणौ ।
जयेति प्रतिनंद्यैनं राघवं धर्मवत्सलम् ॥ २० ॥

आगम्य नगरीं लङ्कामब्रूता राक्षसाधिपम् ।
विभीषणगृहीतौ तु वधार्थे राक्षसेश्वर ॥ २१ ॥
दृष्ट्वा धर्मात्मना मुक्तौ रामेणामित तेजसा ।
एकस्थान गता यत्र चत्वारः पुरुषर्षभाः ॥ २२ ॥

अर्थ–एवंविध सन्देश दिये हुए शुक तथा सारण राक्षस "जय हो" इस प्रकार धर्मप्रिय राघव की प्रतिनन्दन=प्रशंसा करते हुए वह दूत लङ्कापुरी में आकर रावण से बोले, कि हे राक्षसेश्वर! विभीषण ने हम दोनों बध के लिये पकड़वा लिये थे परन्तु अपरिमित तेज वाले धर्मात्मा राम ने हमें देखकर छोड़ दिया, वहां उस समय एकही स्थान पर चार पुरुषश्रेष्ठ:—

लोकपालसमाः शूराः कृतास्त्रा दृढविक्रमाः ।
रामोदाशरथिः श्रीमांल्लक्ष्मणश्च विभीषणः ॥२३॥
सुग्रीवश्च महातेजा महेन्द्र समविक्रमः ।
एते शक्ताः पुरीं लङ्कां स प्राकारां सतोरणाम् ॥२४॥
उत्पाट्यसंक्रामयितुं सर्वे तिष्ठन्तु वानराः ।
वधिष्यति पुरीं लङ्कामेकस्तिष्ठन्तु ते त्रयः ॥२५॥
राम लक्ष्मण गुप्ता सा सुग्रीवेण च वाहिनी ।
बभूव दुर्धर्षतरा सर्वैरपि सुरासुरैः ॥२६॥

अर्थ–शूरबीर, लोकपालों के समान अस्त्र शस्त्र

सम्पन्न एक दशरथ के पुत्र राम, दूसरे श्रीमान् लक्ष्मण, तीसरे विभीषण और चौथे इन्द्र के समान विक्रमशाली महातेजस्वी सुग्रीव बैठे हुए थे, यह चारों परकोटे तथा द्वारों सहित लङ्कापुरी को नष्ट कर देने में सर्वथा समर्थ हैं, राम के रूपादि चिन्हों और अस्त्र शस्त्रों से ज्ञात होता है कि अन्य वानर तथा सुग्रीवादि तीनों अलग ही बैठे रहें,अकेला राम ही सारी लङ्कापुरी को नष्ट करसक्ता है, राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव से रक्षित वानरों की सेना ऐसी दुर्धर्ष प्रतीत होती है कि देवता तथा दैत्यादि कोई भी उसका सामना नहीं करसक्ते ॥

प्रहृष्टयोधा ध्वजिनी महात्मनां वनौकसां-
संप्रति योद्धुमिच्छताम् ।अलं विरोधेन शमो
विधीयतां प्रदीयतां दाशरथाय मैथिली॥२७॥

अर्थ–युद्ध करना चाहते हुए वानर महात्माओं की सेना के सब योद्धा अति प्रसन्न हैं, सो इस समय यही अच्छा है कि दशरथसुत राम को जानकी देकर इस विरोध को मिटा शान्त कीजिये ॥

इति एकादशः सर्गः

अथ द्वादशः सर्गः

सं०–अब राम की सेना का पता लगाने के लिये रावण का गुप्तचर भेजना कथन करते हैं:—

तद्वचः सत्यमक्लीवं सारणेनाभिभाषितम् ।
निशम्य रावणो राजा पर्यभाषत सारणम् ॥१॥
यदि मामभियुञ्जीरन्देवगन्धर्वदानवाः ।
नैव सीतामहं दद्यां सर्वलोक भयादपि ॥२॥

अर्थ—निर्भय होकर सारण के कहे हुए उस सत्य वचन को सुनकर राजा रावण सारण से बोला कि यदि मुझ पर देवता, गन्धर्व तथा दानव मिलकर भी चढ़ाई करें अथवा सम्पूर्ण लोकों का भय होने पर भी मैं सीता कदापि न दूंगा ॥

हन्यामहन्त्विमौपापौ शत्रुपक्षप्रशंसिनौ ।
यदि पूर्वोपकारैर्मेक्रोधो न मृदुतां व्रजेत् ॥३॥
एवमुक्त्वा तु सव्रीडौ तौ दृष्ट्वा शुकसारणौ ।
रावणं जयशब्देन प्रतिनन्द्याभिनिःसृतौ ॥४॥

अर्थ—जो तुम लोगों के किये पूर्व उपकार मेरे क्रोध को शान्त न करते तो शत्रुपक्ष की प्रशंसा करने वाले तुम दोनों पापियों का मैं अवश्य इसी समय वध करता, इस प्रकार कहे हुए शुक तथा सारण लज्जित हो "जय" शब्द से आशीर्वाद देते हुए बाहर चले गये ॥

अब्रवीच्च दशग्रीवः समीपस्थं महोदरम् ।
उपस्थापय मे शीघ्रं चारानिति निशाचरः॥५॥
ततश्चाराः सन्त्वरिताः प्राप्ताः पार्थिवशासनात् ।
तानब्रवीत्ततो वाक्यं रावणो राक्षसाधिपः ॥ ६ ॥

चरान्प्रत्यायिकाञ्छूरान्धीरान्विगतसाध्वसान् ।
इतो गच्छत रामस्य व्यवसायं परीक्षितुम् ॥ ७ ॥

अर्थ—तब रावण ने अपने समीप बैठे हुए महोदर को आज्ञा दी कि शीघ्र ही मेरे गुप्तचरों को बुलाओ, तत्पश्चात् राजा की आज्ञा पाते ही गुप्तचर शीघ्र आगये, फिर उन विश्वासी, शूरवीर, धीर तथा भय से रहित गुप्तचरों को रावण ने आज्ञा दी कि राम की सेना में जाकर वहां का सब हाल ज्ञात करो कि :—

कथं स्वपिति जागर्ति किमद्य च करिष्यति ।
विज्ञाय निपुणं सर्वमागन्तव्यमशेषतः ॥ ८ ॥
चारेण विदितः शत्रुः पण्डितैर्वसुधाधिपैः ।
युद्धे स्वल्पेन यत्नेन समासाद्य च निरस्यते॥९॥

अर्थ—वह लोग किस समय सोते जागते हैं और अब क्या करेंगे, इत्यादि सब वृत्त ज्ञातकर तुम लोग यहां शीघ्र ही चले आओ, क्योंकि जब दूतों द्वारा शत्रु के आचरण भलेप्रकार विदित होजाते हैं तो नीतिज्ञ राजा थोड़े ही यत्न से शत्रु को भगा देते हैं ॥

चारास्तु ते तथेत्युक्त्वा प्रहृष्टा राक्षसेश्वरम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं जग्मुर्यत्र रामः स लक्ष्मणः ॥१०॥
ते सुवेलस्य शैलस्य समीपे रामलक्ष्मणौ ।
प्रच्छन्ना ददृशुर्गत्वा ससुग्रीवविभीषणौ ॥ ११ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् वह गुप्तचर तथास्तु कहकर प्रसन्न हुए रावण की प्रदक्षिणा करके वहां गये जहां लक्ष्मण सहित राम थे, उन छिपे हुए गुप्तचरों ने सुवेल पर्वत के समीप जाकर राम, लक्ष्मण, सुग्रीव और विभीषण को देखा ॥

ततस्तमक्षोभ्यबलं लङ्कायां नृपतेश्चराः ।
सुवेले राघवं शैले निविष्टं प्रत्यवेदयन् ॥ १२ ॥

अर्थ—तब उन गुप्तचरों ने सब कुछ देख भाल लंका में आकर रावण को बतलाया कि राम ने सुवेल पर्वत के समीप बड़ी भारी सेना की छावनी डाली है ॥

ततः स मंत्रयामास राक्षसैः सचिवैः सह ।
मंत्रयित्वा तु दुर्धर्षः क्षमं यत्तदनन्तरम् ॥ १३ ॥
विसर्जयित्वासचिवान्प्रविवेश स्वमालयम् ।
विद्युज्जिह्वं च मायाज्ञमब्रवीद्राक्षसाधिपः ॥ १४ ॥
मोहयिष्यावहे सीतां मायया जनकात्मजाम् ।
शिरो मायामयं गृह्य राघवस्य निशाचर ॥ १५ ॥

अर्थ—तदनन्तर रावण ने अपने मंत्रियों से कहा कि जो अब कर्तव्य है उसके विषय में विचार करना चाहिये, यह कहकर मंत्रियों को विसर्जन करके रावण अपने महल में प्रविष्ट हुआ और वहां मायावी विद्युज्जिह्व से बोला कि हम दोनों माया से सीता को मोहेंगे,इसलिये हे राक्षस ! तू राघव का मायामय सिर और:—

मां त्वं समुपतिष्ठस्व महच्च सशरं धनुः ।
एवमुक्तस्तथेत्याह विद्युज्जिह्वो निशाचरः ॥१६॥

दर्शयामास तां मायां सुप्रयुक्तां स रावणे ।
तस्य तुष्टोऽभवद्राजा प्रददौ च विभूषणम् ॥१७॥
अशोकवनिकायां च सीतादर्शनलालसः ।
नैर्ऋतानामधिपतिः संविवेश महाबलः ॥ १८ ॥

अर्थ—बाणसहित बड़ा धनुष लेकर शीघ्र ही मेरे पास आ, इस प्रकार कहे हुए विद्युज्जिह्व राक्षस ने तथास्तु कहा, फिर राम का सिर बनाकर उसने रावण को बहुत अच्छी माया दिखलाई जिससे राजा ने प्रसन्न होकर उसको भूषण दिया, तत्पश्चात राक्षसों का अधिपति बलवान् रावण सीता के देखने की लालसा से अशोकवाटिका में आया ॥

ततो दीनामदीनार्हां ददर्श धनदानुजः ।
अधोमुखीं शोकपरामुपविष्टां महीतले ॥१९॥
भर्तारं समनुध्यांतीमशोकवनिकांगताम् ।
उपास्यमानां घोराभीराक्षसीभिरदूरतः ॥ २० ॥

अर्थ—और वहां दुःख सहने के अयोग्य परन्तु दुःखी सीता को उस कुबेर के छोटे भाई ने देखा, उस समय सीता नीचे का मुख किये शोकयुक्त हुई पृथिवी पर बैठी अशोकवाटिका में अपने पति राम का ध्यान कर रही थी और उसके चारो ओर भयङ्कर राक्षसियां बैठी थीं ॥

उपसृज्य ततः सीतां प्रहर्ष नाम कीर्तयन् ।
इदं च वचनं धृष्टमुवाच जनकात्मजाम् ॥२१॥

सांत्व्यमाना मया भद्रे यमाश्रित्य विमन्यसे ।
खरहन्ता स ते भर्त्ता राघवः समरे हतः ॥२२॥

अर्थ—तत्पश्चात् रावण सीता के समीप जाकर हर्ष से अपना नाम बतलाता हुआ जनकसुता से यह ढीठ बचन बोला कि हे भद्रे ! मेरे आश्वासन देने पर भी जिसके सहारे तू मेरा अपमान करती रही है वह खर का हनन करने वाला तेरा भर्त्ता राघव युद्ध में मारा गया है ॥

शृणु भर्तृवधं सीते घोरं वृत्रवधं यथा ।
समायातः समुद्रान्तं हन्तुं मां किल राघवः ॥२३॥
वानरेन्द्रप्रणीतेन बलेन महतावृतः ।
सन्निविष्टः समुद्रस्य पीड्य तीरमथोत्तरम् ॥२४॥

अर्थ—हे सीते ! वृत्रासुर के वध तुल्य अपने भर्त्ता राम का वध सुन, राम वानरपति सुग्रीव से प्रेरित हो बड़ी सेना लेकर मुझे मारने के लिये समुद्र के पार तक पहुंचा, और समुद्र के उत्तरी किनारे को ठीक करके छावनी डाली ॥

अथाध्वनि परिश्रान्तमर्धरात्रे स्थितं बलम् ।
सुखसुप्तं समासाद्य चरितं प्रथमं चरैः ॥२५॥
तत्प्रहस्तप्रणीतेन बलेन महता मम ।
बलमस्य हतं रात्रौ यत्र रामः स लक्ष्मणः ॥२६॥
अथ सुप्तस्य रामस्य प्रहस्तेन प्रमाथिना ।
असक्तं कृतहस्तेन शिरश्छिन्नं महासिना ॥२७॥

अर्थ—तत्पश्चात् मार्ग की थकी आधी रात के समय सुख से सोई हुई उस सेना को प्राप्त होकर पहले मेरे गुप्तचरों ने काम किया, और फिर प्रहस्त द्वारा प्रेरी हुई मेरी बड़ी सेना ने रात्री के समय उसकी सेना का हनन किया जिसमें राम लक्ष्मण दोनों थे, फिर उसी समय सोये हुए राम का शिर कृतहस्त=सधे हुए हाथ वाले प्रबल प्रहस्त ने तलवार से काट डाला ॥

एवं तव हतो भर्त्ता ससैन्यो मम सेनया ।
क्षतजार्द्रं रजोध्वस्तमिदं चास्याहृतं शिरः ॥२८॥
ततः परमदुर्धर्षो रावणो राक्षसेश्वरः ।
सीतायामुपशृण्वन्त्यां राक्षसीमिदमब्रवीत् ॥२९॥

अर्थ—सो इस प्रकार तेरा सेनासहित भर्त्ता मेरी सेना ने मारडाला और रुधिर तथा धूलि से लिपटा हुआ उसका यह शिर यहां लाया गया है, तदनन्तर परम दुर्धर्ष राक्षसेश्वर रावण ने सीता के सुनते हुए एक राक्षसी से कहा कि:—

राक्षसं क्रूरकर्माणं विद्युज्जिह्वं समानय ।
येन तद्राघवशिरः संग्रामात्स्वयमाहृतम् ॥३०॥
विद्युजिह्वस्तदा गृह्य शिरस्तत्स शरासनम् ।
प्रणामं शिरसा कृत्वा रावणस्याग्रतः स्थितः ॥३१॥

अर्थ—क्रूरकर्मा राक्षस विद्युज्जिह्व को बुलाला जो स्वयं राम के शिर को संग्राम से लाया है, तब उसने आकर धनुष सहित उस शिर को उठा रावण को प्रणाम कर उसके आगे खड़ा होगया ॥

तमब्रवीत्ततो राजा रावणो राक्षसं स्थितम् ।
विद्युज्जिह्व महाजिह्वं समीप परिवर्तिनम् ॥३२॥
अग्रतः कुरु सीतायाः शीघ्रं दाशरथेः शिरः ।
अवस्थां पश्चिमां भर्तुः कृपणां साधु पश्यतु ॥३३॥
एवमुक्तन्तु तद्रक्षः शिरस्तत्प्रियदर्शनम् ।
उपनिक्षिप्य सीतायाः क्षिप्रमन्तरधीयत ॥३४॥

अर्थ—तत्पश्चात् समीप खड़े हुए बड़ी जिह्वा वाले विद्युजिह्व राक्षस से रावण बोला कि राम का शिर सीता के आगे कर ताकि यह अपने भर्त्ता की पिछली दीन अवस्था भले प्रकार देखले, रावण के उक्त प्रकार कथन करने पर उस प्रियदर्शन सीता के आगे शिर धरकर वह राक्षस शीघ्र ही अन्तर्धान होगया॥

रावणाश्चापि चिक्षेप भास्वरं कार्मुकं महत् ।
त्रिषु लोकेषु विख्यातं रामस्यैतदितिब्रुवन् ॥३५॥
इदं तत्तवरामस्य कार्मुकं ज्या समावृतम् ।
इह प्रहस्तेनानीतं तं हत्वा निशिमानुषम् ॥३६॥

अर्थ—फिर रावण ने तीनो लोकों में विख्यात राम का चमकता हुआ सुवर्णमय धनुष सीता के आगे फेंककर कहा कि येह ज्या सहित मानुष राम का धनुष है जिस राम को प्रहस्त रात्रि में मारकर लाया है ॥

स विद्युज्जिह्वेन सहैव तच्छिरो धनुश्च भूमौ

विनिकीर्यमाणः । विदेहराजस्य सुतां यश-
स्विनीं ततोऽब्रवीत्तां भव मे वशानुगा॥२७॥

अर्थ-फिर विद्युज्जिह्व का लाया हुआ वह शिर वा धनुष भूमि में धरकर रावण विदेहराज की कन्या यशस्विनी सीता से बोला कि अब तुम राम की आशा छोड़कर हमारे वशीभूत होजाओ ॥

इति द्वादशः सर्गः

अथ त्रयोदशः सर्गः

सं०-अब सीता का करुणामय विलाप कथन करते हैं:—

सा सीता तच्छिरो दृष्ट्वा तच्च कार्मकमुत्तमम् ।
नयने मुखवर्णं च भर्तुस्तत्सदृशं मुखम् ॥१॥
केशान्केशान्तदेशं च तं च चूड़ामणिं शुभम् ।
एतैः सर्वैरभिज्ञानैरभिज्ञाय सुदुःखिता ॥२॥

अर्थ-उस शिर, उत्तम धनुष, नेत्र, मुख का रङ्ग, पति के सदृश मुख, बाल, केशान्तदेश=मस्तक आदि पति के सारे चिन्हों को पहचान और चूड़ामणि को देखकर सीता अति दुःखित हुई ॥

विजगर्हेऽत्र कैकेयीं क्रोशन्ती कुररी यथा ॥३॥
सकामा भव कैकेयि हतोऽयं कुलनन्दनः ।
कुलमुत्सादितं सर्वं त्वया कलहशीलया ॥ ४ ॥

आर्येण किं नु कैकेय्याः कृतं रामेण विप्रियम् ।
यन्मया चीरवसनं दत्त्वा प्रव्राजितो वनम् ॥ ५ ॥

अर्थ—और कुंज पक्षी की भांति चिल्लाकर रुदन करती हुई कैकेयी को निन्दने लगी कि हे कैकेयि ! तू पूर्ण कामना वाली हो वह कुलनन्दन हत होगया, तुझ कलहशीला ने सारा कुल नष्ट कर दिया, मैं नहीं जानती राम ने कैकेयी का क्या अप्रिय किया था जिसकारण चीर धारण करा मुझ सहित राघव को बनवास दिया था ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेही वेपमाना तपस्विनी ।
जगाम जगतीं बाला छिन्ना तु कदली यथा ॥६॥
सा मुहूर्तात्समाश्वस्य परिलभ्याथ चेतनाम् ।
तच्छिरः समुपास्थाय विललापायतेक्षणा ॥७॥

अर्थ—इस प्रकार कहकर कांपती हुई वह तपस्विनी बाला कटे हुए केले की भांति भूमि पर गिर गई, और कुछ काल के पश्चात् होश में आने पर उस शिर के समीप ही वह विशालनेत्रा विलाप करने लगी कि:—

हा हतास्मि महावाहो वीरव्रतमनुव्रत ।
इमां ते पश्चिमावस्थां गतास्मि विधवा कृता ॥८॥
प्रथमं मरणं नार्या भर्तुर्वैगुण्यमुच्यते ।
सुवृतः साधुवृत्तायाः संवृत्तस्त्वं ममाग्रतः ॥ ९ ॥

महद्दुःखं प्रपन्नायामग्नायाः शोकसागरे ।
यो हि मामुद्यतस्त्रातुं सोपि त्वं विनिपातितः॥१०॥
सा श्वश्रूर्मम कौसल्या त्वया पुत्रेण राघव ।
वत्सला ते यथा धेनुर्विवत्सा वत्सला कृता ॥११॥

अर्थ—हे महाबाहो, हे वीरव्रत के अनुकूल चलने वाले! हा मैं मारी गई, मैं विधवा हुई इस तेरी अन्तिम अवस्था को देखती हूं, भर्त्ता का स्त्री से प्रथम मरना विगुण कहा जाता है, सो तू उत्तम आचरणों वाला मुझ श्रेष्ठ आचरण वाली पत्नी से प्रथम हत हुआ है, महान् दुःख को प्राप्त, शोकसागर में डूबी हुई मुझे देखकर "स्वयम्वर समय" एकमात्र आपही मेरी रक्षा करने को उद्यत हुए थे सो आपभी हत होगये, हे राघव ! मेरी सासु कौसल्या आप जैसे पुत्र से पुत्रवती थी, सो अब वह बछड़े से विछुड़ी हुई धेनु के समान महादुःख भोगेगी ॥

पित्रा दशरथेन त्वं श्वशुरेण ममानघ ।
सर्वैश्च पितृभिः सार्धं नूनं स्वर्गे समागतः ॥१२॥
दिवि नक्षत्र भूतं च महत्कर्म कृतं तथा ।
पुण्यं राजर्षिवंशं त्वमात्मनः समुपेक्षसे ॥ १३ ॥

अर्थ—हे निष्पाप ! मेरे श्वशुर अपने पिता दशरथ और सब पितर=पितामह आदि के साथ आप स्वर्ग में जामिले, हे मेरे प्रिय! जैसे आकाश में नक्षत्र प्रकाशित हैं इसी प्रकार अपने पिता की आज्ञापालन रूप कर्म करके सब भूतों में प्रकाशित आप पुण्यरूप राजर्षियों के वंश में उत्पन्न होकर क्यों मेरी उपेक्षा करते हैं ॥

किं मां न प्रेक्षसे राजन् किं वा न प्रतिभाषसे।
बालां बालेन संप्राप्तां भार्यां मां सहचारिणीम्॥१४॥
संश्रुतं गृह्नता पाणिं चरिष्यामीति यत्त्वया।
स्मर तन्नाम काकुत्स्थ नय मामपि दुःखिताम्॥१५॥

अर्थ–हे राजन् ! जिस बाला को आपने बाल होते हुए विवाहा था उस मुझ सहचारिणी भार्या को अब आप न देखते और न बात करते हैं, मेरा हाथ पकड़कर जो आपने प्रतिज्ञा की थी कि सदा तेरे साथ विचरुंगा, सो हे काकुत्स्थ ! उसको स्मरण कर मुझ दुःखिया को भी साथ ले चलें॥

कस्मान्मामपहाय त्वं गतो गतिमतांवर।
अस्माल्लोकादमुंलोकंत्यक्त्वामामपिदुःखिताम्॥१६॥
कल्याणैरुचिरंगात्रं परिष्वक्तं मयैवतु।
क्रव्यादैस्तच्छरीरन्तेनूनं विपरिकृष्यते॥ १७॥
अग्निष्टोमादिभिर्यज्ञैरिष्टवानाप्त दक्षिणैः।
अग्निहोत्रेण संस्कारं केन त्वं न तु लप्स्यसे॥१८॥

अर्थ–हे गतिवालों में श्रेष्ठ ! आप मुझ दुःखिया को त्यागकर कैसे इस लोक से परलोक को प्राप्त हुए हैं, आपके जिस शुभ रुचिर गात्र को मैं आलिङ्गन करती थी हाय ! अब उस शरीर को गृद्धादि मांस भक्षी जीव इधर उधर खींचते होंगे, जिस आपने पूर्ण दक्षिणा वाले अग्निष्टोमादि यज्ञों से यजन किया है उस आपको मरण काल में संस्कारार्ह अग्नि न मिली अर्थात् आपका विधिवत् संस्कार भी न किया गया॥

प्रव्रज्यामुपपन्नानां त्रयाणामेकमागतम् ।
परिप्रेक्ष्यति कौसल्या लक्ष्मणं शोकलालसा ॥१९॥
स तस्याः परिपृच्छंत्यावधं मित्रबलस्य ते ।
तव चाख्यास्यते नूनं निशाया राक्षसैर्वधम् ॥२०॥
सा त्वां सुप्तं हतं ज्ञात्वा मां च रक्षो गृहंगताम् ।
हृदयेनावदीर्णेन न भविष्यति राघव ॥ २१ ॥
मम हेतोरनार्याया अनघः पार्थिवात्मजः ।
रामः सागरमुत्तीर्य वीर्यवान् गोष्पदे हतः ॥ २२ ॥

अर्थ—वनवास को गये तीन में से अकेला आये हुए लक्ष्मण को शोक से सन्तप्त हुई कौसल्या जब पूछेंगीं तब हे पते ! वह कहेंगे कि रात्रि समय राक्षसों ने तुम्हारे मित्र सुग्रीव की सेना वा तुम्हें मारडाला, हे राघव ! तुम्हें मरा हुआ और मुझे राक्षस के घर में पड़ी हुई सुनकर उनका हृदय फट जायगा और वह किसी प्रकार भी जीवित न रह सकेंगीं, हाय ! मुझ अनार्या के लिये निष्पाप, शक्तिसम्पन्न राजकुमार राम सागर पार होकर गोष्पद=गाय के खुरभर जल में हत होगये ॥

अहं दाशरथेनोढा मोहात्स्वकुलपांसनी ।
आर्यपुत्रस्य रामस्य भार्या मृत्युरजायत ॥ २३ ॥
साधु घातय मां क्षिप्रं रामस्योपरि रावण ।
समानय पतिं पत्न्या कुरु कल्याणमुत्तमम् ॥२४॥

अर्थ—उस आर्य्यपुत्र राम ने भूल से मुझ कुलनाशनी का

अपने साथ विवाह किया, क्योंकि मेरे ही कारण उस राघव की मृत्यु हुई है, हे रावण ! तू मुझे अभी राम के ऊपर मार कर पत्नी को पति के साथ मिला उत्तम कल्याण कर ॥

शिरसा मे शिरश्चास्य कायं कायेन योजय ।
रावणानुगमिष्यामि गतिं भर्तुर्महात्मनः ॥ २५ ॥
इतीव दुःख संतप्ता विललापायतेक्षणा ।
भर्तुः शिरो धनुश्चैव ददर्श जनकात्मजा ॥ २६ ॥

अर्थ—हे रावण ! इस राघव के शिर के साथ मेरा शिर और धड़ के साथ धड़ जोड़ दे, मैं उस महात्मा भर्ता के गमन करते हुए साथ जाउंगी, इस प्रकार जनकसुता अपने भर्ता राम का शिर और धनुष देखकर दुःख से सन्तप्त हुई ने उस समय बहुत विलाप किया ॥

एवं लालप्यमानायां सीतायां तत्र राक्षसः ।
अभिचक्राम भर्तारमनीकस्थः कृताञ्जलिः ॥२७॥
विजयस्वार्यपुत्रेति सोऽभिवाद्य प्रसाद्य च ।
न्यवेदयदनुप्राप्तं प्रहस्तं वाहिनीपतिम् ॥ २८ ॥
अमात्यैः सहितः सर्वैः प्रहस्तस्त्वामुपास्थितः ।
किंचिदात्ययि कं कार्यं तेषां त्वं दर्शनं कुरु॥२९॥

अर्थ—उक्त प्रकार सीता विलाप कर रही थी कि एक सैनिक राक्षस हाथ जोड़े हुए वहां रावण के पास आया, और हे आर्य्यपुत्र ! आपकी जय हो, इस प्रकार अभिवादन द्वारा

रावण को प्रसन्न करके सेनापति प्रहस्त का आना बतलाया कि कुछ आवश्यकीय कार्य्य के कारण मन्त्रियों सहित प्रहस्त आपके समीप आये हैं आप उन्हें दर्शन दीजिये ॥

एतच्छ्रुत्वा दशग्रीवो राक्षसप्रतिवेदितम् ।
अशोकवनिकां त्यक्त्वा मंत्रिणां दर्शनं ययौ॥३०॥
अन्तर्धानं तु तच्छीर्षं तच्च कार्मुकमुत्तमम् ।
जगाम रावणस्यैव निर्याण समनन्तरम् ॥ ३१ ॥

अर्थ—राक्षस के कहे हुए उक्त वचन को सुनकर रावण अशोकवाटिका को त्याग मन्त्रियों से जाकर मिला, और ज्यों ही रावण अशोकवाटिका से निकलकर गया त्यों ही वह सिर और उत्तम धनुष दोनों छिप गये ॥

अविदूरस्थ तान्सर्वान्बलाध्यक्षान् हितैषिणः ।
अब्रवीत्काल सदृशो रावणो राक्षसाधिपः ॥३२॥
शीघ्रं भेरी निनादेन स्फुटं कोणाहतेन मे ।
समानयध्वंसैन्यानि वक्तव्यं च न कारणम् ॥३३॥

अर्थ—तदनन्तर अपना हित चाहने वाले समीप स्थित सेनापतियों को बुलाकर समयानुसार रावण ने उनको आज्ञा दी तुम शीघ्र ही भेरी के स्पष्ट घोर शब्द द्वारा मेरी सब सेना को एकत्रित करो पर उसके एकत्रित होने का कारण किसी को विदित न हो ॥

ततस्तथेति प्रतिगृह्य तद्वचस्तदैवदूताः

सहसामहद्बलम्। ससानयंश्चैव समागतं
च न्यवेदयन्भर्तरि युद्धकांक्षिणि ॥३४॥

अर्थ—रावण की आज्ञा पाते ही दूत सब सेना को बुला लाये और युद्ध के लिये उद्यत हुई सेना के आने पर दूतों ने रावण से कहा कि सब सेना एकत्रित होकर तैयार है ॥

रावणस्तु महामात्ये मन्त्रयित्वा विमृश्य च ।
लङ्कायास्तु तदागुप्तिं कारयामास राक्षसः ॥३५॥
व्यादिदेश च पूर्वस्यां प्रहस्तं द्वारिराक्षसम् ।
दक्षिणस्यां महावीर्यौ महापार्श्वमहोदरौ ॥ ३६ ॥

अर्थ—तदनन्तर रावण ने अपने सब मन्त्रियों से परामर्श करके सब ओर से लङ्का की रक्षा करने का प्रबन्ध किया, पूर्व के द्वार पर प्रहस्त नामक सेनापति और दक्षिण के द्वार पर महापराक्रमी महापार्श्व तथा महोदर को रहने की आज्ञा दी ॥

पश्चिमायामथद्वारिपुत्रामिन्द्रजितं तदा ।
व्यादिदेश महामायं राक्षसैर्बहुभिर्वृतम् ॥ ३७ ॥
उत्तरस्यां पुरद्वारि व्यादिश्य शुकसारणौ ।
स्वयं चात्र गमिष्यामि मन्त्रिणस्तानुवाचह ॥३८॥
राक्षसन्तु विरूपाक्षं महावीर्य पराक्रमम् ।
मध्यमेऽस्थापयद्गुल्मे बहुभिः सह राक्षसैः ॥३९॥

अर्थ—पश्चिमी द्वार पर बहुत राक्षसों सहित अपने महा मायावी पुत्र मेघनाद को नियत किया, उत्तर के द्वार पर जिधर

राम की सेना पड़ी थी शुक तथा सारण नामक मन्त्रियों को रहने की आज्ञा दी और कहा कि इसी द्वार पर हम भी आवेंगे, और महापराक्रमी विरूपाक्ष राक्षस को बहुत राक्षसों सहित बीच लङ्का में जहां सब सेना रहती थी नियत किया ॥

विसर्जयामास ततः समन्त्रिणो विधानमाज्ञाप्य पुरस्य पुष्कलम् । जयाशिषा मन्त्रिगणेन पूजितो विवेश सोन्तःपुरमृद्धिमन्महत ॥४०॥

अर्थ–इस प्रकार सब योद्धाओं का विभाग करके सब मन्त्रियों को विदा किया और जाते हुए सबको पुर की रक्षा का विधान भलेप्रकार समझा दिया, तब सब मन्त्रियों ने "जय" कहकर आशीर्वाद दिया, पश्चात् रावण अपने समृद्धियुक्त अन्तःपुर को चलागया ॥

इति त्रयोदशः सर्गः

अथ चतुर्दशः सर्गः

सं०–अब "सरमा" नामक राक्षसी का सीता को आश्वासन देना कथन करते हैं :—

सीतां तु मोहितां दृष्ट्वा सरमा नाम राक्षसी ।
आससादाथ वैदेहीं प्रियां प्रणयिनी सखी ॥१॥
मोहितां राक्षसेन्द्रेण सीतां परमदुःखिताम् ।
आश्वासयामास तदा सरमा मृदुभाषिणी ॥ २ ॥

सा हि तत्र कृता मित्रं सीतया रक्ष्यमाणया ।
रक्षन्ती रावणादिष्टा सानुक्रोशा दृढव्रता ॥ ३ ॥

अर्थ–"रावण के चले जाने पर" सीता को अति दुःखित देखकर उसकी प्यारी सखी सरमा नामक राक्षसी सीता के निकट पहुंची, और रावण से दुःखित सीता को मधुर बाणी द्वारा आश्वासन देने लगी, सरमा से रक्षा कीजाती हुई सीता ने उसको अपना सहेली बना लिया था, सरमा बड़ी दया वाली तथा दृढ़व्रता होने के कारण रावण से कठोर आज्ञा दिये जाने पर भी वह उसकी रक्षा ही करती थी ॥

सा ददर्श सखी सीतां सरमा नष्टचेतनाम् ।
उपावृत्योत्थितां ध्वस्तां बडवामिवपांसुषु ॥ ४ ॥
तां समाश्वासयामास सखी स्नेहेन सुव्रताम् ।
उक्ता यद्रावणेन त्वं प्रयुक्तश्च स्वयं त्वया ॥५॥
लीनया गहने शून्ये भयमुत्सृज्य रावणात् ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नहि मे रावणाद्भयम् ॥ ६ ॥

अर्थ–भार से थकजाने के कारण धूलि में लेटी हुई घोड़ी के समान तथा व्याकुल हुई सीता को सखी सरमा ने देखा, और सहेली के स्नेह से वह उस सुव्रता सीता को आश्वासन देती हुई बोली कि रावण ने जो कुछ तुम से कहा अथवा जो तुमने रावण से कहा वह सब मैंने रावण से भय छोड़कर एकान्त घने बन में स्थित हो सुना है, हे विशालाक्षि ! तुम्हारे अर्थ मुझे रावण से भय नहीं है ॥

स संभ्रान्तश्च निष्क्रान्तो यत्कृते राक्षसेश्वरः ।
तत्र मे विदितं सर्वमभिनिष्क्रम्य मैथिलि ॥७॥
न शक्यं सौपिकं कर्तुं रामस्य विदितात्मनः ।
वधश्च पुरुषव्याघ्रे तस्मिन्नैवोपपद्यते ॥ ८ ॥

अर्थ—हे मैथिलि ! वह राक्षसपति रावण घबराकर जिस लिये यहां से निकला है और निकलकर जहां गया है वह सब मुझे विदित है, आत्मज्ञानी राम राक्षसों का स्वभाव भले प्रकार जानते हैं, इसलिये उनके सोने पर भी कोई युद्ध नहीं करसक्ता, अतएव उन पुरुषव्याघ्र राम का वध होना किसी प्रकार भी सम्भव नहीं ॥

विक्रान्तो रक्षिता नित्यमात्मनश्च परस्य च ।
न हतो राघवः श्रीमान्सीते शत्रुनिवर्हणः ॥९॥
अयुक्तबुद्धिकृत्येन सर्वभूतविरोधिना ।
इयं प्रयुक्ता रौद्रेण माया मायाविना त्वयि ॥१०॥

अर्थ—हे सीते ! वह विक्रम वाला, नित्य अपना तथा दूसरों का रक्षक और शत्रुओं का हनन करने वाला राम मारा नहीं गया, यह तो इस अयुक्त बुद्धि तथा दुष्ट कर्मों वाले और सब के विरोधी इस मायावी रावण ने तेरे लिये माया का प्रयोग किया है ॥

शोकस्ते विगतः सर्वकल्याणं त्वामुपस्थितम् ।
ध्रुवं त्वां भजते लक्ष्मीः प्रियं ते भवति शृणु ॥११॥

उत्तीर्य सागरं रामः सह वानरसेनया ।

सन्निविष्टः समुद्रस्य तीरमासाद्य दक्षिणम् ॥१२॥

अर्थ–तेरा तो अब सब शोक नष्ट होचुका, सारा कल्याण तुझे प्राप्त होगा, तुझे लक्ष्मी अटल सेवन करेगी, हे सीते ! तू अपना कल्याण सुन, राम वानरसेना के साथ सागर पार हो समुद्र के दक्षिण तीर पर अपनी छावनी डाले हुए विद्यमान हैं ॥

दृष्टो मे परिपूर्णार्थः काकुत्स्थः सहलक्ष्मणः ।

सहितैः सागरां तस्थैर्बलैस्तिष्ठति रक्षितः ॥१३॥

अनेन प्रेषिता येच राक्षसा लघुविक्रमाः ।

राघवस्तीर्ण इत्येवं प्रवृत्तिस्तैरिहाहृता ॥१४॥

स तां श्रुत्वा विशालाक्षि प्रवृत्तिं राक्षसाधिपः ।

एषः मन्त्रयते सर्वैः सचिवैः सह रावणः ॥१५॥

अर्थ–मैंने पूर्ण प्रकार से लक्ष्मण सहित राम को देखा है जो वानरों की भारी सेना से रक्षित समुद्र पर विराजमान हैं, और इस रावण ने भी जो लघुविक्रम दूत वहां भेजे थे वह भी यही समाचार लाये हैं कि राम समुद्र उतर आये,सो हे विशालाक्षि! राक्षसों का पति यह समाचार सुनकर सब मन्त्रियों के साथ विचार कर रहा है ॥

सभाजिता त्वं रामेण मोदिष्यसि महात्मना ।

सुवर्षेण समायुक्ता यथा सस्येन मेदिनी ॥१६॥

अर्थ—सो तू अब शीघ्र ही महात्मा राम से आदर पाती हुई आनन्द मनायेगी, जैसे उत्तम वृष्टि से सुन्दर खेती द्वारा पृथिवी सुशोभित होती है ॥

इति चतुर्दशः सर्गः

अथ पञ्चदशः सर्गः

सं०—अब राम का लंका को चारो द्वारों से घेरकर अङ्गद को रावण के समीप भेजना कथन करते हैं :—

स तु कृत्वा सुवेलस्य मतिमारोहणं प्रति ।
लक्ष्मणानुगतो रामः सुग्रीवमिदमब्रवीत् ॥१॥
विभीषणं च धर्मज्ञमनुरक्तं निशाचरम् ।
सुवेलं साधुशैलेन्द्रमिमं धातुशतैश्चितम् ॥२॥
अध्यारोहामहे सर्वे वत्स्यामोऽत्र निशामिमाम् ।
लङ्कां चालोकयिष्यामो निलयं तस्य रक्षसः ॥३॥

अर्थ—इधर लक्ष्मण सहित राम सुवेल पर्वत पर चढ़ने का निश्चय करके सुग्रीव तथा धर्म में अनुरक्त विभीषण से बोले कि अनेक धातुओं से भरे हुए इस पर हम सब चढ़कर इस रात यहीं रहें और यहीं से लङ्का का सब दृश्य देखें जो उस राक्षस रावण का निवास स्थान है ॥

ते त्वदीर्घेण कालेन गिरिमारुह्य सर्वतः ।
लङ्कां राक्षससम्पूर्णां ददृशुर्हरियूथपाः ॥४॥

अर्थ—तदनन्तर वह चारो शीघ्र ही सब ओर से उस सुवेल पर्वत पर चढ़ गये और उन्होंने राक्षसों से भरी हुई लङ्का को भले प्रकार देखा ॥

तां रात्रिमुषितास्तत्र सुवेले हरियूथपाः ।
लङ्कायां ददृशुर्वीरा वनान्युपवनानि च ॥५॥

अर्थ—वह रात वहीं उस सुवेल पर्वत पर वास करके उन वानरयूथपतियों ने लङ्का के वन उपवनों को भले प्रकार देखा ॥

सम सौम्यानि रम्याणि विशालान्यायतानि च ।
दृष्टि रम्याणि ते दृष्ट्वा बभूवुर्जात विस्मया ॥६॥

अर्थ—और उन सब उत्तम, रमणीय, विशाल तथा सुहावने वन उपवनों को देखकर सब वानर बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ॥

अवतीर्य तु धर्म्मात्मा तस्माच्छैलात्स राघवः ।
परैः परमदुर्धर्षं ददर्श बलमात्मनः ॥७॥
सन्नह्य तु स सुग्रीवः कपिराज बलं महत् ।
कालज्ञो राघवः काले संयुगायाभ्यचोदयत् ॥८॥
ततः काल महाबाहुर्बलेन महतावृतः ।
प्रविष्टः पुरतो धन्वी लङ्कामभिमुखः पुरीम् ॥९॥

अर्थ—फिर उन धर्मात्मा राम ने उस पर्वत पर से उतरकर

शत्रुओं से भयभीत न होने वाली तथा बड़े कष्ट से विजय होने वाली अपनी सेना को देखा, और देखकर काल के जानने वाले राम ने सुग्रीव सहित सब अस्त्र शस्त्र धारण कर सेना के लिये कूच करने की आज्ञा दी और आप धनुष हाथ में लेकर सेना के आगे २ लङ्कापुरी की ओर चले ॥

तौ विभीषणसुग्रीवौ हनूमान् जाम्बवान्नलः ।
ऋक्षराजस्तथा नीलो लक्ष्मणश्चान्वयुस्तदा ॥१०॥
ततः पश्चात्सुमहती पृतनर्क्षवनौकसाम् ।
प्रच्छाद्य महतीं भूमिमनुयातिस्म राघवम् ॥११॥

अर्थ—विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, नल, नील तथा लक्ष्मण यह सब राम के पीछे २ और इनके पीछे ऋक्ष तथा वानरों की भारी सेना बहुत दूर तक भूमि को ढांपे हुए चली ॥

तौ त्वदीर्घेण कालेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रावणस्य पुरींलङ्कामासेदतुररिन्दमौ ॥१२॥
तां सुरैरपि दुर्धर्षां रामवाक्य प्रचोदिताः ।
यथानिदेशं संपीड्य न्यविशन्त वनौकसः ॥१३॥

अर्थ—तदनन्तर शत्रुओं के दमन करने वाले दोनों भाई राम लक्ष्मण थोड़े काल में ही सेनासहित लङ्कापुरी में पहुंचे, और राम की आज्ञानुसार देवताओं से भी दुर्धर्ष उस वानरसेना ने लङ्कापुरी को पीड़ित कर वहां अपने डेरे जमा दिये ॥

लङ्कायास्तूत्तरद्वारं शैलशृङ्गमिवोन्नतम् ।
रामः सहानुजो धन्वी जुगोप च रुरोध च ॥१४॥

नान्यो रामाद्धि तद्द्वारं समर्थः परिरक्षितुम् ।
रावणाधिष्ठितं भीमं वरुणेनेव सागरम् ॥१५॥

अर्थ—पर्वत के शिखर समान ऊंचे लङ्का के उत्तर द्वार को छोटे भाई लक्ष्मण सहित धनुर्धारी राम ने रोका अर्थात् उस पर दोनों भाई नियत हुए, क्योंकि अन्य कोई वरुण से सागर की भांति भयङ्कर रावण से सुरक्षित उस द्वार की रक्षा में समर्थ नहीं होसक्ता था ॥

पूर्वं तु द्वारमासाद्य नीलो हरिचमूपतिः ।
अतिष्ठत्सह मैन्देन द्विविदेन च वीर्यवान् ॥१६॥
अंगदो दक्षिणद्वारं जग्राह सुमहाबलः ।
ऋषभेण गवाक्षेण गजेन गवयेन च ॥१७॥

अर्थ—पूर्व द्वार पर पहुंचकर बलवान् वानर सेनापति नील, द्विविद तथा मैन्द खड़े हुए, और महाबली अङ्गद ने ऋषभ, गवाक्ष, गज तथा गवय को साथ लेकर दक्षिण द्वार को रोका ॥

हनुमान्पश्चिमद्वारं ररक्ष बलवान्कपिः ।
प्रजंघतरसाभ्यां च वीरैरन्यैश्च संगतः ॥१८॥

अर्थ—प्रजंघ, तरस तथा दूसरे वीरों के साथ बलवान् हनुमान् ने पश्चिम द्वार को रोका ॥

मध्यमे च स्वयं गुल्मे सुग्रीवः समतिष्ठत ।
सह सर्वैर्हरिश्रेष्ठैः सुपर्ण पवनोपमैः ॥१९॥

पश्चिमेन तु रामस्य सुषेणः सहजाम्बवान् ।
अदूरान्मध्यमे गुल्मे तस्थौ बहुबलानुगः ॥२०॥

अर्थ—और मध्य के गुल्म=मोरचे पर गरुड़ तथा पवन तुल्य सब वानर श्रेष्ठों को साथ लेकर स्वयं सुग्रीव खड़ा हुआ, और राम के पश्चिम की ओर समीप ही बहुतसी सेना लेकर जाम्बवान् सहित सुषेण मध्य के मोरचे पर नियत हुआ ॥

राघवः सन्निवेश्यैव स्वसैन्यं रक्षसां बधे ।
संमन्त्र्य मन्त्रिभिः सार्धं निश्चित्य च पुनःपुनः॥२१॥
विभीषणस्यानुमते राजधर्ममनुस्मरन् ।
अंगदं बालितनयं समाहूयेदमब्रवीत् ॥२२॥

अर्थ—इस प्रकार राम अपनी सेना को राक्षसों के वधार्थ नियुक्त कर मन्त्रियों के साथ विचारपूर्वक पुनः२ निश्चय करके विभीषण की अनुमति द्वारा राजधर्म का स्मरण करते हुए बालि के पुत्र अङ्गद को बुलाकर राम उससे बोले किः—

गत्वा सौम्य दशग्रीवं ब्रूहिमद्वचनात्कपे ॥२३॥
बलेन येन वै सीतां मायया राक्षसाधम ।
मामतिक्रामयित्वा त्वं हृतवांस्तन्निदर्शय ॥२४॥
अराक्षसमिमं लोकं कर्त्ताऽस्मि निशितैः शरैः ।
न चेच्छरणमभ्येषि तामादाय तु मैथिलीम्॥२५॥

अर्थ—हे सौम्य ! मेरे बचन से रावण को जाकर कहो कि हे राक्षसाधम ! जिस बल के घमण्ड पर माया द्वारा मुझे दूर

लेजाकर सीता को हरलाया है वह बल अब मुझे दिखला, यदि तू उस मैथिली को लेकर शीघ्र ही मेरी शरण को प्राप्त न होगा तो मैं इस लोक को अपने तीक्ष्ण बाणों द्वारा राक्षसों से रहित करदूंगा ॥

धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठः संप्राप्तोयं विभीषणः ।
लङ्कैश्वर्यमिदं श्रीमान् ध्रुवं प्राप्नोत्यकण्टकम्॥२६॥
नहि राज्यमधर्मेण भोक्तुं क्षणमपि त्वया ।
ब्रवीमि त्वां हितं वाक्यं क्रियतामौर्ध्वदेहिकम्॥२७॥

अर्थ—और धर्मात्मा राक्षसश्रेष्ठ विभीषण जो मुझे यहां प्राप्त हुए हैं वह लङ्का का अकण्टक राज्य पावेंगे, क्योंकि तू अधर्म से क्षणभर भी राज्य नहीं भोग सकता, सो मैं तुझे हितकर वाक्य कहता हूं अब भी तू अपना परलोक सुधारले अर्थात् पवित्र जीवन वाला होजा ॥

इत्युक्तः स तु तारेयो रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
सोऽतिपत्य मुहूर्तेन श्रीमान् रावणमन्दिरम् ॥२८॥
तद्राम वचनं सर्वमन्यूनाधिकमुत्तमम् ।
सामात्यं श्रवयामास निवेद्यात्मानमात्मना ॥२९॥

अर्थ—बड़े क्लिष्ट कर्मों वाले राम से उक्त प्रकार कहा हुआ वह तारा का पुत्र श्रीमान् अङ्गद शीघ्र ही रावण के मन्दिर को गया और वहां पहुंच प्रथम अपना आप बतलाकर फिर राम का वह उत्तम सन्देश मन्त्रियों सहित रावण को सब ज्यों का त्यों सुनाया ॥

इत्येवं परुषं वाक्यं ब्रुवाणो हरिपुंगवे ।
अमर्षवशमापन्नो निशाचरगणेश्वरः ॥ ३० ॥
ततः स रोषमापन्नः शशास सचिवांस्तदा ।
गृह्यतामिति दुर्मेधा वध्यतामिति चासकृत् ॥३१॥

अर्थ—जब उक्त प्रकार अङ्गद ने कठोर वाक्य कहे तब वह निशाचर रोष को प्राप्त हुआ क्रोधवश हो मन्त्रियों से बोला कि इसको पकड़कर मारदो, इतना सुनते ही अङ्गद बोला कि :—

तोहि पटकि महि सैन हति, चौपट करि तव गाउं ॥
मन्दोदरी समेत शठ, जनकसुतहि ले जाउं ॥

जो अस करउं न तदपि बड़ाई । मुए वधे कछु नहिं मनुसाई ॥
कौल कामवश कृपण विमूढा । अति दरिद्र अयशी अति बूढा ॥
सदा रोगवश सन्तत क्रोधी । रामविमुख श्रुति संत विरोधी॥
तनुपोषक निन्दक अघखानी । जीवत शवसम चौदह प्रानी॥
अस विचारि खल वधौं न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही॥

व्यथयन्राक्षसान्सर्वान्हर्षयंश्चापि वानरान् ।
स वानराणां मध्ये तु रामपार्श्वमुपागतः ॥ ३२ ॥

अर्थ—तदनन्तर वह अङ्गद सब राक्षसों को पीडित तथा सब वानरों को हर्षित करता हुआ वानरों के मध्य में राम के समीप आया ॥

रामस्तु वहुभिर्हृष्टैर्विनदद्भिः प्लवङ्गमैः ।
वृतो रिपु बधाकांक्षी युद्धायैवाभिवर्तत ॥ ३३ ॥

अर्थ–तब राम अनेक गर्जते हुए हृष्ट पुष्ट वानरों के साथ शत्रु के वध की इच्छा से युद्ध के लिये तैयार होगये ॥

तस्मिन्महाभीषणके प्रवृत्ते कोलाहले राक्षस
राजयोधाः । प्रगृह्य रक्षांसि महायुधानि
युगांत वाता इव संविचेरुः ॥ ३४ ॥

अर्थ–तत्पश्चात् महाभयङ्कर कोलाहल होते ही सब राक्षस वीर अपने२ आयुधों को लेकर प्रलय के पवन समान चल दिये ॥

इति पञ्चदशः सर्गः

अथ षोडशः सर्गः

सं०–अब वानर तथा राक्षससेना में युद्ध के बाजों का बजना और लड़ाई का प्रारम्भ होना वर्णन करते हैं:—

निपीड्यमानां धर्मात्मा वैदेहीमनुचिन्तयन् ।
क्षिप्रमाज्ञापयद्रामो वानरान्द्विषतां बधे ॥ १ ॥

अर्थ–उस परम पीडित सीता का चिन्तन करते हुए धर्मात्मा राम ने वानरसेना को शीघ्र ही शत्रुओं के हनन करने की आज्ञा दी ॥

ते ताम्रवक्त्रा हेमाभा रामार्थे त्यक्तजीविताः ।
प्राकाराग्राण्यसंख्यानि ममन्थुस्तोरणानि च ॥२॥
परिखान्पूरयन्तश्च प्रसन्नसलिलाशयान् ।
पांसुभिः पर्वताग्रैश्च तृणैः काष्ठैश्च वानराः ॥३॥

अर्थ—तदनन्तर उन ताम्रवर्ण समान मुखों वाले, सुवर्ण की आभा वाले तथा राम के लिये जीवन को त्यागने वाले बानरों ने कोट के अनेक कमूरों और डेउढ़ियों को तोड़कर निर्मल जलों वाली खाइयों को धूल, पत्थर, तृण तथा काष्ठ से भर दिया ॥

आप्लवन्तः प्लवन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
लङ्कां तामभिधावन्ति महावारणसन्निभाः ॥ ४ ॥

अर्थ—कूदते, फांदते तथा गर्जते हुए हाथियों के समान सैनिक वानर लङ्का की ओर दौड़े ॥

जयत्युरुबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः ।
राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः ॥ ५ ॥
इत्येवं घोषयन्तश्च गर्जन्तश्च प्लवङ्गमाः ।
अभ्यधावन्त लङ्कायाः प्राकारं कामरूपिणः ॥६॥

अर्थ—बड़े बल वाले राम का "जय" हो, महाबली लक्ष्मण का "जय" हो तथा राम से पालित राजा सुग्रीव का "जय" हो, इस प्रकार जयध्वनि कर गर्जते हुए कामरूपी वानर लङ्का के कोट की ओर दौड़े ॥

ततः कोपपरीतात्मा रावणो राक्षसेश्वरः ।
निर्याणं सर्वसैन्यानां द्रुतमाज्ञापयत्तदा ॥ ७ ॥
ततः प्रबोधिता भेर्यश्चन्द्रपाण्डुरपुष्कराः ।
हेमकोणैरभिहता राक्षसानां समंततः ॥ ८ ॥

अर्थ—तदनन्तर कोप से भरे हुए मन वाले राक्षसपति रावण ने शीघ्र ही सब सेनाओं को चढ़ाई की आज्ञा दी, तब सुवर्ण के

दण्डे से ताड़न कीहुई चन्द्रतुल्य श्वेतमुखों वाली राक्षसों की भेरियें सब ओर बजने लगीं ॥

विनेदुश्च महाघोषाः शंखाः शतसहस्रशः ।
राक्षसानां सुघोराणां मुखमारुत पूरिताः ॥ ९ ॥

अर्थ—और घोर राक्षसों ने अपने मुखों को वायु से पूरित करके बड़ी ध्वनि वाले सहस्रों शङ्ख बजाये ॥

ततो वानर सैन्येन मुक्तो नादः समन्ततः ।
मलयः पूरितो येन ससानुप्रस्थकन्दरः ॥ १० ॥
शंख दुन्दुभिनिर्घोषः सिंहनादस्तरस्विनाम् ।
पृथिवीं चान्तरिक्षं च सागरं चाभ्यनादयत् ॥११॥
गजानां बृंहितैः सार्धं हयानां हेषितैरपि ।
रथानां नेमिनिर्घोषैः रक्षसां पदनिःस्वनैः ॥१२॥

अर्थ—तदनन्तर वानरों की सेना ने चारो ओर से सिंहनाद किया जिससे मलयपर्वत भी चोटी तथा कन्दराओं सहित भर गया, शङ्ख तथा दुन्दुभियों की ध्वनि, शूरवीरों के सिंहनाद, हाथियों की चिंघाड़, घोड़ों की हिनहिनाहट, रथनेमियों की ध्वनियों और राक्षसों की पदध्वनियों से पृथिवी, अन्तरिक्ष तथा सागर गूंज उठा ॥

एतस्मिन्नन्तरे घोरः संग्रामः समपद्यत ।
रक्षसां वानराणां च यथा देवासुरे पुरा ॥ १३ ॥

अर्थ—इसी अन्तर में राक्षस और वानरों का बड़ा घोर संग्राम हुआ, जैसा पूर्वकाल में देव और दैत्यों का हुआ था ॥

स संप्रहारस्तुमुलो मांसशोणितकर्दमः ।
रक्षसां वानराणां च संबभूवाद्भुतोपमः ॥ १४ ॥

अर्थ—वानर और राक्षसों का यह युद्ध मांस और रक्त के कीचड़ से भयानक अद्भुत उपमा वाला बड़े घमसान का हुआ ॥

इति षोडशः सर्गः

अथ सप्तदशः सर्गः

सं०—अब घोर द्वन्द्वयुद्ध में अङ्गद से मेघनाद का पराजय कथन करते हैं:—

युध्यतान्तु ततस्तेषां वानराणां महात्मनाम् ।
रक्षसां संबभूवाथ बलरोषः सुदारुणः ॥१॥
ते हयैः कांचना पीडैर्गजैश्चाग्निशिखोपमैः ।
रथैश्चादित्यसंकाशैः कवचैश्च मनोरमैः ॥२॥
निर्ययू राक्षसा वीरा नादयन्तो दिशोदश ।
राक्षसा भीमकर्माणो रावणस्य जयैषिणः ॥३॥
वानराणामपि चमूर्बृहती जयमिच्छताम् ।
अभ्यधावत तां सेनां रक्षसां घोरकर्मणाम् ॥४॥

अर्थ—उस समय युद्ध करते हुए महात्मा वानरों और राक्षसों की सेना अति दारुण क्रोध को प्राप्त हुई, वह सब राक्षस-सेना सुवर्ण के भूषण पहने हुए घोड़ों तथा अग्नि की शिखा के

समान चमकते हुए हाथियों और सूर्य्यसम प्रकाशित रथों पर चढ़कर चली, मनोहर कवच धारण कर दशों दिशाओं को अपने नाद से शब्दायमान् करती हुई भयङ्कर कर्मों वाले राक्षसों की सेना रावण के जय की इच्छा किये हुए युद्धक्षेत्र में आई, और इधर से वानरों की भारी सेना राम का जय चाहती हुई भयङ्कर कर्मों वाले राक्षसों की सेना के सन्मुख दौड़ी ॥

एतस्मिन्नन्तरे तेषामन्योन्यमभिधावताम् ।
रक्षसां वानराणां च द्वन्द्वयुद्धमवर्त्तत ॥५॥
युध्यतामेव तेषां तु तदा वानर रक्षसाम् ।
रविरस्तं गतो रात्रिः प्रवृत्ता प्राणहारिणी ॥६॥

अर्थ–इसी अन्तर में एक दूसरे की ओर दौड़ते हुए उन वानर और राक्षसों का द्वन्द्वयुद्ध होने लगा, वानर और राक्षसों के युद्ध करते २ ही सूर्य्य अस्त होकर प्राणों के हरण करने वाली रात्रि आगई ॥

अन्योऽन्यं बद्धवैराणां घोराणां जयमिच्छताम् ।
संप्रवृत्तं निशायुद्धं तदा वानर रक्षसाम् ॥७॥
राक्षसोऽसीति हरयो वानरोऽसीति राक्षसाः ।
अन्योऽन्यं समरे जघ्नुस्तस्मिंस्तमसि दारुणे ॥८॥
हत दारय चैहीति कथं विद्रवसीति च ।
एवं सुतुमुलः शब्दस्तस्मिन् सैन्ये तु शुश्रुवे॥९॥

अर्थ—अब आपस में वैर बांधे हुए तथा जय की इच्छा वाले उन भयङ्कर वानरों तथा राक्षसों का रात्रियुद्ध प्रवृत्त हुआ, उस भयानक अन्धेरे में "तू राक्षस है ऐसा कहकर वानर" और "तू वानर है ऐसा कहकर राक्षस" युद्ध में परस्पर एक दूसरे का हनन करते थे, उन दोनों सेनाओं में मार, चीरडाल, इधर आ, कैसे भागा जाता है, इस प्रकार तुमुल शब्द सुनाई देता था ॥

कालाः काञ्चनसंनाहास्तस्मिंस्तमसि राक्षसाः ।
संप्रदृश्यन्त शैलेन्द्रा दीप्तौषधिवना इव ॥१०॥
तस्मिंस्तमसि दुष्पारे राक्षसाः क्रोधमूर्च्छिताः ।
परिपेतुर्महावेगा भक्षयन्तः प्लवंगमान् ॥११॥
वानरा बालिनो युद्धेऽक्षोभयन्राक्षसीं चमूम् ।
कुञ्जरान्कुञ्जरारोहान्पताका ध्वजिनो रथान् ॥१२॥

अर्थ—उस अन्धेरे में सुनहरी कवचों वाले काले राक्षस जलती हुई औषधियों के वनों वाले पर्वतों की भांति दिखाई देते थे, उस अपार अन्धेरे में राक्षस क्रोध से व्याकुल हुए बड़े वेग के साथ चारो ओर से घेरकर मानो वानरों को भक्षण किये जाते थे, और महाबली वानर युद्ध में हाथियों, हाथीसवारों और झण्डियां तथा झण्डों वाले रथों वाली राक्षसी सेना को अति क्षोभित करते थे ॥

लक्ष्मणश्चापि रामश्च शरैराशी विशोपमैः ।
दृश्यादृश्यानि रक्षांसि प्रवराणि निजघ्नतुः ॥१३॥
तुरंगखुर विध्वस्तं रथनेमि समुत्थितम् ।

रुरोध कर्णनेत्राणि युध्यतां धरणी रजः ॥१४॥
वर्तमाने तथा घोरे संग्रामे लोमहर्षणे ।
रुधिरौघा महाघोरा नद्यस्तत्र विसुस्रुवुः ॥१५॥

अर्थ–और लक्ष्मण तथा राम भी नाग तुल्य बाणों से दृश्य, अदृश्य सब मुख्य २ राक्षसों का हनन करते थे, घोड़ों के खुरों से पिसीहुई और रथों की नेमियों से उड़ीहुई पृथिवी की धूल युद्ध करने वालों के कान और नेत्रों को रोकती थी अर्थात कान और नेत्रों में पड़कर दुःख देती थी, इस प्रकार रोंगटे खड़े करने वाले घोर संग्राम के प्रवृत्त होने पर रक्त के प्रवाह वाली नदियें बहने लगीं ॥

सा बभूव निशा घोरा हरिराक्षसहारिणी ।
कालरात्रीव भूतानां सर्वेषां दुरतिक्रमा ॥१६॥
ततस्ते राक्षसास्तत्र तस्मिंस्तमसि दारुणे ।
राममेवाभ्यवर्तन्त संहृष्टा शरवृष्टिभिः ॥१७॥

अर्थ–वह वानर तथा राक्षसों के प्राण हरण करने वाली रात्रि सब प्राणियों की नाशक कालरात्रि के समान भयङ्कर प्रतीत होती थी, तदनन्तर वह राक्षस उस घोर अन्धकार में हर्षित हो बाणों की वर्षा करते हुए राम को चारो ओर से घेर लिया ॥

तेषां रामः शरैः षड्भिः षड्जघान निशाचरान् ।
निमेषान्तरमात्रेण शरैरग्निशिखोपमैः ॥१८॥

यज्ञ शत्रुश्च दुर्धर्षौ महापार्श्वमहोदरौ ।
वज्रदंष्ट्रो महाकायस्तौ चोभौ शुकसारणौ ॥१९॥

अर्थ–तब उन राक्षसों में से छः राक्षसों को राम ने अग्नि की शिखा समान लपलपाते हुए बाणों से निमेषमात्र में मार दिया, जिनके नाम यह हैं दुर्धर्ष यज्ञशत्रु, महापार्श्व, महोदर, महाकाय वज्रदंष्ट्र, शुक तथा सारण ॥

ते तु रामेण बाणौघैः सर्वमर्मसु ताडिताः ।
युद्धादपसृतास्तत्र सावशेषायुषोऽभवन् ॥२०॥
निमेषान्तरमात्रेण घोरैरग्निशिखोपमैः ।
दिशश्चकार विमलाः प्रदिशश्च महारथः ॥२१॥

अर्थ–और अन्यों को राम ने बाणसमूहों से उनके मर्मों में ऐसा ताड़न किया कि युद्ध से भागकर उन्होंने बड़ी कठिनता से अपनी आयु बचाई, उस महारथी ने अग्नि की भांति जलते हुए बाणों से अल्पकाल में ही दिशा और उपदिशाओं को विमल करदिया अर्थात् सब राक्षसों को भगा दिया ॥

ये त्वन्ये राक्षसावीरा रामस्याभिमुखे स्थिताः ।
तेऽपिनष्टाः समासाद्य पतंगा इव पावकम् ॥२२॥
राक्षसानां च निनदैर्भेरीणां चैव निःस्वनैः ।
सा बभूव निशाघोरा भूयो घोरतराभवत् ॥२३॥

अर्थ–और जो राक्षस वीर राम के सन्मुख डटे रहे वह अग्नि में पतङ्गों की भांति वहीं नष्ट होगये, अधिक क्या राक्षसों

के सिंहनाद और भेरियों की ध्वनियों से वह रात्रि बड़ी भयानक घोरतर बन गई ॥

इन्द्रजित्तु रथं त्यक्त्वा हताश्वो हतसारथिः ।
अंगदेन महायस्तस्तत्रैवान्तरधीयत ॥२४॥
ततः प्रहृष्टाः कपयः ससुग्रीवविभीषणाः ।
साधुसाध्विति नेदुश्च दृष्ट्वा शत्रुं पराजितम् ॥२५॥

अर्थ—इधर अङ्गद ने मेघनाद के घोड़ों का वध किया तथा सारथि मारडाला तब वह बड़ा भयभीत हो रथ को त्यागकर वहीं छिपगया, तदनन्तर शत्रुओं को पराजित हुआ देखकर सुग्रीव तथा विभीषण सहित सब वानर साधु २ की ध्वनि करते हुए अति प्रसन्न हुए ॥

इति सप्तदशः सर्गः

अथ अष्टादशः सर्गः

सं०—अब मेघनाद का राम लक्ष्मण को नागफांस में फांसना और सब वानरसेना में घबराहट होना कथन करते हैं:—

इन्द्रजित्तु तदानेन निर्जिता भीमकर्मणा ।
संयुगे बालिपुत्रेण क्रोधं चक्रे सुदारुणम् ॥१॥
रामं च लक्ष्मणं चैव घोरैर्नागमयैः शरैः ।
बिभेद समरे क्रुद्धः सर्वगात्रेषु राघवौ ॥२॥

अदृश्यः सर्वभूतानां कूटयोधी निशाचरः ।
बबन्ध शरबन्धेन भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ॥ ३ ॥

अर्थ—भीमकर्मा=बड़े कर्मों वाले बालिपुत्र अङ्गद से युद्ध में जय किये हुए इन्द्रजित्=मेघनाद ने बड़ा दारुण क्रोध किया, युद्ध में क्रुद्ध हुए मेघनाद ने भयङ्कर नागमयबाण=मूर्च्छित करने वाले बाण राम लक्ष्मण के सारे अङ्गों में भेदन कर उन्हें बींध दिया, और सब लोगों से छिपकर कूटयोधा=छल से युद्ध करने वाले राक्षस ने राम लक्ष्मण दोनो भाइयों को बाणफांस में बांध लिया ॥

ततो द्यां पृथिवीं चैव वीक्षमाणा वनौकसः ।
ददृशुः सन्ततैर्बाणैर्भ्रातरौ राम लक्ष्मणौ ॥ ४ ॥
वृष्ट्वे वोपरतेदेवे कृतकर्मणि राक्षसे ।
आजगामाथ तं देशं ससुग्रीवो विभीषणः ॥ ५ ॥
नीलश्च द्विविदो मैन्दः सुषेणः कुमुदोंगदः ।
तूर्णं हनुमता सार्धमन्वशोचन्त राघवौ ॥ ६ ॥

अर्थ—तदनन्तर पृथिवी तथा अन्तरिक्ष में निहारते हुए वानरों ने बाणफांस में फसे हुए राम लक्ष्मण दोनो भाइयों को देखा, जैसे इन्द्र जल वर्षा कर उपरत होजाते हैं इसी प्रकार मेघनाद को बाण चलाकर चुप होरहा देखकर सुग्रीव सहित विभीषण वहां आये, और नील, द्विविद, मैन्द, सुषेण, कुमुद, अङ्गद तथा हनुमान् यह सब राम लक्ष्मण का शोक करने लगे ॥

इन्द्रजित्त्वात्मनः कर्म तौ शयानौ समीक्ष्य च ।
उवाच परमप्रीतो हर्षयन्सर्वराक्षसान् ॥ ७ ॥

दूषणस्य च हन्तारौ खरस्य च महाबलौ ।
सादितौ मामकैर्बाणैर्भ्रातरौ राम लक्ष्मणौ ॥ ८ ॥

अर्थ—और इन्द्रजित् अपने बलरूप कर्म तथा उन दोनों भाइयों को भूमि पर लेटा हुआ देखकर परम प्रसन्न हो सब राक्षसों को हर्षित करता हुआ बोलाकि खर और दूषण के हनन करने वाले दोनों भाई राम लक्ष्मण मेरे बाणों से पीड़ित हुए पड़े हैं ॥

नेमौ मोक्षयितुं शक्या वेतस्मादिषु बन्धनात् ।
सर्वैरपि समागम्य सर्षिसंघैः सुरासुरैः ॥ ९ ॥
कृत्स्नेयं यत्कृते लङ्का नदी वर्षास्विवाकुला ।
सोऽयं मूलहरोऽनर्थः सर्वेषां शमितो मया ॥ १० ॥

अर्थ—अब इनको इस बाणफांस से देव, दैत्य तथा ऋषिसमूह भी नहीं छुड़ासक्ते, जिसके कारण यह सारी लङ्का वर्षा में नदी की भांति आकुल थी वह यह सबकी जड़ उखाड़ने वाला अनर्थ मैंने शान्त करादिया है ॥

हर्षेण तु समाविष्ट इन्द्रजित्समितिंजयः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कां हर्षयन्सर्वनैर्ऋतान् ॥ ११ ॥

अर्थ—इस प्रकार हर्ष को प्राप्त हुआ युद्धों के जीतने वाला इन्द्रजित् सब राक्षसों को हर्षित करता हुआ लङ्कापुरी में प्रविष्ट हुआ॥

राम लक्ष्मणयोर्दृष्ट्वा शरीरे सायकैश्चिते ।
सर्वाणि चाङ्गोपांगानि सुग्रीवं भयमाविशत् ॥१२॥

अर्थ—और इधर राम लक्ष्मण के शरीर तथा सारे अङ्ग उपाङ्गों को बाणों से भरा हुआ देखकर सुग्रीव अति भयभीत हुआ॥

तमुवाच परित्रस्तं वानरेन्द्रं विभीषणः ।
अलं त्रासेन सुग्रीव वाष्पवेगो निगृह्यताम् ॥१३॥

अर्थ—तब उस भयभीत हुए सुग्रीव को विभीषण बोला कि हे सुग्रीव ! भय मतकर और आंसुओं के वेग को रोक ॥

एवं प्रायाणि युद्धानि विजयो नास्ति नैष्ठिकः ।
सभाग्यशेषतास्माकं यदि वीर भविष्यति ॥१४॥
मोहमेतौ प्रहास्येते महात्मानौ महाबलौ ।
सत्य धर्माभिरक्तानां नास्ति मृत्युकृतंभयम् ॥१५॥

अर्थ—ऐसा प्रायः युद्धों में होता है यह नैष्ठिक विजय नहीं, हे वीर ! यदि हम लोगों के भाग्य में अभी कुछ सुख भोगना शेष है तो यह दोनों महाबली इस मोह को त्याग देंगे, क्योंकि सत्यधर्म में अनुरक्त पुरुष मृत्यु का भय नहीं करते ॥

नैतत्किंचन रामस्य नच रामो मुमूर्षति ।
न ह्येनं हास्यते लक्ष्मीर्दुर्लभा या गतायुषाम्॥१६॥
तस्मादाश्वासयात्मानं बलं चाश्वासयस्वकम् ।
यावत्सैन्यानि सर्वाणि पुनः संस्थापयाम्यहम्॥१७॥

अर्थ—यह राम के लिये कुछ नहीं राम मरने वाले नहीं हैं, क्योंकि लक्ष्मी=शरीर की कान्ति ने अभीतक इनको नहीं त्यागा

जो कान्ति निकट मृत्यु वालों के लिये दुर्लभ होती है, सो आप अपने आपको और अपनी सेना को आश्वासन दें जब तक मैं भी फिर सारी सेनाओं को अपने २ स्थान पर जमाता हूं ॥

इन्द्रजित्तु महामायः सर्वसैन्यसमावृतः ।
विवेश नगरीं लंकां पितरं चाभ्युपागमत् ॥१८॥
तत्र रावणमासाद्य अभिवाद्य कृताञ्जलिः ।
आचचक्षे प्रियं पित्रे निहितौ रामलक्ष्मणौ ॥१९॥

अर्थ—महामायावी इन्द्रजित् सारी सेना को लेकर लङ्कापुरी में प्रविष्ट हो पिता के समीप आया, और हाथ जोड़ प्रणाम कर पिता को यह प्रिय सुनाया कि राम लक्ष्मण दोनों मारे गये हैं ॥

उत्पपात ततो हृष्टः पुत्रं च परिषस्वजे ।
रावणो रक्षसां मध्ये श्रुत्वा शत्रू निपातितौ ॥२०॥
उपाघ्राय च तं मूर्ध्नि पप्रच्छ प्रीतमानसः ।
पृच्छते च यथावृत्तं पित्रे तस्मै न्यवेदयत् ॥ २१ ॥
यथा तौ शरबन्धेन निश्चेष्टौ निष्प्रभौ कृतौ ॥२२॥

अर्थ—यह सुन रावण राक्षसों के मध्य में प्रसन्न होकर उठा और पुत्र को गले लगाया, फिर उसका शिर चूमकर प्रसन्नमन से सब वृत्तांत पूछा तब पूछते हुए पिता को उसने सब यथावत् बतलाया कि उन दोनों को बाणपाश से बांधकर निश्चेष्ट तथा प्रभारहित करदिया है ॥

सहर्षवेगानुगतांतरात्मा श्रुत्वागिरं तस्य

महारथस्य । जहौ ज्वरं दाशरथेः समुत्थं
प्रहृष्ट वाचाभिननन्दपुत्रम् ॥ २३ ॥

अर्थ—महारथी मेघनाद का उक्त वचन सुनकर रावण अति हर्ष को प्राप्त हुआ तथा उसका दशरथकुमार राम के भय से हुआ ज्वर छूटगया और वह हर्षित हो अपने पुत्र की प्रशंसा करने लगा ॥

इति अष्टादशः सर्गः

अथ एकोनविंशतिः सर्गः

सं०—अब सीता को रण में मूर्च्छित राम लक्ष्मण का दिखलाना कथन करते हैं :—

वीक्षमाणा दिशः सर्वास्तिर्यगूर्ध्वं च वानराः ।
तृणेष्वपि च चेष्टत्सु राक्षसा इति मेनिरे ॥ १ ॥
रावणश्चापि संहृष्टो विसृज्येन्द्रजितं सुतम् ।
आजुहाव ततः सीतारक्षणी राक्षसीस्तदा ॥ २ ॥

अर्थ—" मूर्च्छित हुए राम लक्ष्मण " की सम्पूर्ण वानर सब दिशाओं तथा ऊपर तिरछे सब ओर से रक्षा करते थे, यदि कहीं तृण भी हिलता तो "राक्षस आया" यही मानते थे, तदनन्तर रावण ने प्रसन्न हो पुत्र इन्द्रजित् को विसर्जन करके सीता की रक्षा करने वाली राक्षसियों को बुलाया ॥

राक्षस्यस्त्रिजटा चापि शासनात्तमुपस्थिताः ।
ता उवाच ततो हृष्टो राक्षसी राक्षसाधिपः ॥ ३ ॥
हताविन्द्रजिताख्यात वैदेह्या रामलक्ष्मणौ ।
पुष्पकं तत्समारोप्य दर्शयध्वं रणे हतौ ॥ ४ ॥

अर्थ—रावण की आज्ञा पाते ही त्रिजटा और अन्य सब राक्षसियें वहां आईं तब प्रसन्न हुआ राक्षसाधिपति उनसे बोला कि सीता को जाकर बतलाओ कि राम लक्ष्मण मारे गये हैं और उसको पुष्पकविमान पर चढ़ाकर रण में मरे हुए दिखलाओ ॥

राक्षस्यस्तास्तथेत्युक्त्वा जग्मुर्वै यत्रपुष्पकम् ।
सीतामारोपयामासुर्विमानं पुष्पकं तदा ॥ ५ ॥
ततः पुष्पकमारोप्य सीतां त्रिजटया सह ।
रावणश्चारयामास पताकाध्वज मालिनीम् ॥ ६ ॥
प्राघोषयतहृष्टश्चलङ्कायां राक्षसेश्वरः ।
राघवो लक्ष्मणश्चैव हताविन्द्रजितारणे ॥ ७ ॥
विमानेनापि गत्वा तु सीता त्रिजटया सह ।
ददर्श वानराणां तु सर्वं सैन्यं निपातितम् ॥ ८ ॥
प्रहृष्ट मनसश्चापि ददर्श पिशिताशनान् ।
वानरांश्चाति दुःखार्तान्राम लक्ष्मण पार्श्वतः ॥९॥

अर्थ—तदनन्तर रावण ने त्रिजटा के सहित सीता को पुष्पक विमान पर चढ़ा पताका तथा ध्वजाओं से सुशोभित लङ्कापुरी में घुमाया, और हर्षित हुए राक्षसराज रावण ने सारी लङ्का में ढंढोर

पिटवाया कि मेघनाद ने समर में राम लक्ष्मण को मारदिया है, फिर विमान पर चढ़ी हुई सीता ने त्रिजटा सहित रणभूमि में जाकर देखा कि वानरों की बहुतसी सेना हत हुई पड़ी है और राक्षसों को हर्षित तथा राम लक्ष्मण के निकट खड़े हुए सब वानरों को दुःख से पीड़ित देखा ॥

ततः सीता ददर्शोभौ शयानौ शरतल्पगौ ।
लक्ष्मणं चैव रामं च विसंज्ञौ शरपीडितौ ॥ १० ॥
विध्वस्त कवचौ वीरौ विप्रविद्धशरासनौ ।
सायकैश्छिन्न सर्वांगौ शरस्तम्ब मयौक्षितौ ॥११॥
तौ दृष्ट्वा भ्रातरौ तत्र प्रवीरौ पुरुषर्षभौ ।
शयानौ पुण्डरीकाक्षौ कुमाराविव पावकी ॥ १२ ॥

अर्थ—तत्पश्चात् शरशय्या पर लेटे हुए बाणों से पीड़ित तथा मूर्च्छित राम लक्ष्मण को देखा, जिनके कवच, बख़्तर आदि टूटे हुए तथा धनुष भूमि में पड़ा था और बाणों से सब अङ्ग विंधे हुए ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो बाणों के स्तम्ब=खम्भे भूमि पर पड़े हैं, इस प्रकार पड़े हुए उन दोनों पुरुषश्रेष्ठ वीर कमलदल नेत्रों वाले दोनों भाइयों को अग्नि के पुत्र समान देदीप्यमान् शयन करते हुए सीता ने देखा ॥

शरतल्पगतौ वीरौ तथा भूतौ नरर्षभौ ।
दुःखार्ता करुणं सीता सुभृशं विललाप ह ॥१३॥

अर्थ—वहां ऐसी अवस्था में उन दोनों नरश्रेष्ठ भाइयों को देखकर सीता दुःख से पीड़ित हुई अतीव विलाप करने लगी ॥

परिदेवयमानां तां राक्षसी त्रिजटाब्रवीत् ।
मा विषादं कृथा देवि भर्त्तायं तव जीवति ॥१४॥
इदं तु सुमहच्चित्रं शरैः पश्यस्व मैथिलि ।
विसंज्ञौ पतितावेतौ नैव लक्ष्मीर्विमुञ्चति ॥१५॥

अर्थ-तब विलाप करती हुई सीता से त्रिजटा नाम राक्षसी बोली कि हे देवि ! तू विषाद मत कर यह तेरा भर्त्ता जीवित है, मैथिलि ! यह बहुत बड़ा आश्चर्य्य देख कि बाणों से मूर्च्छित पड़े हुए दोनों को लक्ष्मी=कान्ति ने नहीं त्यागा है ॥

त्यज शोकं च दुःखं च मोहं च जनकात्मजे ।
राम लक्ष्मणयोरर्थे नाद्य शक्यमजीवितुम् ॥१६॥
श्रुत्वा तु वचनं तस्याः सीता सुरसुतोपमा ।
कृताञ्जलिरुवाचेमामेवमस्त्विति मैथिली ॥१७॥
विमानं पुष्पकं यत्तु सन्निवर्त्य मनोजवम् ।
दीना त्रिजटया सीता लङ्कामेव प्रवेशिता ॥१८॥

अर्थ-हे जनकनन्दिनी सीते ! तू दुःख, शोक तथा मोह को छोड़, राम लक्ष्मण के अर्थ आज तुझे अपना जीवन नहीं त्यागना चाहिये, त्रिजटा के बचन सुनकर देवकन्या तुल्य सीता हाथ जोड़कर उससे बोली कि "दैव की कृपा से" ऐसा ही हो, फिर मन तुल्य वेगवाले पुष्पक विमान को लौटाकर दीन सीता को त्रिजटा ने फिर लङ्का में प्रवेश कराया ॥

ततस्त्रिजटया सार्धं पुष्पकादवरुह्यता ।
अशोकवनिकामेव राक्षसीभिः प्रवेशिता ॥१९॥

अर्थ–तदनन्तर त्रिजटा सहित पुष्पक विमान से उतरकर राक्षसियों के साथ सीता अशोकवाटिका में आई ॥

प्रविश्य सीता बहुवृक्षखण्डां तां राक्षसेन्द्र-
स्य विहारभूमिम् । संप्रेक्ष्य संचिन्त्य च
राजपुत्रो परं विषादं समुपाजगाम ॥२०॥

अर्थ–और सघन वृक्षों वाली रावण की विहार भूमि अशोकवाटिका में बैठक राजकुमार राम लक्ष्मण का चिन्तन करती हुई पुनः विषाद को प्राप्त हुई ॥

इति एकोनविंशातिः सर्गः

अथ विंशतिः सर्गः

सं०–अब राम लक्ष्मण का सचेत होना कथन करते हैं:—

ततः सर्वाण्यनीकानि स्थापयित्वा विभीषणः ।
आजगाम गदापाणिस्त्वरितं यत्र राघवः ॥१॥
ततो मुहूर्ताद्गरुडं वैनतेयं महाबलम् ।
वानरा ददृशुः सर्वे ज्वलन्तमिव पावकम् ॥२॥

अर्थ–तदनन्तर सारी सेनाओं को यथा स्थान नियत करके विभीषण हाथ में गदा लिये हुए शीघ्र ही राम के समीप आये, पश्चात् तत्काल ही उन्होंने जलती हुई अग्नि के समान तेजस्वी तथा महाबली विनता के पुत्र गरुड़ को देखा जो "बाण फांस के विष को हटाने वाला तथा व्रणों को भरने वाला था"॥

वैनतेयेन संस्पृष्टास्तयोः संरुरुहुर्व्रणाः ।
सुवर्णे च तनूस्निग्धे तयोराशु बभूवतुः ॥३॥
तावुत्थाप्य महातेजा गरुडो वासवोपमौ ।
उभौ च सस्वजे हृष्टो रामश्चैनमुवाच ह ॥४॥

अर्थ—गरुड़ के स्पर्श=चिकित्सा करने से उन दोनों भाइयों के सारे व्रण भरकर मिलगये और शीघ्र ही उन दोनों के शरीर सुन्दर रङ्ग तथा स्नेह वाले होगये, तब महातेजस्वी गरुड़ ने इन्द्र तुल्य उन दोनों को उठाकर गले लगाया फिर प्रसन्न हुए राम उससे बोले कि:—

भवत्प्रसादाद् व्यसनं रावणिप्रभवं महत् ।
उपायेन व्यतिक्रान्तौ शीघ्रं च बलिनौ कृतौ ॥५॥
यथा तातं दशरथं यथाजं च पितामहम् ।
तथा भवन्तमासाद्य हृदयं मे प्रसीदति ॥६॥

अर्थ—मेघनाद द्वारा प्राप्त हुआ महान् दुःख आपकी कृपा से उपाय करने पर मिटगया, और हम दोनों शीघ्र ही स्वस्थ होगये हैं, जैसे पिता दशरथ और पितामह अज को प्राप्त कर प्रसन्न होते हैं वैसे ही आपको पाकर मेरा हृदय प्रसन्न हुआ है ॥

तमुवाच महातेजा वैनतेयो महाबलः ।
अहं सखा ते काकुत्स्थ प्रियः प्राणो बहिश्चरः ॥७॥
असुरा वा महावीर्या वानरा वा महाबलाः ।
नेमं मोक्षयितुं शक्ताः शरबन्धं सुदारुणम् ॥८॥

अर्थ–यह सुनकर महातेजस्वी बलवान् वैनतेय बोला कि हे काकुत्स्थ ! मैं आपका प्रिय सखा बाहर विचरने वाला प्राण हूं, यह बड़े वीर राक्षस तथा महाबली वानर इस अतीव दारुण बाणफांस से आपको नहीं छुड़ा सकते थे ॥

इमं श्रुत्वा तु विक्रान्तस्त्वरमाणोऽहमागतः ।
सहसैवावयोः स्नेहात्साखित्वमनुपालयन् ॥९॥
मोक्षितौ च महाघोरादस्मात्सायकबन्धनात् ।
अप्रमादश्च कर्तव्यो युवाभ्यां नित्यमेव हि ॥१०॥

अर्थ–मैं इस बाणफांस को सुनकर मित्रता का पालन करता हुआ आपके स्नेह से शीघ्र ही यहां आया हूं, इस घोर बाणफांस से मैंने तुम्हें छुड़ा दिया है पर आगे तुम दोनों को सदा सावधान रहना चाहिये ॥

प्रकृत्या राक्षसाः सर्वे संग्रामे कूटयोधिनः ।
शूराणां शुद्धभावानां भवतामार्जवं बलम् ॥११॥
तन्न विश्वसनीयं वो राक्षसानां रणाजिरे ।
एतेनैवोपमानेन नित्यं जिह्मा हि राक्षसाः ॥१२॥

अर्थ–सभी राक्षस प्रकृति से युद्ध में कूटयोधी होते हैं और आप शुद्ध भावना वाले शूरवीर होने से आपका बल सरलता है अर्थात् आप कूटयोधी=छल से युद्धकरने वाले नहीं, सो रणक्षेत्र में आपको राक्षसों का विश्वास नहीं करना चाहिये "यह जो तुम्हारे साथ वीती है" इसी दृष्टान्त से तुम्हें राक्षसों को सदा कुटिल समझना चाहिये ॥

एवमुक्त्वा तदारामं सुपर्णः स महाबलः ।
परिष्वज्य च सुस्निग्धमाप्रष्टुमुपचक्रमे ॥१३॥
सखे राघव धर्मज्ञ रिपूणामपि वत्सल ।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि गमिष्यामि यथासुखम् ॥१४॥
नच कौतूहलं कार्य्यं सखित्वं प्रति राघव ।
कृतकर्मा रणे वीर सखित्वं प्रतिवत्स्यसि ॥१५॥

अर्थ—महाबली गरुड़ राम से उक्त प्रकार कह उनसे अच्छी तरह मिलकर मधुरवाणी से बोला कि हे सखे ! धर्मज्ञ तथा शत्रुओं पर भी दया करने वाले राम अब मैं आपकी आज्ञा पाकर सुखपूर्वक अपने स्थान को जाना चाहता हूं, हे वीर राघव! रण में कृतकार्य्य होकर आप मेरे मित्रभाव को जानेंगे, अभी मेरा मित्रभाव प्रकट करने के लिये कौतूहल न करें ॥

बालवृद्धावशेषान्तु लङ्कां कृत्वा शरोर्मिभिः ।
रावणन्तु रिपुं हत्वा सीतां त्वमुपलप्स्यसे ॥१६॥
इत्येवमुक्त्वा वचनं सुपर्णः शीघ्रविक्रमः ।
रामं च नीरुजं कृत्वा मध्ये तेषां वनौकसाम् ॥१७॥
प्रदक्षिणं ततः कृत्वा परिष्वज्य च वीर्यवान् ।
जगामाकाशमाविश्य सुपर्णः पवनो यथा ॥१८॥

अर्थ—और बाल तथा वृद्धों को छोड़ बाणों की लहरों से लङ्का का विध्वंस कर, शत्रु रावण का हनन करके आप शीघ्र ही सीता को प्राप्त होंगे, शीघ्र विक्रम वाला गरुड़ राम से उक्त प्रकार कह

दोनो भाइयों को नीरोग कर तथा वानरों के मध्य बैठे हुए राम की प्रदक्षिणा करके बलवान् गरुड़ * पवन समान वेगवाले यान द्वारा आकाश मार्ग से चला गया ॥

नीरुजौ राघवौ दृष्ट्वा ततो वानरयूथपाः ।
सिंहनादं तदानेदुर्मृदङ्गाश्चाप्यवादयन् ॥१९॥

अर्थ—वानर यूथपति राम लक्ष्मण को स्वस्थ देखकर बड़े प्रसन्न हो सिंहनाद करते हुए मृदङ्गों की ध्वनियें करने लगे ॥

इति विंशः सर्गः

अथ एकविंशः सर्गः

सं०—अब रावण का "धूम्राक्ष" राक्षस को युद्धार्थ भेजना कथन करते हैं :—

तेषां तु तुमुलं शब्दं वानराणां महौजसाम् ।
नर्दतां राक्षसैः सार्धं तदा शुश्राव रावणः ॥ १ ॥
स्निग्ध गम्भीर निर्घोषं श्रुत्वा तं निनदं भृशम् ।
सचिवानां ततस्तेषां मध्ये वचनमब्रवीत् ॥ २ ॥

---

* यहां "गरुड़" से किसी पक्षीविशेष का तात्पर्य्य नहीं, जैसे बलवान् सुग्रीवादिकों को वानर के अलङ्कार से वर्णन किया है, इसी प्रकार चिकित्सक=वैद्यराज को गरुड़ के अलङ्कार द्वारा वर्णन किया है, और ऐसे अलङ्कार कवि ने कथा को अद्भुत बनाने के लिये दिये हैं ॥

यथाऽसौ संप्रहृष्टानां वानराणामुपस्थितः ।
बहूनां सुमहान्नादो मेघानामिव गर्जताम् ॥ ३ ॥
सुव्यक्तं महती प्रीतिरेतेषां नात्रसंशयः ।
तथाहि विपुलैर्नादैश्चुक्षुभे लवणार्णवः ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर राक्षसों सहित रावण ने उन गर्जते हुए महापराक्रमी वानरों का तुमुल शब्द सुना, और उस गम्भीर, स्नेह वाले तथा बड़े नाद वाले शब्द को सुनकर मन्त्रियों के मध्य बैठे हुए रावण ने कहा कि गर्जते हुए मेघों के समान हर्षित बहुत वानरों का नाद सुनाई देता है, और इसमें सन्देह नहीं कि इन वानरों की बड़ी भारी प्रीति विदित होती है, क्योंकि इनका विपुल नाद समुद्र की घोर समान प्रतीत होरहा है ॥

तौ तु बद्धौ शरैस्तीक्ष्णैर्भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अयं च सुमहान्नादः शङ्कां जनयतीव मे ॥ ५ ॥
एवं च वचनं चोक्त्वा मंत्रिणो राक्षसेश्वरः ।
उवाच नैर्ऋतांस्तत्र समीप परिवर्तिनः ॥ ६ ॥
ज्ञायतां तूर्णमेतेषां सर्वेषां च वनौकसाम् ।
शोककाले समुत्पन्ने हर्षकारणमुत्थितम् ॥ ७ ॥

अर्थ—वह दोनों भाई राम लक्ष्मण तीक्ष्ण तीरों से बिन्धे हुए हैं और यह महान् नाद मुझे शङ्का सी उत्पन्न करता है, इस प्रकार मन्त्रियों से कहकर वह राक्षसेश्वर रावण अन्य समीपवर्ती राक्षसों से बोलाकि तुम जाकर शीघ्र ही ज्ञात करो कि उन सब वानरों के शोककाल में हर्ष का क्या कारण हुआ है ॥

तथोक्तास्ते सुसंभ्रान्ताः प्राकारमधिरुह्य च ।
ददृशुः पालितां सेनां सुग्रीवेण महात्मना ॥ ८ ॥
तौ च मुक्तौ सुघोरेण शरबन्धेन राघवौ ।
समुत्थितौ महाभागौ विषेदुः सर्वराक्षसाः ॥ ९ ॥
तदप्रियं दीनमुखा रावणस्य च राक्षसाः ।
कृत्स्नं निवेदयामासुर्यथावद्वाक्यकोविदाः ॥ १० ॥

अर्थ–उक्त प्रकार आज्ञा दिये जाने पर वह राक्षस शीघ्र ही कोट पर चढ़कर महात्मा सुग्रीव से पालित सेना को देखने लगे, तब उन महाभाग राघवों को बाणफांस से मुक्त हो उठे देखकर राक्षस खिन्न हो दुःख को प्राप्त हुए, वाक्यविशारद=बोलने में निपुण वह राक्षस दीनमुख हुए लौट आये और उन्होंने वहां का सारा अप्रिय यथावत् रावण के सन्मुख निवेदन किया किः–

यौताविन्द्रजिता युद्धे भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
निबद्धौ शरबन्धेन निष्प्रकंप भुजौकृतौ ॥ ११ ॥
विमुक्तौ शरबन्धेन दृश्येते तौ रणाजिरे ।
पाशानिवगजौछित्त्वा गजेन्द्रसमविक्रमौ ॥१२॥

अर्थ–जिन दोनों भाई राम लक्ष्मण को मेघनाद ने युद्ध में बाणों से बींध दिया था, और जिनके भुजा हिल भी नहीं सक्ते थे वह दोनों भाई रणभूमि में बाणफांस से छुटे हुए देख पड़ते हैं, जैसे हाथी पाश को काटकर मुक्त होजाता है ऐसे ही गजेन्द्र सम वह दोनों विक्रमशाली हैं ॥

तच्छ्रुत्वा वचनं तेषां राक्षसेन्द्रो महाबलः ।
चिन्तारोष समाक्रान्तो विवर्णवदनोऽभवत् ॥१३॥
अब्रवीद्राक्षसां मध्ये धूम्राक्ष नाम राक्षसम् ॥ १४ ॥
बलेन महता युक्तो राक्षसैर्भीमविक्रमः ।
त्वं बधायाशु निर्याहि रामस्य सह वानरैः ॥१५॥

अर्थ—उक्त बचन सुनकर वह महाबली राक्षसेन्द्र चिन्ता तथा रोष से आकुल हुआ २ उसका मुख फीका होगया, तब वह राक्षसों के मध्य धूम्राक्ष नामक राक्षस से बोलाकि तू बड़ी सेना और घोर पराक्रम वाले राक्षसों को लेकर वानरों का बध करने के लिये शीघ्र चढ़ाई कर ॥

एवमुक्तस्तु धूम्राक्षो राक्षसेन्द्रेण धीमता ।
परिक्रम्यततः शीघ्रं निर्जगामनृपालयात् ॥ १६ ॥
अभिनिष्क्रम्य तद्द्वारं बलाध्यक्षमुवाचह ।
त्वरयस्व बलं शीघ्रं किं चिरेण युयुत्सतः ॥ १७ ॥
धूम्राक्ष बचनं श्रुत्वा बलाध्यक्षो बलानुगः ।
बलमुद्योजयामास रावणस्याज्ञयाभृशम् ॥ १८ ॥

अर्थ—बुद्धिमान् रावण की उक्त आज्ञा पाकर उसकी प्रदक्षिणा करके धूम्राक्ष शीघ्र ही राजमन्दिर से चला, और द्वार से बाहर निकलकर सेनापति से बोलाकि सेना शीघ्र तैयार करो, क्योंकि युद्ध की इच्छा वाले को विलम्ब करना ठीक नहीं, धूम्राक्ष

की आज्ञा पाकर सेनापति ने रावण की भी आज्ञा प्राप्त करके अपनी सेना को उसके साथ जाने की आज्ञा दी ॥

ते बद्ध घंटा बलिनो घोररूपा निशाचराः ।
विनद्यमानाः संहृष्टा धूम्राक्षं पर्यवारयन् ॥ १९ ॥
स निर्यातो महावीर्यो धूम्राक्षो राक्षसैर्वृतः ।
हसन्वै पश्चिमद्वाराद्धनूमान्यत्र तिष्ठति ॥ २० ॥

अर्थ–तब वह घोर राक्षस युद्ध के वाद्यविशेष बांधकर हर्षित हो बड़ा नाद करते हुए धूम्राक्ष के चारो ओर खड़े होगये, और वह महा बलवान् धूम्राक्ष राक्षसों से घिरा हुआ प्रसन्नवदन पश्चिम द्वार से बाहर निकला जिधर हनुमान् अपनी सेना सहित स्थित था ॥

इति एकविंशः सर्गः

अथ द्वाविंशः सर्गः

सं०–अब हनुमान् का रण में धूम्राक्ष को मारना कथन करते हैं:—

धूम्राक्षं प्रेक्ष्य निर्यान्तं राक्षसं भीमविक्रमम् ।
विनेदुर्वानराः सर्वे प्रहृष्टा युद्धकांक्षिणः ॥ १॥
तेषां सुतुमुलं युद्धं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ॥ २ ॥
राक्षसास्त्वभिसंक्रुद्धा वानरान्निशितैः शरैः ।
विव्यधुर्घोरसंकाशैः कंकपत्रैरजिह्मगैः ॥ ३ ॥

अर्थ—शूरबीर धूम्राक्ष राक्षस को द्वार से निकलता हुआ देखकर सब वानर युद्ध की इच्छा करते हुए हर्षित हो नाद करने लगे, फिर उन वानर और राक्षसों का बड़ा घोर युद्ध होने लगा, क्रुद्ध हुए राक्षस भयानक कङ्कपत्रों वाले तथा सीधे जाने वाले तीक्ष्ण तीरों से वानरों को बींधने लगे ॥

ते भीमवेगा हरयो नर्दमानास्ततस्ततः ।
ममन्थू राक्षसान्वीरान्नामानि च बभाषिरे ॥ ४ ॥
राक्षसा मथिताः केचिद्वानरैर्जितकाशिभिः ।
ववमू रुधिरं केचिन्मुखै रुधिरभोजनाः ॥ ५ ॥

अर्थ—और भयङ्कर वेग वाले वानरों ने गर्ज २ कर अपने नाम बताते हुए जहां तहां राक्षस वीरों को पीस डाला, विजयशाली कई वानरों ने कई राक्षसों को कुचिल डाला, कैक राक्षसों के मुख से रुधिर की कै आने लगी जो दूसरों का रुधिर पान करने वाले थे ॥

केचिद्विनिहता भूमौ रुधिरार्द्रा वनौकसः ।
विदारितास्त्रिशूलैश्च केचिदान्त्रैर्विनिःसृताः ॥६॥
तत्सुभीमं महद्युद्धं हरिराक्षस संकुलम् ।
प्रबभौ शस्त्रबहुलं शिलापादप संकुलम् ॥ ७ ॥
धूम्राक्षस्तु धनुष्पाणिर्वानरान्रणमूर्ध्नि ।
हसन्विद्रावयामास दिशस्ताञ्छरवृष्टिभिः ॥ ८ ॥

अर्थ—और इधर कई वानर रुधिर से भीगे हुए भूमि पर गिरे, कई त्रिशूलों से बिंधे हुओं की अन्तड़ियें बाहर निकल

आई, वानर और राक्षसों की बड़ी भीड़ वाले उस भयङ्कर युद्ध में शस्त्र ही शस्त्र चमकते थे और शिला तथा वृक्ष भरे पड़े थे "जिनसे बड़े २ बलवान् अपने शत्रु युद्धकर्ता को मारते थे" धूम्राक्ष रण के मस्तक पर हंसता हुआ अर्थात् विजय को प्राप्त हाथ में धनुष लिये हुए तीरों की वृष्टि करता हुआ वानरसेना को इधर उधर भगाने लगा ॥

धूम्राक्षेणार्दितं सैन्यं व्यथितं प्रेक्ष्य मारुतिः ।
अभ्यवर्तत संक्रुद्धः प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥९॥
क्रोधाद्द्विगुणताम्राक्षः पितुस्तुल्यपराक्रमः ।
शिलां तां पातयामास धूम्राक्षस्य रथं प्रति ॥१०॥
आपतन्तीं शिलां दृष्ट्वा गदामुद्यम्य संभ्रमात् ।
रथादाप्लुत्य वेगेन वसुधायां व्यतिष्ठत ॥११॥
सा प्रमथ्य रथं तस्य निपपात शिला भुवि ॥१२॥

अर्थ—तब धूम्राक्ष से पीड़ित हुई सेना को दुःखित देखकर क्रुद्ध हुआ हनुमान् एक भारी शिला उठाकर धूम्राक्ष के सन्मुख आया, क्रोध से उसके नेत्र दुगुने लाल होगये और उस पिता तुल्य पराक्रम वाले हनुमान् ने उस शिला को धूम्राक्ष के रथ पर फैंका, वह उस आती हुई शिला को देख शीघ्र ही गदा उठाकर बड़े वेग द्वारा रथ से उछलकर भूमि पर जा ठहरा, और वह शिला उसके रथ को चूर २ करके भूमि पर जा गिरी ॥

स त्यक्त्वा तु रथं तस्य हनूमान्मारुतात्मजः ।
विद्राव्य राक्षसं सैन्यं धूम्राक्षमभिदुद्रुवे ॥१३॥

तमापतन्तं धूम्राक्षो गदामुद्यम्य वीर्यवान् ।
विनर्दमानः सहसा हनूमन्तमभिद्रवत् ॥१४॥

अर्थ–तब पवनपुत्र हनुमान् उसके रथ को वहीं छोड़ राक्षसों की सेना को भगाकर फिर धूम्राक्ष की ओर दौड़ा, और बलवान् धूम्राक्ष गदा उठाकर गर्जता हुआ सन्मुख आते हुए हनुमान् की ओर भागा ॥

तस्य क्रुद्धस्य रोषेण गदां तां बहुकण्टकाम् ।
पातयामास धूम्राक्षो मस्तकेऽथ हनूमतः ।
स कपिर्मारुतबलस्तं प्रहारमचिन्तयन् ।
धूम्राक्षस्य शिरोमध्ये गिरिशृंगमपातयत् ॥१६॥
स विस्फारितसर्वांगो गिरिशृंगेण ताड़ितः ।
पपात सहसा भूमौ विकीर्ण इव पर्वतः ॥१७॥

अर्थ–और क्रोध से आकुल हुआ उस अनेक कांटों वाली गदा को क्रुद्ध हुए धूम्राक्ष ने हनुमान् के सिर पर मारा, तब वायु तुल्य बलवाले हनुमान् ने उस प्रहार को सहारकर धूम्राक्ष के सिर पर एक बहुत बड़ा पत्थर मारा, उस शिला के लगने से धूम्राक्ष के सारे अङ्ग पिसगये और वह टूटे हुए पर्वत की भांति सहसा भूमि पर गिरगया ॥

धूम्राक्षं निहतं दृष्ट्वा हतशेषाः निशाचराः ।
त्रस्ताः प्रविविशुर्लङ्कां वध्यमानाः प्लवंगमैः ॥१८॥

अर्थ–धूम्राक्ष को मरा हुआ देखकर हत हुए शेष राक्षस भयभीत हो वानरों से मारे जाते हुए लङ्का को भाग गये ॥

स तु पवनसुतो निहत्य शत्रून्क्षतजवहाः
सरितश्चसंविकीर्य । रिपुवधजनितश्रमो
महात्मामुदमगमत्कपिभिः सुपूज्यमानः ॥१९॥

अर्थ—पश्चात् पवनपुत्र हनुमान् शत्रुओं को मार, रुधिर की नदी बहाय, वानरों से पूजित होने के कारण शत्रुओं के मारने का श्रम मिटाय अति हर्षित हुए ॥

इति द्वाविंशतिः सर्गः

अथ त्रयोविंशतिःसर्गः

सं०—अब "वज्रदंष्ट्र" राक्षस की चढ़ाई और अङ्गद से उसका वध कथन करते हैं:—

धूम्राक्षं निहतं श्रुत्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
क्रोधेन महताविष्टो निःश्वसन्नुरगो यथा ॥१॥
दीर्घमुष्णं विनिःश्वस्य क्रोधेन कलुषी कृतः ।
अब्रवीद्राक्षसं क्रूरं वज्रदंष्ट्रं महाबलम् ॥२॥
गच्छ त्वं वीर निर्याहि राक्षसैः परिवारितः ।
जहि दाशरथिं रामं सुग्रीवं वानरैः सह ॥३॥

अर्थ—धूम्राक्ष को हत हुआ सुन राक्षसों का राजारावण अति क्रुद्ध हुआ सर्प के समान श्वास लेने लगा, और चिरकाल

तक लम्बी सांसें भरता हुआ क्रोध से आकुल चित्त हो बड़े बल वाले क्रूरस्वभाव "वज्रदंष्ट्र" नामा राक्षस से बोला कि हे वीर ! तू राक्षसों से घिरा हुआ बाहर निकल अर्थात् सेना को साथ लेकर जा और दशरथसुत राम तथा वानरों सहित सुग्रीव का हनन कर ॥

तथेत्युक्त्वा द्रुततरं मायावी राक्षसेश्वरः ।
निर्जगाम बलैः सार्धं बहुभिः परिवारितः ॥४॥
भिंदिपालैश्च चापैश्चशक्तिभिः पट्टिशैरपि ।
खड्गैश्चक्रैर्गदाभिश्च निशितैश्च परस्वधैः ॥५॥
रथं प्रदक्षिणं कृत्वा समारोहच्चमूपतिः ।
विचित्रवाससः सर्वे दीप्ता राक्षस पुङ्गवाः ॥६॥

अर्थ–तब तथास्तु कहकर मायावी राक्षसेश्वर बहुत दल बल सहित बाहर निकला, घनवासी, धनुष, शक्ति, पट्टा, खड्ग, गदा तथा तीक्ष्ण फरसा आदि शस्त्रों से युक्त हुआ रथ की प्रदक्षिणा करके उस पर सवार होकर चला और विचित्र वस्त्रों से भूषित शस्त्र धारण किये हुए सब सेना उसके साथ चली ॥

निःसृता दक्षिण द्वारादङ्गदो यत्र यूथपाः ।
ततः प्रवृत्तं तुमुलं हरीणां राक्षसैः सह ॥७॥
रुधिरौघेण संछन्ना भूमिर्भयकरी तदा ।
हारकेयूरवस्त्रैश्च छत्रैश्च समलंकृता ॥८॥

अर्थ–और वह दक्षिण द्वार से निकल जिधर अङ्गद सेना

पति नियत किया हुआ था वहां पहुंचते ही वानर तथा राक्षस सेना का बड़ा तुमुल युद्ध होने लगा, रुधिर, हार, बाहुबन्द, वस्त्र और छत्रों से अलंकृत हुई वह भूमि बड़ी भयानक होगई ॥

कबन्धानि समुत्पेतुर्भीरूणां भीषणानि वै ।
भुजपाणिशिरश्छिन्नाश्छिन्नकायाश्च भूतले ॥९॥
ततो वानरसैन्येन हन्यमानं निशाचरम् ।
प्राभज्यत बलं सर्वं वज्रदंष्ट्रस्य पश्यतः ॥१०॥
राक्षसान्भय वित्रस्तान्हन्यमानान्प्लवंगमैः ।
दृष्ट्वा स रोषताम्राक्षो वज्रदंष्ट्रः प्रतापवान् ॥११॥

अर्थ–भीरुओं को भयभीत करने वाले कबन्ध=धड़ वेग से उछलने लगे और सैनिकों के भुजा, हाथ, सिर तथा धड़ कट २ कर भूमि पर गिरने लगे, तब वानरसेना से मारी जाती हुई राक्षस सेना वज्रदंष्ट्र सेनापति के देखते २ भागने लगी, और वानरों से मारे जाते तथा भयभीत हुए राक्षसों को देखकर क्रोधित हुआ लालनेत्रों वाला प्रतापी वज्रदंष्ट्रः—

प्रविवेश धनुष्पाणिस्त्रासयन्हरिवाहिनीम् ।
शरैर्विदारयामास कंकपत्रैरजिह्मगैः ॥१२॥
ततो हरिगणान्भग्नान्दृष्ट्वा बालिसुतस्तदा ।
क्रोधेन वज्रदंष्ट्रं तमुदीक्षन्तमुदैक्षत ॥१३॥

अर्थ–हाथ में धनुष लेकर वानरों की सेना में प्रविष्ट हुआ और कङ्कपत्रों वाले तथा सीधा जाने वाले वाणों से वानरों को

घायल करने लगा, तब वानरों को भागता हुआ देखकर बालि के पुत्र अङ्गद ने वज्रदंष्ट्र को क्रोध से देखा ॥

वज्रदंष्ट्रोऽङ्गदश्चोभौ योयुध्येते परस्परम् ।
चेरतुः परमक्रुद्धौ हरिमत्तगजाविव ॥१४॥
जघ्नतुश्च तदान्योऽन्यं नर्दन्तौ जयकांक्षिणौ ।
व्रणैः समुत्थैः शोभेतां पुष्पिताविव किंशुकौ ॥१५॥

अर्थ–तदनन्तर वज्रदंष्ट्र और अङ्गद दोनों आपस में युद्ध के लिये जुट गये और परमक्रुद्ध हुए दोनों सिंह तथा मत्तगज की भांति युद्ध करने लगे, जय की इच्छा वाले गर्जते हुए परस्पर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे और शस्त्रप्रहार द्वारा पड़े व्रणों से फूले हुए केसुओं की न्यांई प्रतीत होते थे ॥

निर्मलेन सुधौतेन खड्गेनास्य महच्छिरः ।
जघान वज्रदंष्ट्रस्य बालिसूनुर्महाबलः ॥१६॥
वज्रदंष्ट्रं हतं दृष्ट्वा राक्षसा भयमोहिताः ।
त्रस्ता ह्यभ्यद्रवंल्लङ्कां बध्यमानाः प्लवंगमैः ॥१७॥

अर्थ–तदनन्तर बालिपुत्र अङ्गद ने निर्मल धोई हुई तलवार से वज्रदंष्ट्र के बड़े शिर को काट डाला, तब वज्रदंष्ट्र को हत हुआ देखकर भयभीत तथा वानरों से ताड़न किये हुए राक्षस लङ्का को भाग गये ॥

इति त्रयोविंशतिः सर्गः

अथ चतुर्विंशतिः सर्गः
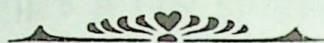
सं०-अब सेनापति अकम्पन का युद्ध में हनुमान् से मारा-जाना कथन करते हैं :—

वज्रदंष्ट्रं हतं श्रुत्वा बालिपुत्रेण रावणः ।
बलाध्यक्षमुवाचेदं कृताञ्जलिमुपस्थितम् ॥ १ ॥
शीघ्रं निर्यान्तु दुर्धर्षा राक्षसा भीमविक्रमाः ।
अकम्पनं पुरस्कृत्य सर्वशस्त्रास्त्रकोविदम् ॥ २ ॥

अर्थ-रावण ने बालि के पुत्र अङ्गद से बज्रदंष्ट्र को हत हुआ सुन हाथ जोड़कर सन्मुख खड़े हुए सेनाध्यक्ष से बोलाकि भयङ्कर पराक्रम वाले दुर्धर्ष राक्षस सब शस्त्र अस्त्रों के जानने वाले अकम्पन को अग्रणी बनाकर शीघ्र चढ़ाई करें॥

एष शास्ता च गोप्ता च नेता च युधिसत्तमः ।
भूति कामश्चमेनित्यं नित्यं च समरप्रियः ॥ ३ ॥
एष जेष्यति काकुत्स्थौ सुग्रीवं च महाबलम् ।
वानरांश्चापरान्घोरान्हानिष्यति न संशयः ॥ ४ ॥

अर्थ-यह अकम्पन समर में सबका शिक्षक, रक्षक, प्रेरक और युद्ध करने में अति चतुर है, वह सदा हमारा ऐश्वर्य्य चाहता और सदा ही समरप्रिय है, यह राम, लक्ष्मण तथा महाबली सुग्रीव को भी अवश्य जीतेगा और अन्य घोर वानरों का भी अवश्य हनन करेगा, इसमें संशय नहीं ॥

परिगृह्य स तामाज्ञां रावणस्य महाबलः ।
स्वबलं प्रेरयामास तदालघु पराक्रमः ॥ ५ ॥
ततो नाना प्रहरणाभीमाक्षा भीमदर्शना ।
निष्पेतू राक्षसा मुख्या बलाध्यक्षप्रचोदिताः ॥६॥
रथमास्थाय विपुलं तप्तकांचन भूषणम् ।
मेघाभो मेघवर्णश्च मेघस्वन महास्वनः ॥ ७ ॥
राक्षसैः संवृतो घो रैस्तदा निर्यात्यकंपनः ।
नहि कम्पयितुं शक्यः सुरैरपि महामृधे ॥ ८ ॥

अर्थ–तब रावण की आज्ञानुसार महाबली सेनाध्यक्ष ने शीघ्र ही सेना तैयार कर भेजी, जिसमें नाना प्रकार के आयुध लिये हुए भयङ्कर तथा भीम पराक्रमी योद्धा थे, और मेघाकार, मेघवर्ण तथा मेघों के समान शब्द करता हुआ अकम्पन तप्त सुवर्ण समान भूषित बड़े रथ पर सवार होकर उक्त घोर राक्षसों से घिरा हुआ चला जिसको घोर युद्ध में देवता भी कम्पायमान नहीं करसक्ते थे ॥

तेषां युद्धं महारौद्रं संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
रामरावणयोरर्थे समभित्यक्त देहिनः ॥ ९ ॥
रजश्चारुणवर्णाभं सुभीममभवद्भृशम् ।
उद्धृतं हरिरक्षोभिः संरुरोध दिशो दश ॥ १० ॥

अर्थ–फिर उन वानर तथा राक्षसों का महारौद्र युद्ध प्रवृत्त हुआ जो राम और रावण के अर्थ अपने देहों को त्यागे हुए थे,

वानर और राक्षसों के युद्ध से उड़ी हुई धूल अतीव भयानक दृष्टिगत होने लगी जिसने दशो दिशाओं को ढक लिया ॥

न ध्वजो न पताका वा चर्म वा तुरगोपि वा ।
आयुधं स्यन्दनो वापि ददृशे तेन रेणुना ॥११॥
शब्दश्च सुमहांस्तेषां नर्दतामभिधावताम् ।
श्रूयते तुमुलो युद्धे न रूपाणि चकाशिरे ॥ १२ ॥
ततस्तु रुधिरौघेण सिक्तं ह्यपगतं रजः ।
शरीरशवसंकीर्णा बभूव च वसुन्धरा ॥ १३ ॥

अर्थ–उस धूल में ध्वजा, पताका, ढाल, घोड़ा, शस्त्र और रथ दिखाई नहीं देते थे, गर्ज २ कर दौड़ते हुए योद्धाओं का महान् तुमुल शब्द सुनाई देता था रूप नहीं दीखते थे, फिर कुछ काल पश्चात् जब रुधिर प्रवाह के सेचन होने से धूल बैठगई तब रणभूमि मृतक शरीरों से भरी हुई दृष्टिगत होती थी ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरा हरयः कुमुदो नलः ।
मैन्दश्च परमक्रुद्धश्चक्रुर्वेगमनुत्तमम् ॥ १४ ॥
कदनं सुमहच्चक्रुर्लीलया हरिपुंगवाः ।
ममन्थू राक्षसान्सर्वे नानाप्रहरणैर्भृशम् ॥ १५ ॥

अर्थ–इसी अवसर में वीर योद्धा कुमुद, नल तथा मैन्द परम क्रुद्ध हुओं ने अपना अत्यन्त वेग दिखलाया, उन वानरश्रेष्ठों ने बहुत विनाश किया, कई प्रकार के प्रहारों से अनेक राक्षसों को पीस डाला ॥

तद्दृष्ट्वा सुमहत्कर्म कृतं वानरसत्तमैः ।
दृष्ट्वा तु कर्म शत्रूणां सारथिं वाक्यमब्रवीत् ॥१६॥
तत्रैव तावत्त्वरितो रथं प्रापय सारथे ।
एते च बलिनो घ्नन्ति सुबहून्राक्षसान्रणे ॥१७॥
एते च बलवन्तो वा भीमकोपाश्च वानराः ।
एतान्निहन्तुमिच्छामि समर श्लाघिनो ह्यहम् ॥१८॥

अर्थ—युद्ध में वानरों के इस बड़े घोर कर्म को देखकर अकम्पन क्रोध से व्याकुल हुआ सारथि से यह वाक्य बोला कि हे सारथे ! वहीं मेरे रथ को शीघ्र स्थापन कर जहां यह बलवान् वानर रण में बहुत से राक्षसों का हनन कर रहे हैं, मैं इन बलवाले तथा भयङ्कर कोपवाले नल आदि वानरों का हनन करना चाहता हूं जो युद्ध में बड़ी श्लाघा वाले हैं ॥

ततः प्रचलिताश्वेन रथेन रथिनांवरः ।
हरीनभ्यपतद्दूराच्छरजालैरकम्पनः ॥ १९ ॥
अकम्पन शरैर्भग्नाः सर्व एवाभिदुद्रुवुः ॥ २० ॥
तान्मृत्युवशमापन्नानकम्पनशरानुगान् ।
समीक्ष्य हनुमाञ्ज्ञातीनुपतस्थे महाबलः ॥ २१ ॥
तं महाप्लवगं दृष्ट्वा सर्वे ते प्लवगर्षभाः ।
समेत्य समरे वीराः सहिताः पर्यवारयन् ॥ २२ ॥

अर्थ—तदनन्तर वह श्रेष्ठ रथ वाला अकम्पन दौड़ते हुए घोड़ों वाले रथ पर चढ़ा दूर से ही बाणसमूह फेंकता हुआ वानरों पर आपड़ा, और उसके बाणों से सब वानर इधर उधर

भाग निकले, तब अकम्पन के बाणों के आघात से अपने ज्ञातियों को मृत्युवश होता देखकर महाबली हनुमान् उसके सन्मुख आडटा और हनुमान् को खड़ा देख सब वानर इकट्ठे होकर उसके चारो ओर खड़े होगये ॥

व्यवस्थितं हनूमन्तं ते दृष्ट्वा प्लवगर्षभः ।
वभूवुर्बलवन्तो हि बलवन्तमुपाश्रिताः ॥ २३ ॥
अकम्पनस्तु शैलाभं हनूमन्तमवस्थितम् ।
महेन्द्र इव धाराभिः शरैरभिववर्ष ह ॥ २४ ॥
अचिन्तयित्वा बाणौघाञ्छरीरे पातितान्कपिः ।
अकम्पनवधार्थाय मनो दध्रे महाबलः ॥ २५ ॥

अर्थ-हनुमान् को खड़ा हुआ देख वह सब वानर बलवान् का सहारा पाकर फिर प्रबल होगये, अकम्पन पर्वततुल्य हनुमान् को खड़ा देखकर महेन्द्रपर्वत पर मेह की धाराओं के समान हनुमान् पर तीरों की वर्षा करने लगा, पर वह महाबली हनुमान् शरीर पर गिरते हुए बाणों को सहारता हुआ अकम्पन के वध में अपने मन को दृढ़तापूर्वक लगाया ॥

स प्रहस्य महातेजा हनूमान्मारुतात्मजः ।
अभिदुद्राव तद्रक्षः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥ २६ ॥
तस्याथ नर्दमानस्य दीप्यमानस्य तेजसा ।
बभूव रूपं दुर्धर्षं दीप्तस्येव विभावसोः ॥ २७ ॥

अर्थ-वह महातेजस्वी पवनपुत्र हंसकर पृथिवी को कम्पाता हुआ अकम्पन की ओर दौड़ा, और तेज से कान्ति वाला तथा

गर्जते हुए हनुमान् का रूप प्रदीप्त अग्नि के समान बड़ा दुर्धर्ष होगया ॥

तमापतन्तं संक्रुद्धं राक्षसानां भयावहम् ।
ददर्शाकम्पनो वीरश्चुक्षोभ च ननाद च ॥ २८ ॥
ततोऽन्यं वृक्षमुत्पाट्य कृत्वा वेगमनुत्तमम् ।
शिरस्यभिजघानाशु राक्षसेन्द्रमकम्पनम् ॥ २९ ॥
स वृक्षेण हतस्तेन सक्रोधेन महात्मना ।
राक्षसो वानरेन्द्रेण पपात च ममार च ॥ ३० ॥

अर्थ—राक्षसों को भयभीत करने वाले हनुमान् को क्रुद्ध हो आता देखकर अकम्पन क्षोभ को प्राप्त होकर बहुत गर्जा, तदनन्तर बड़े वेग से हनुमान् ने एक वृक्ष उखाड़कर राक्षसेन्द्र अकम्पन के सिर पर मारा,उस महात्मा हनुमान् ने क्रोधित होकर अकम्पन के सिर में ऐसा वृक्ष मारा कि वह उससे हत होकर गिर पड़ा और मरगया ॥

तं दृष्ट्वा निहतं भूमौ राक्षसास्ते पराजिताः ।
लङ्कामभिययुस्त्रासाद्वानरैस्तैरभिद्रुताः ॥ ३१ ॥

अर्थ—तब उसको भूमि पर मराहुआ देखकर पराजित हुए सब राक्षस वानरों से भगाये हुए भयभीत हो लङ्का को भाग गये ॥

इति चतुर्विंशतिः सर्गः
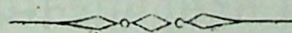
अथ पञ्चविंशतिः सर्गः

सं०–अब घोरसंग्राम में नील द्वारा प्रहस्त का बध कथन करते हैं:–

अकम्पनबधंश्रुत्वा क्रुद्धो वै राक्षसेश्वरः ।
किंचिद्दीनमुखश्चापि सचिवांस्तानुदैक्षत ॥ १ ॥
स तु ध्यात्वा मुहूर्तन्तुमन्त्रिभिः संविचार्य्य च ।
पुरीं परिययौ लङ्कां सर्वान्गुल्मानवेक्षितुम् ॥ २ ॥
तां राक्षसगणैर्गुप्तां गुल्मैर्बहुभिरावृताम् ।
ददर्श नगरीं राजा पताकाध्वजमालिनीम् ॥ ३ ॥
रुद्धां तु नगरीं दृष्ट्वा रावणो राक्षसेश्वरः ।
उवाचात्महितं काले प्रहस्तं युद्धकोविदम् ॥ ४ ॥

अर्थ–अकम्पन का वध सुनकर क्रुद्ध हुआ रावण दीनमुख हो मन्त्रियों की ओर देखने लगा, फिर एक मुहूर्त्त भर मन्त्रियों के साथ विचार कर लङ्कापुरी के सब मोरचे देखने को चला, सब मोरचे राक्षसों से सुरक्षित तथा ध्वजा पताकाओं से युक्त राजा ने लङ्कापुरी को देखा और सब ओर सेना से रुंदी हुई पुरी को देखकर राक्षसों का राजा रावण युद्ध में निपुण प्रहस्त से अपना हितकर वाक्य बोला कि :—

पुरस्योपनिविष्टस्य सहसा पीडितस्य ह ।
नान्य युद्धात्प्रपश्यामि मोक्षं युद्धविशारद ॥५॥

अहं वा कुम्भकर्णो वा त्वं वा सेनापतिर्मम ।
इन्द्रजिद्वा निकुम्भो वा वहेयुर्भारमीदृशम् ॥६॥
स त्वं बलमतः शीघ्रमादाय परिगृह्य च ।
विजयायाभिनिर्याहि यत्र सर्वे वनौकसः ॥७॥

अर्थ—हे युद्धविशारद ! यह पुर जिसके निकट शत्रु सेना की छावनी डाले हुए पीड़ित कर रहा है इसका उपाय किसी अन्य के युद्ध से नहीं देखता हूं, मैं वा कुम्भकरण अथवा मेरे सेनापति तुम वा इन्द्रजित अथवा निकुम्भ इस भार को उठा सक्ते हैं, सो तुम यहां से अपने अधीन सेना लेकर विजय के लिये चढ़ाई करो और शीघ्र ही वहां जाओ जहां सब वानर छावनी डाले पड़े हैं ॥

रावणेनैवमुक्तस्तु प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
राक्षसेन्द्रमुवाचेदमसुरेन्द्रमिवोशनाः ॥८॥
नहि मे जीवितं रक्ष्यं पुत्रदारधनानि च ।
त्वं पश्य मां जुहूषन्तं त्वदर्थे जीवितं युधि ॥९॥

अर्थ—रावण के उक्त प्रकार कथन करने पर सेनापति प्रहस्त रावण से इस प्रकार बोला, जैसे देवेन्द्र से वृहस्पति भाषण करते हैं, हे राजन् ! मुझे अपने जीवन, पुत्र, स्त्री और धन रक्षणीय नहीं है, मैं आपके निमित्त युद्ध में अपने जीवन को होम करसक्ता हूं जिसका फल आप शीघ्र देखेंगे ॥

एवमुक्त्वा तु भर्तारं रावणं वाहिनीपतिः ।
उवाचेदं बलाध्यक्षान्प्रहस्तः पुरतः स्थितान् ॥१०॥

समानयत मे शीघ्रं राक्षसानां महाबलम् ।
मद्बाणानान्तु वेगेन हतानान्तु रणाजिरे ॥११॥

अर्थ–इस प्रकार प्रहस्त अपने स्वामी रावण से कहकर फिर सन्मुख खड़े हुए सेनाध्यक्ष से बोला कि राक्षसों की बड़ी सेना को शीघ्र ही मेरे साथ जाने के लिये तैयार करो, मेरे बाणों के वेग से हत हुए आज तुम रण में वानरों को देखोगे ॥

स धनुष्काः कवचिनो वेगादुत्सृज्य राक्षसाः ।
रावणं प्रेक्ष्य राजानं प्रहस्तं पर्यवारयन् ॥१२॥

अर्थ–तब कवच वखतर पहन,धनुषधारण कर बड़े वेग से उठे हुए सैनिक राक्षस अपने राजा रावण को देख प्रहस्त के चारो ओर खड़े होगये ॥

आरुरोह रथं युक्तः प्रहस्तः सज्जकल्पितम् ।
लङ्काया निर्ययौ तूर्णं बलेन महतावृतः ॥१३॥
ततो दुन्दुभिनिर्घोषः पर्जन्यनिनदोपमः ।
वादित्राणां च निनदः पूरयन्निवमेदिनीम् ॥१४॥
भीमरूपा महाकायाः प्रहस्तस्य पुरःसरा ।
नरांतकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ॥१५॥

अर्थ–तदनन्तर सावधान हुआ प्रहस्त शस्त्रों से सजे हुए रथ पर आरूढ़ होकर महती सेना से घिरा हुआ शीघ्र ही लङ्का से बाहर निकला, तब मेघों की गर्जसमान दुन्दुभि आदि बाजे वजने लगे जिनसे पृथिवी पूर्ण होगई, और नरान्तक, कुम्भहनु,

महानाद और समुन्नत यह सब भयङ्कर रूप वाले महाकाय योद्धा प्रहस्त के आगे २ चले ॥

व्यूढेनैवसुघोरेण पूर्वद्वारात्स निर्ययौ ।
गजयूथनिकाशेन बलेन महतावृतः ॥१६॥

अर्थ—प्रहस्त हाथी के यूथ समान भारी सेना साथ लेकर किला बांध पूर्वद्वार होकर निकला ॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं दृष्ट्वा रणकृतोद्यमम् ।
उवाच सस्मितं रामो विभीषणमरिन्दमः ॥१७॥

अर्थ—तदनन्तर रण में उद्यम करने वाले प्रहस्त को बाहर निकलता हुआ देखकर शत्रुओं के दमन करने वाले राम मुस-कराकर विभीषण से बोले कि :—

क एष सुमहाकायो बलेन महतावृतः ।
आगच्छाति महावेगः किंरूपबलपौरुषः ॥१८॥
राघवस्य वचः श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
एष सेनापतिस्तस्य प्रहस्तो नाम राक्षसः ॥१९॥
लङ्कायां राक्षसेन्द्रस्य त्रिभागबलसंवृतः ।
वीर्यवानस्त्रविच्छूरः सुप्रख्यातपराक्रमः ॥२०॥

अर्थ—यह कौन बड़े डील डौल वाला, बड़े वेग वाला तथा भारी सेना से युक्त हुआ आरहा है, इसका रूप बल, पौरुष क्या है, राम के युक्त वचन सुनकर विभीषण बोला कि यह प्रहस्त नाम राक्षस रावण का सेनापति है, यह लङ्का में राजा रावण की तीनभाग

सेना का अध्यक्ष है और यह बड़ा बलवान्, अस्त्रों के जानने वाला शूरवीर और प्रसिद्ध पराक्रमशाली है ॥

ततः प्रहस्तं निर्यान्तं भीमं भीमपराक्रमम् ।
ददर्श महती सेना वानराणां बलीयसाम् ॥२१॥
तेषामन्योन्यमासाद्य संग्रामः सुमहानभूत् ।
बहूनामश्मवृष्टिं च शरवर्षं च वर्षताम् ॥२२॥
बहवो राक्षसा युद्धे बहून्वानरपुंगवान् ।
वानरा राक्षसांश्चापि निजघ्नुर्बहवो बहून् ॥२३॥

अर्थ—तदनन्तर महाबली वानरों की महती सेना ने राक्षसों की भारी सेना से घिरे हुए प्रहस्त को निकलता हुआ देखा, तब शिला वा शरों की बड़ी वृष्टि करते हुए वानर सेना तथा राक्षस सेना का एक दूसरे के निकट आकर बड़ा भारी युद्ध हुआ, जिसमें बहुत राक्षसों ने अनेक वानरों को और बहुत से वानरों ने अनेक राक्षसों को मार गिराया ॥

नरान्तकः कुम्भहनुर्महानादः समुन्नतः ।
एते प्रहस्त सचिवाः सर्वे जघ्नुर्वनौकसः॥२४॥
तेषां निपततां शीघ्रं निघ्नतां चापि वानरान् ।
द्विविदो गिरिशृंगेण जघानैकं नरान्तकम् ॥२५॥
दुर्मुखः पुनरुत्थाय कपिः सविपुलद्रुमम् ।
राक्षसं विप्रहस्तं तु समुन्नतमपोथयत् ॥ २६ ॥

अर्थ—नरान्तक, कुम्भहनु, महानाद और समुन्नत इन सब प्रहस्त के मन्त्रियों ने अनेक वानरों का हनन किया, जब यह सब दौड़ २ कर शीघ्रता से वानरसेना का हनन कर रहे थे तब उनमें से अकेले नरान्तक को द्विविद ने एक बड़ी शिला से मार गिराया, फिर दुर्मुख वानर आगे बढ़ा और उसने फुरतीले बलवान् समुन्नत राक्षस को एक बड़े वृक्ष से चूर २ कर दिया ॥

जाम्बवांस्तु सुसंक्रुद्धःप्रगृह्य महतीं शिलाम् ।
पातयामास तेजस्वी महानादस्य वक्षसी ॥२७॥
अथ कुम्भहनुस्तत्र तारेणासाद्य वीर्यवान् ।
वृक्षेण महता सद्यः प्राणान्सन्त्याजयद्रणो ॥२८॥

अर्थ—पुनः क्रोधित हुए तेजस्वी जाम्ववान् ने एक बड़ी शिला उठाकर महानाद की छाती में मारी, तदनन्तर तारने झपटकर बलवान् कुम्भहनु के एक बड़ा वृक्ष मार रण में उसके प्राण छुड़ा दिये ॥

अमृष्यमाणस्तत्कर्म प्रहस्तो रथमाश्रितः ।
चकार कदनं घोरं धनुष्पाणिर्वनौकसाम् ॥२९॥
महता हि शरौघेण राक्षसो रणदुर्मदः ।
अर्दयामास संक्रुद्धो वानरान्परमाहवे ॥३०॥

अर्थ—इस कर्म को न सहारते हुए रथ पर सवार प्रहस्त ने हाथ में लिये धनुष से वानरों का घोर विनाश किया, क्रोधित

हुए उस रणदुर्मद=रण में कूट युद्ध करने वाले राक्षस ने बाणसमूह से अनेक वानरों को मारा और घायल किया ॥

वानराणां शरीरैस्तु राक्षसानां च मेदिनी ।
बभूवातिचिता घोरैः पर्वतैरिव संवृता ॥ ३१ ॥
सा मही रुधिरौघेण प्रच्छन्ना संप्रकाशते ।
संछन्ना माधवे मासि पालशैरिव पुष्पितैः ॥ ३२ ॥

अर्थ—वानर और राक्षस शरीरों के पृथिवी पर ढेर लगगये, जैसेकि पृथिवी पर्वतों से ढकी हो, और रुधिर के प्रवाह से सिंचन हुई वह पृथिवी वसन्त मास में फूले हुए केसुओं से ढकी हुई भूमि की भांति प्रतीत होती थी ॥

ततः सृजन्तं बाणौघान्प्रहस्तंस्यन्दने स्थितम् ।
ददर्श तरसा नीलो विधमन्तं प्लवङ्गमान् ॥ ३३ ॥
समीक्षाभिद्रुतं युद्धे प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
रथेनादित्यवर्णेन नीलमेवाभिदुद्रुवे ॥ ३४ ॥
स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठो विकृष्य परमाहवे ।
नीलाय व्यसृजद्बाणान्प्रहस्तो वाहिनीपतिः ॥३५॥

अर्थ—तदनन्तर नील ने रथपर स्थित प्रहस्त को बाणों के प्रवाह से वानरों को शीघ्र मारते हुए देखा, सेनापति प्रहस्त ने भी युद्ध में नील को देखा, तब सूर्य्य सम चमकते हुए रथ पर चढ़ा हुआ नील के सन्मुख दौड़ा, और धनुर्धारियों में

श्रेष्ठ प्रहस्त समर में धनुष चढ़ाकर नील के ऊपर बाणों की वर्षा करने लगा ॥

ततो रोषपरीतात्मा धनुस्तस्य दुरात्मनः ।
बभंज तरसा नीलो ननाद च पुनः पुनः ॥ ३६ ॥
विधनुः स कृतस्तेन प्रहस्तो वाहिनीपतिः ।
प्रगृह्य मुसलंघोरं स्यन्दनादवपुप्लुवे ॥ ३७ ॥

अर्थ—तब क्रोध से भरे हुए मन वाले नील ने उस दुरात्मा के धनुष को तोड़कर बार २ सिंहनाद किया, इस प्रकार जब नील ने सेनापति प्रहस्त को धनुष रहित करदिया तब वह घोर मूसल पकड़कर रथ से कूद पड़ा ॥

आजघान तदा नीलं ललाटे मुसलेन सः ।
प्रहस्तः परमायत्तस्ततः सुस्राव शोणितम् ॥ ३८ ॥
प्रहस्तस्य शिलां नीलो मूर्ध्नि तूर्णमपातयत् ।
विभेद बहुधा घोरा प्रहस्तस्य शिरस्तदा ॥३९॥

अर्थ—और उस मूसल से प्रहस्त ने बड़े उद्योग के साथ नील के सिर पर प्रहार किया जिससे लोहू बहनिकला, फिर नील ने तत्काल ही प्रहस्त के सिर पर एक घोर शिला मारी जिसने प्रहस्त के सिर के कई टुकड़े कर दिये ॥

स गतासुर्गतश्रीको गतसत्त्वो गतेन्द्रियः ।
पपात सहसाभूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ ४० ॥

हतेप्रहस्ते नीलेन तदकम्प्यं महाबलम् ।
राक्षसानामहृष्टानां लङ्कामभिजगाम ह ॥ ४१ ॥

अर्थ–जिससे उसके प्राण, शोभा, शक्ति तथा इन्द्रिय सब नष्ट होगये और वह कटे हुए मूल वाले वृक्ष की भांति सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा, नील द्वारा प्रहस्त के मारे जाने पर अप्रसन्न हुई राक्षसों की वह अकम्प्य बड़ी सेना लङ्का को भाग गई ॥

इति पञ्चविंशः सर्गः

अथ षड्विंशः सर्गः

सं०–अब रावण की युद्ध के लिये चढ़ाई कथन करते हैं:—

संख्ये प्रहस्तं निहतं निशम्य क्रोधार्दितः
शोकपरीतचेतः। उवाच तान् राक्षस यूथ-
मुख्यानिन्द्रो यथा निर्जरयूथमुख्यान्॥१॥

अर्थ–प्रहस्त को युद्ध में हत हुआ सुनकर क्रोध से पीड़ित तथा शोक से भरे हुए चित्त वाला रावण देवसमूह के सेनापतियों से इन्द्र की भांति राक्षससमूहों के सेनापतियों से बोला कि:—

सोऽहं रिपुविनाशाय विजयायाविचारयन् ।
स्वयमेव गमिष्यामि रणशीर्षं तदद्भुतम् ॥ २ ॥
अद्य तद्वानरानीकं रामं च सहलक्ष्मणम् ।
निर्दहिष्यामि बाणौघैर्वनं दीप्तैरिवाग्निभिः ॥ ३ ॥

अर्थ-मैं शत्रु के विनाश और अपने विजय के लिये कोई विचार न करता हुआ स्वयमेव उस अद्भुत रण के मस्तक पर जाउंगा, और आज उस वानरसेना तथा राम लक्ष्मण को प्रज्वलित अग्नि से वन की भांति बाणसमूहों से दग्ध करूंगा ॥

स शंखभेरीपणवप्रणादैरास्फोटितक्ष्वेडित
सिंहनादैः । पुण्यैः स्तवैश्चापि सुपूज्य-
मानस्तदा ययौ राक्षसराजमुख्यः ॥४॥

अर्थ-शङ्ख, भेरी तथा नगारों की ध्वनियों और योद्धाओं की सिंहनाद सम ध्वनियों तथा स्तुतियों से पूजित हुआ वह राक्षसों का राजा रावण चल पड़ा ॥

तद्राक्षसानीकमतिप्रचण्डमालोक्य
राम भुजगेन्द्रबाहुः । विभीषणं शस्त्र
भृतां वरिष्ठमुवाच सेनानुगतःपृथुश्रीः ॥५॥

अर्थ-तब उस अति प्रचण्ड राक्षससेना को देखकर भुजगेन्द्र तुल्य बड़ी भुजाओं वाला सेना का साथी अत्यन्त शोभायमान राम शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ विभीषण से बोला कि :—

नाना पताकाध्वजछत्रजुष्टं प्रासासिशूला-
युधशस्त्रजुष्टम् । कस्येदमक्षोभ्यमभीरु
जुष्टं सैन्यं महेन्द्रोपमनागजुष्टम् ॥ ६ ॥

अर्थ-नाना झण्डे, झण्डियों तथा छत्र वाला और भाला, तलवार, शूल, अस्त्र, शस्त्र से युक्त तथा महेन्द्रपर्वत तुल्य हाथियों से सेवित और शूरवीरों से युक्त यह किसका अपार दल है ॥

ततस्तु रामस्य निशम्य वाक्यविभीषणः
शक्रसमानवीर्य्यः । शशंस रामस्य बल
प्रवेकंमहात्मनां राक्षसपुंगवानाम् ॥ ७ ॥

अर्थ–तदनन्तर राम के उक्त वाक्य को सुनकर इन्द्रतुल्य पराक्रमी महात्मा विभीषण ने सब राक्षसों के बल का भेद राम से कहा कि :—

योऽसौ नवार्कोदितताम्रचक्षुरारुह्यघण्टा
निनदप्रणादम् । गजं खरं गर्जति वै
महात्मा महोदरो नाम स एष वीरः॥८॥

अर्थ–जो यह प्रातःकाल के सूर्य्यसमान लाल नेत्रों वाला हाथी पर सवार घण्टा बजाता हुआ तथा बड़ा कठोर शब्द करता हुआ आता है यह महात्मा महोदर नामक वीर है ॥

योऽसौहयंकांचनचित्रभाण्डमारुह्यसन्ध्याभ्र
गिरिप्रकाशः । प्रासंसमुद्यम्य मरीचिनद्धं
पिशाच एषो शनितुल्य वेग ॥ ९ ॥

अर्थ–यह जो सुवर्ण जटित बड़े घोड़े पर सवार, सन्ध्याकाल के बादर वा पर्वत के आकार वाला, मरीच्याकार, झालर वाली प्रास हाथ में लिये आता है यह वज्रसम वेगवान् पिशाच नामा राक्षस है ॥

यश्चैष शूलं निशितं प्रगृह्य विद्युत्प्रभं
किंकर वज्रवेगम् । वृषेन्द्रमास्थाय शशि
प्रकाशमायाति योसौ त्रिशिरा यशस्वी॥१०॥

अर्थ—जो यह बिजुली सम प्रकाशित, बड़े वेगवाले वज्रतुल्य वेगवान् तीक्ष्ण शूल लिये चन्द्रसमान उजले बैल पर चढ़ा आता है यह बड़ा यशस्वी त्रिशिरा राक्षस है ॥

असौ च जीमूत निकाशरूपः कुम्भः पृथुव्यूढ
सुजातवक्षाः । समाहितः पन्नगराजकेतु-
र्विस्फारयन्याति धनुर्विधुन्वन् ॥ ११ ॥

अर्थ—यह जो मेघाकार बड़ी आभा वाला, चौड़ी छाती वाला तथा जिसकी पताका में शेष का चिन्ह है और जो धनुष को टंकार देता चला आता है यह कुम्भ नामा प्रसिद्ध राक्षस है, इत्यादि योद्धा राक्षसों का परिचय देकर फिर कहा कि:—

यत्रैतदिन्दुप्रतिमं विभाति च्छत्रं सितं
सूक्ष्मशलाकयन्त्रम् । अत्रैव रक्षोधिपति-
र्महात्मा भूतैर्वृतो रुद्र इवावभाति ॥ १२ ॥

अर्थ—यह जो सूक्ष्म शलाकाओं वाला तथा जिसका चन्द्रतुल्य श्वेत छत्र प्रतीत होता है यही वह महात्मा राक्षसपति रावण है जो क्रूरकर्मा राक्षसों से युक्त रुद्र की भांति क्रोधित हुआ प्रकाशित होरहा है ॥

प्रत्युवाच ततो रामो विभीषणमरिन्दमः ।
अहो दीप्तमहातेजा रावणो राक्षसेश्वरः ॥ १३ ॥
आदित्य इव दुष्प्रेक्ष्यो रश्मिभिर्भाति रावणः ।
न व्यक्तं लक्ष्यते ह्यस्य रूपं तेजः समावृतम् ॥ १४ ॥

सर्वे पर्वतसंकाशाः सर्वे पर्वतयोधिनः ।
सर्वे दीप्तायुधधरा योधास्तस्य महात्मनः॥१५॥

अर्थ—तदनन्तर शत्रुओं के दमन करने वाले राम ने पुनः विभीषण से कहा कि अहो यह राक्षसेश्वर रावण दीप्त हुई अग्नि के समान बड़े तेजवाला है, रश्मियों से युक्त सूर्य्य की भांति इसका तेज सहारा नहीं जाता और न तेज से ढकी हुई इसकी सूक्ष्म बनावट दृष्टिगत होती है अर्थात् इसके तेज के कारण इसका रूप यथार्थतया नहीं जाना जाता, इस महात्मा के साथ सब योद्धा पर्वत जैसे बड़े डील डौल वाले, हिमालय से भी युद्ध करने वाले और चमकते हुए शस्त्रों को धारण किये हुए हैं ॥

दिष्ट्यायमद्य पापात्मा मम दृष्टिपथं गतः ।
अद्य क्रोधं विमोक्ष्यामि सीताहरणसंभवम् ॥१६॥
एवमुक्त्वा ततो रामो धनुरादाय वीर्य्यवान् ।
लक्ष्मणानुचरस्तस्थौ समुद्धृत्य शरोत्तमम् ॥१७॥

अर्थ—यह पापात्मा आज भाग्य से मेरी दृष्टिगत हुआ है, आज इस पर सीताहरण से उत्पन्न हुआ क्रोध छोडुंगा, यह कहकर बलवान् राम ने धनुष पकड़ा और उत्तम बाण निकाल कर लक्ष्मण को साथ लिये युद्ध को तैयार हो खड़े होगये॥

इति षड्विंशतिः सर्गः

अथ सप्तविंशतिः सर्गः

सं०—अब रावण तथा लक्ष्मण के युद्ध में लक्ष्मण का मूर्च्छित होना कथन करते हैं :—

तमापतंतं सहसा समीक्ष्य दुद्राव रक्षो-
धिपतिर्हरीशः । महाहिकल्पं शरमन्त-
काभं समादधे राक्षस लोकनाथः ॥१॥

अर्थ—तदनन्तर राक्षसपति रावण को सहसा आता हुआ देखकर सुग्रीव उसकी ओर दौड़ा, तब राक्षसलोक के स्वामी रावण ने उस पर महानाग के तुल्य यमरूप एक बाण छोड़ा ॥

स तं गृहीत्वानिल तुल्य वेगं स विस्फुलिंग
ज्वलनप्रकाशम् । बाणं महेन्द्राशनि तुल्य
वेगं चिक्षेप सुग्रीव बधायरुष्टः ॥ २ ॥

अर्थ—वह वायुतुल्य वेग वाला तथा चिनगारियां उड़ाता हुआ अग्नि के समान प्रकाशित और महेन्द्र के वज्र तुल्य वेग वाले उस बाण को सुग्रीव के बधार्थ छोड़ा ॥

स सायकार्तोविपरीतचेताः कूजन्पृथिव्यां
निपपात वीरः । तं वीक्ष्य भूमौ पतितं
विसंज्ञं नेदुः प्रहृष्टा युधि यातुधानाः॥३॥

अर्थ—उस बाण के लगने से पीड़ित हो वीर सुग्रीव पुकारता

हुआ मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़ा, उसको पृथिवी पर गिरा हुआ देखकर राक्षस लोग अति प्रसन्न हो युद्ध में गर्जने लगे॥

ततो गवाक्षो गवयः सुषेणस्त्वथर्षभो
ज्योतिर्मुखो नलश्च । शैलान्समुत्पाट्य
विवृद्धकायाःप्रदुद्रुवुस्तं प्रतिराक्षसेन्द्रम्॥४॥

अर्थ—तब गवाक्ष, गवय, सुषेण, ऋषभ, ज्योतिर्मुख तथा नल यह सब महाकाय प्रतापी वानर पर्वत उठा २ कर रावण की ओर दौड़े॥

तेषां प्रहारान्सचकारमोघान् रक्षोधिपो
बाणशतैः शिताग्रैः । तान्वानरेन्द्रानपि
बाणजालैर्बिभेदजांबूनद चित्रपुंखैः॥५॥

अर्थ—रावण ने उनके प्रहारों को अपने तीक्ष्ण सैकड़ों बाणों से काटकर निष्फल कर दिया और फिर उन वानरेन्द्रों का भी विचित्र शरों वाले बाणों से हनन किया॥

ते वानरेन्द्रास्त्रिदशारिबाणैर्भिन्नानिपे-
तुर्भुविभीमकायाः। ततस्तु तद्वानरसैन्य-
मुग्रं प्रच्छादयामास स बाणजालैः॥६॥

अर्थ—तदनन्तर वह सब महाकाय वानर रावण के बाणों से छिन्नभिन्न हो भूमि पर गिर पड़े, पश्चात् रावण ने बाणसमूह से वानरों की सेना को आच्छादित कर दिया॥

ततो महात्मा स धनुर्धनुष्मानादाय रामः
सहसा जगाम। तं लक्ष्मणः प्राञ्जलिरभ्यु-
पेत्य उवाच रामं परमार्थयुक्तम् ॥ ७ ॥

अर्थ—यह देखकर धनुर्धारी महात्मा राम धनुष लेकर शीघ्र ही उधर को चले तब लक्ष्मण हाथ जोड़कर राम से यह उत्तम बचन बोला कि :—

काममार्य सुपर्याप्तोबधायास्य दुरात्मनः।
विधिमिष्याम्यहं चैतमनुजानीहि मां विभो ॥८॥
तमब्रवीन्महातेजा रामः सत्यपराक्रमः।
गच्छ यत्नपरश्चापि भव लक्ष्मण संयुगे ॥९॥

अर्थ—निःसन्देह आप इस दुरात्मा रावण के बध करने में सर्वथा समर्थ हैं, पर हे प्रभो! आप मुझे आज्ञा दें मैं इसका हनन करुंगा, तब महातेजस्वी सत्यपराक्रम वाले राम ने उसको कहा कि हे लक्ष्मण! तू जा और युद्ध में यत्नपरायण हो॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा संपरिष्वज्य पूज्य च।
अभिवाद्य च रामाय ययौ सौमित्रिराहवे ॥१०॥

अर्थ—राम के उक्त बचन सुन उनके गले लगकर, उन्हें पूजकर और अभिवादन करके लक्ष्मण युद्ध के लिये चल पड़ा॥

स रावणं वारणहस्तबाहुं ददर्श भीमो-
द्यतदीप्तचापम्। प्रच्छादयन्तं शरवृष्टि
जालैस्तान्वानरान्भिन्न विकीर्ण देहान्॥११॥

अर्थ—तब उसने हाथी की सूंड तुल्य भुजा वाले तथा भयङ्कर चमकते हुए धनुष वाले रावण को बाणों की वर्षा से वानरों को ढांपता, उनकी देहों को फोड़ता तथा खण्ड २ करते हुए देखा ॥

तमाह सौमित्रिरदीन सत्त्वोविस्फारयन्तं
धनुरप्रमेयम्। अवेहि मामद्य निशाचरेन्द्र
न वानरांस्त्वं प्रतियोद्धुमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ—तदनन्तर अप्रमेय धनुष को घुमाते हुए उदार हृदय लक्ष्मण उससे बोला कि हे राक्षसेन्द्र! मेरी ओर आ तू वानरों से प्रतियुद्ध के योग्य नहीं ॥

स तस्य वाक्यं प्रतिपूर्णघोषं ज्याशब्दमुग्रं
च निशम्य राजा। आसाद्य सौमित्रिमु-
पस्थितं तं रोषान्वितं वाचमुवाच रक्षः॥१३॥

अर्थ—तब वह राजा रावण उसका पूर्ण ध्वनि वाला वाक्य तथा ज्या शब्द सुनकर और लक्ष्मण को सन्मुख आया हुआ देख क्रोध से युक्त यह बचन बोला कि:—

दिष्ट्यासि मे राघव दृष्टिमार्गं प्राप्तोऽन्त-
गामी विपरीतबुद्धिः। अस्मिन्क्षणे यास्य-
सि मृत्युलोकं संसाद्यमानो मम बाणजालैः॥१४॥

अर्थ—हे राघव! तू भाग्य से मेरे दृष्टिमार्ग में आया है अर्थात् मेरी नज़र पड़ा है, सो अब मृत्यु के निकट होने से

विपरीत बुद्धि वाला है, सो मेरे बाणसमूहों से पीड़ित हुआ तू इसी क्षण में मृत्यु को प्राप्त होगा ॥

तमाह सौमित्रिरविस्मयानो-
विकत्थसे पापकृतां वरिष्ठ॥१५॥

अर्थ—लक्ष्मण विस्मय को प्राप्त न होता हुआ रावण से बोला कि हे पाप करने वालों में बढ़ा हुआ तू अपनी आप प्रशंसा करता है ॥

जानामि वीर्यं तव राक्षसेन्द्र बलं प्रतापं
च पराक्रमं च । अवस्थितोऽहं शरचाप
पाणिरागच्छ किं मोघविकत्थनेन ॥१६॥

अर्थ—हे राक्षसेन्द्र ! मैं तेरे वीर्य, बल, प्रताप तथा पराक्रम को जानता हूं, तू आ जा मैं हाथ में धनुषबाण लिये खड़ा हूं व्यर्थ श्लाघा से क्या ॥

स एवमुक्तः कुपितः ससर्ज रक्षोधिपः सप्त-
शरान्सुपुंखान् । तांल्लक्ष्मणः कांचनचित्र
पुंखैश्चिच्छेदबाणैर्निशिताग्रधारैः ॥ १७ ॥

अर्थ—जब लक्ष्मण ने रावण से उक्त प्रकार कहा तब उस राक्षसपति ने कुपित होकर तीक्ष्ण नोकों वाले सात बाण लक्ष्मण पर छोड़े और उसनेअपने सुनहरी विचित्र नोकों वाले तथाअग्रधारा वाले तीक्ष्ण बाणों से उनको काट दिया ॥

तान्प्रेक्षमाणः सहसानिकृत्तान्निकृत्तभोगानि-

वपन्नगेन्द्रान् । लङ्केश्वरः क्रोधवशं जगाम
ससर्ज चान्यान्निशितान्पृषत्कान् ॥ १८ ॥

अर्थ—जब रावण ने उन बाणों को कटे हुए फणों वाले नागों की भांति सहसा कटते हुए देखा तब उसने क्रोध में आकर अन्य तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥

स बाणवर्षं तु ववर्ष तीव्रं रामानुजः कार्मुक
संप्रयुक्तम् । क्षुरार्धचन्द्रोत्तमकर्णभल्लैः
शरांश्च चिच्छेद न चुक्षुभे च ॥ १९ ॥

अर्थ—और इधर लक्ष्मण ने भी अपने धनुष से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा की, और छुरे, अर्धचन्द्र, उत्तमकर्ण तथा भालों से निःशंक होकर उसके बाणों को काटता रहा तनिक भी न घबराया ॥

स बाणजालान्यपि तानि तानि मोघानि
पश्यंस्त्रिदशारिराजः । विसिस्मिये लक्ष्मण
लाघवेन पुनश्च बाणान्निशितान्मुमोच ॥ २० ॥

अर्थ—तब वह राक्षसराज उन २ बाणसमूहों को व्यर्थ जाता देख और लक्ष्मण के लाघव से विस्मित होकर उसने फिर तीक्ष्ण बाण छोड़े ॥

स लक्ष्मणो रावणसायकार्तश्चचाल चापं
शिथिलं प्रगृह्य । पुनश्च संज्ञां प्रतिलभ्य
कृच्छ्राच्चिच्छेद चापं त्रिदशेन्द्रशत्रोः ॥ २१ ॥

अर्थ—रावण के उक्त तीक्ष्ण बाणों से पीड़ित हुआ लक्ष्मण

कांप गया और उसके हाथ से धनुष ढीला होगया, फिर बड़ी कठिनता से सावधान होकर उसने राक्षसराज के बाण को काट दिया॥

निकृत्तचापं त्रिभिराजघान बाणैस्तदा
दाशरथिः शिताग्रैः। ससायकार्तो विचचाल
राजा कृच्छ्राच्च संज्ञां पुनराससाद ॥ २२ ॥

अर्थ—रावण के धनुष को काटकर पुनः लक्ष्मण ने तीक्ष्ण नोकों वाले तीव्र बाणों से उसका ताड़न किया, फिर वह लक्ष्मण के बाणों से पीड़ित हुआ राजा रावण घबरागया और फिर बड़ी कठिनता से सावधान हुआ॥

जग्राह शक्तिं स्वयमुग्रशक्तिः स्वयंभु दत्तां
युधि देवशत्रुः। चिक्षेपशक्तिं तरसा ज्वल-
न्तीं सौमित्रये राक्षसराष्ट्रनाथः ॥ २३ ॥

अर्थ—तदनन्तर स्वयं उग्र शक्ति वाले रावण ने युद्ध में ब्रह्मा से दीहुई शक्ति नामक शस्त्र पकड़ा और फिर उस राक्षसेन्द्र ने जलती हुई वह शक्ति बड़े वेग से लक्ष्मण पर फैंकी॥

तामापतन्तीं भरतानुजोऽस्त्रैर्जघान बाणैश्च
हुताग्निकल्पैः। तथापि सा तस्य विवेश
शक्तिर्भुजान्तरं दाशरथेर्विशालम् ॥ २४ ॥

अर्थ—उस आती हुई शक्ति को लक्ष्मण ने प्रज्वलित अग्नि तुल्य बाणों से रोका परन्तु वह न रुकी और लक्ष्मण की विशाल छाती में भीतर प्रविष्ट होगई॥

स शक्तिमाञ्छक्ति समाहतः सञ्जज्वाल
भूमौ स रघुप्रवीरः। तं विह्वलन्तं सहसा-
भ्युपेत्य जग्राह राजा तरसा भुजाभ्याम्॥२५॥

अर्थ—वह शक्तिमान् लक्ष्मण शक्ति से ताड़न किया हुआ भूमि पर गिरा, तब उस व्याकुल को गिरते ही राजा ने बड़े वेग से दोनों भुजा पकड़कर उठा लिया॥

ततः क्रुद्धो वायुसुतो रावणं समभिद्रवत्।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना॥२६॥
तेन मुष्टिप्रहारेण रावणो राक्षसेश्वरः।
जानुभ्यामगमद्भूमौ चचाल च पपात च॥२७॥

अर्थ—तब उसी समय क्रुद्ध हुआ हनुमान् रावण की ओर दौड़ा और बड़े क्रोध से अपना वज्रतुल्य मुक्का उसकी छाती पर मारा, उस मुक्के के प्रहार से राक्षसेश्वर रावण कांपा और घुटनों के बल भूमि पर गिरा॥

हनुमानथ तेजस्वी लक्ष्मणं रावणार्दितम्।
आनयद्राघवाभ्याशं बाहुभ्यां परिगृह्यतम्॥२८॥

अर्थ—और तत्काल ही तेजस्वी हनुमान् रावण से पीड़ित लक्ष्मण को दोनों भुजाओं पर उठाकर राम के समीप ले आया॥

इति सप्तविंशतिः सर्गः

अथ अष्टाविंशतिः सर्गः

सं०—अब राम से रावण का पराजय कथन करते हैं:—

रावणोऽपि महातेजः प्राप्य संज्ञां महाहवे।
आददेनिशितान्बाणाञ्जग्राह च महद्धनुः॥ १॥
आश्वस्तश्च विशल्यश्च लक्ष्मणः शत्रुसूदनः॥ २॥
निपातित महावीरां वानराणां महाचमूम्।
राघवस्तु रणे दृष्ट्वा रावणं समभिद्रवत्॥ ३॥

अर्थ—उस बड़े घोर युद्ध में महातेजस्वी रावण ने सचेत होकर फिर बड़ा धनुष और तीक्ष्ण बाणों को पकड़ा, और उधर कुछ आराम पाकर शत्रुओं का हनन करने वाला लक्ष्मण भी शल्य की वेदना से रहित होकर सचेत हुआ, तब राम रण में वानरसेना के बड़े २ वीरों को गिरा हुआ देखकर रावण की ओर दौड़े॥

ज्याशब्दमकरोत्तीव्रं वज्रनिष्पेषनिष्ठुरम्।
गिरागम्भीरया रामो राक्षसेन्द्रमुवाचह॥ ४॥
तिष्ठ तिष्ठ मम त्वं हि कृत्वा विप्रियमीदृशम्।
क्वनुराक्षसशार्दूल गत्वा मोक्षमवाप्स्यसि॥ ५॥

अर्थ—और उसके समीप पहुंचते ही बज्रसमान ज्या=धनुष की प्रत्यञ्चा का बड़ा घोर शब्द किया, फिर राम गम्भीर बाणी द्वारा रावण से बोले कि हे राक्षस शार्दूल! खड़ा हो, खड़ा हो,

हमारा इस प्रकार का अप्रिय करके तू कहीं भी जाकर नहीं बचसक्ता ॥

तस्याभिसंक्रम्य रथं स चक्रं साश्वध्वज-
च्छत्र महापताकम् । ससारथिं साशनि
शूल खड्गं रामः प्रचिच्छेद शितैः शराग्रैः ॥६॥

अर्थ—यह कहकर राम ने उस पर आक्रमण करके उसका रथ, पहिये, घोड़े, छत्र, ध्वजा, झण्डा, सारथी, वज्र, शूल और खड्ग को तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥

अथेन्द्रशत्रुस्तरसा जघान बाणेन वज्रा-
शनिसंन्निभेन । भुजान्तरे व्यूढसुजातरूपे
वज्रेण मेरुं भगवानिवेन्द्रः ॥ ७ ॥

अर्थ—तदनन्तर राम ने वज्र तथा विजुली तुल्य बाण से रावण की सुवर्ण के भूषणवाली विशाल भुजा को ताड़न किया, जैसे भगवान् इन्द्र ने वज्र से मेरु को गिराया था ॥

यो वज्रपाताशनि सन्निपातान्न चुक्षुभे
नापि चचाल राजा । स रामबाणाभिहतो
भृशार्तश्चचाल चापं च मुमोच वीरः ॥८॥

अर्थ—वह वीर राजा रावण जो वज्रपात तथा विजुली तुल्य बाण से न क्षुब्ध हुआ और न हिला था वह राम के बाण से हत हुआ अत्यन्त पीड़ित होकर घबरा जाने के कारण उसके हाथ से धनुष छूट गया ॥

तं विह्वलन्तं प्रसमीक्ष्य रामः समाददेदीप्त-
मथार्धचन्द्रम् । तेनार्कवर्णं सहसा किरीटं
चिच्छेद रक्षोधिपतेर्महात्मा ॥ ९ ॥

अर्थ—तब उसको व्याकुल देखकर राम ने चमकता हुआ अर्धचन्द्र धनुष पकड़ा और उससे रावण के सूर्यतुल्य प्रकाश वाले मुकुट को काट दिया ॥

तं निर्विषाशीविषसंनिकाशं शान्तार्चिषं सूर्य-
मिवाप्रकाशम् । गतश्रियं कृत्तकिरीटकूट-
मुवाच रामो युधि राक्षसेन्द्रम् ॥ १० ॥

अर्थ—फिर विषवत् श्यामवर्ण वाले राम विषरहित सर्प के समान, मन्ददीप्ति वाले सूर्य्य के तुल्य अप्रकाशित, श्री रहित तथा कटे हुए मुकुट वाले रावण से युद्ध में बोले कि :—

कृतं त्वया कर्म महत्सुभीमं हतप्रवीरश्च
कृतस्त्वयाहम् । तस्मात्परिश्रान्त इति
व्यवस्य न त्वां शरैर्मृत्युवशं नयामि॥११॥

अर्थ—तैंने बहुत बड़ा भयङ्कर कर्म किया जो मेरे वीरों को मारा है, अतएव इस समय थका हुआ जानकर तुझे बाणों से मृत्यु के वशीभूत नहीं करता हूं ॥

प्रयाहि जानामि रणार्दितस्त्वं प्रविश्य रात्रिंचर-
राज लङ्काम् । आश्वस्य निर्याहि रथी सधन्वी
तदा बलं प्रेक्ष्यसि मे रथस्थः ॥ १२ ॥

अर्थ–हे राक्षस ! अब तू जा मै जानता हूं कि तू इस समय रण से पीड़ित है, अब तू लङ्का में प्रवेश करके आश्वासन पाकर रथ तथा धनुष के सहित फिर बाहर निकल तब रथ पर स्थित हुआ तू मेरा बल देखेगा ॥

स एवमुक्तो हतदर्पहर्षो निकृत्तचापः स
हताश्वसूतः । शरार्दितो भग्न महाकिरी-
टी विवेश लङ्कां सहसास्म राजा ॥१३॥

अर्थ–राम के उक्त प्रकार कथन करने राजा पर रावण जिस का दर्प=अभिमान तथा हर्ष दूर होगया है, और टूटे हुए धनुष वाला, हत हुए घोड़े तथा सारथि वाला, बाणों से पीड़ित और जिसका महामुकुट टूट गया है वह रावण सहसा लङ्का में प्रविष्ट हुआ ॥

तस्मिन्प्रविष्टे रजनीचरेन्द्रे महाबले
दानवदेवशत्रौ । हरीन्विशल्यान्सह
लक्ष्मणेन चकार रामःपरमाहवाग्रे ॥१४॥

अर्थ–दानव तथा देवों के शत्रु रावण के लङ्का को चले जाने पर लक्ष्मण सहित राम ने सब वानरों के अङ्गों में छिदे हुए बाणों को निकलवा डाला तथा सबकी व्यथा को दया दृष्टि से देखा, और "रावण का पराजय देखकर सब अति हर्ष को प्राप्त हुए" ॥

इति अष्टाविंशतिः सर्गः

अथ एकोनविंशतिः सर्गः

सं०-अब कुम्भकर्ण को जगा रण के लिये उत्साहित कर युद्धार्थ भेजना कथन करते हैं :—

स प्रविश्य पुरीं लङ्कां रामबाण भयार्दितः ।
भग्नदर्पस्तदाराजा बभूव व्यथितेन्द्रियः ॥१॥
मातंग इव सिंहेन गरुड़ेनेवपन्नगः ।
अभिभूतो भवद्राजा राघवेण महात्मना ॥२॥
ब्रह्मदण्डप्रतीकानां विद्युच्चालित वर्चसाम् ।
स्मरन् राघवबाणानां विव्यथे राक्षसेश्वरः ॥३॥
समरे जितमात्मानं प्रहस्तं च निषूदितम् ।
ज्ञात्वा रक्षो भीमबलमादिदेश महाबलः ॥४॥

अर्थ-तदनन्तर रावण ने लङ्कापुरी में प्रवेश किया, राम के बाणों के भय से डरे हुए रावण का अभिमान जाता रहा और उसकी इन्द्रियें व्यथा को प्राप्त होगई, जिसप्रकार सिंह से पीड़ित हाथी तथा गरुड़ से पीड़ित सर्प व्याकुल होता है इसी प्रकार महात्मा राम से पराजित हुआ रावण व्याकुल होगया, ब्रह्मदण्ड तथा बिजुली के समान राम के तीक्ष्ण बाणों का स्मरण करता हुआ रावण बहुत व्यथा को प्राप्त हुआ, और युद्ध में अपने आपको पराजित तथा प्रहस्त को मरा हुआ जानकर महाबली रावण ने भीम बलवाले एक राक्षस को आज्ञा दी कि:—

द्वारेषु यत्नः क्रियतां प्राकारश्चाधिरुह्यताम् ।
निद्रावशसमाविष्टः कुम्भकर्णो विबोध्यताम् ॥५॥
सुप्तमुत्थाप्य भीमाक्षं भीमरूपपराक्रमम् ।
कुम्भकर्णमिदं वाक्यमूचु रावणचोदिताः ॥६॥

अर्थ—सब द्वारों पर पूरा यत्न करो, कोटों के ऊपर चढ़ जाओ और निद्रावश हुए कुम्भकर्ण को जगाओ, रावण की आज्ञा पाते ही वह राक्षस भीम नेत्रों वाले, भीम रूप तथा भीम पराक्रम वाले कुम्भकर्ण के समीप गये और उसको जगाकर बोले कि:—

द्रष्टुं त्वां कांक्षते राजा सर्वराक्षसपुंगवः ।
गमने क्रियतां बुद्धिर्भ्रातरं संप्रहर्षय ॥७॥
कुम्भकर्णस्तु दुर्धर्षो भ्रातुराज्ञाय शासनम् ।
तथेत्युक्त्वा महावीर्यः शयनादुत्पपात ह ॥८॥

अर्थ—सब राक्षसों में श्रेष्ठ राजा आपका दर्शन चाहते हैं, सो शीघ्र चलकर भाई को प्रहर्षित कीजिये, तब महावीर्य दुर्धर्ष कुम्भकर्ण भाई की आज्ञा जान तथास्तु कहकर शयन से उठ खड़ा हुआ ॥

भ्रातुः स भवनं गच्छन्रक्षोबलसमन्वितः ।
कुम्भकर्णः पदन्यासैरकम्पयन्मेदिनीम् ॥९॥
सोऽभिगम्य गृहं भ्रातुः कक्ष्यामभिविगाह्य च ।
ददर्शोद्विग्नमासीनं विमाने पुष्पके गुरुम् ॥१०॥

अर्थ—फिर राक्षससेना से युक्त हो भाई के भवन को जाता

हुआ वह अपने पांव रखने से मानो पृथिवी को कम्पा देता था, फिर भाई के घर पहुंच सारी डेउढ़ियों को लङ्घकर पुष्पक विमान पर बैठे हुए गुरु=बड़े भाई को उदासीन देखा ॥

अथ दृष्ट्वा दशग्रीवः कुम्भकर्णमुपस्थितम् ।
तूर्णमुत्थाय संहृष्टः सन्निकर्षमुपानयत् ॥११॥
स भ्रात्रा संपरिष्वक्तो यथावच्चाभिनन्दितः ।
कुम्भकर्णः शुभं दिव्यं प्रतिपेदे वरासनम् ॥१२॥

अर्थ--तदनन्तर रावण कुम्भकर्ण को आया देखकर प्रसन्न हुआ और शीघ्र ही उठकर अपने समीप ले आया, तब कुम्भकरण ने भाई को गले लगा परम प्रसन्न कर दिव्य शुभ आसन स्वीकार किया ॥

स तदासनमाश्रित्य रावणं वाक्यमब्रवीत् ।
किमर्थमहमादृत्य त्वया राजन्प्रबोधितः ॥१३॥
भ्रातरं रावणः क्रुद्धं कुम्भकर्णमवास्थितम् ।
रोषेण परिवृत्ताभ्यां नेत्राभ्यां वाक्यमब्रवीत् ॥१४॥

अर्थ--तब कुम्भकर्ण आसन पर बैठकर रावण से बोला कि हे राजन् ! किस निमित्त मुझे बड़े आदर से जगाया है, समीप स्थित रावण क्रोध में भरा हुआ, क्रोध से बदले हुए नेत्रों से युक्त भाई कुम्भकर्ण से बोला कि :—

अयं ते सुमहान्कालः शयानस्य महाबलः ।
सुप्तस्त्वं न जानीषे मम रामकृतं भयम् ॥१५॥

एषदाशरथिः श्रीमान्सुग्रीवसहितो बली ।
समुद्रं लङ्घयित्वा तु कुलं नः परिकृन्तति ॥१६॥
ये राक्षसा मुख्यतमा हतास्ते वानरैर्युधि ।
वानराणां क्षयं युद्धेः न पश्यामि कथंचन ॥१७॥

अर्थ—हे महाबल ! तुम्हें शयन करते हुए अधिक काल बीत गया है इससे आप राम से जो भय हमको होरहा है उसे नहीं जानते, श्रीमान् महाबली राम सुग्रीव को साथ ले समुद्र लांघकर अब हमारे कुल का नाश करना चाहते हैं, जो हमारे मुख्यतम राक्षस थे वह वानरों ने युद्ध में मार डाले हैं, और वानरों का क्षय युद्ध में किसी प्रकार भी नहीं देखता हूं ॥

तदेतद्भयमुत्पन्नं त्रायस्वेह महाबल ।
नाशय त्वमिमानद्य तदर्थं बोधितो भवान् ॥१८॥
भ्रातुरर्थे महाबाहो कुरु कर्म सुदुष्करम् ।
त्वय्यस्ति मम च स्नेहः परा सम्भावना च मे॥१९॥

अर्थ—हे महाबल ! यह भय उत्पन्न हुआ है, इसमें आप रक्षा करने योग्य हैं, सो आप इन्हे मारें, इसीलिये तुम्हें जगाया है, हे महाबाहो ! भाई के अर्थ यह बड़ा दुष्कर कार्य्य कर, तुझ में मेरा बड़ा स्नेह और तुम्हीं से यह सम्भावना है ॥

कुरुष्व मे प्रियहितमेतदुत्तमंयथाप्रियं रणप्रिय
बान्धवप्रिय । स्वतेजसा व्यथय स यत्न-
वाहिनीं शरद्घनं पवन इवोदितो महान्॥२०॥

अर्थ—हे रण के प्यारे ! हे बन्धुओं के हितैषी कुम्भकर्ण ! अपनी प्रीति अनुसार यह मेरा हितकर कार्य्य कर, अपने तेज से शत्रुसेना को पीड़ित करके इसप्रकार छिन्न भिन्न करदे जैसे महान् पवन शरदृऋतु के बादलों को छिन्न भिन्न करदेता है ॥

तस्य राक्षसराजस्य निशम्य परिदेवितम् ।
कुम्भकर्णो बभाषेदं वचनं प्रजहास च ॥ २१ ॥
दृष्टो दोषो हि योऽस्माभिः पुरामन्त्रविनिर्णये ।
हितेष्वनभियुक्तेन सोऽयमासादितस्त्वया ॥२२॥

अर्थ—उस राक्षसराज का विलाप सुनकर कुम्भकर्ण हंसता हुआ बोला कि मन्त्रनिर्णय=प्रथम बिचार में जो दोष हमने देखा था वही अपने हितवादियों पर विश्वास न करने वाले आपको आ उपस्थित हुआ है ॥

प्रथमं वै महाराज कृत्यमेतदचिन्तितम् ।
केवलं वीर्यदर्पेण नानुबन्धो विचारितः ॥ २३ ॥
यः पश्चात्पूर्व कार्याणि कुर्यादैश्वर्यमास्थितः ।
पूर्वं चोत्तरकार्याणि न स वेद नयानयौ ॥ २४ ॥

अर्थ—हे महाराज ! यह काम पहले ही विना सोचे केवल बल के अभिमान से कियागया है भाविफल नहीं विचारा गया, जो अपने ऐश्वर्य्य के अभिमान से पहले करने योग्य कामों को पीछे और पिछलों को पहले करता है वह नीति अनीति को नहीं जानता॥

त्रयाणां पंचधायोगं कर्मणां यः प्रपद्यते ।
सचिवैः समयं कृत्वा ससम्यग्वर्तते पथि ॥ २५ ॥

यथा च मन्त्रयो राजा समयं च चिकीर्षति।
बुध्यते सचिवैर्बुद्ध्यासुहृदश्चानुपश्यति ॥ २६ ॥
धर्ममर्थं हि कामं वा सर्वान्वा रक्षसांपते।
भजते पुरुषः काले त्रीणि द्वन्द्वानि वा पुनः॥२७॥
त्रिषुचैतेषु यच्छ्रेष्ठं श्रुत्वातन्नावबुध्यते।
राजा वा राजमात्रो वा व्यर्थं तस्य बहुश्रुतम्॥२८॥

अर्थ–जो राजा क्षय, वृद्धि तथा स्थान इन तीन प्रकार के कर्तव्यों को मंत्रियों की सम्मति से जानकर (१)कार्यारम्भ करने के साधन (२) पुरुषरूप धन का सञ्चय (३) देशकाल का विचार (४) विपत्ति का उपाय (५) कार्य्यसिद्धि का प्रकार, इन पांच उपायों द्वारा रक्षा करता है वही राजधर्म के मर्म को ठीक २ जानता है, जो राजा बुद्धिमान् मन्त्रियों द्वारा ज्ञान की वृद्धि तथा शत्रु, मित्र का विचार करता हुआ नीति शास्त्र के अनुसार उक्त पांच उपायों से राज्य की रक्षा करता है वही राजधर्म को ठीक जानता है, जो राजा धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को यथायोग्य समय पर सेवन करता तथा राग द्वेष, काम क्रोध, लोभ मोह, इन तीन द्वन्द्वों को यथावसर वर्तता है वही राजधर्म का वेत्ता है, धर्म, अर्थ, काम इन तीनों को सुनकर भी जो यह नहीं जानता कि इनमें कौन श्रेष्ठ है उसका बहुश्रुत होना व्यर्थ है ॥

उपप्रदानं सान्त्वं च भेदं काले च विक्रमम्।
योगं च रक्षसां श्रेष्ठ तावुभौ च नयानयौ ॥२९॥
काले धर्मार्थकामान्यः संमन्त्र्य सचिवैः सह।
निषेवेतात्मवांल्लोके न स व्यसनमाप्नुयात् ॥३०॥

हितानुबंधमालोक्य कुर्यात्कार्य्यमिहात्मनः ।
राजा सहार्थतत्त्वज्ञैः सचिवैर्बुद्धिजीविभिः ॥३१॥

अर्थ–हे राक्षसश्रेष्ठ ! जो पुरुष दान, साम, भेद, पराक्रम, योग, नीति, अनीति और धर्म, अर्थ, काम इन सब का सेवन मन्त्रियों की सम्मति से उचित समय पर करता है वह संसार में दुःखी नहीं होता, राजा को चाहिये कि अर्थ के जानने वाले बुद्धिमान् सचिवों तथा अन्य सेवकों से पूछकर जिसमें अपना हित देखे वही कार्य्य करे ॥

अलं राक्षसराजेन्द्र सन्तापमुपपद्यते ।
रोषं च संपरित्यज्य स्वस्थो भवितुमर्हसि ॥ ३२ ॥
अवश्यं च हितं वाच्यं सर्वावस्थां गतं मया ।
बन्धुभावादभिहितं भ्रातृस्नेहाच्च पार्थिव ॥३३॥
सदृशं यच्च कालेऽस्मिन्कर्तुं स्नेहेन बन्धुना ।
शत्रूणां कदनं पश्य क्रियमाणं मया रणे ॥३४॥
अहमुत्सादयिष्यामि शत्रूंस्तव महाबलान् ।
यदि शक्रो यदि यमो यदि पावकमारुतौ ॥३५॥

अर्थ–अस्तु, हे राक्षसेन्द्र अब सन्ताप न कर, अब तू क्रोध को त्यागकर स्वस्थ होने योग्य है, हे पार्थिव ! मुझे सब अवस्थाओं में हित करना उचित है सो बन्धुभाव तथा भ्रातृस्नेह से यह सब मैंने कहा है, किन्तु इस समय जो बन्धु के लिये स्नेह करना उचित है सो आप देखें मैं रण में किस प्रकार शत्रुओं का नाश

करता हूं, मैं तेरे महाबली शत्रुओं को अवश्य रण में पछाडुंगा चाहे इन्द्र, यम, अग्नि अथवा मारुत ही क्यों न हों ॥

चिन्तया तप्यसे राजन्किमर्थं मयि तिष्ठति ।
मुञ्च रामाद्भयं घोरं निहनिष्यामि संयुगे ॥ ३६ ॥
एष निर्याम्यहं युद्धमुद्यतः शत्रुनिर्जये ।
इत्येवमुक्तः संहृष्टो निर्जगाम महाबलः ॥ ३७ ॥
आददे निशितं शूलं वेगाच्छत्रुनिबर्हणः ।
सर्वं कालाय संदीप्तं तप्तकांचन भूषणम् ॥ ३८ ॥

अर्थ–सो हे राजन् ! मेरे जीते जी तू क्यों सन्तप्त होरहा है राम से भयभीत नहो मैं उसका युद्ध में अवश्य हनन करुंगा, अब मैं शत्रु के पराजित करने को उद्यत होकर शीघ्र ही युद्ध के लिये निकलता हूं, यह कहकर वह महाबली कुम्भकर्ण हर्षित हुआ बाहर निकला, और उस शत्रुओं के हनन करने वाले ने तीक्ष्णशूल हाथ में पकड़ा जो सारा लोहे का बना चमकता हुआ तपे हुए सोने के भूषणों वाला था ॥

अथासनात्समुत्पत्य स्रजं मणिकृतान्तराम् ।
आबबन्ध महातेजः कुम्भकर्णस्य रावणः ॥३९॥
भ्रातरं संपरिष्वज्य कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
प्रणम्य शिरसा तस्मै प्रतस्थे स महाबलः ॥४०॥
पदातयश्च बहवो महासारा महाबलाः ।
अन्वयू राक्षसा भीमा भीमाक्षाः शस्त्रपाणयः॥४१॥

अर्थ-तदनन्तर आसन से उठकर महातेजस्वी रावण ने बीच २ में मणियें लगी हुई सुवर्ण की माला कुम्भकर्ण के बांधी, फिर वह महाबली भाई को गले मिलकर प्रदक्षिणा करके और सिर से प्रणाम कर चल पड़ा, और बहुत से महाबली भयङ्कर बड़ी २ आंखों वाले प्यादे राक्षस हाथों में शस्त्र लेकर उसके साथ गये ॥

इति एकोनत्रिंशः सर्गः

अथ त्रिंशःसर्गः

सं०-अब कुम्भकर्ण का भयानक युद्ध और राम से उसका बध कथन करते हैं :—

स लंघयित्वा प्राकारं गिरिकूटोपमो महान् ।
निर्ययौ नगरात्तूर्णं कुम्भकर्णो महाबलः ॥ १ ॥
ननाद च महानादं समुद्रमभिनादयन् ।
विजयन्निव निर्घातान्विधमन्निवपर्वतान् ॥ २ ॥
तमवध्यं मघवतायमेन वरुणेन वा ।
प्रेक्ष भीमाक्षमायान्तं वानरा विप्रदुद्रुवुः ॥ ३ ॥

अर्थ-पर्वत के शिखर तुल्य महाबली कुम्भकर्ण कोट को लंघकर शीघ्र ही नगर से बाहर आया, बज्रपात के शब्द को जीतता, पर्वत को कम्पाता और मानो समुद्र को भी क्षुभित कराता हुआ कुम्भकर्ण बड़े वेग से गर्जा, तिस भयङ्कर नेत्रों

वाले तथा इन्द्र, वरुण और यमादिकों से भी अवध्य कुम्भकर्ण को आता देख सब वानर भाग खड़े हुए ॥

तांस्तुविप्रद्रुतान्दृष्ट्वा राजपुत्रोंगदोऽब्रवीत् ॥ ४ ॥
महतीमुत्थितामेनां राक्षसानां विभीषिकाम् ।
विक्रमाद्विधमिष्यामो निवर्तध्वं प्लवंगमाः ॥ ५ ॥
कृच्छ्रेण तु समाश्वस्य संगम्य च ततस्ततः ।
वृक्षान्गृहीत्वा हरयः संप्रतस्थूरणाजिरे ॥ ६ ॥

अर्थ—उन वानरों को भागता हुआ देखकर राजपुत्र अङ्गद बोला कि हे वानरो ! लौट आओ भय मत करो, इस बड़ी उठी हुई राक्षसों की भीति को अपने विक्रम से नाश करके सब वानरों को निर्भय करूंगा, इस प्रकार अङ्गद के कथन करने पर बड़े कष्ट से समझ बूझकर सब वानर लौटे और एकत्रित हो सब के सब वृक्ष लेले कर रणभूमि में खड़े होगये ॥

निर्जघ्नुः परमक्रुद्धाः समदा इव कुंजराः ।
प्रांशुभिर्गिरिश्रृङ्गैश्च शिलाभिश्च महाबलाः ॥७॥
तस्य गात्रेषु पतिता भिद्यन्ते बहवः शिलाः ।
पादपाः पुष्पिताग्राश्च भग्नाः पेतुर्महीतले ॥ ८ ॥
सोऽपि सैन्यानि संक्रुद्धो वानराणां महौजसाम् ।
ममन्थ परमायत्तो वनान्यग्निरिवोत्थितः ॥ ९ ॥
लोहितार्द्रास्तु बहवः शेरते वानरर्षभाः ।
निरस्ताः पतिता भूमौ ताम्रपुष्पा इव द्रुमाः ॥१०॥

अर्थ—और मदमत्त हाथियों की भांति परमक्रुद्ध हुए वह महाबली वानर पर्वतशिखर तथा शिलाओं से कुम्भकर्ण का ताड़न करने लगे, परन्तु उसके अङ्गों पर पड़ते ही बहुतसी शिलायें टूटजातीं तथा फूले हुए अङ्गों वाले वृक्ष टुकड़े २ होकर पृथिवी पर गिर पड़ते थे, और क्रुद्ध हुआ कुम्भकर्ण भी महापराक्रमी वानरसेना का बड़े वेग से हनन करने लगा, जैसे उत्पन्न हुई अग्नि वनों को दग्ध करती है, कुम्भकर्ण के प्रहार द्वारा लोहू से भीगे हुए बहुत से वानर भूमि पर लेट गये और अनेक कटकर लाल फूलों वाले वृक्षों के समान पृथिवी पर गिर पड़े ॥

तस्मिन्काले सुमित्रायाः पुत्रः परबलार्दनः ।
चकार लक्ष्मणः क्रुद्धो युद्धं परपुरञ्जयः ॥ ११ ॥
स कुम्भकर्णस्य शराञ्छरीरे सप्तवीर्यवान् ।
निचखानाददे चान्यान्विससर्ज च लक्ष्मणः॥१२॥
पीड्यमानस्तदस्त्रं तु विशेषं तत्स राक्षसः ।
ततश्चुकोप बलवान्सुमित्रानन्दवर्धनः ॥ १३ ॥
अथास्य कवचं शुभ्रं जांबूनदमयं शुभम् ।
प्रच्छादयामास शरैः सन्ध्याभ्रमिव मारुतः ॥१४॥

अर्थ—तदनन्तर उसी समय शत्रुओं की सेना को हनन करने वाला तथा शत्रुओं के किलों को जीतने वाला सुमित्रा का पुत्र लक्ष्मण क्रुद्ध हुआ रणभूमि में उपस्थित हो युद्ध करने लगा, उस बलवान् लक्ष्मण ने कुम्भकर्ण के शरीर में सात बाण मारे और दूसरों के लिये और छोड़े, उन बाणों से पीड़ित हुए

कुम्भकर्ण ने झपटकर लक्ष्मण के अस्त्र तोड़ डाले तब लक्ष्मण उस पर अति क्रुद्ध हुआ, और उसके चमकते हुए सुनहरी सुन्दर कवच को बाणों से ढांप दिया, जैसे सन्ध्याकाल के मेघ को वायु आच्छादित कर लेती है ॥

ततः स राक्षसो भीमः सुमित्रानन्दवर्धनः ।
सावज्ञमेव प्रोवाच वाक्यं मेघौघनिःस्वनः ॥१५॥
प्रगृहीतायुधस्येह मृत्योरिवमहामृधे ।
तिष्ठन्नप्यग्रतः पूज्यः किमु युद्धप्रदायकः ॥ १६ ॥

अर्थ—तब मेघ की ध्वनितुल्य गर्ज वाला वह भीम राक्षस सुमित्रा का आनन्द बढ़ाने वाले लक्ष्मण से अनादर सहित यह वाक्य बोला कि मृत्युसमान महायुद्ध में जब मैं शस्त्र पकड़कर खड़ा होजाऊं तब मेरे सन्मुख खड़ा होने वाला पूजा के योग्य है फिर युद्ध करने वाले की तो कथा ही क्या अर्थात मेरे सन्मुख युद्ध में कौन ठहरसक्ता है ॥

अद्यत्वयाहं सौमित्रे बालेनापि पराक्रमैः ।
तोषितो गन्तुमिच्छामि त्वामनुज्ञाप्य राघवम्॥१७॥
यत्तु वीर्य्यबलोत्साहैस्तोषितोऽहं रणे त्वया ।
राममेवैकमिच्छामि हन्तुं यस्मिन्हते हतम् ॥१८॥
रामे मयात्र निहते येऽन्ये स्थास्यान्ति संयुगे ।
तानहं योधयिष्यामि स्वबलेन प्रमाथिना ॥१९॥

अर्थ—हे सौमित्रे ! आज तुझ बालक ने भी अपने

पराक्रम से मुझे सन्तुष्ट=हैरान करदिया है, सो मैं तुझसे अनुज्ञा लेकर राम की ओर जाना चाहता हूं, जो तैने अपने बल के उत्साह से मुझे रण में सन्तुष्ट किया है इससे अब मैं अकेले राम ही को हनन करना चाहता हूं, क्योंकि राम के मारे जाने पर मानो सबका हनन हुआ ही पड़ा है, जब मैं यहां युद्ध में राम को मारलूंगा तब जो २ मेरे सन्मुख युद्ध में खड़े होंगे उनको भी मथ डालने वाले अपने बल से युद्ध कराऊंगा ॥

इत्युक्तवाक्यं तद्रक्षः प्रोवाच प्रहसन्निव ।
एष दाशरथी रामस्तिष्ठत्यद्रिरिवाचलः ॥२०॥
इति श्रुत्वा ह्यनादृत्य लक्ष्मणं च निशाचरः ।
राममेवाभिदुद्राव कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥२१॥

अर्थ—कुम्भकर्ण के उक्त प्रकार कथन करने पर लक्ष्मण मुस्कराकर उससे बोला कि यह दशरथसुत राम पर्वत की भांति अचल खड़े हैं, यह सुनकर वह निशाचर लक्ष्मण का निरादर करके मानो पाओं से पृथिवी को कम्पाता हुआ राम की ओर दौड़ा॥

अथ शृङ्गं समाविध्य भीमं भीमपराक्रमः ।
चिक्षेप राममुद्दिश्य बलवानन्तकोपमः ॥२२॥
अप्राप्तमन्तरा रामः सप्तभिस्तमजिह्मगैः ।
शरैः कांचनचित्राङ्गैश्चिच्छेद भरताग्रजः ॥२३॥

अर्थ—और उस भीम पराक्रमी, बलवान् तथा यमतुल्य कुम्भकर्ण ने शृङ्ग घुमाकर राम की ओर फैंका, तब भरत के बड़े भाई राम ने सुवर्ण से चित्रित सीधे जाने वाले सात बाणों से उसको अपने समीप पहुंचने से पहिले मध्य में ही खण्ड २ कर दिया ॥

प्रहस्य विकृतं भीमं स मेघस्तनितोपमम् ।
कुम्भकर्णो महातेजा राघवं वाक्यमब्रवीत् ॥२४॥
नाहं विराधो विज्ञेयो न कबन्धः खरो नच ।
न बाली नच मारीचः कुम्भकर्णः समागतः ॥२५॥
पश्य मे मुद्गरं भीमं सर्वं कालायसं महत् ।
अनेन निर्जिता देवा दानवाश्च पुरा मया ॥२६॥

अर्थ—तब महातेजस्वी कुम्भकर्ण बादल की कड़क तुल्य भयानक विकृत हंसकर राम से बोला कि मुझे विराध, कबन्ध, खर, बाली और मारीच न जानना मैं कुम्भकरण आया हूं, मेरे इस भयङ्कर बड़े मुद्गर को देख जो सारा लोहामय है, इससे मैंने पहले देवता तथा दानव जीते हैं ॥

यैः सायकैः सालवरा निकृता बाली हतो
वानरपुंगवश्च । ते कुम्भकर्णस्य तदा
शरीरं वज्रोपमानं व्यथायांप्रचक्रुः ॥२७॥

अर्थ—तदनन्तर उसी समय कुम्भकर्ण के वज्रसमान शरीर पर राम ने वह बाण छोड़े जिनसे साल के वृक्षों का भेदन किया तथा वानरश्रेष्ठ बाली मारा था उन बाणों ने उसका वज्रसमान शरीर बींध दिया पर वह व्यथा को प्राप्त न हुआ ॥

स वारिधारा इव सायकांस्तान्पिबञ्छ-
रीरेण महेन्द्रशत्रुः । जघान रामस्य शर
प्रवेगं व्याविध्य तं मुद्गरमुग्रवेगम् ॥२८॥

अर्थ–किन्तु उन बाणों को इन्द्र के शत्रु कुम्भकरण ने जल की धाराओं के समान पी लिया और उस उग्र वेग वाले मुद्गर को घुमाकर राम के बाणों के वेग को तोड़ डाला ॥

वायव्यमादाय ततोऽपरास्त्रं रामः प्रचि-
क्षेप निशाचराय। समुद्गरं तेन जहार बाहुं
सकृत्तबाहुस्तुमुलं ननाद ॥ २९ ॥

अर्थ–तब राम ने और वायव्य अस्त्र लेकर कुम्भकर्ण की ओर फैंका जिससे मुद्गरसहित उसकी भुजा कटगई, भुजा के कटजाने से उस राक्षस ने वड़ा भयङ्कर शब्द किया ॥

तं छिन्नबाहुं समवेक्ष्य रामः समापतन्तं
सहसा नदन्तम् । द्वावर्धचन्द्रौ निशितौ
प्रगृह्य चिच्छेद पादौ युधि राक्षसस्य॥३०॥

अर्थ–तदनन्तर उस कटी हुई भुजा वाले तथा सहसा झपट कर राम की ओर जाते और गर्जते हुए उस राक्षस को देखकर राम ने दो तीक्ष्ण अर्धचन्द्र बाण लेकर युद्ध में उसके दोनों पांव काट डाले ॥

अथाददे सूर्यमरीचिकल्पं सब्रह्मदण्डान्तक
कालकल्पम् । अरिष्टमैन्द्रं निशितं सुपुंखं
रामः शरं मारुततुल्यवेगम् ॥ ३१ ॥

अर्थ–तब राम ने सूर्य्य की किरण तुल्य ब्रह्मदण्ड और यम सदृश तथा वायुतुल्यवेगवाला,शत्रुओं का अशुभ करने वाला और पैनी नोक वाला तीक्ष्ण ऐन्द्र बाण लिया ॥

स सायको राघवबाहुचोदितो दिशः
स्वभासा दश संप्रकाशयन्। चकर्तरक्षो-
धिपतेःयथैव वृत्रस्य पुरा पुरन्दरः॥३२॥

अर्थ—राम की भुजा से प्रेरित हुए उस बाण ने अपने प्रकाश से दशो दिशाओं को प्रकाशित करते हुए कुम्भकर्ण के सिर को इस प्रकार काट दिया जैसे पूर्वकाल में इन्द्र ने वृत्रासुर के सिर को काटा था॥

प्रहर्षमीयुर्बहवश्च वानराः प्रबुद्धपद्म
प्रतिमैरिवाननैः। अपूजयन्राघवमिष्ट-
भागिनं हते रिपौ भीमबले नृपात्मजम्॥३३॥

अर्थ—भीमबलवाले शत्रु कुम्भकरण के मरने पर सब वानर हर्ष को प्राप्त हुए तथा उनके मुख कमलों की भांति खिल गये और वह सब वानर अभीष्ट लाभ को प्राप्त होकर नृपसुत राम की पूजा करने लगे॥

स कुम्भकर्ण सुरसैन्यमर्दनं महत्सु युद्धेषु
कदाचनाजितम्। ननन्द हत्वा भरताग्रजो
रणे महासुरं वृत्रमिवामराधिपः॥ ३४ ॥

अर्थ—देवताओं की सेना का हनन करने वाला, बड़े रणों में पहले कभी न जीते गये उस महाराक्षस कुम्भकर्ण को हनन कर भरत के बड़े भाई राम अति आनन्दित हुए, जैसे वृत्रासुर को मारकर इन्द्र हर्षित हुए थे॥

इति त्रिंशः सर्गः

अथ एकत्रिंशः सर्गः

सं०—अब कुम्भकर्ण की मृत्यु पर लङ्का में शोक वर्णन करते हैंः—

कुम्भकर्णं हतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
राक्षसा राक्षसेन्द्राय रावणाय न्यवेदयन् ॥१॥
श्रुत्वा विनिहतं संख्ये कुम्भकर्णं महाबलम् ।
रावणः शोकसंतप्तो मुमोह च पपात च ॥२॥

अर्थ—महात्मा राम से कुम्भकर्ण का मारा जाना देखकर राक्षसों ने रावण को सब यथावत् सुनाया, तब महाबली कुम्भकर्ण का युद्ध में मारा जाना सुनकर रावण शोक से संतप्त हुआ मूर्च्छित होकर गिर पड़ा ॥

पितृव्यं निहतं श्रुत्वा देवान्तकनरान्तकौ ।
त्रिशिराश्चातिकायश्च रुरुदुः शोकपीडिताः ॥३॥
भ्रातरं निहतं श्रुत्वा रामेणाक्लिष्टकर्मणा ।
महोदरमहापार्श्वौ शोकाक्रान्तौ बभूवतुः ॥४॥
ततः कृच्छ्रात्समासाद्य संज्ञां राक्षसपुंगवः ।
कुम्भकर्णवधाद्दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥५॥

अर्थ—और चचा को मरा हुआ सुनकर रावण के पुत्र देवान्तक, नरान्तक, त्रिशिरा और अतिकाय यह सब शोक से पीड़ित हो रुदन करने लगे, शुभकर्मों वाले राम से भाई को हत हुआ सुनकर महोदर और महापार्श्व को अति शोक हुआ,

तदनन्तर बड़ी कठिनता से सचेत होकर वह रावण कुम्भकर्ण के बध से दुःखी हुआ आकुलेन्द्रिय हो विलाप करने लगा कि :—

हा वीर रिपुदर्पघ्न कुम्भकर्ण महाबल ।
त्वं मां विहाय वै दैवाद्यातोऽसि यमसादनम् ॥६॥
मम शल्यमनुद्धृत्य बान्धवानां महाबल ।
शत्रुसैन्यं प्रताप्यैकः क्व मां संत्यज्य गच्छसि ॥७॥
इदानीं खल्वहं नास्मि यस्य मे पतितो भुजः ।
दक्षिणोयं समाश्रित्य न बिभेमि सुरासुरात् ॥ ८ ॥
कथमेवं विधो वीरो देवदानवदर्पहा ।
कालाग्नि प्रतिमोह्यद्य राघवेण रणे हतः ॥ ९ ॥

अर्थ—हा वीर !! शत्रुओं के अभिमान को तोड़ने वाले महाबली कुम्भकर्ण तू मुझे छोड़कर दैवयोग से यम के घर जारहा है, हे महाबल ! मेरे तथा अन्य बान्धवों के शल्य को निकाले बिना ही शत्रुसेना को तपाकर और मुझे त्यागकर अकेला कहां जाता है, अब मैं वह नहीं रहा, मेरी दाईं भुजा गिरगई जिसके सहारे मैं देव तथा दैत्यों से भय नहीं करता था, देव और दानवों के दर्प को तोड़ने वाले तथा कालाग्नि सदृश मेरे भाई कुम्भकर्ण तू राम से रण में कैसे हत होगया ॥

यस्य ते वज्रनिष्पेषो न कुर्याद्व्यसनं सदा ।
स कथं रामबाणार्तः प्रसुप्तोऽसि महीतले ॥ १० ॥

राज्येन नास्ति मे कार्यं किं करिष्यामि सीतया ।
कुम्भकर्ण विहीनस्य जीवितेनास्ति मे मतिः ॥११॥
यद्यहं भ्रातृहन्तारं न हन्मि युधि राघवम् ।
ननु मे मरणं श्रेयो न चेदं व्यर्थजीवितम् ॥१२॥
अद्यैव तं गमिष्यामि देशं यत्रानुजो मम ।
नहि भ्रातृन्समुत्सृज्य क्षणं जीवितुमुत्सहे ॥ १३ ॥

अर्थ–जिस तुझको वज्र की चोट भी दुःख नहीं देती थी वह तू कैसे राम के बाणों से पीड़ित हुआ पृथिवी पर शयन कर रहा है, अब मुझे राज्य से क्या और अब मैं सीता का क्या करूंगा, भाई कुम्भकर्ण के बिना मैं क्षण भर भी जीना नहीं चाहता, यदि मैंने भाई के हनन करने वाले राम को युद्ध में न मारा तो मेरा मरण ही श्रेय है व्यर्थ जीवन से क्या, मैं अभी वहां जाऊंगा जहां मेरा छोटा भाई है, क्योंकि मैं भाइयों को छोड़कर क्षणमात्र भी जीना नहीं चाहता ॥

तस्यायं कर्मणः प्राप्तो विपाको मम शोकदः ।
यन्मया धार्मिकः श्रीमान्सनिरस्तो विभीषणः॥१४॥

अर्थ–यह मुझे शोक देने वाला फल उसी कर्म का मिला है जिससे मैंने अपने धार्मिक भाई विभीषण को यहां से निकाल दिया है ॥

इति बहुविधमाकुलान्तरात्मा कृपणमतीव
विलप्य कुम्भकर्णम् । न्यपतदपि दशाननो
भृशार्तस्तमनुजमिन्द्ररिपुं हतं विदित्वा॥१५॥

अर्थ—एवंविध आकुल हुआ बहुत प्रकार से कृपण की न्याईं कुम्भकर्ण के अर्थ विलाप करने लगा, रिपु इन्द्र के हनन करने वाले छोटे भाई को मरा जानकर रावण शोक से अति पीड़ित हुआ॥

इति एकत्रिंशः सर्गः

अथ द्वात्रिंशः सर्गः

सं०—अब रावण के पुत्र नरान्तक आदि योद्धाओं की चढ़ाई का वर्णन करते हैं :—

एवं विलपमानस्य रावणस्य दुरात्मनः ।
श्रुत्वा शोकाभिभूतस्य त्रिशिरा वाक्यमब्रवीत्॥१॥

अर्थ—उक्त प्रकार विलाप करते हुए शोक से आकुल दुरात्मा रावण को त्रिशिरा बोला कि :—

एवमेव महावीर्यो हतो नस्तात मध्यमः ।
नतु सत्पुरुषा राजन्विलपन्ति यथा भवान् ॥ २ ॥

अर्थ—आपके छोटे भाई महाबलवान् कुम्भकर्ण जो नाश को प्राप्त होगये हैं, हे राजन् ! सत्पुरुष इस प्रकार विलाप नहीं करते जैसे आप करते हैं ॥

कामं तिष्ठ महाराज निर्गमिष्याम्यहं रणे ।
उद्धरिष्यामि ते शत्रून्गरुडः पन्नगानिव ॥ ३ ॥

श्रुत्वा त्रिशिरसो वाक्यं देवान्तकनरान्तकौ ।
अतिकायश्च तेजस्वी बभूवुर्युद्धहर्षिताः ॥ ४ ॥
ततोऽहमहमित्येव गर्जन्तो नैर्ऋतर्षभाः ।
रावणस्य सुता वीराः शक्रतुल्य पराक्रमाः ॥ ५ ॥
सर्वेसुबलसम्पन्नाः सर्वे विस्तीर्ण कीर्तयः ।
सर्वे समरमासाद्य नश्रूयन्तेस्म निर्जिताः ॥ ६ ॥

अर्थ–हे राजन् ! आप ठहरें मैं रण में जाताहूं और तुम्हारे शत्रुओं का विनाश इस प्रकार करुंगा,जैसे गरुड़ सांपों का हननकरता है, त्रिशिरा के उक्त वाक्य को सुनकर देवान्तक, नरान्तक और तेजस्वी अतिकाय भी हर्षित हो युद्ध के लिये तैयार होगये, और वह इन्द्रतुल्य पराक्रम वाले वीर रावणसुत " मैं मारुंगा, मैं मारुंगा " इस प्रकार गर्जते हुए सभी उत्तम बल से सम्पन्न, सभी विस्तृत यश वाले, सभी युद्ध में जाकर कभी पीठ न दिखाने वाले बाहर निकले ॥

स पुत्रान्संपरिष्वज्य भूषयित्वा च भूषणैः ।
आशीर्भिश्च प्रशस्ताभिः प्रेषयामास वै रणे ॥७॥
युद्धोन्मत्तं च मत्तं च भ्रातरौ चापि रावणः ।
रक्षणार्थं कुमाराणां प्रेषयामास संयुगे ॥ ८ ॥

अर्थ–रावण ने पुत्रों को गले लगा, भूषणों से भूषित कर और उत्तम आशीर्वादों से युक्त करके रण में भेजा, और उन कुमारों की रक्षा के लिये युद्ध में उन्मत्त महोदर तथा सदा ही मत्त महापार्श्व इन दोनों भाइयों को साथ भेजा ॥

ते अभिवाद्य महात्मानं रावणं लोकरावणम् ।
कृत्वा प्रदक्षिणं चैव महाकायाः प्रतस्थिरे ॥ ९ ॥
सर्वौषधीभिर्गन्धैश्च समालभ्य महाबलाः ।
निर्जग्मुर्नैर्ऋतश्रेष्ठाः षडेते युद्धकांक्षिणः ॥ १० ॥

अर्थ–तदनन्तर वह बड़े डील वाले, लोकों को रुलाने वाले सब योद्धा रावण को अभिवादन तथा उसकी प्रदक्षिणा करके और घाव भरने वाली औषधि तथा सुगन्धित पदार्थ लेकर युद्ध की इच्छा वाले वह छओं चल पड़े ॥

तान्गजैश्च तुरङ्गैश्च रथैश्चाम्बुदनिःस्वनैः ।
अनूत्पेतुर्महात्मानो राक्षसाः प्रवरायुधाः ॥ ११ ॥
मरणं वापि निश्चित्य शत्रूणां वा पराजयम् ।
इति कृत्वा मतिं वीराः संजग्मुः संयुगार्थिनः॥१२॥

अर्थ–और उनके पीछे बहुत से महात्मा राक्षस उत्तम शस्त्र, हाथी, घोड़े तथा मेघ की ध्वनि वाले रथ लेकर चले, मरना वा शत्रु का पराजय करना यह मन में निश्चय करके वह युद्धार्थी वीर युद्ध में गये ॥

शूलमुद्गरखड्गैश्च जघ्नुः प्रासैश्च शक्तिभिः ।
अन्योन्यं पातयामासुः परस्परजयैषिणः ॥ १३ ॥

अर्थ–और वहां शूल, मुद्गर, तलवार, भाले और बरछियों से एक दूसरे को गिराने लगे ॥

ते वानरा गर्वितहृष्टचेष्टाः संग्राममासाद्य भयं विमुच्य। युद्धं स्म सर्वे सह राक्षसैस्ते नानायुधाश्चक्रुरदीनसत्त्वाः ॥ १४ ॥

अर्थ—और वह अभिमानी, प्रसन्नचेष्टा वाले तथा अदीन हृदय वानर संग्राम को प्राप्त हुए, और भय छोड़ नाना प्रकार के शस्त्र लेकर राक्षसों से युद्ध करने के लिये डट गये ॥

तस्मिन्प्रवृत्ते तुमुले विमर्दे प्रहृष्यमाणेषु बलीमुखेषु। निपात्यमानेषु च राक्षसेषु महर्षयो देवगणाश्च नेदुः ॥ १५ ॥

अर्थ—तब वानर तथा राक्षसों का बड़ा घोर युद्ध हुआ और उस युद्ध में हर्षित हुए वानरों ने राक्षसों को मार गिराया, यह देखकर महर्षि और देवों के गण हर्षित हो नाद करने लगे ॥

ततो हयं मारुत तुल्यवेगमारुह्य शक्तिं निशितां प्रगृह्य। नरान्तको वानरसैन्य-मुग्रं महार्णवं मीन इवाविवेश ॥१६॥

अर्थ—तदनन्तर वायुतुल्य वेगवाले घोड़े पर चढ़ और तीक्ष्ण बर्छा पकड़कर नरान्तक महासागर में मीन की भांति उग्र वानरसेना में प्रविष्ट हुआ ॥

स वानारान्सप्तशतानि वीरः प्रासेनदीप्तेन विनिर्बिभेद। एकः क्षणेनेन्द्ररिपुर्महात्मा जघान सैन्यं हरिपुंगवानाम्॥१७॥

अर्थ—और सेना में प्रविष्ट होकर चमचमाते हुए भाले से सातसौ वानर योद्धाओं को भूमि पर लिटा दिया और थोड़े ही काल में वानरसेना का विध्वंस कर डाला ॥

स तस्य ददृशे मार्गो मांसशोणितकर्दमः ।
पतितैः पर्वताकारैर्वानरैरभिसंवृतः ॥ १८ ॥

अर्थ—उसका वह मार्ग मांस तथा रक्त के कीचड़ वाला और गिरे हुए पर्वताकार वानरों से घिरा हुआ दृष्टिगत होता था ॥

यावद्विक्रमितुं बुद्धिं चक्रुः प्लवगपुंगवाः ।
तावदेतानतिक्रम्य निर्बिभेद नरान्तकः ॥ १९ ॥

अर्थ—जब तक वानरश्रेष्ठ अपना विक्रम दिखलाने की चेष्टा करते थे तबतक नरान्तक उन पर आक्रमण करके टुकड़े २ कर देता था ॥

न शेकुर्भाषितुं वीरा न स्थातुं स्पन्दितुं कुतः ।
उत्पतन्तं स्थितं यान्तं सर्वान्विव्याधवीर्यवान्॥२०॥

अर्थ—उस बलवान् नरान्तक से युद्ध करना तो एक ओर रहा वीर वानर न उसके सन्मुख बोल सके और न खड़े होसके, उसने दौड़ते, खड़े, चलते, सबको बींध दिया ॥

वज्रनिष्पेषसदृशं प्रासस्याभिनिपातनम् ।
न शेकुर्वानराः सोढुं ते विनेदुर्महास्वनम् ॥२१॥

अर्थ—वज्रद्वारा पीसे जाने के तुल्य भाले की चोट को वानर न सहारकर बड़े भयानक नाद से चिल्लाये ॥

प्रेक्षमाणः स सुग्रीवो ददृशे हरिवाहिनीम् ।
नरान्तकभयत्रस्तां विद्रवन्तीं यतस्ततः ॥२२॥
विद्रुतां वाहिनीं दृष्ट्वा स ददर्श नरान्तकम् ।
गृहीतप्रासमायान्तं हयपृष्ठप्रतिष्ठितम् ॥२३॥
दृष्ट्वोवाच महातेजाः सुग्रीवो वानराधिपः ।
कुमारमंगदं वीरं शक्रतुल्यपराक्रमम् ॥२४॥

अर्थ—तब सुग्रीव ने दृष्टि डालकर देखा कि नरान्तक से भयभीत वानरसेना इधर उधर भाग रही है, सेना को भागता हुआ और हाथ में भाला लिये घोड़े की पीठ पर सवार नरान्तक को आते हुए देखा, उसको देखकर महातेजस्वी वानराधिपति सुग्रीव इन्द्रतुल्य पराक्रम वाले कुमार अङ्गद से बोला कि:—

गच्छैनं राक्षसं वीरं योऽसौ तुरगमास्थितः ।
भक्षयन्तं परबलं क्षिप्रं प्राणैर्वियोजय ॥२५॥
स भर्तुर्वचनं श्रुत्वा निष्पपातांगदस्तदा ।
अनीकान्मेघसंकाशादंशुमानिव वीर्यवान् ॥२६॥
नरान्तकमभिक्रम्य बालिपुत्रोऽब्रवीद्वचः ।
तिष्ठ किं प्राकृतैरेभिर्हरिभिस्त्वं करिष्यसि ॥२७॥

अर्थ—यह जो घोड़े पर सवार राक्षसवीर हमारी सेना को दबाये हुए जारहा है तू शीघ्र ही इसकी ओर जा और इसको प्राणों से वियुक्त कर, स्वामी के वचन को सुनकर वीर्य्यवान् अङ्गद मेघ के बीच से सूर्य की भांति सेना के मध्य से निकला, और

नरान्तक के समीप जाकर बालिपुत्र उससे बोला कि ठहरजा, इन साधारण वानरों से तू क्या करेगा अर्थात् इनके मारने से क्या लाभ है ॥

अस्मिन्वज्रसमस्पर्शं प्रासं क्षिपममोरसि ।
अङ्गदस्य वचः श्रुत्वा प्रचुक्रोध नरान्तकः ॥२८॥

अर्थ–इस मेरी छाती पर अपने वज्रतुल्य स्पर्श वाले भाले को फैंक, तब अङ्गद के उक्त बचन सुनकर नरान्तक बड़े क्रोध में आया, और:—

स प्रासमाविध्य तदाङ्गदाय समुज्वलन्तं
सहसोत्ससर्ज । सबालिपुत्रोरसि वज्रकल्पे
बभूवभग्नो न्यपतच्च भूमौ ॥ २९ ॥

अर्थ–उसने उस चमकते हुए भाले को घुमाकर बड़े वेग से अङ्गद की ओर फैंका और वह वज्रतुल्य बालिपुत्र की छाती में लगकर खण्ड २ हो भूमि पर गिर पड़ा ॥

तलंसमुद्यम्य स बालिपुत्रस्तुरंगमस्या-
भिजघान मूर्ध्नि।स तस्य वाजी निपपात
भूमौ तलप्रहारेण विकीर्णमूर्धा ॥३०॥

अर्थ–तदनन्तर बालिपुत्र ने तली जोड़कर एक मुक्का घोड़े के सिर पर ऐसा मारा कि उसका घोड़ा सिर फैंककर भूमि पर गिर पड़ा ॥

नरान्तकः क्रोधवशं जगाम हत तुरंगं

पतितं समीक्ष्य । स मुष्टिमुद्यम्य महा
प्रभावो जघान शीर्षे युधि बालिपुत्रम्॥३१॥

अर्थ—तब नरान्तक घोड़े को गिरा हुआ तथा हत हुआ देखकर बड़ा क्रोधित हुआ और उस महाप्रभाव ने मुक्का जोड़कर बालिपुत्र अङ्गद के सिर पर मारा ॥

अथांगदो मृत्युसमानवेगं संवर्त्यमुष्टिं
गिरिश्रृंगकल्पम्। निपातयामास तदा
महात्मा नरान्तकस्योरसि बालिपुत्रः॥३२॥

अर्थ—और अङ्गद ने मृत्युतुल्य वेगवाला तथा वज्रसम मुक्का नरान्तक की छाती पर ऐसा मारा कि :—

स मुष्टिनिर्भिन्ननिभग्नवक्षा ज्वालावम-
च्छोणितदिग्धगात्रः । नरान्तको भूमि-
तले पपात यथाचलो वज्रनिपातभग्नः॥३३॥

अर्थ—उससे उसकी छाती टूटकर भीतर धस गई तथा चोट लगने से उसके भीतर से ज्वाला निकली, रुधिर से उसका शरीर भरगया और वह वज्रसम चोट लगने से टूटे हुए पर्वत की भांति भूमितल पर गिर पड़ा ॥

अथांगदो राममनः प्रहर्षणं सुदुष्करं तं
कृतवान्हि विक्रमम्। विसिस्मये सोऽप्यथ
भीमकर्मा पुनश्च युद्धे स बभूव हर्षितः॥३४॥

अर्थ—अङ्गद ने राम के मन को हर्षित करने वाला यह बड़ा दुष्कर विक्रम का काम किया, उसके इस कर्म से राम बड़े आश्चर्य युक्त हुए, और भीमकर्मा अङ्गद फिर तुरन्त ही युद्ध करने के लिये तैयार होगया ॥

इति द्वात्रिंशः सर्गः

अथ त्रयस्त्रिंशः सर्गः

सं०—अब देवान्तक तथा त्रिशिरा आदि का वध कथन करते हैं:—

नरान्तकं हतं दृष्ट्वा चुक्रुशुर्नैऋतर्षभाः ।
देवान्तकस्त्रिमूर्धा च पौलस्त्यश्च महोदरः ॥१॥
आरूढो मेघसंकाशं वारणेन्द्रं महोदरः ।
वालिपुत्रं महावीर्यमभिदुद्राव वेगवान् ॥२॥
भ्रातृव्यसनसंतप्तस्तदा देवान्तको बली ।
आदाय परिघं घोरमंगदं समभिद्रवत् ॥३॥
रथमादित्य संकाशं युक्तं परमवाजिभिः ।
आस्थाय त्रिशिरा वीरो वालिपुत्रमथाभ्यगात् ॥४॥
स त्रिभिर्नैऋतश्रेष्ठैर्युगपत्समभिद्रुतः ।
न विव्यथे महातेजा वालिपुत्रः प्रतापवान् ॥५॥

अर्थ—नरान्तक को हत हुआ देखकर राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक,

त्रिशिरा, पौलस्त्य तथा महोदर पुकार उठे, और महोदर मेघतुल्य बड़े हाथी पर सवार हो अति वेग से महा बलवान् बालीपुत्र की ओर दौड़ा, भाई के दुःख से सन्तप्त हुआ बलवान् देवान्तक भी घोर परिघ लेकर अङ्गद की ओर चला, और उत्तम घोड़ों से युक्त सूर्य्यतुल्य चमकते हुए रथ पर चढ़कर त्रिशिरा बालिपुत्र अङ्गद की ओर दौड़ा, उक्त तीन बली राक्षसों से एक साथ आक्रमण किये जाने पर भी वह महातेजस्वी बालिपुत्र अङ्गद व्यथा को प्राप्त नहीं हुआ ॥

ततोऽगदं परिक्षिप्तं त्रिभिर्नैर्ऋतपुंगवैः ।
हनूमानथ विज्ञाय नीलश्चापि प्रतस्थतुः ॥ ६ ॥
स विजृम्भितमालोक्य हर्षाद्देवान्तको बली ।
परिघेणाभिदुद्राव मारुतात्मजमाहवे ॥ ७ ॥
तमापतन्तमुत्पत्य हनूमान्कपिकुञ्जरः ।
आजघान तदा मूर्ध्नि वज्रकल्पेन मुष्टिना ॥८॥
शिरसि प्राहरद्वीरस्तदा वायुसुतो बली ।
नादेनाकम्पयच्चैव राक्षसान्स महाकपिः ॥ ९ ॥

अर्थ–उक्त तीन बली राक्षसों से अंगद को घिरा हुआ जानकर हनुमान् और नील आगे बढ़े, तब बली देवान्तक युद्ध के लिये हनुमान् को तैयार देख परिघ लेकर उसकी ओर दौड़ा, और उस आते हुये देवान्तक को हनुमान् ने बज्रतुल्य मुक्के से उसके सिर पर प्रहार किया, सिर पर प्रहार करके वह महाबली पवनकुमार ऐसा गर्जा कि राक्षस लोग उसके नाद से थरथरा गये॥

स मुष्टिनिष्पिष्टविभिन्नमूर्धा निर्यान्तद-
न्ताक्षि विलम्बिजिह्वः। देवान्तको राक्षस
राजसूनुर्गतासुरुर्व्यां सहसा पपात॥१०॥

अर्थ—और मुक्के की चोट से देवान्तक का सिर टूट गया, दांत, आंखे तथा लम्बी जिह्वा बाहर निकल आई, तब रावण का पुत्र देवान्तक प्राणों से रहित हुआ बड़े वेग से सहसा भूमि पर गिर पड़ा ॥

तस्मिन्हते राक्षसयोधमुख्ये महाबले
संयति देवशत्रौ। क्रुद्धस्त्रिशीर्षा निशिता-
स्त्रमुग्रं ववर्ष नीलोरसि बाणवर्षम् ॥ ११ ॥

अर्थ—जब देवों का शत्रु महाबली राक्षसश्रेष्ठ देवान्तक समर में हत होगया तब क्रोधित हुआ त्रिशिरा नील पर बाणों की वर्षा करने लगा ॥

महोदरस्तु संक्रुद्धः नीलस्योपर्यपातयत्।
गिरौ वर्षं तडिच्चक्रं स गर्जन्निव तोयदः ॥ १२ ॥

अर्थ—और क्रुद्ध हुआ महोदर भी नील के ऊपर बिजुली सदृश चमक वाले बाणों की वर्षा इस प्रकार करने लगा जैसे गर्जता हुआ मेघ पर्वत पर बरसाता है ॥

ततः स शैलाभिनिपात भग्नो महोदर-
स्तेन महाद्रिपेन। व्यामोहितो भूमितले
गतासुः पपात वज्राभिहतो यथाद्रिः॥१३॥

अर्थ—तदनन्तर नील ने एक शैल उखाड़कर महोदर के ऐसा मारा कि जिससे वह मूर्च्छित हो हाथी से भूमितल पर इस प्रकार गिरा जैसे वज्र से तोड़ा हुआ पर्वत गिरता है ॥

पितृव्यं निहतं दृष्ट्वा त्रिशिराश्चापमाददे ।
हनूमन्तं च संक्रुद्धो विव्याध निशितैः शरैः ॥१४॥
अथ शक्तिं समासाद्य कालरात्रिमिवान्तकः ।
चिक्षेपानिल पुत्राय त्रिशिरा रावणात्मजः ॥१५॥

अर्थ—चचा को मरा हुआ देखकर त्रिशिरा ने धनुष उठाया और क्रुद्ध होकर तीक्ष्ण बाणों से हनुमान् को बींध दिया, और यम की कालरात्रि समान बरछी लेकर रावणसुत त्रिशिरा ने हनुमान् पर फैंकी ॥

दिवः क्षिप्तामिवोल्कां तां शक्तिं क्षिप्रामसंगताम् ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो बभंज च ननाद च ॥१६॥
ततः खड्गं समुद्यम्य त्रिशिरा राक्षसोत्तमः ।
निचखान तदा खड्गं वानरेन्द्रस्य वक्षसि ॥१७॥

अर्थ—तब आकाश से उल्का की भांति बिना रोक आती हुई उस शक्ति को पकड़कर हनुमान् ने टुकड़े करदिये और गर्जा, तब राक्षस त्रिशिरा ने खड्ग उठाकर हनुमान् की छाती पर मारा ॥

खड्गप्रहाराभिहतो हनूमान्मारुतात्मजः ।
आजघान त्रिमूर्धानं तलेनोरसि वीर्यवान् ॥१८॥

स तलाभिहतस्तेन स्रस्तहस्ताम्बरो भुवि ।
निपपात महातेजास्त्रिशिरास्त्यक्तचेतनः ॥ १९ ॥

अर्थ—खड्गप्रहार से ताड़ित हुए बलवान् पवनपुत्र हनुमान् ने त्रिशिरा की छाती पर तली मारी, तब तली से अभिहत हुआ वह महातेजस्वी त्रिशिरा मूर्च्छित हो भूमि पर गिर पड़ा ॥

हतं त्रिशिरसं दृष्ट्वा युद्धोन्मत्तं तथैव च ।
हतौ प्रेक्ष्य दुराधर्षौ देवान्तकनरान्तकौ ॥ २० ॥
चुकोप परमामर्षी मत्तो राक्षसपुंगवः ।
जग्राहार्चिष्मतीं चापि गदां सर्वायसीं तदा॥२१॥

अर्थ—तब त्रिशिरा, महोदर, दुर्धर्ष नरान्तक और देवान्तक को हत हुआ देखकर महाक्रोधी राक्षसश्रेष्ठ महापार्श्व बड़ा कुपित हुआ और उसने चमकती हुई लोहे की गदा हाथ में ली ॥

गदामादाय संक्रुद्धो मत्तो राक्षसपुंगवः ।
हरीन्समभिदुद्राव युगान्ताग्निरिव ज्वलन् ॥ २२ ॥
अथर्षभः समुत्पत्य वानरो रावणानुजम् ।
मत्तानीकमुपागम्य तस्थौ तस्याग्रतो बली ॥२३॥

अर्थ—गदा को लेकर जलती हुई प्रलयाग्नि के तुल्य क्रुद्ध हुआ राक्षस महापार्श्व वानरों की ओर दौड़ा, तब बलवान् वानर ऋषभ रावण के छोटे भाई महापार्श्व की सेना में आकर उसके सन्मुख डटगया ॥

अभिदुद्राव वेगेन गदां तस्य महात्मनः ।
तां गृहीत्वा गदां भीमामाविध्य च पुनः पुनः ॥२४॥
मत्तानाकं महात्मा स जघान रणमूर्ध्नि ।
स स्वया गदया भग्नो विशीर्णदशनेक्षणः ॥२५॥
निपपात तदा मत्तो वज्राहत इवाचलः ॥ २६ ॥
विशीर्णनयनो भूमौ गतसत्त्वो गतायुषः ।
पतिते राक्षसं तस्मिन्विद्रुतं राक्षसं बलम् ॥ २७ ॥

अर्थ—और उस महात्मा महापार्श्व की उस गदा को लेकर बार २ घुमाता हुआ बड़े वेग से दौड़ा, और रणभूमि में महापार्श्व को ताड़न किया, वह अपनी ही गदा से मारा हुआ टूटे हुए दांत और फूटी हुई आंखों वाला महापार्श्व बज्र से हत हुए पर्वत की भांति भूमि पर गिर गया, जब इस प्रकार नेत्रादि से अङ्ग भङ्ग, आयुध रहित तथा निर्जीव हुआ महापार्श्व भूमि पर गिर पड़ा तब राक्षसों की सब सेना भाग खड़ी हुई ॥

इति त्रयस्त्रिंशः सर्गः

अथ चतुस्त्रिंशः सर्गः

सं०—अब लक्ष्मण द्वारा अतिकाय का बध कथन करते हैं:—

भ्रातॄंश्च निहितान्दृष्ट्वा शक्रतुल्यपराक्रमान् ।
पितृव्यौ चापि संदृश्य समरे सन्निपातितौ ॥ १ ॥

अतिकायोऽद्रिसंकाशो अभिदुद्राव वानरान् ।
नाम संश्रावयामास ननाद च महास्वनम् ॥ २ ॥

अर्थ—इन्द्रतुल्य पराक्रम वाले तीनो भाइयों को युद्ध में मरा और दोनो चचों को गिरा हुआ देखकर पर्वततुल्य अतिकाय वानरसेना की ओर दौड़ा और अपना नाम सुनाकर बड़ी उच्चध्वनि से गर्जा ॥

तेन सिंहप्रणादेन नामविश्रावणेनच ।
ज्याशब्देन च भीमेन त्रासयामास वानरान् ॥३॥

अर्थ—उसकी सिंहतुल्य गर्ज, नाम सुनाने तथा धनुष की घोर टङ्कार सुनकर सब वानर भयभीत होगये ॥

ततोऽतिकायो बलवान्प्रविश्य हरिवाहिनीम् ।
विस्फारयामास धनुर्ननाद च पुनः पुनः ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर बलवान् अतिकाय ने वानरसेना में प्रविष्ट होकर धनुष घुमाया और घोर सिंहनाद किया ॥

स राक्षसेन्द्रो हरियूथमध्ये न युध्यमानं
निजघान कञ्चित् । उत्पत्य रामं सधनुः
कलापी सगर्वितं वाक्यमिदं बभाषे॥५॥

अर्थ—वह राक्षसेन्द्र वानरयूथ के मध्य में अपने साथ युद्ध न करते हुए किसी को न मारता हुआ और धनुष धारण किये हुए उछलकर राम के समीप पहुंच यह गर्वित वाक्य बोला कि :—

रथो स्थितोऽहं शरचापपाणिर्न प्राकृतं कञ्चन

योधयामि। यस्यास्ति शक्तिर्व्यवसाययुक्तो
ददातु मे शीघ्रमिहाद्य युद्धम् ॥ ६ ॥

अर्थ—धनुष बाण हाथ में लिये रथ पर चढ़ा हुआ मैं साधारण वानरों के साथ युद्ध करना नहीं चाहता, सो जिसकी शक्ति हो वह दृढ़ होकर आज मुझे युद्ध देवे ॥

ततस्य वाक्यं ब्रुवतो निशम्य चुकोप
सौमित्रिरमित्रहन्ता। अमृष्यमाणश्च
समुत्पपात जग्राह चापं च ततः स्मयित्वा॥७॥

अर्थ—तब उसका उक्त वाक्य सुनकर शत्रुओं के हनन करने वाला लक्ष्मण उस पर क्रुद्ध हुआ और उसके वाक्य को न सहारता हुआ उछलकर धनुष हाथ में लेलिया, और :—

क्रुद्धः सौमित्रिरुत्पत्यतूणादाक्षिप्यसायकम्।
पुरस्तादतिकायस्य विचकर्ष महद्धनुः ॥ ८ ॥
कर्मणा सूचयात्मानं न विकत्थितुमर्हसि।
पौरुषेण तु यो युक्तः स तु शूर इति स्मृतः ॥ ९ ॥
सर्वायुधसमायुक्तो धन्वी त्वं रथमास्थितः।
शरैर्वा यदि वाप्यस्त्रैर्दर्शयस्व पराक्रमम् ॥ १० ॥

अर्थ—तरकस से बाण निकाल धनुष पर टङ्कोर देता हुआ अतिकाय से बोला कि अपने आपको कर्म से दिखला अपनी व्यर्थ श्लाघा नहीं करनी चाहिये, जो पौरुष से युक्त है वही शूरवीर मानागया है, सम्पूर्ण शस्त्रों से युक्त धनुष धारण किये हुए तू रथ पर स्थित है सो बाणों वा अस्त्रों से अपना पराक्रम दिखला ॥

ततोऽतिकायः कुपितश्चापमारोप्य सायकम् ।
लक्ष्मणाय प्रचिक्षेप संक्षिपन्निव चाम्बरम् ॥११॥
तमापतन्तं निशितं शरमाशी विषोपमम् ।
अर्धचन्द्रेण चिच्छेद लक्ष्मणः परवीरहा ॥ १२ ॥

अर्थ—तदनन्तर कुपित हुए अतिकाय ने धनुष में बाण जोड़कर लक्ष्मण की ओर फैंका, वह बाण अपने वेग से मानो मध्य के आकाश को चीरता हुआ अग्नितुल्य आते हुए उस तीक्ष्ण बाण को बीर शत्रुओं के मारने वाले लक्ष्मण ने अर्धचन्द्र अस्त्र से काट दिया ॥

एकं त्रीन्पञ्च सप्तेति सायकान्राक्षसर्षभ ।
आददे सन्दधे चापि विचकर्षोत्ससर्ज च ॥१३॥
ततस्तान्राक्षसोत्सृष्टान्शरौघान्राघवानुजः ।
असंभ्रान्तः प्रचिच्छेद निशितैर्बहुभिः शरैः ॥१४॥

अर्थ—तब उस राक्षस ने एक, तीन, पांच तथा सात बाण क्रमशः लेकर धनुष में जोड़े, खींचे और छोड़े, उस राक्षस से छोड़े हुए उन बाणों को राम के छोटे भाई लक्ष्मण ने बिना घबराये हुए तीक्ष्ण बाणों से काट दिया ॥

आग्नेयेन तदास्त्रेण योजयामास सायकम् ।
अतिकायाय चिक्षेप कालदण्डमिवान्तकः ॥१५॥
आग्नेयास्त्राभिसंयुक्तं दृष्ट्वा बाणं निशाचरः ।
उत्ससर्ज तदा बाणं रौद्रं सूर्यास्त्रयोजितम् ॥१६॥

तावुभावम्बरे बाणावन्योन्यमभिजघ्नतुः ।
तावन्योन्यं विनिर्दह्य पेततुः पृथिवीतले ॥ १७ ॥

अर्थ—तदनन्तर लक्ष्मण ने बाण जोड़कर आग्नेय अस्त्र से अतिकाय की ओर फैंका, जैसे यम कालदण्ड को छोड़ता है, तब उस राक्षस ने आग्नेयास्त्र से जुड़े बाण को देख सूर्यास्त्र में जोड़कर अपना रौद्र बाण छोड़ा, वह दोनों बाण आकाश में एक दूसरे से टकराये और आपस में एक दूसरे को दग्ध करके पृथिवी तल पर गिर पड़े ॥

ततोऽतिकायः संक्रुद्धस्त्वाष्ट्रमैषीकमुत्सृजत् ।
ततश्चिच्छेद सौमित्रिरस्त्रमैन्द्रेण वीर्यवान् ॥१८॥
याम्येनास्त्रेण संक्रुद्धो योजयामास सायकम् ।
वायव्येन तदस्त्रेण निजघान स लक्ष्मणः ॥१९॥

अर्थ—तदनन्तर क्रुद्ध हुए अतिकाय ने त्वाष्ट्रबाण छोड़ा और उस अस्त्र को वीर्यवान् लक्ष्मण ने ऐन्द्र अस्त्र से काट दिया, फिर उसने क्रुद्ध होकर याम्य अस्त्र से बाणको जोड़ा और लक्ष्मण ने उसको भी वायव्य अस्त्र से काट दिया ॥

तं ब्राह्मणोऽस्त्रेण नियुज्य चापे शरं सुपुंखं
यमदूतकल्पम् । सौमित्रिरिन्द्रारि सुतस्य
तस्य ससर्ज बाणं युधि वज्रकल्पम् ॥२०॥

अर्थ—तब लक्ष्मण ने यमदूत तथा बज्रतुल्य तीक्ष्ण नोक वाला

बाण ब्राह्म अस्त्र के साथ धनुष में जोड़कर अतिकाय पर छोड़ा॥

तं प्रेक्षमाणः सहसातिकायो जघान बाणैर्नि-
शितैरनेकैः । स सायकस्तस्य सुपर्णवेगस्तदा-
तिवेगेन जगाम पार्श्वम् ॥ २१ ॥

अर्थ—उस बाण को देखकर अतिकाय ने अनेक तीक्ष्ण बाणों से उसको ताड़न किया परन्तु वह गरुड़ तुल्य वेगवाला बाण अतिवेग से उसके समीप पहुंच ही गया ॥

तमागतं प्रेक्ष्य तदातिकायो बाणं प्रदीप्ता-
न्तक कालकल्पम् । जघान शक्त्यृष्टि गदा
कुठारैः शूलैः शरैश्चाप्यविपन्नचेष्टः ॥२२॥

अर्थ—और यम तथा काल तुल्य उस बाण को आया देखकर फुरतीले अतिकाय ने शक्ति, ऋष्टि, गदा, कुठार, शूल और तीरों से उसको ताड़न किया ॥

तान्यायुधान्यद्भुतविग्रहाणि मोघानि कृत्वा
स शरोऽग्निदीप्तः । प्रगृह्य तस्यैव किरीट-
जुष्टं तदातिकायस्य शिरो जहार ॥२३॥

अर्थ—परन्तु उन सब अद्भुत रूप वाले आयुधों को निष्फल करके अग्नि से दीप्त उस बाण ने अतिकाय के सिर को उड़ा दिया॥

तच्छिरः सशिरस्त्राणं लक्ष्मणेषु प्रमर्दितम् ।
पपात सहसा भूमौ शृंगं हिमवतो यथा ॥२४॥

अर्थ—लक्ष्मण के बाण द्वारा उड़ाया हुआ उसका सिर मुकुट सहित हिमालय की चोटी तुल्य सहसा भूमि पर गिर पड़ा ॥

तं भूमौ पतितं दृष्ट्वा विक्षिप्तांवरभूषणम् ।
बभूवुर्व्यथिताः सर्वे हत शेषा निशाचराः ॥२४॥
ते विषण्णमुखा दीनाः प्रहारजनितश्रमाः ।
विनेदुरुच्चैर्बहवः सहसा विस्वरैः स्वरैः ॥२६॥

अर्थ—वस्त्र भूषण रहित अतिकाय का सिर भूमि में पड़ा देखकर मृत्यु से बचे निशाचर अति व्यथा को प्राप्त हुए, और उदासीन तथा अति दुःखित हो बाणों के आघात से स्वामी की यह दशा देखकर भयङ्करस्वर से रुदन करने लगे ॥

ततस्तत्परितोयातानिरपेक्षा निशाचराः ।
पुरीमभिमुखाभीता द्रवन्तो नायके हते ॥२७॥

अर्थ—और स्वामी के मारे जाने के कारण निराश हो सब युद्ध से बचे निशाचर भयभीत हो लङ्का की ओर भाग गये ॥

इति चतुस्त्रिंशः सर्गः

अथ पञ्चत्रिंशः सर्गः

सं०—अब कम्पनादि राक्षसों का अङ्गदादि से युद्ध कथन करते हैं :—

ततो हतान्राक्षस पुंगवांस्तान्देवान्तकादि
त्रिशिरोऽतिकायान्। रक्षोगणास्तत्र हताव-
शिष्टास्ते रावणाय त्वरिताः शशंसुः ॥१॥

अर्थ—तदनन्तर जब राजा रावण ने उक्त योद्धाओं का मरना सुना तो उसके नेत्र आंसुओं से भर आये और पुत्र तथा भाइयों के भयङ्कर नाश को सोचता हुआ बड़े गहरे सोच में पड़ गया ॥

स कुम्भं च निकुम्भं च कुम्भकर्णात्मजावुभौ ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो राक्षसैर्बहुभिः सह ॥२॥
यूपाक्षः शोणिताक्षश्च प्रजंघः कम्पनस्तथा ।
निर्ययौ कौम्भकर्णाभ्यां सह रावणशासनात् ॥३॥

अर्थ—फिर उसने क्रुद्ध होकर कुम्भकर्ण के दोनों पुत्र कुम्भ और निकुम्भ को बहुत से राक्षसों के साथ भेजा, और रावण की आज्ञा से कुम्भकर्ण के पुत्रों के साथ यूपाक्ष, शोणिताक्ष, प्रजङ्घ तथा कम्पन भी युद्ध के लिये चले ॥

शशासचैवतान्सर्वान्राक्षसान्स महाबलान् ।
राक्षसा गच्छताद्यैव सिंहनादं च नादयन् ॥४॥
ततस्तु चोदितास्तेन राक्षसा ज्वलितायुधाः ।
लंकायां निर्ययुर्वीराः प्रणदन्तः पुनः पुनः ॥५॥

अर्थ—और उन सब महाबलवान् राक्षसों को रावण ने

आज्ञा दी कि तुम लोग यहीं से सिंहनाद करते हुए जाओ, रावण की उक्त आज्ञा पाकर राक्षस लोग बार २ नाद करते हुए नाना प्रकार के जाज्वल्यमान आयुध लेकर लङ्का से बाहर निकले॥

तद्दृष्ट्वा बलमायान्तं राक्षसानां दुरासदम् ।
संचचाल प्लवंगानां बलमुच्चैर्ननाद च ॥६॥
प्रवृत्ते संकुले तस्मिन्वीरे घोरजनक्षये ।
अंगदः कम्पनं वीरमाससाद रणोत्सुकः ॥७॥
आहूय सोऽगदं कोपात्ताडयामास वेगितः ।
गदया कम्पनः पूर्वं स चचाल भृशाहतः ॥८॥

अर्थ—राक्षसों के उस दुर्धर्ष बल को आता देखकर वानरों की सेना भी उच्च स्वर मे गर्जती हुई चली, तब भयङ्कर जनक्षय करने वाले उस संग्राम के प्रवृत्त होने पर रणोत्साही अङ्गद बीर कम्पन के सन्मुख गया, और कम्पन ने अङ्गद को आह्वान करके कुपित होकर बड़े वेग से उसको गदा द्वारा ऐसा ताड़न किया कि अङ्गद उस प्रबल चोट से उखड़ गया॥

स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी चिक्षेप शिखरं गिरेः ।
अर्दितश्च प्रहारेण कम्पनः पतितो भुवि ॥९॥
ततस्तु कम्पनं दृष्ट्वा शोणिताक्षो हतं रणे ।
रथेनाभ्यपतत्क्षिप्रं तत्राङ्गदमभीतवत् ॥१०॥
सोऽङ्गदं निशितैर्बाणैस्तदा विव्याध वेगितः ।
क्षुरक्षुरप्रनाराचैर्वत्सदन्तैः शिलीमुखैः ॥११॥

कर्णिशल्यविपाठैश्च बहुभिर्निशितैः शरैः ॥१२॥

अर्थ–परन्तु उस तेजस्वी ने अपने आपको शीघ्र ही संभाल कर उसके ऊपर एक पर्वत शिखर फैंका, और कम्पन उस प्रहार से पीड़ित होकर पृथिवी तल पर गिर पड़ा, तब कम्पन को रण में मरा हुआ देखकर शोणिताक्ष शीघ्र ही निडर की भांति अङ्गद पर जा झपटा, और उसने बड़े वेग से अङ्गद को क्षुर, क्षुरप्र, नाराच, बत्सदन्त, शिलीमुख, कर्णिशल्य और विपाठ इन बहुत से बाणों द्वारा बींध दिया ॥

अंगदः प्रतिविद्धांगो बालिपुत्रः प्रतापवान् ।
धनुरुग्रं रथं बाणान् ममर्द तरसाबली ॥१२॥
शोणिताक्षस्ततः क्षिप्रमसिचर्मसमाददे ।
उत्पपात तदा क्रुद्धो वेगवानविचारयन् ॥१४॥
तं क्षिप्रतरमाप्लुत्य परामृश्यांगदो बली ।
करेण तस्य तं खड्गं समाच्छिद्य ननाद च ॥१५॥

अर्थ–तब उस बिंधे हुए अङ्गों वाले बलवान् प्रतापी बालि पुत्र अङ्गद ने उसका उग्र धनुष, रथ और बाणों को अपने बल से नष्ट कर दिया, तदनन्तर शोणिताक्ष ने झटपट हाथ में तलवार पकड़ी और अङ्गद को कुछ भी न समझता हुआ बड़े क्रोध से उस पर जा टूटा, परन्तु बली अङ्गद ने बहुत ही फुरती से उछलकर उसको आगे धर लिया और उसके हाथ से तलवार छीनकर बड़े वेग से गर्जा ॥

तं प्रगृह्य महाखड्गं विनद्य च पुनः पुनः ।
बालिपुत्रोऽभिदुद्राव रणशीर्षे परानरीन् ॥ १६ ॥

अर्थ—उस बड़ी तलवार को पकड़ और बार २ गर्जकर बालिपुत्र अङ्गद रण के मैदान में शत्रुओं की ओर दौड़ा ॥

प्रजङ्घ सहितो वीरो यूपाक्षस्तु ततो बली ।
रथेनाभिययौ क्रुद्धो बालिपुत्रं महाबलम् ॥ १७ ॥
आयसीं तु गदां गृह्य स बीरः कनकांगद ।
शोणिताक्षः समाश्वस्य तमेवानुपपात ह ॥ १८ ॥

अर्थ—तब महाबली प्रजंघ यूपाक्षसहित रथ पर सवार हो गदा हाथ में लेकर अङ्गद की ओर झपटा, और शोणिताक्ष फिर सचेत हो लोहे की गदा लेकर उसी के पीछे गया ॥

प्रजङ्घस्तु महाबीरो यूपाक्षसहितो बली ।
गदयाभिययौ क्रुद्धो बालिपुत्रं महाबलम् ॥ १९ ॥

अर्थ—और महाबीर प्रजङ्घ तथा यूपाक्ष क्रुद्ध हुए गदा लेकर महाबली बालिपुत्र अङ्गद की ओर गये ॥

अंगदं परिरक्षन्तौ मैन्दो द्विविद एव च ।
तस्य तस्थतुरभ्याशे परस्पर दिदृक्षया ॥ २० ॥
त्रयाणां वानरेन्द्राणां त्रिभी राक्षसपुंगवैः ।
सं सक्तानां महद्युद्धमभवद्रोमहर्षणम् ॥ २१ ॥

अर्थ—तब अङ्गद की रक्षा करते हुए मैन्द तथा द्विविद भी अपना प्रतिद्वन्द्वी=सन्मुख लड़ने वाला चाहते हुए अंगद के निकट खड़े होगये, और अंगद, मैन्द, द्विविद इन तीन वानरों का

शोणिताक्ष, प्रजङ्घ और यूपाक्ष इन तीन राक्षसों के साथ रोंगटे खड़े करने वाला भारी युद्ध होने लगा ॥

उद्यम्य विपुलं खड्गं परमर्मविदारणम् ।
प्रजङ्घो बालिपुत्राय अभिदुद्राव वेगितः ॥ २२ ॥
तमभ्याशगतं दृष्ट्वा वानरेन्द्रो महाबलः ।
बाहुंचास्य स निस्त्रिंशमाजघान स मुष्टिना ॥२३॥
बालिपुत्रस्य घातेन स पपात क्षितावसिः ॥२४॥

अर्थ—तदनन्तर शत्रु के मर्म पीड़न करने वाले विशाल खड्ग को उठाकर प्रजङ्घ बड़े वेग से बालिपुत्र अंगद की ओर दौड़ा, तब उसको निकट आया देखकर महाबली अंगद ने उसकी तलवार वाली भुजा पर मुक्के की ऐसी चोट मारी कि उससे वह तलवार भूमि पर गिरपड़ी ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ खड्गं मुसलसन्निभम् ।
मुष्टिं संवर्तयामास वज्रकल्पं महाबलः ॥ २५ ॥
स ललाटे महावीर्यमंगदं वानरर्षभम् ।
आजघान महातेजाः समुहूर्तं चचाल ह ॥ २६ ॥
स संज्ञां प्राप्य तेजस्वी बालिपुत्रः प्रतापवान् ।
प्रजङ्घस्य शिरः कायात्पातयामास मुष्टिना ॥२७॥

अर्थ—तब उस मूसल तुल्य तलवार को भूमि पर गिरा हुआ देखकर उस महाबली ने बज्रतुल्य मुक्का बनाया और उससे उस महातेजस्वी बलवान् अङ्गद को ताड़न किया जिससे वह कुछ काल

के लिये घबरा गया, और फिर सम्भलकर तेजस्वी अंगद ने मुक्के से प्रजङ्घ का सिर उसके देह से गिरा दिया ॥

स यूपाक्षोऽश्रुपूर्णाक्षः पितृव्ये निहते रणे ।
अवरुह्य रथात्क्षिप्रं क्षीणेषुः खड्गमाददे ॥ २८ ॥

अर्थ—तदनन्तर रण में चचा के मरने पर आंसुओं से भरे नेत्रों वाला यूपाक्ष रथ से उतरा, और बाणों के समाप्त होजाने से उसने खड्ग पकड़ा ॥

तमापतंतं संप्रेक्ष्य यूपाक्षं द्विविदस्त्वरन् ।
अजघानोरसिक्रुद्धो जग्राह च बलाद्बली ॥ २९ ॥
गृहीतं भ्रातरं दृष्ट्वा शोणिताक्षो महाबलम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदं ततः ॥३०॥

अर्थ—और यूपाक्ष को खड्ग पकड़े सन्मुख आता देख द्विविद ने बड़ी शीघ्रता से उसके गदा मारकर बलात्कार पकड़ लिया, तब महातेजस्वी शोणिताक्ष ने अपने भाई को पकड़ा हुआ देखकर महाबली द्विविद की छाती में गदा मारा ॥

सततोभिहतस्तेन चचाल च महाबल ।
उद्यतां च पुनस्तस्य जहार द्विविदो गदाम् ॥३१॥
एतस्मिन्नन्तरे मैन्दो द्विविदाभ्याशमागमत् ।
तौ शोणिताक्ष यूपाक्षौ प्लवंगाभ्यां तरस्विनौ॥३२॥
चक्रतुः समरे तीव्रमाकर्षोत्पाटनं भृशम् ॥ ३३ ॥

अर्थ—उस गदा के प्रहार से द्विविद कांप उठा, फिर

शोणिताक्ष ने उसको पुनः ताड़न करने के लिये गदा उठाई जिसको द्विविद ने बड़ी फुरती से छीन लिया, इसी अन्तर में मैन्द भी द्विविद के समीप आगया और उक्त दोनों का शोणिताक्ष तथा यूपाक्ष नामक दोनों राक्षसों के साथ बड़ा मल्लयुद्ध हुआ ॥

द्विविदः शोणिताक्षन्तु विददार नखैर्मुखे ।
निष्पिपेष स वीर्येण क्षितावाविध्य वीर्यवान् ॥३४॥
यूपाक्षमभिसंक्रुद्धो मैन्दो वानरपुंगवः ।
पीडयामास बाहुभ्यां पपात स हतः क्षितौ ॥३५॥

अर्थ–तदनन्तर द्विविद ने शोणिताक्ष के मुख को नखों से फाड़कर उस वीर्यवान् ने अपने बल से उसको भूमि पर फैंक पीस डाला, और यूपाक्ष को क्रुद्ध हुए मैन्द ने दोनों भुजाओं से ऐसा पीड़न किया कि वह मृत्युवश हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥

इति पञ्चत्रिंशः सर्गः

अथ षट्त्रिंशः सर्गः

सं०–अब कुम्भ का सुग्रीव तथा निकुम्भ का हनुमान् द्वारा युद्ध में बध कथन करते हैं :—

हतप्रवीरा व्यथितो राक्षसेन्द्र चमूस्तथा ।
जगामाभिमुखो सा तु कुम्भकर्णात्मजो यतः ॥१॥
आपतंतीं च वेगेन कुम्भस्तां सांत्वयच्चमूम् ।
अथोत्कृष्टं महावीर्यैर्लब्धलक्षैः प्लवंगमैः ॥ २ ॥

निपातित महावीरां दृष्ट्वा रक्षश्चमूं तदा ।
कुम्भः प्रचक्रे तेजस्वी रणे कर्म सुदुष्करम् ॥ ३ ॥

अर्थ–उक्त वीरों के मरने से दुःखित हुई राक्षससेना उस ओर गई जहां कुम्भकर्ण के पुत्र कुम्भ और निकुम्भ थे, वानरों से लक्षित-बड़े वेग से भागी आती हुई राक्षससेना को देखकर कुम्भ ने आश्वासन दिया, जिस सेना में से कई महावीर हत होचुके हैं उस राक्षससेना को देखकर तेजस्वी कुम्भ ने रण में बड़ा दुष्करकर्म आरम्भ किया ॥

स धनुर्धन्विनां श्रेष्ठः प्रगृह्य सुसमाहितः ।
मुमोचाशीविषप्रख्याञ्छरान्देहविदारणान् ॥ ४ ॥
तस्य तच्छुशुभेभूयः स शरं धनुरुत्तमम् ।
विद्युदैरावतार्चिष्मद्द्वितीयेन्द्रधनुर्यथा ॥ ५ ॥
आकर्णाकृष्टमुक्तेन जघान द्विविदं तदा ।
तेन हाटकपुंखेन पत्रिणापत्रवाससा ॥ ६ ॥
सहसाभिहतस्तेन विप्रमुक्तपदः स्फुरन् ।
निपपात त्रिकूटाभो विह्वलप्लवगोत्तमः ॥ ७ ॥

अर्थ–धनुर्धारियों में श्रेष्ठ कुम्भ ने स्वस्थतापूर्वक धनुष लेकर उसमें देहों को विदारण करने वाले विषधर सर्पों के समान बाण जोड़े, तब उन बाणों के जुड़ने से उसका धनुष विजुली तथा इन्द्रधनुष के समान प्रतीत होने लगा, तदनन्तर कुम्भ ने धनुष की ज्या को कान तक खींच द्विविद को लक्ष्य बनाकर ऐसा मारा कि

द्विविद तड़फता हुआ त्रिकूटपर्वत के समान विह्वल हो सहसा पृथिवी पर गिर पड़ा ॥

मैन्दस्तु भ्रातरं तत्र भग्नं दृष्ट्वा महाहवे ।
अभिदुद्राव वेगेन प्रगृह्य विपुलां शिलाम् ॥ ८ ॥
तां शिलां तत्र चिक्षेप राक्षसाय महाबलः ।
बिभेद तां शिलां कुम्भः प्रसन्नैः पंचभिः शरैः ॥९॥
संधायचान्यं सुमुखं शरमाशी विषोपमम् ।
आजघान महातेजा वक्षसि द्विविदाग्रजम् ॥१०॥
स तु तेन प्रहारेण मैन्दो वानरयूथपः ।
मर्मण्यभिहतस्तेन पपात भुवि मूर्च्छितः ॥ ११ ॥

अर्थ—तदनन्तर भाई को समर में गिरा देखकर वानरश्रेष्ठ मैन्द ने एक शिला लेकर बड़े वेग से कुम्भ पर फैंकी परन्तु कुम्भ ने पांच उज्वल बाणों से उस शिला को काट दिया, और शीघ्र ही विषधर सर्प के समान एक तीक्ष्ण बाण लेकर द्विविद के भाई मैन्द की छाती में मारा, और वह बाण वानरश्रेष्ठ मैन्द के मर्मस्थान में जाकर लगा जिससे वह भी मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिरपड़ा॥

अङ्गदो मातुलौ दृष्ट्वा मथितौ तु महाबलौ ।
अभिदुद्राव वेगेन कुम्भमुद्यत कार्मुकम् ॥ १२ ॥
तमापतंतं विव्याध कुम्भ पंचभिरायसैः ।
त्रिभिश्चान्यैस्त्रिभिर्बाणैर्मातंगमिवतोमरैः ॥ १३ ॥

स चिच्छेद शितैर्बाणैः सप्तभिः कायभेदनै ।
अंगदो विव्यथे भीक्ष्णं सपपात मुमोच ह ॥१४॥

अर्थ–तब अङ्गद अपने मामा द्विविद और मैन्द को हत हुआ तथा कुम्भ को धनुष उठाये देखकर बड़े वेग से उसकी ओर दौड़ा, अङ्गद को सन्मुख आते देखकर कुम्भ ने पांच लोहे के बाण और तीन अन्य तीक्ष्ण बाणों द्वारा तोमरों से हाथी के समान मारा, शरीर भेदन करने वाले सात बाण अङ्गद की देह में ऐसे मारे कि वह भारी व्यथा को प्राप्त होकर मूर्च्छित हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥

तांस्तु दृष्ट्वा हरिगणाच्छरवृष्टिभिरर्दितान् ।
अभिदुद्राव सुग्रीवः कुम्भकर्णात्मजं रणे ॥ १५ ॥

अर्थ–तदनन्तर उक्त वानरों को बाणों से पीड़ित देखकर सुग्रीव रण में कुम्भकर्ण के पुत्र की ओर दौड़ा ॥

ततः कुम्भः समुत्पत्य सुग्रीवमाभिपात्य च ।
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रकल्पेन मुष्टिना॥१६॥

अर्थ–तब क्रुद्ध हुए कुम्भ ने उछलकर सुग्रीव को गिरा लिया और वज्रतुल्य मुक्के से उसकी छाती पर प्रहार किया ॥

स तत्राभिहतस्तेन सुग्रीवो वानरर्षभः ।
स मुष्टिं पातयामास कुम्भस्योरसि वीर्यवान् ॥१७॥

अर्थ–कुम्भ के प्रहार करने पर बलवान् सुग्रीव ने फिर उसकी छाती पर बड़े वेग से मुक्का मारा ॥

स तु तेन प्रहारेण विह्वलो भृशपीडितः ।
निपपात तदा कुम्भो गतार्चिरिव पावकः ॥१८॥

अर्थ—सुग्रीव के मुक्कारूप प्रहार से व्याकुल हो अतीव पीड़ित हुआ कुम्भ दूर हुई प्रभा वाली अग्नि की भांति हुआ भूमि पर गिर पड़ा ॥

निकुम्भो भ्रातरं दृष्ट्वा सुग्रीवेण निपातितम् ।
प्रदहन्निव कोपेन वानरेन्द्रमुदैक्षत ॥१९॥
आददे परिघं धीरो महेन्द्रशिखरोपमम् ।
यमदण्डोपमं भीमं रक्षसां भयनाशनम् ॥२०॥

अर्थ—तब भाई को सुग्रीव से गिरा हुआ देखकर क्रोध से मानो दग्ध करते हुए निकुम्भ ने वानरेन्द्र की ओर देखा, और उस बीर ने महेन्द्र की चोटी तुल्य तथा यमदण्ड के समान भयानक और राक्षसों के भय का नाशक परिघ हाथ में लिया ॥

राक्षसा वानराश्चापि न शेकुः स्पंदितुं भयात् ।
हनूमांस्तु विवृत्योरस्तस्थौ प्रमुखतो बली ॥२१॥
हनूमानुन्ममाथाशु निकुम्भं मारुतात्मजः ।
निक्षिप्य,परमायत्तो निकुम्भं निष्पिपेष च ॥२२॥
परिगृह्य च बाहुभ्यां परिवृत्य शिरोधराम् ।
उत्पाटयामास शिरो भैरवं नदतो महत् ॥२३॥

अर्थ—तब भयभीत हुए राक्षस तथा वानर कोई चेष्टा न कर सके किन्तु उस समय बली हनुमान् छाती आगे करके सन्मुख आ खड़ा हुआ, और उसने अपने बल से निकुम्भ को नीचे गिराकर पीस डाला, तदनन्तर दोनो भुजाओं को पकड़ और गर्दन को मरोड़कर उस भयानक गर्जते हुए के सिर को तोड़ दिया॥

इति षट्त्रिंशः सर्गः

अथ सप्तत्रिंशःसर्गः

सं०—अब खर के पुत्र मकराक्ष और राम का युद्ध कथन करते हैंः—

निकुम्भं निहतं दृष्ट्वा कुम्भं च विनिपातितम् ।
रावणः परमामर्षीप्रजज्वालानलो यथा ॥१॥
नैर्ऋतः क्रोधशोकाभ्यां द्वाभ्यां तु परिमूर्च्छितः ।
खरपुत्रं विशालाक्षं मकराक्षमचोदयत् ॥२॥
गच्छ पुत्र मयाज्ञप्तो बलेनाभिसमन्वितः ।
राघवं लक्ष्मणं चैव जहि तौ सवनौकसा ॥३॥

अर्थ—निकुम्भ और कुम्भ को हत हुआ देखकर परम क्रोधी रावण अग्नि की भांति जल उठा, और क्रोध तथा शोक से मूर्च्छित हुए उस राक्षस ने विशालनेत्रों वाले खर के पुत्र मकराक्ष को प्रेरित किया कि हे पुत्र ! तू मुझसे आज्ञा दिया हुआ सेना सहित जा और वहां जाकर वानरों समेत राम लक्ष्मण को मार ॥

रावणस्य वचःश्रुत्वा शूरमानी खरात्मजः ।
बाढमित्यब्रवीद्धृष्टो मकराक्षो निशाचरम् ॥४॥
सोऽभिवाद्य दशग्रीवं कृत्वाचापि प्रदक्षिणम् ।
निर्जगाम गृहाच्छुभ्राद्रावणस्याज्ञया बली ॥५॥
समीपस्थं बलाध्यक्षं खरपुत्रो ब्रवीद्वचः ।
रथमानीयतां तूर्णं सैन्यं त्वानीयतां त्वरात् ॥६॥

अर्थ-रावण के उक्त बचन सुनकर शूरमानी खर का पुत्र मकराक्ष बोला कि बहुत अच्छा अभी जाकर हनन करता हूं, यह कहकर वह बली रावण को अभिवादन तथा उसकी प्रदक्षिणा करके रावण की आज्ञानुसार शुभगृह से निकला, और समीप स्थित सेनाध्यक्ष से बोला कि हमारे लिये शीघ्र ही रथ और साथ जाने के लिये सेना लाओ ॥

प्रदक्षिणं रथं कृत्वा समाहूय निशाचरः ।
सूतं संचोदयामासशीघ्रं वै रथमावह ॥७॥
निर्गतं मकराक्षं ते दृष्ट्वा वानरपुंगवा ।
आप्लुत्य सहसा सर्वे योद्धुकामा व्यवस्थितः ॥८॥

अर्थ-तदनन्तर रथ की प्रदक्षिणा कर मकराक्ष रथ पर सवार हो सारथी से बोला कि रथ को शीघ्रता से लेचलो, तब मकराक्ष को आया देखकर सब वानरसैनिक उछलकर युद्ध के लिये तैयार होगये ॥

ततः प्रवृत्तं सुमहत्तद्युद्धं लोमहर्षणम् ।
निशाचरैः प्लवंगानां देवानां दानवैरिव ॥९॥
अन्योऽन्यं मर्दयन्तिस्म तदा कपिनिशाचराः ॥१०॥
शक्तिखड्गगदाकुन्तैस्तोमरैश्च निशाचराः ।
पट्टिशैर्भिदिपालैश्च बाणपातैः समंततः ॥११॥
बाणौघैरर्दिताश्चापि खरपुत्रेण वानराः ।
संभ्रान्तमनसः सर्वे दुद्रुवुर्भयपीडिताः ॥१२॥

अर्थ–तदनन्तर राक्षस और बानरों का रोमांच खड़े करने वाला बड़ा घोर युद्ध होने लगा, जैसे पूर्व देवता और दैत्यों का हुआ था, वानर और राक्षस परस्पर एक दूसरे का हनन करने लगे और शक्ति, खड्ग, गदा, भाले, सांग, पट्टिश, भिन्दीपाल तथा बाणों से सब ओर से राक्षसों ने वानरों पर प्रहार किया, बाणसमूह से खर के पुत्र मकराक्ष ने वानरों को ऐसा पीड़ित किया कि सब बानर घबराकर भाग खड़े हुए ॥

विद्रवत्सु तदा तेषु वानरेषु समंततः ।
रामस्तान्वारयामास स शरवर्षेण राक्षसान् ॥१३॥
वारितान्राक्षसान्दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
कोपानलसमाविष्टो बचनं चेदमब्रवीत् ॥ १४ ॥
तिष्ठ राम मया सार्धं द्वन्द्वयुद्धं भविष्यति ।
त्याजयिष्यामि ते प्राणान्धनुर्मुक्तैःशितैःशरैः ॥१५॥

अर्थ–वानरों को भागते और उनके पीछे राक्षसों को दौड़ते देखकर राम ने बाणों की वर्षा से राक्षसों को रोक दिया, राक्षसों को रुका हुआ देखकर निशाचर मकराक्ष कोपरूप अग्नि द्वारा दग्ध हुआ राम से बोलाकि हे राम ! खड़ा रह मेरा तेरा द्वन्द्वयुद्ध होगा, जिसमें धनुष से छूटे हुए तीक्ष्ण वाणों द्वारा तेरे प्राणों का हनन करुंगा ॥

तद्युद्धमभवत्तत्र समेत्यान्योन्यमोजसा ।
खरराक्षसपुत्रस्य सूनोर्दशरथस्य च ॥१६॥
रामसुक्तांस्तु बाणौघान्राक्षसस्त्वच्छिनद्रणे ।
रक्षो मुक्तांस्तु रामो वै नैकधा प्राच्छिनच्छरैः॥१७॥

अर्थ—तदनन्तर खर राक्षस के पुत्र मकराक्ष और दशरथ के पुत्र राम का परस्पर बड़ा प्रबल युद्ध हुआ, राम से छोड़े हुए बाण समूह को मकराक्ष और मकराक्ष से छोड़े हुए बाणों को राम अपने बाणों द्वारा नाना प्रकार से काट देते थे ॥

ततः क्रुद्धो महाबाहुर्धनुश्चिच्छेद संयुगे ।
अष्टाभिरथ नाराचैः सूतं विव्याध राघवः ॥१८॥
भित्वा रथं शरै रामो हत्वा अश्वानपातयत् ।
विरथो वसुधास्थः स शूलं जग्राह पाणिना ॥१९॥
विभ्राम्य च महच्छूलं प्रज्वलन्तं निशाचरः ।
स क्रोधात्प्राहिणोत्तस्मै राघवाय महात्मने ॥२०॥
तमापततं ज्वलितं खरपुत्रकराच्च्युतम् ।
बाणैश्चतुर्भिराकाशे शूलं चिच्छेद राघवः ॥२१॥

अर्थ—तब क्रुद्ध हुए महाबाहु राम ने आठ बाणों से युद्ध में उसके धनुष को काटकर सारथी को बींध दिया, रथ को तोड़ दिया और घोड़ों को गिरा दिया, फिर पैदल होकर मकराक्ष ने त्रिशूल हाथ में लिया, और बड़े वेग से घुमाकर क्रोधित हुए राक्षस ने महात्मा राम के ऊपर चलाया, परन्तु खरपुत्र के हाथ से छुटे हुए उस प्रज्वलित शूल को अपने ऊपर आता देख राम ने उसको चार बाणों से आकाश में ही काट दिया ॥

तच्छूलं निहतं दृष्ट्वा मकराक्षो निशाचरः ।
मुष्टिमुद्यम्य काकुत्स्थं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।२२॥

स तं दृष्ट्वापतंतं तु प्रहस्य रघुनन्दनः ।
पावकास्त्रं ततो रामः संदधे शरासने ॥२३॥

अर्थ–शूल को टूटा देखकर मकराक्ष निशाचर मुक्का उठाके "ठहर, ठहर" कहता हुआ राम की ओर दौड़ा, तब उसको आता देखकर राम ने हंसते हुए अपने बाण में आग्नेयास्त्र जोड़ा ॥

तेनास्त्रेण हतं रक्षः काकुत्स्थेन तदा रणे ।
संछिन्नहृदयं तत्र पपात च ममार च ॥२४॥
दृष्ट्वा ते राक्षसाः सर्वे मकराक्षस्य पातनम् ।
लङ्कामेव प्रधावन्त रामबाणभयार्दिताः ॥ २५ ॥

अर्थ–उस अस्त्र द्वारा राम से हत हुआ राक्षस छिन्न हृदय होकर गिरपड़ा और मरगया, उस मकराक्ष को गिरा हुआ देखकर राम के बाणों के भय से पीड़ित हुए सब राक्षस लङ्का को ही भागगये ॥

इति सप्तत्रिंशःसर्गः

अथ अष्टत्रिंशः सर्गः

सं०–अब मेघनाद का रण में आना और मायामयी सीता को मारना कथन करते हैं :—

मकराक्षं हतं श्रुत्वा रावणः समितिंजयः ।
रोषेण महताविष्टो दन्तान्कटकटाप्य च ॥ १ ॥

कुपितश्च तदातत्र किंकार्य्यमिति चिन्तयन् ।
आदिदेशाथ संक्रुद्धो रणायेन्द्रजितं सुतम् ॥ २ ॥
जहि वीर महावीर्यौ भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
अदृश्यो दृश्यमानो वा सर्वथा त्वं बलाधिकः ॥३॥

अर्थ—मकराक्ष को हत हुआ सुनकर युद्धों के जीतने वाला रावण अति क्रुद्ध होकर दांत पीसता हुआ अपने कर्तव्य को सोचने लगा और फिर कुपित होकर अपने पुत्र मेघनाद को रण के लिये आज्ञा दी कि हे बीर! उन महाबलवान् दोनों भाई राम लक्ष्मण को अदृश्य अथवा सन्मुख होकर मार, क्योंकि तू बल में सर्वथा अधिक है ॥

त्वमप्रतिमकर्माणमिन्द्रं जयसि संयुगे ।
किं पुनर्मानुषौ दृष्ट्वा न वधिष्यसि संयुगे ॥ ४ ॥
तथोक्तो राक्षसेन्द्रेण प्रतिगृह्य पितुर्वचः ।
यज्ञभूमौ स विधिवत्पावकं जुहावेन्द्रजित् ॥ ५ ॥

अर्थ—जब तू अतुलकर्मों वाले इन्द्र को युद्ध में जीतसक्ता है तो क्या फिर उन दोनों मनुष्यों को देखकर युद्ध में नहीं मारेगा, रावण से उक्त प्रकार कहा हुआ पिता की आज्ञा स्वीकार कर इन्द्रजित युद्धभूमि में गया और उसने यथाविधि अग्नि में होम किया ॥

क्रोधताम्रेक्षणः शूरो निर्जगामाथ रावणिः ।
सपश्चिमेन द्वारेण निर्ययौ राक्षसैर्वृतः ॥ ६ ॥

इन्द्रजित्तु ततो दृष्ट्वा भ्रातरौ रामलक्ष्मणौ ।
रणायात्युद्धतौ वीरौ मायां प्रादुष्करोत्तदा ॥ ७ ॥
इन्द्रजित्तु रथे स्थाप्य सीतां मायां मयीं तदा ।
मोहनार्थं तु सर्वेषां वानराभिमुखो ययौ ॥ ८ ॥

अर्थ–क्रोध से लाल नेत्रों वाला शूरबीर रावणपुत्र मेघनाद राक्षसों से घिरा हुआ पश्चिम द्वार से बाहर निकला, तदनन्तर राम लक्ष्मण दोनो भाइयों को रणक्षेत्र में अस्त्र शस्त्र लिये तैयार खड़ा देखकर इन्द्रजित् ने माया उत्पन्न की, वह इन्द्रजित् मायामयी सीता को रथ पर चढ़ाकर सब के मोहनार्थ वानरों के सन्मुख गया॥

ता स्त्रियं पश्यतां तेषां ताडयामास राक्षसः ।
क्रोशन्तीं राम रामेति मायया योजितां रथे ॥९॥
गृहीतमूर्धजां दृष्ट्वा हनूमान् मारुतात्मजः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं क्रोधाद्रक्षोधिपात्मजम् ॥ १० ॥
दुरात्मन्नात्मनाशाय केशपक्षे परामृशः ।
धिक्त्वां पापसमाचारं यस्य ते मतिरीदृशी ॥११॥

अर्थ–माया से रथ पर जुड़ी राम २ पुकारती हुई उस स्त्री को वानरों के देखते हुए मेघनाद ने ताड़न किया, और बालों से पकड़ी हुई को देखकर पवनपुत्र हनुमान् क्रोध से रावण के पुत्र को यह कठोर वाक्य बोला कि हे दुरात्मन् ! तू अपने नाश के लिये इसके बालों को छूता है. ऐसी विपरीत मति तथा पापाचरण वाले तुझको धिक्कार है ॥

नृशंसानार्य दुर्वृत्त क्षुद्रपापपराक्रम ।
अनार्यस्येदृशं कर्म घृणा ते नास्ति निर्घृण ॥१२॥
च्युता गृहाच्च राज्याच्च रामहस्ताच्च मैथिली ।
किं तवैषापराद्धाहि यदेनां हंसि निर्दय ॥ १३ ॥
सीतां हत्वा तु न चिरं जीविष्यसि कथञ्चन ।
वधार्हकर्मणा तेन मम हस्तगतो ह्यसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हे निर्दय, हे अनार्य, हे दुर्वृत्त, हे क्षुद्र, हे पाप पराक्रम वाले यह कर्म भले पुरुषों का नहीं, हे निर्दय ! तुझे दया नहीं आती जो दुष्टों के समान कर्म करता है, देख यह जानकी एकतो राज्य से च्युत हुई, घर से निकलीं और राम से वियुक्त हुई इन्होंने तेरा क्या अपराध किया है जो तू इनका बध कर रहा है, हे बधयोग्य मेघनाद ! याद रख, सीता को मारकर इस कर्म से तू मेरे वश में पड़ा हुआ चिरकाल तक जीवित नहीं रहेगा ॥

ये च स्त्रीघातिनां लोका लोकवध्यैश्च कुत्सिताः ।
इह जीवितमुत्सृज्य प्रेत्य तान्प्रति लप्स्यसे ॥१५॥
इति ब्रुवाणो हनुमान्सायुधैर्हरिभिर्वृतः ।
अभ्यधावत्सु संक्रुद्धो राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥ १६ ॥

अर्थ—जो स्त्रीघातकों के लोक*हैं और जो लोक चौरादिकों से भी निन्दित हैं सो तू यहां मरकर उन लोकों को प्राप्त होगा,

---

* यहां "लोक" शब्द के अर्थ पुनर्जन्म को प्राप्त होकर दुःख भोगने के हैं किसी लोकविशेष के नहीं ॥

यह कहता हुआ हनुमान् क्रुद्ध हो, हाथों में शस्त्र धारण किये हुए वानरों से घिरा हुआ रावण के पुत्र की ओर दौड़ा ॥

आपतंतं महावीर्यं तदनीकं वनौकसाम् ।
रक्षसां भीमकोपानामनीकेनन्यवारयत् ॥ १७ ॥
हनूमन्तं हरिश्रेष्ठमिन्द्रजित्प्रत्युवाच ह ॥ १८ ॥
सुग्रीवस्त्वं च रामश्च यन्निमित्तमिहागताः ।
तां वधिष्यामि वैदेहीमद्यैव तव पश्यतः ॥ १९ ॥
इमां हत्वा ततो रामं लक्ष्मणं त्वां च वानर ।
सुग्रीवं च बधिष्यामि तं चानार्यं विभीषणम्॥२०॥

अर्थ–तब आती हुई वानरों की उस बड़ी शक्तिसम्पन्न सेना को इन्द्रजित् ने भयङ्कर क्रोधवाले राक्षसों की सेना से रोककर वानरश्रेष्ठ हनुमान् को यह उत्तर दिया कि सुग्रीव, तुम और राम जिस निमित्त यहां आये हो उस वैदेही का आज तेरे सामने हनन करूंगा, और इसको मारकर हे वानर! फिर राम, लक्ष्मण तथा तुझको, सुग्रीव को और उस अनार्य्य विभीषण को मारूंगा ॥

न हन्तव्याः स्त्रियश्चेति यद्ब्रवीषि प्लवंगम ।
पीडाकरममित्राणां यच्च कर्तव्यमेव तत् ॥ २१ ॥
तमेवमुक्त्वा रुदतीं सीतां मायामयीं च ताम् ।
शितधारेण खड्गेन निजघानेन्द्रजित्स्वयम् ॥२२॥

अर्थ–हे वानर! जो तू यह कहता है कि स्त्री बध योग्य

नहीं होती, सो यह ठीक नहीं, जो शत्रुओं को दुःखदायी हो वह अवश्य करना चाहिये, यह कहकर रोती हुई उस मायामयी सीता को इन्द्रजित् ने स्वयं तीक्ष्णधारा वाले खड्ग से काट दिया ॥

यज्ञोपवीत मार्गेण छिन्नातेन तपस्विनी ।
सा पृथिव्यां पृथुश्रोणी पपात प्रियदर्शना ॥२३॥
तामिन्द्रजित् स्त्रियं हत्वा हनुमंतमुवाच ह ।
मया रामस्य पश्येमां प्रियां शस्त्रनिषूदिताम् ॥२४॥
एषां त्रिशस्ता वैदेही निष्फलो वः परिश्रमः ॥२५॥

अर्थ—यज्ञोपवीत के मार्ग से कटी हुई तपस्विनी सीता पृथिवी पर गिरपड़ी, तिस मायामयी स्त्री को मारकर मेघनाद हनुमान् से बोलाकि मेरे शस्त्र से हत हुई राम की प्रिया वैदेही को देखा, यह मरगई और अब तुम लोगों का परिश्रम वृथा है ॥

ततः खड्गेन महता हत्वा तामिन्द्रजित्स्वयम् ।
हृष्टः स रथमास्थाय ननाद च महास्वनम् ॥१६॥

अर्थ—सीता का स्वयं बड़े खड्ग से हनन करके प्रसन्न हुआ इन्द्रजित् रथ पर खड़ा होकर बड़ी ध्वनि से गर्जा ॥

इति अष्टत्रिंशः सर्गः

अथ एकोनचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब सीता का वध सुनकर राम का शोक तथा विभीषण से यथार्थ भेद खुलना कथन करते हैं:—

अभिपेतुश्च गर्जन्तो राक्षसान्वानरर्षभाः ।
परिवार्य हनूमन्तमन्वयुश्च महाहवे ॥१॥
स तैर्वानरमुख्यैस्तु हनूमान्सर्वतो वृतः ।
हुताशन इवार्चिष्मानदहच्छत्रुवाहिनीम् ॥ २ ॥

अर्थ—तदनन्तर उस महायुद्ध में वानर लोग गर्जते हुए हनुमान् के साथ राक्षससेना पर टूट पड़े, और उन मुख्य वानरों से घिरे हुए हनुमान् ने प्रदीप्त अग्नि की भांति शत्रुसेना को दग्ध=छिन्नभिन्न करदिया ॥

स सैन्यमभिवीक्ष्याथ वानरार्दितमिन्द्रजित् ।
प्रगृहीतायुधः क्रुद्धः परानभिमुखो ययौ ॥ ३ ॥
स शरौघानवसृजन्स्वसैन्येनाभिसंवृतः ।
जघान कपिशार्दूलान्सुबहून्दृढ़ विक्रमः ॥ ४ ॥

अर्थ—तब इन्द्रजित वानरों से पीड़ित सेना को देख शस्त्र पकड़कर क्रोध से भरा हुआ शत्रुओं के अभिमुख गया, और अपनी सेना के साथ मिलकर उसने वानरसेना पर बाणों के समूह छोड़े जिनसे उस दृढ़ पराक्रम वाले मेघनाद ने बहुत से वानरों का हनन किया ॥

हनूमान्कदनं चक्रे रक्षसां भीमकर्मणाम् ।
सन्निवार्य परानीकमब्रवीत्तान्वनौकसः ॥ ५ ॥
त्यक्त्वा प्राणान्विचेष्टन्तो रामप्रियचिकीर्षवः ।
यन्निमित्तं हि युध्यामो हता सा जनकात्मजा ॥६॥

इममर्थं हि विज्ञाप्य रामं सुग्रीवमेव च।
तौ यत्प्रति विधास्येते तत्करिष्यामहे वयम् ॥७॥

अर्थ—और हनुमान् ने उन भीमकर्मा राक्षसों का विनाश करके उस शत्रुसेना को पीछे हटा दिया, तब हनुमान् उन वानरों से बोला कि हम लोग राम का प्रिय चाहते हुए अपने प्राणों को त्यागकर युद्ध कर रहे हैं परन्तु जिसके निमित्त हम लड़ रहे हैं वह जनकसुता मारी गई है, यह समाचार राम और सुग्रीव को सुनाकर फिर जो कुछ प्रतीकार वह करेंगे वही हमें कर्तव्य होगा॥

इत्युक्त्वा वानरश्रेष्ठो वारयन्सर्ववानरान्।
शनैः शनैरसंत्रस्तः सबलः सन्यवर्तत ॥ ८ ॥
ततः प्रेक्ष्य हनूमन्तं व्रजन्तं तत्र राघवः।
स होतुकामो दुष्टात्मा गतश्चैत्यं निकुम्भिलाम् ॥९॥
राघवश्चापि विपुलं तं राक्षसवनौकसाम्।
श्रुत्वा संग्रामनिर्घोषं जाम्बवन्तमुवाच ह ॥ १० ॥

अर्थ—यह कहकर वह वानरश्रेष्ठ हनुमान् सब वानरों को हटाकर धीरे २ निर्भय सेना सहित लौटा, और हनुमान् को राम की ओर आता देखकर वह दुष्टात्मा मेघनाद होम करने की इच्छा से निकुम्भिला चैत्य=पूजास्थान को गया, उधर राक्षस और वानरों की उस विपुल संग्रामध्वनि को सुनकर राम जाम्बवान् से बोले कि :—

सौम्यं नूनं हनुमताकृतं कर्मसुदुष्करम् ।
श्रूयते च यथा भीमः सुमहानायुधस्वनः ॥ ११ ॥
तद्गच्छ कुरु साहाय्यं स्वबलेनाभिसंवृतः ।
क्षिप्रमृक्षपते तस्य कपिश्रेष्ठस्य युध्यतः ॥ १२ ॥
ऋक्षराजस्तथेत्युक्त्वा स्वेनानीकेन संवृतः ।
आगच्छत्पश्चिमं द्वारं हनूमान्यत्र वानरः ॥ १३ ॥

अर्थ-हे सौम्य! निःसन्देह हनुमान् ने बड़ा दुष्करकर्म किया है, जैसाकि शस्त्रों की बहुत बड़ी भयङ्करध्वनि सुनाई देरही है, सो हे जाम्बवान्! तुम अपनी सेना सहित शीघ्र ही वहां जाकर हनुमान् की सहायता करो, तब जाम्बवान् तथास्तु कहकर अपनी सेनासहित पश्चिम द्वार की ओर आया जहां हनुमान् था ॥

दृष्ट्वा पथि हनूमांश्च तदृक्षबलमुद्यतम् ।
नीलमेघनिभं भीमं सन्निवार्य न्यवर्तत ॥ १४ ॥
स तेन सह सैन्येन सन्निकर्षं महायशाः ।
शीघ्रमागम्य रामाय दुःखितो वाक्यमब्रवीत् ॥१५॥

अर्थ-तब मार्ग में नीलमेघ तुल्य भयानक उद्यत होकर जाती हुई जाम्बवान् की सेना को देखकर हनुमान् उसको भी साथ लौटा लाया, और वह महायशस्वी हनुमान् उस सेना के साथ शीघ्र ही राम के समीप आया और दुःखित हुआ उनसे यह वाक्य बोला कि :—

समरे युध्यमानानामस्माकं प्रेक्षतां च सः ।
जघान रुदतीं सीतामिन्द्रजिद्रावणात्मजः ॥ १६ ॥
उद्भ्रान्तचित्तस्तां दृष्ट्वा विषण्णोऽहमरिन्दम ।
तदहं भवतो वृत्तं विज्ञापयतुमागतः ॥ १७ ॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवः शोकमूर्च्छितः ।
निपपात तदा भूमौ छिन्नमूल इव द्रुमः ॥ १८ ॥

अर्थ–संग्राम में युद्ध करते हुए रावणसुत इन्द्रजित् ने हमारे देखते हुए रोती हुई सीता को मारडाला है, सो हे शत्रुओं के दमन करने वाले राम! उनको देखकर व्याकुल हुए मन वाला तथा उदास हुआ मैं यह वृतान्त आपको बतलाने के लिये आया हूं, हनुमान् के उक्त बचन सुनकर राम शोक से मूर्च्छित हुए कटी हुई जड़ वाले वृक्ष की भांति भूमि पर गिर पड़े ॥

तं भूमौ देवसंकाशं पतितं दृश्य राघवम् ।
अभिपेतुः समुत्पत्य सर्वतः कपिसत्तमाः ॥ १९ ॥
राममाश्वासमाने तु लक्ष्मणे भ्रातृवत्सले ।
निक्षिप्य गुल्मान्स्वस्थानं तत्रागच्छद्विभीषणः॥२०॥

अर्थ–देवतुल्य राम को भूमि में पतित देखकर सब श्रेष्ठ वानर सब ओर से दौड़कर राम के निकट आगये, और उस समय भ्रातृवत्सल लक्ष्मण से राम को आश्वासन देते हुए विभीषण अपने २ स्थान पर मोर्चे लगाकर राम के समीप आया ॥

व्रीडितं शोकसंतप्तं दृष्ट्वा रामं विभीषणः ।
पुष्कलार्थमिदं वाक्यं विसंज्ञं राममब्रवीत् ॥ २१ ॥

वानरान्मोहयित्वा तु प्रतियातः स राक्षसः ।
मायामयीं महाबाहो तां विद्धि जनकात्मजाम्॥२२॥

अर्थ-और लज्जित तथा शोक से संतप्त राम को देखकर विभीषण व्याकुलचित्त राम से गम्भीर तात्पर्य्य वाला यह वाक्य बोला कि हे राघव ! वह राक्षस मायामयी सीता को मार वानरों को धोखा देकर चला गया है ॥

चैत्यं निकुम्भिलामद्य प्राप्य होमं करिष्यति ।
हुतवानुपयातो हि देवैरपि सवासवैः ॥ २३ ॥
दुराधर्षो भवत्येष संग्रामे रावणात्मजः ॥ २४ ॥
तेन मोहयता नूनमेषा माया प्रयोजिता ।
विघ्नमन्विच्छता तत्र वानराणां पराक्रमे ॥ २५ ॥
स सैन्यास्तत्र गच्छामो यावत्तन्न समाप्यते ।
त्यजैनंनरशार्दूल मिथ्यासंतापमागतम् ॥ २६ ॥

अर्थ-और अब वह निकुम्भिला चैत्य में जाकर होम करेगा, होम करके आया हुआ वह रावणसुत इन्द्रजित् संग्राम में इन्द्रसहित देवताओं से भी नहीं जीता जासक्ता, इसी कारण छल करके उसने यह माया की है कि जिससे वानरों के पराक्रम में विघ्न हो, सो जबतक उसका होम समाप्त नहीं होता उससे प्रथम ही हम लोग सेनासहित वहां जाते हैं, और हे नरश्रेष्ठ ! आपभी इस मिथ्या आये हुए सन्ताप को त्यागकर :—

इह त्वं स्वस्थहृदयस्तिष्ठसत्त्वसमुच्छ्रितः ।
लक्ष्मणं प्रेषयास्माभिः सह सैन्यानुकर्षिभिः ॥२७॥

एष तं नरशार्दूलो रावणिं निशितैः शरैः।
त्याजयिष्यति तत्कर्म ततो बध्यो भविष्यति॥२८॥

अर्थ–स्वस्थहृदय हो साहसपूर्वक यहां ठहरे रहें और लक्ष्मण को सेनासहित हमारे साथ भेजें, हे नरशार्दूल ! यह उस रावणसुत से तीक्ष्ण तीरों द्वारा वह कर्म छुड़ा देंगे तब वह बध योग्य होगा॥

इति एकोनचत्वारिंशः सर्गः

अथ चत्वारिंशः सर्गः

सं०–अब लक्ष्मण की मेघनाद पर चढ़ाई कथन करते हैं:—

ततो धैर्यमवष्टभ्य रामः परपुरञ्जयः।
विभीषणमुपासीनमुवाच कपि सन्निधौ॥ १ ॥
नैर्ऋताधिपते वाक्यं यदुक्तं ते विभीषण !
भूयस्तच्छ्रोतुमिच्छामि ब्रूहि यत्ते विवक्षितम् ॥२॥

अर्थ–तदनन्तर धैर्य्य धारण कर शत्रुओं के दुर्गविजयी राम ने हनुमान् के सन्मुख समीपस्थित विभीषण से कहा कि हे राक्षसाधिपते ! जो वाक्य आपने कहा है वह मैं फिर सुनना चाहता हूं आप अपना अभीष्ट कहें॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा बभाषेऽथ विभीषणः।
तथाज्ञप्तं महाबाहो त्वया गुल्म निवेशनम्॥ ३ ॥
तत्तथानुष्ठितं वीर त्वद्वाक्यसमनन्तरम्।
तान्यनीकानि सर्वाणि विभक्तानि समन्ततः ॥४॥

विन्यस्ता यूथपाश्चैव यथान्यायं विभागशः ।
भूयस्तु मम विज्ञाप्यं तच्छृणुष्व महाप्रभो ॥ ५ ॥

अर्थ—राघव के उक्त बचन सुनकर विभीषण बोला कि हे महाबाहो ! जैसे आपने मोर्चाबन्दी की आज्ञा दी थी वह आपके कथनानुसार वैसे ही करके सारी सेनायें चारो ओर विभक्त करदी हैं और सब सेनापति भी पृथक् २ अपने २ स्थान पर नियत कर दिये हैं, हे महाप्रभो ! अब आप मेरी एक और विनती सुनें ॥

त्यज राजन्निमं शोक मिथ्यासन्तापमागतम् ।
यदिदं त्यजतां चिन्ता शत्रुहर्षविवर्धिनी ॥६॥
उद्यमः क्रियतां वीर हर्षः समुपसेव्यताम् ।
प्राप्तव्या यदि ते सीता हन्तव्याश्च निशाचराः॥७॥
साध्वयं यातु सौमित्रिर्बलेन महतावृतः ।
निकुम्भिलायां संप्राप्तं हन्तुं रावणिमाहवे ॥८॥

अर्थ—हे राजन् ! आप इस शोक को सागें जो मिथ्या सन्ताप आया है, शत्रुओं के हर्ष को बढ़ाने वाली इस चिन्ता को छोड़ दीजिये, हे वीर ! यदि सीता को पाना तथा राक्षसों का वध करना है तो उद्यम कीजिये और हर्षपूर्वक रहिये, यह लक्ष्मण बड़ी सेना से युक्त होकर निकुम्भिला में पहुंच मेघनाद को हनन करने के लिये उस पर चढ़ाई करें, क्योंकिः—

स एष किल सैन्येन प्राप्तः किल निकुम्भिलाम् ।
यद्युत्तिष्ठत्कृतं कर्म हतान्सर्वांश्च विद्धि नः ॥९॥

अर्थ—वह सेना सहित निकुम्भिला को गया है और यदि वह होम पूर्ण करके उठा तो हम सब को मरा जानिये ॥

वधायेन्द्रजितो राम संदिशस्व महाबलम् ।
हते तस्मिन्हतं विद्धि रावणं स सुहृद्गणम् ॥१०॥

अर्थ—सो हे राम ! "अभिचार होम पूर्ण होने से प्रथम ही" इन्द्रजित् को बध करने के लिये महाबली लक्ष्मण को आज्ञा दीजिये और उसके मरने पर रावण को सुहृद्गणों सहित मरा हुआ ही जानें ॥

विभीषण वचः श्रुत्वा रामो वाक्यमथाब्रवीत् ।
जानामि तस्य रौद्रस्य मायां सत्यपराक्रम ॥११॥
स हि ब्रह्मास्त्रवित्प्राज्ञो महामायो महाबलः ।
करोत्यसंज्ञान्संग्रामे देवान्सवरुणानपि ॥१२॥
तस्यान्तरिक्षे चरतः सरथस्य महायशः ।
नगतिर्ज्ञायते वीर सूर्यस्येवाभ्रसंप्लवे ॥१३॥
राघवस्तु रिपोर्ज्ञात्वा मायावीर्यं दुरात्मनः ।
लक्ष्मणं कीर्तिसम्पन्नमिदं वचनमब्रवीत् ॥१४॥

अर्थ—विभीषण के उक्त बचन सुनकर राम बोले कि हे सत्यपराक्रम ! मैं उस दुष्ट की माया को भलेप्रकार जानता हूं कि वह ब्रह्मास्त्र चलाने में बड़ा निपुण, मायावी तथा बलवान् है और इसी से इन्द्र, वरुणादि देवों को भी मूर्च्छित कर देता है, हे वीर ! जैसे सघन बादल में चलते हुए सूर्य्य की चाल विदित नहीं होती इसी प्रकार रथ पर चढ़े हुए अन्तरिक्ष में इसकी

चाल ज्ञात नहीं होती, इस प्रकार राघव दुरात्मा शत्रु के मायाबल को जानकर कीर्तिसम्पन्न लक्ष्मण से बोले कि:—

हनूमत्प्रमुखैश्चैव यूथपैः सह लक्ष्मणः ।
जाम्बवेनर्क्षपतिना सह सैन्येन संवृतः॥१५॥
जहि तं राक्षससुतं मायाबलसमन्वितम् ।
अयं त्वं सचिवैः सार्धं महात्मारजनीचरः ॥ १६ ॥
अभिज्ञस्तस्य मायानां पृष्ठतोऽनुगमिष्यति ॥१७॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! हनुमान् आदि सेनापति और सेनासहित जाम्बवान् के साथ जाकर उस मायावी रावण के पुत्र मेघनाद को मार, और महात्मा विभीषण जो उसकी माया का जानने वाला है यह अपने मन्त्रियों सहित तेरे पीछे जायगा ॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः स विभीषणः ।
जग्राहकार्मुकश्रेष्ठमन्यद्भीमपराक्रमः ॥ १८ ॥
सोऽभिवाद्य गुरोः पादौ कृत्वा चापि प्रदक्षिणम् ।
निकुम्भिलामभिययौ चैत्यं रावणिपालितम्॥१९॥

अर्थ—राम के उक्त बचन सुनकर विभीषण सहित लक्ष्मण ने भीमपराक्रम के साथ अपना श्रेष्ठ धनुष हाथ में लिया, और गुरु=अपने बड़े भाई के पाओं को प्रणाम तथा उनकी प्रदक्षिणा कर के मेघनाद से रक्षित निकुम्भिला चैत्य को गया ॥

इति चत्वारिंशः सर्गः

अथ एकचत्वारिंशः सर्गः

सं०-अब मेघनाद और हनुमान् का युद्ध कथन करते हैं:—

अथ तस्यामवस्थायां लक्ष्मणं रावणानुजः ।
परेषामहितं वाक्यमर्थसाधकमब्रवीत् ॥१॥
यदेतद्राक्षसानीकं मेघश्यामं विलोक्यते ।
तस्यानीकस्य महतो भेदने यत लक्ष्मणः ॥२॥
राक्षसेन्द्र सुतोऽप्यत्र भिन्नदृश्यो भविष्यति ।
अभिद्रवाशु यावद्धैनैतत्कर्म समाप्यते ॥३॥

अर्थ–तदनन्तर उस अवस्था में रावण के छोटे भाई विभीषण ने शत्रुओं का अहित और अपना अर्थसाधक वाक्य लक्ष्मण से कहा कि हे लक्ष्मण ! यह जो मेघसमान काली राक्षससेना दृष्टिगत होती है इस बड़ी सेना के दल को छिन्नभिन्न करने का यत्न कर, और रावण का पुत्र मेघनाद भी इसके छिन्न भिन्न होने पर ही यहां दिखाई देगा,इस पर बड़ी शीघ्रता से धावा करो जबतक इसका होम समाप्त न होने पावे ॥

विभीषण वचः श्रुत्वा लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
ववर्ष शरवर्षेण राक्षसेन्द्रसुतं प्रति ॥४॥
ऋक्षाः शाखामृगाश्चैव द्रुमप्रवरयोधिनः ।
अभ्यधावन्त सहितास्तदनीकमवस्थितम् ॥५॥

अर्थ–विभीषण के उक्त बचन सुनकर शुभ लक्षणों वाले

लक्ष्मण ने मेघनाद की ओर तीरों की वर्षा प्रारम्भ की और बड़े वृक्षों से युद्ध करने वाले वानर तथा ऋक्षों ने भी सन्मुख खड़ी हुई राक्षससेना पर मिलकर धावा किया ॥

राक्षसाश्चशितैर्बाणैरसिभिः शक्तितोमरैः ।
अभ्यवर्षंत समरे कपिसैन्यजिघांसवः ॥६॥
ससंप्रहारस्तुमुलः संजज्ञे कपिरक्षसाम् ।
शब्देन महता लङ्कां नादयन्वै समन्ततः ॥७॥

अर्थ—तब वानरसेना को मारने के लिये राक्षस लोग तीक्ष्ण खड्ग, शक्ति तथा तोमरादि शस्त्रों की वर्षा करने लगे, बड़े तुमुल शब्द से सारी लङ्का को शब्दित करता हुआ वानर तथा राक्षस सेना का बड़ा घोर युद्ध हुआ ॥

ऋक्षवानरमुख्यैश्च महाकायैर्महाबलैः ।
रक्षसां युध्यमानानां महद्भयमजायत ॥८॥
स्वमनीकं विषण्णं तुं श्रुत्वा शत्रुभिरर्दितम् ।
उदतिष्ठत दुर्धर्षः स कर्मण्यननुष्ठिते ॥९॥

अर्थ—बड़ी देहों वाले तथा बड़े बली ऋक्ष वानरों से युद्ध करते हुए राक्षसों को बड़ा भय उत्पन्न हुआ, तब अपनी सेना का शत्रुसेना से विनाश तथा उसको पीड़ित सुनकर वह दुर्धर्ष इन्द्रजित् अपने होम कर्म को पूर्ण किये बिना ही उठ खड़ा हुआ॥

वृक्षान्धकारान्निर्गम्य जातक्रोधः स रावणिः ।
आरुरोह रथं सज्जं पूर्वयुक्तं सुसंयतम् ॥१०॥

स ददर्श कपिश्रेष्ठमचलोपममिन्द्रजित् ।
सूदमानमसंत्रस्तममित्रान्पवनात्मजम् ॥११॥
स सारथिमुवाचेदं याहि यत्रैष वानरः ।
क्षयमेव हि नः कुर्याद्राक्षसानामुपेक्षितः ॥१२॥

अर्थ—और वृक्षों के अन्धकार से निकलकर उत्पन्न हुए क्रोधवाला मेघनाद पहले ही जुतकर खड़े हुए सजे रथ पर आरूढ़ हुआ, तब मेघनाद ने पर्वतसमान देह वाले तथा निर्भय होकर शत्रुओं का हनन करते हुए हनुमान् को देखा ॥

इत्युक्तः सारथिस्तेन ययौ यत्र स मारुतिः ।
वहन्परमदुर्धर्षं स्थितमिन्द्रजितं रणे ॥१३॥
सोऽभ्युपेत्य खरान्खड्गान्पट्टिशासिपरश्वधान् ।
अभ्यवर्षत दुर्घर्षः कपिमूर्धनि राक्षसः ॥१४॥
तानि शस्त्राणि घोराणि प्रतिगृह्य स मारुतिः ।
रोषेण महताविष्टो वाक्यं चेदमुवाच ह ॥१५॥

अर्थ—और उसने सारथि से कहा कि इस वानर के समीप रथ लेचल यदि इसकी उपेक्षा की जायगी तो यह राक्षस सेना का क्षय ही कर डालेगा, रथ पर स्थित सारथि से जब मेघनाद ने उक्त प्रकार कहा तब वह परमदुर्धर्ष मेघनाद को लेकर वहां पहुंचा जहां पवनपुत्र हनुमान् था, तदनन्तर सन्मुख स्थित हो वह दुर्धर्ष मेघनाद हनुमान् के मस्तक पर बाण, खड्ग, पट्टिश,

तलवार और कुल्हाड़ों की वर्षा करने लगा, तब उन भयङ्कर शस्त्रों को रोककर वह पवनपुत्र बड़े क्रोध से भरा हुआ यह वाक्य बोला कि:—

युध्यस्व यादि शूरोऽसि रावणात्मज दुर्मते ।
वायुपुत्रं समासाद्य न जीवन्प्रतियास्यसि ॥१६॥
बाहुभ्यां संप्रयुध्यस्व यदि मे द्वन्द्वमाहवे ।
वेगं सहस्व दुर्बुद्धे ततस्त्वं रक्षसांवरः ॥१७॥
हनूमन्तं जिघांसन्तं समुद्यत शरासनम् ।
रावणात्मजमाचष्ट लक्ष्मणाय विभीषणः ॥१८॥

अर्थ—हे रावणसुत ! हे दुर्मते मेघनाद ! यदि तू सूरमा है तो युद्ध कर, पवनपुत्र को मिलकर अब तू जीवित नहीं लौटेगा, यदि रण में भुजाओं से मेरे साथ द्वन्द्वयुद्ध करके मेरे वेग को सहारे तब मैं तुझे राक्षसों में श्रेष्ठ जानूं, तदनन्तर धनुष उठाकर हनुमान् को मारना चाहते हुए मेघनाद को देखकर विभीषण ने लक्ष्मण को कहा कि:—

यः स वासवनिर्जेता रावणस्यात्मसम्भवः ।
स एष रथमास्थाय हनूमन्तं जिघांसति ॥१९॥
तमप्रातिमसंस्थानैः शरैः शत्रुनिवारणैः ।
जीवितान्तकरैर्घोरैः सौमित्रे रावणिं जहि ॥२०॥

अर्थ—इन्द्र के जीतने वाला यह रावणसुत मेघनाद है जो रथपर चढ़कर हनुमान् को मारना चाहता है, सो हे लक्ष्मण ! तू इस रावणसुत का शत्रुओं के रोकने वाले तथा जीवन का अन्त करने वाले अपने अनुपम बाणों से हनन कर ॥

इति एकचत्वारिंशः सर्गः

अथ द्विचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब मेघनाद और विभीषण का वार्त्तालाप कथन करते हैंः—

एवमुक्त्वा तु सौमित्रिं जातहर्षोविभीषणः ।
धनुष्पाणिं तमादाय त्वरमाणो जगाम सः ॥१॥

अविदूरं ततो गत्वा प्रविश्य तु महद्वनम् ।
अदर्शयत तत्कर्म लक्ष्मणाय विभीषणः ॥२॥

नीलजीमूतसंकाशं न्यग्रोधं भीमदर्शनम् ।
तेजस्वी रावणभ्राता लक्ष्मणाय न्यवेदयत् ॥३॥

इहोपहारं भूतानां बलवान्रावणात्मजः ।
उपहृत्य ततः पश्चात् संग्राममभिवर्तते ॥४॥

अर्थ—उक्त प्रकार कहकर उत्पन्न हुए हर्ष वाला विभीषण धनुष हाथ में लिये हुए लक्ष्मण को लेकर शीघ्र ही उधर गया, और थोड़ी दूर जाकर बड़े वन में प्रविष्ट हो विभीषण ने लक्ष्मण को वह कर्म दिखलाया, प्रथम तेजस्वी विभीषण ने भयङ्कर दर्शन वाला नील मेघतुल्य एक बड़ का वृक्ष लक्ष्मण को दिखलाकर कहा कि यहां बलवान् मेघनाद भूतबलि करके पश्चात संग्राम पर चढ़ता है ॥

अदृश्यः सर्वभूतानां ततो भवति राक्षसः ।
निहन्ति समरे शत्रून्बध्नाति च शरोत्तमैः ॥५॥

तमप्रविष्टं न्यग्रोधं बलिनं रावणात्मजम् ।
विध्वंसय शरैर्दीप्तैः सरथं साश्वसारथिम् ॥६॥
तथेत्युक्त्वा महातेजाः सौमित्रिर्मित्रनन्दनः ।
बभूवावस्थितस्तत्र चित्रं विस्फारयन्धनुः ॥७॥

अर्थ–तब यह राक्षस सब लोगों की दृष्टि से अदृश्य होकर युद्ध में शत्रुओं को उत्तम बाणों से मारता तथा बांधता है, सो इस बड़ से दूर स्थित उस बली मेघनाद का अपने जलते हुए बाणों से रथ, सारथि तथा घोड़ों सहित विध्वंस कर, विभीषण का उक्त कथन सुन तथास्तु कहकर मित्रों का आनन्द बढ़ाने वाला लक्ष्मण विचित्र धनुष को टङ्कारता हुआ वहीं बड़ के द्वार पर डट गया ॥

स रथेनाग्निवर्णेन बलवान्रावणात्मजः ।
इन्द्रजित्कवची खड्गी सध्वजः प्रत्यदृश्यत ॥८॥
तमुवाच महातेजाः पौलस्त्यमपराजितम् ।
समाह्वये त्वां समरे सम्यग्युद्धं प्रयच्छ मे ॥९॥
एवमुक्तो महातेजाः मनस्वी रावणात्मजः ।
अब्रवीत्परुषं वाक्यं तत्र दृष्ट्वा विभीषणम् ॥१०॥

अर्थ–तदनन्तर बलवान् रावणसुत मेघनाद कवच पहने, खड्ग धारण किये और ध्वजा सहित अग्निबाण लिये पीछे देखा गया अर्थात् लक्ष्मण के धनुष की टंकार सुनकर पीछे लौटा, तब महातेजस्वी लक्ष्मण पहले कभी न हारे हुए मेघनाद से बोला कि

मैं तुझे युद्ध में आह्वान करता हूं तू मुझे भली भांति युद्ध दे, इस प्रकार कहा हुआ महातेजस्वी तथा मनस्वी मेघनाद वहां विभीषण को देखकर बड़ा कठोर वाक्य बोला कि :—

इह त्वं जातसंवृद्धः साक्षाद्भ्राता पितुर्मम ।
कथं द्रुह्यसि पुत्रस्य पितृव्यो मम राक्षस ॥११॥
न जातित्वं न सौहार्दं न जातिस्तव दुर्मते ।
प्रमाणं नच सौदर्यं न धर्मो धर्मदूषण ॥१२॥
शोच्यस्त्वमसि दुर्बुद्धे निन्दनीयश्च साधुभिः ।
यस्त्वं स्वजनमुत्सृज्य परभृत्यत्वमागतः ॥१३॥

अर्थ—हे राक्षस ! यहां तू जन्म लेकर बड़ा हुआ, मेरे पिता का साक्षात भ्राता तथा मेरा चचा होकर कैसे द्रोह करता है, हे दुर्मते ! न जन्म,न सौहार्द, न जात्याभिमान तुझे प्रमाण है और हे धर्मदूषक ! सगे भाई होने तथा धर्म का भी तुझे कुछ विचार नहीं, हे दुर्बुद्धे ! तू शोचनीय तथा साधुओं से निन्दित है जो अपने जन को छोड़कर शत्रु का भृत्य बना है ॥

नैतच्छिथिलया बुध्या त्वं वेत्सि महदन्तरम् ।
क्व च स्वजनसंवासः क्व च नीच पराश्रयः ॥१४॥
गुणवान्वा परजनः स्वजनो निर्गुणोऽपि वा ।
निर्गुणः स्वजनः श्रेयान्ः यः परः परएव सः॥१५॥
यः स्वपक्षं परित्यज्य परपक्ष निषेवते ।
स स्वपक्षे क्षयं याते पश्चात्तैरेव हन्यते॥१६॥

अर्थ–तू अपनी शिथिल बुद्धि से इस बड़े भेद को नहीं देखता है, कहां अपने जनों में वास और कहां नीच पराश्रय अर्थात् दूसरे का आश्रय लिये हुए है, परजन गुणवान् तथा स्वजन निर्गुण भी हो तो वह निर्गुण अपना जन श्रेष्ठ है और जो दूसरा है वह तो दूसरा ही है उससे क्या आशा, जो अपने पक्ष को छोड़कर दूसरे पक्ष को सेवन करता है वह अपने पक्ष के नाश होने पर पीछे उन्हीं से मारा जाता है ॥

इत्युक्ते भ्रातृपुत्रेण प्रत्युवाच विभीषणः ।
अजानन्निव मच्छीलं किं राक्षस विकत्थसे ॥१७॥

अर्थ–भाई रावण के पुत्र मेघनाद ने जब उक्त प्रकार कहा तब विभीषण ने उत्तर दिया कि हे राक्षस ! मेरे शील को न जानते हुए की भांति क्या तू अपनी श्लाघा करता है ॥

धर्मात्प्रच्युतशीलं हि पुरुषं पापनिश्चयम् ।
त्यक्त्वा सुखमवाप्नोति हस्तादाशीविषं यथा ॥१८॥
परस्वहरणे युक्तं परदाराभिमर्शकम् ।
त्याज्यमाहुर्दुरात्मानं वेश्मप्रज्वलितं यथा ॥१९॥
परस्वानां च हरणं परदाराभिमर्शनम् ।
सुहृदामतिशङ्का च त्रयो दोषाः क्षयावहाः ॥२०॥

अर्थ–धर्म से च्युत शील वाले तथा पाप निश्चय वाले पुरुष को त्यागकर ही सुख मिलता है, जैसे विषधर सर्प को हाथ से छोड़ देने से ही प्राण बचते हैं, परधन तथा परस्त्री हरण में तत्पर

दुरात्मा को आग लगे घर की भांति छोड़ देना चाहिये, परधन हरण, परस्त्री को दबाना और सुहृदों पर अति शङ्का करना यह तीनों दोष नाश करने वाले हैं ॥

महर्षीणां वधो घोरः सर्वदेवैश्चविग्रहः ।
अभिमानश्च रोषश्च वैरत्वं प्रतिकूलता ॥ २१ ॥
एते दोषा मम भ्रातुर्जीवितैश्वर्यनाशनाः ।
गुणान्प्रच्छादयामासुः पर्वतानिवतोयदाः ॥२२॥
दोषैरेतैः परित्यक्तो मया भ्राता पिता तव ।
नेयमस्ति पुरीलङ्कां नच त्वं नच ते पिता ॥२३॥

अर्थ–और महर्षियों का बध, सब देवताओं से लड़ाई, अभिमान, क्रोध, वैर और सदा ही उलटा चलना, यह दोष मेरे भाई के जीवन तथा ऐश्वर्य्य को नाश करने वाले हैं और इन दोषों ने उनके गुणों को ऐसा आच्छादित करलिया है जैसे मेघपर्वत को ढांप लेते हैं, इन्हीं दोषों के कारण मैंने अपने भाई तेरे पिता का त्याग किया है और उसके इन्हीं दुर्गुणों से न लङ्का रहेगी, न तू और न तेरा पिता जीवित रहेगा ॥

अतिमानश्च बालश्च दुर्विनीतश्च राक्षस ।
बद्धस्त्वं कालपाशेन ब्रूहि मां यद्यदिच्छसि ॥२४॥
प्रवेष्टुं न त्वया शक्यं न्यग्रोधं राक्षसाधम ।
धर्षयित्वा च काकुत्स्थं न शक्यं जीवितुं त्वया॥२५॥

अर्थ–हे राक्षस ! तू अभिमानी, बाल और दुर्विनीत होने के

कारण कालपाश से बंधा हुआ जो दिल चाहे सो कहले, हे राक्षसाधम ! अब तू न इस बड़ के नीचे प्रवेश करसक्ता और लक्ष्मण का निरादर करने के कारण न अब तू जीवित रहसक्ता है ॥

इति द्विचत्वारिंशःसर्गः

अथ त्रिचत्वारिंशःसर्गः

सं०—अब लक्ष्मण से मेघनाद का बध कथन करते हैं :—

विभीषणवचः श्रुत्वा रावणिः क्रोधमूर्च्छितः ।
अब्रवीत्परुषंवाक्यं क्रोधेनाभ्युत्पपात च ॥ १ ॥
उद्यतायुधनिस्त्रिंशोरथेसुसमलंकृते ।
कालाश्वयुक्ते महती स्थितः कालान्तकोपमः ॥२॥
महाप्रमाणमुद्यम्य विपुलं वेगवद्दृढम् ।
धनुर्भीम बलोभीमं शरांश्चामित्रनाशनम् ॥ ३ ॥
तं ददर्श महेष्वासो रथस्थः समलंकृतः ।
अलंकृतममित्रघ्नो रावणस्यात्मजो बली ॥ ४ ॥
ससर्जनिशितान्बाणानिन्द्रजित्समितिंजयः ॥५॥

अर्थ—विभीषण के उक्त बचन सुनकर क्रोध से आकुल हुआ मेघनाद कठोर बचन बोलता हुआ उछल पड़ा, उस समय वह धनुष, तलवार तथा अन्य शस्त्र हाथ में लिये, काले घोड़े जुते हुए सुभूषित रथ पर चढ़ा हुआ कालान्तक के समान प्रतीत होता था,

उस भीम बलवान् ने बड़े वेग से बड़ा धनुष उठा उस पर शत्रु नाशक बाणों को चढ़ाया, तदनन्तर अलङ्कृत रथ पर सवार तथा धनुषधारण किये हुए शत्रुओं के नाशक मेघनाद ने लक्ष्मण को देखा और देखते ही युद्धों का जीतने वाला मेघनाद उस पर बाण छोड़ने लगा ॥

स बभूव महाभीमो नरराक्षससिंहयोः ।
विमर्दस्तुमुलो युद्धे परस्परजयैषिणोः ॥ ६ ॥
उभौ परमदुर्जेयावतुल्यबलतेजसौ ।
युयुधाते महात्मानौ तदा केसरिणाविव ॥ ७ ॥
बहूनवसृजन्तौ हि मार्गणौघानवस्थितौ ।
नरराक्षसमुख्यौ तौ प्रहृष्टावभ्ययुध्यताम् ॥ ८ ॥

अर्थ—तब युद्ध में परस्पर जय की इच्छा वाले नररूप सिंह लक्ष्मण और राक्षस रूप सिंह मेघनाद का बड़ा भयङ्कर तुमुल संघर्ष हुआ, दोनों परम दुर्जेय, अतुल बल, तेज वाले महानात्मा सिंहों के समान युद्ध करने लगे, खड़े होकर अनेक बाणसमूहों को छोड़ते हुए वह मुख्य नर तथा वह मुख्य राक्षस बड़े हर्ष से युद्ध करते थे ॥

तयोरथ महान्कालो व्यतीयाद्युध्यमानयोः ।
नच तौ युद्ध वै मुख्यं श्रमं चाप्यभिजग्मतुः ॥९॥
नह्यादानं न संधानं धनुषो वा परिग्रहः ।
न विप्रमोक्षो बाणानां न विकर्षो न विग्रहः ॥१०॥

न मुष्टिप्रतिसन्धानं न लक्ष्यप्रतिपादनम् ।
अदृश्यत तयोस्तत्र युध्यतोः पाणिलाघवात् ॥११॥
ताभ्यामुभाभ्यां तरसा प्रसृष्टैर्विशिखैः शिखैः ।
निरन्तरमिवाकाशं बभूव तमसावृतम् ॥ १२ ॥

अर्थ—युद्ध करते हुए उन्हें बहुत काल बीतगया पर वह न युद्ध से हटते और न थकते थे, वहां युद्ध करते हुए उन दोनों के हाथ की फुरती से न बाणों का लेना, न जोड़ना, न धनुष का बदलना, न बाणों का छोड़ना, न खींचना, न पृथक् २ करना, न मुष्टी जोड़ना और न एक दूसरे को भेदन करना दृष्टिगत होता था, किन्तु बल से छोड़े हुए उन दोनों के तीक्ष्ण तीरों द्वारा अन्धकार से ढके हुए की भांति आकाश निरवकाश सा प्रतीत होता था ॥

अथ राक्षससिंहस्य कृष्णान्कनकभूषणान् ।
शरैश्चतुर्भिः सौमित्रिर्विव्याध चतुरो हयान् ॥१३॥
ततोऽपरेण भल्लेन सूतस्य विचरिष्यतः ।
लाघवाद्राघवः श्रीमाञ्छिरः कायादपाहरत् ॥१४॥

अर्थ—अन्त में लक्ष्मण ने चार बाणों से सुवर्ण के भूषणों वाले काले सिंह समान मेघनाद के चारो घोड़े बींध दिये, और दूसरे भाले से विचरते हुए सारथी का बड़ी फुरती द्वारा देह से सिर अलग कर दिया ॥

स हताश्वो महातेजा भूमौ तिष्ठन्निशाचरः ।
इन्द्रजित्परमक्रुद्धः संप्रजज्वाल तेजसा ॥ १५ ॥

अर्थ—हत हुए घोड़ों वाला महातेजस्वी इन्द्रजित् भूमि पर स्थित परम क्रुद्ध हुआ क्रोध की अग्नि से जलने लगा ॥

पातयामास बाणौघैः शतशोऽथ सहस्रशः ।
स मण्डलीकृतधनू रावणिः समितिञ्जयः ॥ १६ ॥
ततः समरकोपेन ज्वलितो रघुनन्दनः ।
चिच्छेद कार्मुकं तस्य दर्शयन्पाणिलाघवम् ॥१७॥
सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सज्जंचक्रे त्वरन्निव ।
तदप्यस्य त्रिभिर्बाणैर्लक्ष्मणोनिरकृन्तत ॥ १८ ॥

अर्थ—तदनन्तर युद्धों का जीतने वाला रावणसुत इन्द्रजित् क्रुद्ध हुआ धनुष को खींच गोल करके बड़ी आतुरता से बानरों का हनन करने लगा, तब युद्ध के कोप से जलते हुए लक्ष्मण ने हाथ की लाघवता से उसका धनुष तोड़ डाला, फिर मेघनाद ने बड़ी शीघ्रता से दूसरा तैयार धरा हुआ धनुष उठा लिया और लक्ष्मण ने वह भी तीन बाणों से तोड़ डाला ॥

ततः क्रुद्धो महातेजा इन्द्रजित्समितिंजयः ।
आग्नेयं संदधे दीप्तं सलोकं संक्षिपन्निव ॥ १९ ॥
सौर्येणास्त्रेण तं वीरो लक्ष्मणः पर्यवारयत् ।
अस्त्रं निवारितं दृष्ट्वा रावणिः क्रोधमूर्छितः ॥ २० ॥
आददे निशितं बाणमासुरं शत्रुदारणम् ।
माहेश्वरेण द्युतिमांस्तदस्त्रं प्रत्यवारयत् ॥ २१ ॥

अर्थ—तदनन्तर युद्ध के जीतने वाले महातेजस्वी इन्द्रजित् ने मानो सब लोकों का संहार करने वाला आग्नेय अस्त्र जोड़ा,

और बीर लक्ष्मण ने उसका सौर्य अस्त्र से हटा दिया, उस अपने अस्त्र को हटा हुआ देखकर क्रोध से मूर्च्छित हुए इन्द्राजित ने शत्रुओं को विदीर्ण करने वाला तीक्ष्ण आसुर बाण लिया, और तेजस्वी लक्ष्मण ने उसको भी माहेश्वर अस्त्र से रोक दिया ॥

अथैन्द्रमस्त्रं सौमित्रिः संयुगेष्वपराजितम् ।
शरश्रेष्ठं धनुः श्रेष्ठे विकर्षन्निदमब्रवीत् ॥ २२ ॥
धर्मात्मा सत्यसंधश्च रामो दाशरथिर्यदि ।
पौरुषे चाप्रतिद्वन्द्वस्तदैनं जहि रावणिम् ॥२३॥

अर्थ—अब युद्ध में अपराजित लक्ष्मण अपने उत्तम बाण ऐन्द्र अस्त्र को श्रेष्ठ धनुष में लगा खींचकर बोला कि दशरथसुत राम यदि आप धर्ममूर्ति, सत्यप्रतिज्ञ और युद्ध में अप्रतिद्वन्द्व हैं तो इस रावणसुत इन्द्राजित को मारें ॥

इत्युक्त्वा बाणमाकर्णं विकृष्य तमजिह्मगम् ।
लक्ष्मणः समरे वीरः ससर्जेन्द्रजितंप्रति ॥२४॥
तच्छिरः सशिरस्त्राणं श्रीमज्ज्वलितकुण्डलम् ।
प्रमथ्येन्द्रजितः कायात्पातयामास भूतले ॥२५॥

अर्थ—यह कह उस सीधा जाने वाले बाण को कान तक खींचकर बीर लक्ष्मण ने युद्ध में इन्द्राजित के प्रति छोड़ा, और उस बाण ने देदीप्यमान कुण्डलों वाले शोभायुक्त इन्द्राजित के सिर को मुकुटसहित उसके देह से अलग कर पृथिवी पर गिरा दिया ॥

तद्राक्षसतनूजस्यभिन्नस्कंधं शिरोमहत् ।
तपनीयनिभंभूमौ ददृशेरुधिरोक्षितम् ॥ २६ ॥
हतः स निपपाताथ धरण्यां रावणात्मजः ।
कवची स शिरस्त्राणो विप्रविद्धशरासनः ॥२७॥
चुक्रुशुस्ते ततः सर्वे वानराः सविभीषणः ।
हृष्यन्ते निहते तस्मिन्देवा वृत्रवधे यथा ॥२८॥

अर्थ—वह रावणसुत मेघनाद का गिरा हुआ बड़ा सिर रुधिर से भीगा हुआ तपे सुवर्ण के समान भूमि में दृष्टिगत होने लगा, और शिर गिरने के अनन्तर कवच पहने हुए तथा टूटा धनुष हाथ में लिये हुए मेघनाद का धड़ भी भूमि पर गिरगया, मेघनाद के मरने पर विभीषण सहित सब वानर हर्षित हुए, जैसे वृत्रासुर के वध समय सब देवता लोग प्रसन्न हुए थे ॥

दुद्रुवुर्बहुधा भीता राक्षसाः शतशो दिशः ।
त्यक्त्वा प्रहरणान्सर्वे पट्टिशासिपरश्वधान् ॥२९॥
यथास्तंगत आदित्ये नावतिष्ठन्ति रश्मयः ।
तथा तस्मिन्निपतिते राक्षसास्ते गतादिशः ॥३०॥
विभीषणो हनूमांश्च जाम्बवांश्चर्क्षयूथपः ।
विजयेनाभिनन्दतस्तुष्टुवुश्चापि लक्ष्मणम् ॥३१॥

अर्थ—और सब राक्षस लोग भयभीत हो अपने पट्टिश, तलवार तथा कुलहाड़ों को छोड़कर दिशाओं को भाग गये, जैसे सूर्य्य के अस्त होने पर रश्मियें नहीं ठहरतीं वैसे ही मेघनाद के

गिरने पर राक्षस लोग सब दिशाओं को गमन कर गये, और विभीषण, हनुमान् तथा ऋक्षों की सेना के सेनापति जाम्बवान् इस विजय से अति आनन्दित हो लक्ष्मण की स्तुति करने लगे ॥

इति त्रिचत्वारिंशः सर्गः

अथ चतुश्चत्वारिंशःसर्गः

सं०-अब इन्द्रजित् को जीतकर लक्ष्मण का राम के समीप जाना कथन करते हैं :—

रुधिरक्लिन्नगात्रस्तु लक्ष्मणः शुभलक्षणः ।
बभूव हृष्टस्तं हत्वा शत्रुजेतारमाहवे ॥१॥
आजगाम ततः शीघ्रं यत्र सुग्रीवराघवौ ।
विभीषणमवष्टभ्य हनूमन्तं च लक्ष्मणः ॥२॥

अर्थ-रुधिर से लिपटे हुए अंगों वाला तथा शुभलक्षण-सम्पन्न लक्ष्मण उस शत्रुओं के जीतनेवाले इन्द्रजित् को युद्ध में हनन कर प्रसन्नतापूर्वक विभीषण तथा हनुमान् को साथ लिये हुए शीघ्र ही वहां आया जहां सुग्रीव सहित राम थे ॥

रावणेस्तु शिरश्छिन्नं लक्ष्मणेन महात्मना ।
न्यवेदयत रामाय तदा हृष्टो विभीषणः॥३॥

अर्थ-तदनन्तर प्रसन्न हुए विभीषण ने महात्मा लक्ष्मण के हाथ से कटा हुआ मेघनाद का सिर राम को आकर दिया ॥

श्रुत्वैव तु महावीर्यो लक्ष्मणेन्द्रजिद्वधम् ।
प्रहर्षमतुलंलेभे वाक्यं चेदमुवाच ह ॥४॥
साधुलक्ष्मणतुष्टोस्मिकर्मचासुकरंकृतम् ।
रावणेर्हि विनाशेन जितमित्युपधारय ॥५॥

अर्थ—लक्ष्मण के हाथ से मेघनाद का वध सुन महावीर्य्य राम अतिप्रसन्न होकर बोले कि मैं तुमारे इस उत्तम कर्म से बहुत सन्तुष्ट हुआ इसके मारे जाने से अब रावण को जीता हुआ ही समझो ॥

उपवेश्य तमुत्संगे परिष्वज्यावपीडितम् ।
भ्रातरं लक्ष्मणं स्निग्धं पुनः पुनरुदैक्षत ॥६॥
मूर्ध्निचैनमुपाघ्राय भूयः संस्पृश्य च त्वरन् ।
उवाच लक्ष्मणं वाक्यमाश्वास्यपुरुषर्षभः ॥७॥

अर्थ—फिर लक्ष्मण को गोद में बिठाल भलेप्रकार आलिङ्गन करके उस प्यारे भाई लक्ष्मण को बार २ देखा, और माथे पर चूमकर पुनः आलिङ्गन करके उसको आश्वासन देते हुए राम यह वाक्य बोले किः—

कृतं परमकल्याणं कर्म दुष्करकर्मणा ।
अद्य मन्ये हते पुत्रे रावणं निहतं युधि ॥८॥
छिन्नो हि दक्षिणो बाहुः स हि तस्य व्यपाश्रयः ।
विभीषणहनूमद्भ्यां कृतं कर्म महद्रणे ॥९॥

अर्थ—तैने बड़ा दुष्कर काम करते हुए परम कल्याणयुक्त

कार्य्य किया है, पुत्र के मारे जाने पर अब मैं मानता हूं कि रावण को भी युद्ध में मरा हुआ ही जान, तैने उसकी दाईं भुजा काट डाली है, क्योंकि यह उसका बड़ा सहारा था, और विभीषण तथा हनुमान् ने भी रण में तेरे साथ बड़ा काम किया है ॥

बलव्यूहेन महता निर्यास्यति हि रावणः ।
बलव्यूहेन महता श्रुत्वा पुत्रं निपातितम् ॥१०॥
तं पुत्रवधसन्तप्तं निर्यान्तं राक्षसाधिपम् ।
बलेनावृत्य महता निहनिष्यामि दुर्जयम् ॥११॥
स तं भ्रातरमाश्वास्य परिष्वज्य च राघवः ।
रामं सुषेणं मुदितः समाभाष्येदमब्रवीत् ॥१२॥

अर्थ–अब बड़े सेनासमूह सहित पुत्र को मरा हुआ सुनकर रावण अपनी बहुत बड़ी सेना लेकर युद्ध के लिये निकलेगा, सो पुत्रवध से संतप्त हुए बड़ी सेना के साथ रणभूमि में आये हुए उस दुर्जय राक्षसाधिपति का अब मैं हनन करूंगा, इस प्रकार राम भाई लक्ष्मण को आश्वासन देते हुए गले लगाकर मुदित हुए और सुषेण को सम्बोधित करके बोले कि:—

विशल्योऽयं महाप्राज्ञः सौमित्रिर्मित्रवत्सलः ।
यथा भवति सुस्वस्थस्तथा त्वं समुदाचर ॥१३॥
एवमुक्तः रामेण महात्मा हरियूथपः ।
लक्ष्मणाय ददौ नस्तः सुषेण परमौषधम् ॥१४॥

अर्थ–इस मित्रों के प्यारे महाप्राज्ञ लक्ष्मण को शल्यरहित

कर अर्थात् इसके देह में से सब तीर आदि निकालकर जिसप्रकार यह पूर्ण स्वस्थ हो वैसा तुम यत्न करो, महात्मा राम के उक्त बचन सुनकर सेनापति सुषेण ने लक्ष्मण की नासिका में उत्तम औषध लगाई ॥

स तस्य गन्धमाघ्राय विशल्यः समपद्यत ।
तदा निर्वेदनश्चैव संरुद्ध प्राण एव च ॥१५॥
विभीषण मुखानां च सुहृदां राघवाज्ञया ।
सर्ववानरमुख्यानां चिकित्सामकरोत्तदा ॥१६॥

अर्थ—तब वह उस औषध के गन्ध को सूंघ शल्यरहित हुआ दुःख से मुक्त होकर फिर पूर्ववत् स्वस्थ होगया, पुनः राम की आज्ञा से सुहृद् विभीषण और अन्य सब मुख्य वानरों की चिकित्सा करने में प्रवृत्त हुआ ॥

इति चतुश्चत्वारिंशः सर्गः

अथ पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

सं०—अब मेघनाद का बध सुनकर रावण का विलाप तथा क्रोध कथन करते हैं:—

ततः पौलस्त्यसचिवाः श्रुत्वा चेन्द्रजितोवधम् ।
आचचक्षुरभिज्ञाय दशग्रीवाय सत्वराः ॥१॥
युद्धे हतो महाराज लक्ष्मणेन तवात्मजः ।
विभीषण सहायेनमिषतां नो महाद्युतिः ॥२॥

शूरः शूरेण संगम्य संयुगेष्वपराजितः ।
लक्ष्मणेन हतः शूरः पुत्रस्ते विबुधेन्द्रजित् ॥३॥

अर्थ-तदनन्तर रावण के दूतों ने इन्द्रजित का वध सुन और भले प्रकार निश्चय करके रावण को बतलाया कि हे महाराज! विभीषण की सहायता द्वारा लक्ष्मण ने समर में आपके द्युतिमान् पुत्र मेघनाद का वध कर डाला है, समर में किसी से पराजित न होने वाला तथा देवताओं का जीतने वाला शूर इन्द्रजित शूरबीर लक्ष्मण के साथ युद्ध करता हुआ उससे समर में हत होगया है ॥

स तं प्रतिभयं श्रुत्वा वधं पुत्रस्य दारुणम् ।
घोरमिन्द्रजितः संख्ये कश्मलं प्राविशन्महत् ॥४॥
उपलभ्य चिरात्संज्ञां राजा राक्षसपुंगवः ।
पुत्रशोकाकुलो दीनो विललापाकुलेन्द्रियः ॥५॥

अर्थ-तब युद्ध में पुत्र इन्द्रजित के घोर वधरूप भय को सुनकर रावण अति शोक को प्राप्त हो मूर्च्छित होगया, फिर कुछ काल पश्चात सचेत हो पुत्रशोक से घबराया हुआ राजा व्याकुल इन्द्रियों वाला तथा दीन हुआ२ विलाप करने लगा किः-

हा राक्षस चमूमुख्य मम वत्स महारथ ।
जित्वेन्द्रंकथमद्यत्वं लक्ष्मणस्य वशंगत ॥६॥
यौवराज्यं च लङ्कां च रक्षांसि च परंतप ।
मातरं मां च भार्याश्च क गतोसि विहाय नः ॥७॥

अर्थ—हा राक्षस !! हा सेनाओं के मुख्य महारथ !! हा मेरे वत्स !! समर में इन्द्र को जीत आज युद्ध में लक्ष्मण के हाथ से कैसे परलोक सिधारा, हे शत्रुओं को सन्तप्त करनेवाले मेरे पुत्र !! तू यौवराज्य, लंका, सब राक्षस, अपनी माता, भार्या और मुझको छोड़ कहां चला गया ॥

ममनामत्वया वीर गतस्य यमसादनम् ।
प्रेतकार्याणि कार्याणि विपरीते हि वर्तसे ॥ ८ ॥
स त्वं जीवति सुग्रीवे लक्ष्मणेन च राघवे ।
मम शल्यमनुद्धृत्य क्वगतोसि विहाय नः ॥९॥
एवमादि विलापार्तं रावणं राक्षसाधिपम् ।
आविवेश महान्कोपः पुत्रव्यसनसंभवः ॥ १० ॥

अर्थ—हे वीर ! जब मैं यमपुर को चलाजाता तब तुम मेरे सब प्रेतकार्य्य करते परन्तु तुमने विपरीत किया जो मुझसे प्रथम ही चल बसे, हे पुत्र ! सुग्रीव, लक्ष्मण तथा राम के जीवित रहते ही मेरे हृदय में गड़े हुए बाणरूप इन लोगों को बिना उखाड़े ही मुझे छोड़ कहां चलागया, इत्यादि विलाप करते हुए पुत्रशोक से अति पीड़ित रावण ने महान् कोप किया ॥

प्रकृत्या कोपनं ह्येनं पुत्रस्य पुनराधयः ।
दीप्तं संदीपयामासुर्घर्मेर्कमिव रश्मयः ॥ ११ ॥
तस्य प्रकृत्या रक्ते च रक्ते क्रोधाग्निनापि च ।
रावणस्य महाघोरे दीप्ते नेत्रे बभूवतुः ॥ १२ ॥

अर्थ—स्वभाव से ही क्रोधी रावण को पुत्र की पीड़ायें जलते

हुए को और जलाने लगीं, जैसे ग्रीष्मऋतु में सूर्य्य की किरणों अधिक तपाती हैं, स्वभाव से ही रावण के लालनेत्र क्रोधाग्नि से और भी लाल हुए भयङ्कर हो जलने लगे ॥

स पुत्रवधसन्तप्तः क्रूरः क्रोधवशंगतः ।
समीक्ष्य रावणे बुद्ध्या सीतां हन्तुं व्यवस्यत॥१३॥
प्रत्यवेक्ष्य तु ताम्राक्षः सुघोरो घोरदर्शनः ।
दीनो दीनस्वरान्सर्वांस्तानुवाच निशाचरान्॥१४॥
मायया मम वत्सेन बञ्चनार्थं वनौकसाम् ।
किंचिदेव हतं तत्र सीतेयमिति दर्शितम् ॥१५॥
तदिदं तथ्यमेवाहं करिष्ये प्रियमात्मनः ।
वैदेहीं नाशयिष्यामि क्षत्रबन्धुमनुव्रताम् ॥१६॥

अर्थ–पुत्रबध से सन्तप्त हो क्रोधवश हुए क्रूर रावण ने बुद्धि से सोचकर सीता के मारने का विचार किया, वह लाल नेत्रों वाला, घोर दृष्टि वाला तथा अति दुःखी रावण उन दीनस्वर वाले राक्षसों को देखकर बोला कि मेरे पुत्र इन्द्रजित ने माया से वानरों को यह कहते हुए कि "यह सीता है" इस प्रकार दिखलाकर रणक्षेत्र में किसी का बध किया था, सो मैं उसको सत्य करके दिखलाउंगा, सीता का मारना मुझे प्रिय है जो क्षत्रियों में नीच राम में मन लगाये हुए है ॥

इत्येवमुक्त्वा सचिवान् खड्गमाशु परामृशत् ।
निष्पपात स वेगेन सहसा यत्र मैथिली ॥१७॥

मैथिली रक्ष्यमाणा तु राक्षसीभिरनिन्दिता ।
ददर्श राक्षसं क्रुद्धं निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥ १८ ॥

अर्थ—इस प्रकार मन्त्रियों से कह शीघ्र ही तलवार हाथ में लेकर बड़े वेग से वहां आया जहां सीता थी, राक्षसियों से रक्षा कीहुई दुःखी सीता ने तीक्ष्ण तलवार लिये क्रोध से भरे हुए रावण को देखा ॥

सीता दुःखसमाविष्टा विलपन्तीदमब्रवीत् ।
यथायं मामभिक्रुद्धः समभिद्रवति स्वयम् ॥ १९ ॥
वधिष्यति सनाथां मामनाथामिव दुर्मतिः ।
एतस्मिन्नन्तरे तस्य अमात्यः शीलवाञ्छुचिः॥२०॥
सुपार्श्वो नाम मेधावी रावणं रक्षसां वरम् ।
निवार्यमाणः सचिवैरिदं वचनमब्रवीत् ॥ २१ ॥

अर्थ—तब दुःख से आकुल विलाप करती हुई सीता बोली कि जिस चाल से यह क्रुद्ध हुआ स्वयं मेरी ओर दौड़ा आरहा है इससे विदित होता है कि यह दुर्मति मुझ सनाथा को अवश्य अनाथा की भांति मारेगा, इसी अवसर में उसका शीलवान्, शुचि तथा बुद्धिमान् मन्त्री सुपार्श्व अन्य मन्त्रियों से रोका हुआ भी रावण से बोला कि :—

कथं नाम दशग्रीव साक्षाद्वैश्रवणानुज ।
हन्तुमिच्छसि वैदेहीं क्रोधाद्धर्ममपास्य च ॥२२॥

वेदविद्याव्रतस्नातः स्वकर्मनिरतस्तदा ।
स्त्रियः कस्माद्वधं वीर मन्यसे राक्षसेश्वरः ॥२३॥

अर्थ—हे राजन् ! आप कुबेर के साक्षात् भाई होकर कैसे क्रोध से धर्म छोड़ सीता का हनन करना चाहते हैं, हे वीर राक्षसेश्वर ! वेदविद्या, ब्रह्मचर्य्य व्रत में स्नातक तथा अपने कर्म में रत आप कैसे स्त्रीवध मानते अर्थात् उचित समझते हैं ॥

मैथिलीं रूपसम्पन्नां प्रत्यवेक्षस्व पार्थिव ।
तस्मिन्नेव सहास्माभिराहवे क्रोधमुत्सृज ॥२४॥
अभ्युत्थानं त्वमद्यैव कृष्णपक्षचतुर्दशी ।
कृत्वा निर्याह्यमावास्यां विजयाय बलैर्वृतः ॥२५॥
शूरोधीमान्रथीखड्गी रथप्रवरमास्थितः ।
हत्वा दाशरथिं भीमं भवान्प्राप्स्यति मैथिलीम् ॥२६॥

अर्थ—हे राजन् ! इस रूपसम्पन्न मैथिली को आप रक्षा से रखें और अपना क्रोध हमारे साथ युद्ध में चलकर उसी राघव पर निकालें, आज कृष्णपक्ष की चतुर्दशी है सो आज ही तैयारी करके कल अमावस्या में सेनासहित विजय के लिये चढ़ाई करें, आप शूरवीर तथा धीमान् हैं सो खड्ग धारण कर श्रेष्ठ रथ पर सवार हो समर में जायं, वहां आप भयप्रद राम को मारकर अवश्य सीता को प्राप्त होंगे ॥

स तद्दुरात्मा सुहृदा निवेदितं वचः सुधर्म्यं
प्रतिगृह्य रावणः । गृहं जगामाथ ततश्च
वीर्यवान्पुनः सभां च प्रययौ सुहृद्वृतः ॥२७॥

अर्थ–तदनन्तर वह दुरात्मा रावण सुहृद् द्वारा कथन किये हुए धर्मयुक्त वचन को स्वीकार कर घर आया और पश्चात् सुहृदों सहित राजसभा में गया ॥

इति पञ्चचत्वारिंशः सर्गः

अथ षट्चत्वारिंशः सर्गः

सं०–अब राम, रावण का घोरयुद्ध कथन करते हुए रावण के शक्तिबाण से लक्ष्मण का मूर्च्छित होना वर्णन करते हैं :—

स प्रविश्य सभां राजा दीनः परमदुःखितः ।
विषसादासने मुख्ये सिंहः क्रुद्ध इव श्वसन् ॥ १ ॥
अब्रवीच्च स तान्सर्वान्बलमुख्यान्महाबलः ।
सर्वे भवन्तः सर्वेण हस्त्यश्वेन समावृताः ॥ २ ॥
निर्यात रथसङ्घैश्च प्रावृट्काल इवाम्बुदाः ।
भवद्भिः श्वो निहन्तास्मि रामं लोकस्य पश्यतः॥३॥

अर्थ–वह राजा रावण दीन तथा परमदुःखित हुआ राजसभा में आया और क्रुद्ध हुए सिंह की भांति गहरी सांस लेता हुआ अपने मुख्य आसन पर बैठ गया, और बैठकर वह महाबली उन सब सेनापतियों से बोलाकि तुम सब सम्पूर्ण हाथी, घोड़े और रथसमूहों से युक्त होकर इस प्रकार युद्ध पर चढ़ो, जैसे वर्षा काल में बादल

घोरकर चढ़ते हैं, मैं कल तुम्हारे साथ दुनियां के देखते हुए राम का हनन करुंगा ॥

प्रतिपूज्ययथान्यायं रावणं ते महारथाः ।
तस्थुः प्राञ्जलयः सर्वे भर्तुर्विजयकांक्षिणः ॥ ४ ॥

अर्थ–तब वह महारथी सेनापति राजा रावण को यथायोग्य पूजकर उसकी विजय चाहते हुए सब हाथ बांधकर खड़े होगये ॥

रावणेनाभ्यनुज्ञातौ महापार्श्वमहोदरौ ।
विरूपाक्षश्च दुर्धर्षो रथानारुरुहुस्तदा ॥ ५ ॥
ते तु हृष्टाभिनर्दन्तो भिन्दन्त इव मेदिनीम् ।
नादं घोरं विमुञ्चन्तो निर्ययुर्जयकांक्षिणः ॥ ६ ॥
ततो युद्धाय तेजस्वी रक्षोगण बलैर्वृतः ।
निर्ययावुद्यतधनुः कालान्तकयमोपमः ॥ ७ ॥
ततः प्रजाविताश्वेन रथेन स महारथः ।
द्वारेण निर्ययौ तेन यत्र तौ रामलक्ष्मणौ ॥ ८ ॥

अर्थ–तदनन्तर रावण की आज्ञानुसार महापार्श्व, महोदर तथा विरूपाक्ष अपने २ रथों पर सवार हुए, और विजय की इच्छा वाले उन राक्षसों ने अति हर्षित हो बड़े वेग से नाद किया, और फिर मानो पृथिवी को विदीर्ण करते हुए सब युद्ध के लिये चल दिये, फिर कालान्तक यमराज के समान तेजस्वी रावण भी सब राक्षससेना के साथ धनुष उठा युद्ध के लिये चला,

और बड़े वेगवाले घोड़ों से युक्त रथ द्वारा वह महारथी उस द्वार से निकला जिधर राम लक्ष्मण थे ॥

वानराणामपि चमूर्युद्धायैवाभ्यवर्तत ।
अन्योन्यमाह्वयानानां क्रुद्धानां जयमिच्छताम् ॥९॥
ततः क्रुद्धो दशग्रीवः शरैः काञ्चनभूषणैः ।
वानराणामनीकेषु चकार कदनं महत् ॥ १० ॥
निकृत्तशिरसः केचिद्रावणेन बलीमुखाः ।
केचिद्विच्छिन्नहृदयाः केचित्पार्श्वेषु दारिताः ॥११॥
तथा तैः कृत्तगात्रैस्तु दशग्रीवेण मार्गणैः ।
बभूव वसुधा तत्र प्रकीर्णा हरिभिस्तदा ॥१२॥
प्लवङ्गानामनीकानि महाभ्राणीव मारुतः ।
संययौ समरे तस्मिन्विधमन् रावणः शरैः ॥१३॥

अर्थ—और उधर एक दूसरे को आह्वान करते हुए बड़े क्रोधित तथा जय चाहते हुए वानरों की सेना भी युद्ध के लिये तैयार होगई, तब क्रुद्ध हुए रावण ने सुवर्ण भूषणों वाले बाणों से वानरों की सेना का बड़ा विनाश किया, कई वानरों के सिर काटे और कइयों के हृदय तथा कइयों की पसलियें तोड़दीं, रावण से बाणों द्वारा कटे शरीरों वाले वानरों से वहां पृथिवी भरगई, जैसे पवन मेघों को उड़ाता है इसी प्रकार वानरों की सेनाओं को तीरों से उड़ाता हुआ रावण आगे बढ़ता गया ॥

ततो राक्षसशार्दूलो विद्राव्य हरिवाहिनीम् ।
स ददर्श ततो रामं तिष्ठन्तमपराजितम् ॥१४॥
स राघवं समासाद्य क्रोधसंरक्तलोचनः ।
व्यसृजच्छरवर्षाणि रावणो राक्षसेश्वरः ॥१५॥
शरधारास्ततो रामो रावणस्य धनुश्च्युताः ।
दृष्ट्वैवापतिताः शीघ्रं भल्लाञ्जग्राहसत्वरम् ॥१६॥

अर्थ–तदनन्तर रावण ने वानरसेना को भगाकर कभी पराजित न हुए राम को खड़ा देखा, और उनके समीप पहुंच क्रोध से लाल नेत्रों वाला रावण उन पर बाणों की वर्षा करने लगा, तब रावण के धनुष से निकले बाणसमूह को आता देखकर राम ने शीघ्र ही भाले पकड़ लिये ॥

ताञ्छरौघांस्ततो भल्लैस्तीक्ष्णैश्चिच्छेद राघवः ।
दीप्यमानान्महाघोराञ्छरानाशीविषोपमान् ॥१७॥
राघवो रावणं तूर्णं रावणो राघवं तथा ।
अन्योऽन्यं विविधैस्तीक्ष्णैः शरवर्षैर्ववर्षतुः ॥१८॥
चेरतुश्च चिरं चित्रं मण्डलं सव्यदक्षिणम् ।
बाणवेगात्समुत्क्षिप्तावन्योन्यमपराजितौ ॥१९॥

अर्थ–और उन बाणसमूहों को राम ने तीक्ष्ण भालों से काट दिया जो सर्प तुल्य विषैले तथा बडे भयङ्कर चमकते हुए आरहे थे, राम ने रावण पर और रावण ने राम पर अनेक तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगादी अर्थात परस्पर बड़ी शीघ्रता से दोनों

ने बाण छोड़े, न हारने वाले दोनों बाणों के वेग से एक दूसरे को परे हटाते हुए देर तक दांयें बांये विचित्र मण्डलों में विचरने लगे ॥

गवाक्षितमिवाकाशं बभूव शरवृष्टिभिः ।
महावेगैः सुतीक्ष्णाग्रैर्गृध्रपत्रैः सुवाजितैः॥२०॥
उभौ हि येन व्रजतस्तेन तेन शरोर्मयः ।
ऊर्मयो वायुना विद्धाः जग्मुः सागरयोरिव ॥२१॥

अर्थ–बड़े वेगवाले, तीक्ष्णनोकोंवाले, बड़े वेग के उत्पादक और गृध्रपत्रों वाले बाणों की वर्षा से आकाश सछिद्रसा होगया, राम तथा रावण दोनों जिस २ मार्ग में जाते थे उसी ओर और दांये बांये बाणों की लहरें वायु से चलाई गईं दो सागर लहरों की न्यांई चलती थीं ॥

एतस्मिन्नन्तरे क्रुद्धो राघवस्यानुजो बली ।
लक्ष्मणः सायकान्सप्त जग्राह परवीरहा ॥२२॥
तैः सायकैर्महावेगैः रावणस्य महाद्युतिः ।
ध्वजं मनुष्यशीर्षं तु तस्य चिच्छेदनैकधा ॥२३॥
सारथेश्चापि बाणेन शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
जहार लक्ष्मणः श्रीमान्नैर्ऋतस्य महाबलः ॥२४॥

अर्थ–इसी अवसर में क्रुद्ध हुए राम के छोटे भाई वीर शत्रुओं के हनन करने वाले बलवान् लक्ष्मण ने सात बाण लिये, और बड़े वेग वाले उन बाणों से उस महातेजस्वी लक्ष्मण ने मनुष्य

के सिर वाले उसके झण्डे के कई टुकडे कर दिये, और उसके चमकते हुए कुण्डलों वाले सारथि के सिर को भी श्रीमान् महाबली लक्ष्मण ने काट दिया ॥

नीलमेघनिभांश्चास्य सदश्वान्पर्वतोपमान् ।
जघानाप्लुत्य गदया रावणस्य विभीषणः ॥२५॥
हताश्वात्तु तदा वेगादवप्लुत्य महारथात् ।
कोपमाहारयत्तीव्रं भ्रातरंप्रतिं रावणः ॥ २६ ॥

अर्थ—और विभीषण ने उछलकर गदा से रावण के पर्वत तुल्य नीलमेघ जैसे उत्तम घोड़ों को मारडाला तब वह हत हुए घोड़ों वाले रथ पर से वेगद्वारा उछलकर उतर पड़ा और अपने भाई विभीषण पर बड़ा कुपित होकरः—

ततः शक्तिं महाशक्तिः प्रदीप्तामशनीमिव ।
विभीषणाय चिक्षेप राक्षसेन्द्रः प्रतापवान् ॥२७॥
अप्राप्तामेव तां बाणैस्त्रिभिश्चिच्छेद लक्ष्मणः ।
सम्पपात त्रिधा छिन्ना शक्तिःकाञ्चनमालिनी ॥२८॥

अर्थ—उस बड़ी शक्ति वाले प्रतापी रावण ने विभीषण को हनन करने के लिये उस पर जलती हुई विजुली की भांति बरछी फैंकी और लक्ष्मण ने विभीषण के समीप पहुंचने से प्रथम ही उसको तीन बाणों से काट दिया, तब वह सुवर्ण की मालावाली शक्ति तीन टुकड़े होकर भूमि में गिरपड़ी ॥

ततः सम्भावितत्तरां कालेनापि दुरासदाम् ।
जग्राह विपुलां शक्तिं दीप्यमानां स्वतेजसा ॥२९॥

सा वेगिता बलवता रावणेन दुरात्मना ।
जज्वाल सुमहातेजा दीप्ताशनिसमप्रभा ॥३०॥

अर्थ–तदनन्तर रावण ने बड़ी तीक्ष्ण काल से भी दुःसह तथा अपने तेज से जलती हुई एक अन्य बड़ी शक्ति पकड़ी और बलवान् दुरात्मा रावण ने जब उसको वेग से घुमाया तो वह जलती हुई बिजुली के तुल्य चमकवाली बड़े तेज से जल उठी ॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरो लक्ष्मणस्तं विभीषणम् ।
प्राणसंशयमापन्नं तूर्णमभ्यवपद्यत ॥३१॥
तं विमोक्षयितुं वीरश्चापमायम्य लक्ष्मणः ।
रावणं शक्तिहस्तं वै शरवर्षैरवाकिरत् ॥३२॥
कीर्यमाणः शरौघेण विसृष्टेन महात्मना ।
स प्रहर्तुं मनश्चक्रे विमुखीकृतविक्रमः ॥ ३३ ॥
मोक्षितं भ्रातरं दृष्ट्वा लक्ष्मणेन स रावणः ।
लक्ष्मणाभिमुखस्तिष्ठन्निदं वचनमब्रवीत् ॥ ३४ ॥

अर्थ–इस अवसर पर प्राणसंशय में पड़े हुए विभीषण की बीर लक्ष्मण ने शीघ्र ही रक्षा की, उस तीक्ष्ण शक्ति को रावण के हाथ से गिराने के लिये बीर लक्ष्मण ने धनुष उठाकर हाथ में शक्ति लिये हुए रावण पर बाणों की वर्षा करना प्रारम्भ किया, तब महात्मा लक्ष्मण से छोड़े हुए बाणों द्वारा रावण का विभीषण को मारने का पराक्रम शिथिल होगया और उसका विचार लक्ष्मण पर प्रहार करने का हुआ, रावण ने जब देखा कि

विभीषण को लक्ष्मण ने छुड़ा लिया है तब वह लक्ष्मण के ही अभिमुख खड़ा होकर यह बचन बोला कि:—

मोक्षितस्ते बलश्लाघिन्यस्मादेवं विभीषणः ।
विमुच्यराक्षसं शक्तिस्त्वयीयं विनिपात्यते ॥३५॥
एषा ते हृदयं भित्त्वा शक्तिर्लोहितलक्षणा ।
मद्बाहु परिघोत्सृष्टा प्राणानादाययास्यसि ॥३६॥
इत्येवमुक्त्वा तां शक्तिममोघां शत्रुघातिनीम् ।
लक्ष्मणाय समुद्दिश्य चिक्षेप च ननाद च ॥३७॥

अर्थ—हे बलश्लाघी ! जिस शक्ति से तैंने विभीषण को छुड़ाया है वह शक्ति उसको छोड़कर अब तुझी पर गिराई जाती है, जो तेरे हृदय को विदीर्ण कर रुधिर से रङ्गती हुई तेरे प्राणों को लेकर जायगी, यह कहकर उस शत्रुघातक तथा निष्फल न जाने वाली शक्ति का लक्ष्मण को लक्ष्य बना उस पर फैंकी और फैंककर बड़े नाद से गर्जा ॥

सा क्षिप्ता भीमवेगेन वज्राशनिसमस्वना ।
शक्तिरभ्यपतद्वेगाल्लक्ष्मणं रणमूर्ध्नि ॥३८॥
न्यपतत्सा महावेगा लक्ष्मणस्य महोरसि ।
जिह्वेवोरगराजस्य दीप्यमाना महाद्युतिः ॥३९॥
ततो रावणवेगेन सुदूरमवगाढया ।
शक्त्या विभिन्नहृदयः पपात भुवि लक्ष्मणः ॥४०॥

अर्थ—वह बड़े बलपूर्वक फेंकी हुई बज्र तथा बिजुली के तुल्य ध्वनिवाली शक्ति रण के मस्तक पर बड़े वेग से लक्ष्मण के ऊपर जागिरी, वह बड़े वेग वाली नागराज की जिह्वा के तुल्य भयङ्कर चमकती हुई बड़ी तीक्ष्ण शक्ति लक्ष्मण की विशाल छाती में जाकर लगी, रावण के बल से छूटी हुई बड़े वेगवाली उस शक्ति ने लक्ष्मण का हृदय फोड़ दिया जिससे वह तुरन्त भूमि पर गिर पड़ा ॥

तां कराभ्यां परामृश्य रामः शक्तिं भयावहाम् ।
बभंज समरे क्रुद्धो बलवान्विचकर्ष च ॥ ४१ ॥
तस्य निष्कर्षतः शक्तिं रावणेन बलीयसा ।
शराः सर्वेषुगात्रेषु पातिता मर्मभेदिनः ॥ ४२ ॥

अर्थ—तब क्रुद्ध हुए बलवान् राम ने उस भयानक शक्ति को दोनों हाथों से पकड़कर खींच लिया और तोड़ डाला, जब राम उस शक्ति को खींच रहे थे तब महाबली रावण ने राम के ऊपर बहुत से मर्मभेदी बाण छोड़े ॥

अचिन्तयित्वा तान्बाणान्समाश्लिष्य च लक्ष्मणम् ।
अब्रवीच्च हनूमन्तं सुग्रीवं च महाकपिम् ॥ ४३ ॥
लक्ष्मणं परिवार्यैवं तिष्ठध्वं वानरोत्तमाः ।
पराक्रमस्य कालोऽयं संप्राप्तो मे चिरेप्सितः ॥४४॥
पापात्मायं दशग्रीवो वध्यतां पापनिश्चयः ।
कांक्षितं चातकस्येव घर्मान्ते मेघदर्शनम् ॥४५॥

अर्थ—पर राम उन बाणों की किंचिन्मात्र भी परवाह न करते हुए लक्ष्मण को गले लगाकर हनुमान् और सुग्रीव से बोले कि हे वानरश्रेष्ठो ! तुम लक्ष्मण को इसी प्रकार घेरकर खड़े रहो, मेरा चिरकाल से चाहा हुआ पराक्रम का समय आज आया है, इस पापात्मा तथा पापनिश्चय वाले रावण का शीघ्र ही बध करूंगा, गर्मी के अन्त में चातक को मेघदर्शन की न्याईं इसके दर्शन की मुझे चिरकाल से इच्छा थी ॥

अस्मिन्मुहूर्ते न चिरात्सत्यं प्रतिश्रृणोमि वः ।
अरावणमरामं वा जगद्द्रक्ष्यथ वानराः ॥ ४६ ॥
अद्य कर्म करिष्यामि यल्लोकाः सचराचराः ।
सदेवाः कथयिष्यन्ति यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥४७॥

अर्थ—हे वानरो ! मैं इस समय सत्य प्रतिज्ञा करता हूं कि जगत् को राम अथवा रावण से बिना देखोगे, आज मैं वह काम करूंगा जिसको जबतक पृथिवी रहेगी चराचर और देवताओं सहित सब लोग कथन किया करेंगे ॥

एवमुक्त्वा शितैर्बाणैस्तप्तकांचनभूषणैः ।
आजघान रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥४८॥
तथा प्रविद्धैर्नाराचैर्मुसलैश्चापि रावणः ।
अभ्यवर्षत्तदा रामं धाराभिरिव तोयदः ॥ ४९ ॥
रामरावणमुक्तानामन्योन्यमभिनिघ्नताम् ।
वराणां च शराणां च बभूव तुमुलः स्वनः ॥५०॥

अर्थ—यह कहकर सावधान हो तपे हुए सुवर्ण के भूषणों सदृश तीक्ष्ण बाणों से राम ने रावण पर प्रहार किये,और क्रुद्ध हुए रावण ने भी बड़े प्रबल बींधने वाले बाण और मूसलों की धाराओं से मेघ की भांति राम पर वर्षा करना प्रारम्भ किया, राम और रावण से छोड़े गये एक दूसरे को काटते हुए उत्तम बाणों की बड़ी तुमुलध्वनि हुई ॥

विकीर्यमाणः शरजालवृष्टिर्महात्मना दीप्त-
धनुष्मतार्दितः । भयात्प्रदुद्राव समेत्य-
रावणो यथानिलेनाभिहतो बलाहकः॥५१॥

अर्थ—पर अन्ततः चमकते हुए धनुष वाले महात्मा राम के बाणों की वर्षा से घबराया तथा पीड़ित हुआ रावण भयभीत हो पवन से प्रेरे हुए मेघ की भांति भाग निकला ॥

इति षट्चत्वारिंशः सर्गः

अथ सप्तचत्वारिंशःसर्गः

सं०—अब राम का विलाप, हनुमान् का औषधिपर्वत को लाना और "सुषेण" की चिकित्सा से लक्ष्मण का सचेत होना कथन करते हैं :—

शक्त्या निपातितं दृष्ट्वा रावणेन बलीयसा ।
लक्ष्मणं समरे शूरं शोणितौघपरिप्लुतम् ॥ १ ॥

सदत्त्वा तुमुलं युद्धं रावणस्य दुरात्मनः ।
विसृजन्नेव बाणौघान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥ २ ॥

अर्थ–महाबली रावण द्वारा संग्राम में शूरबीर लक्ष्मण को शक्ति से गिराया हुआ तथा रुधिर प्रवाह से भीगा हुआ देखकर दुरात्मा रावण के साथ तुमुलयुद्ध में बाणसमूह को छोड़ते हुए राम सुषेण से बोले कि :—

एष रावणवीर्येण लक्ष्मणः पतितो भुवि ।
सर्पवच्चेष्टते बीरो मम शोकमुदीरयन् ॥ ३ ॥
शोणितार्द्रमिमं बीरं प्राणैः प्रियतरं मम ।
पश्यतो मम का शक्तिर्योद्धुं पर्याकुलात्मनः ॥४॥
अयं सा समरश्लाघी भ्राता मे शुभलक्षणः ।
यदि पंचत्वमापन्नः प्राणैर्मे किं सुखेन वा ॥५॥
लज्जतीव हि मे वीर्यं भ्रश्यतीव कराद्धनुः ।
सायका व्यवसीदन्ति दृष्टिर्बाष्पवशं गता ॥६॥

अर्थ–यह बीर लक्ष्मण रावण के बल से भूमि पर गिरकर सर्प के समान लोटता हुआ मेरे शोक को बढ़ा रहा है, प्राणों से अधिक प्रिय इस बीर को लोहू से भीगा हुआ देखकर मेरा मन बहुत घबरा रहा है और मैं युद्ध करने में सर्वथा असमर्थ हूं, युद्ध में प्रशंसनीय शुभ लक्षणों वाला यह मेरा भाई लक्ष्मण यदि मृत्यु को प्राप्त होगया तो मुझे जीवनधारण करने अथवा सुख से क्या, मेरा बल मानो लज्जित सा होरहा है, मेरे हाथ से धनुष तथा बाण गिर रहे हैं और दृष्टि आंसुओं से भर रही है ॥

किं मे युद्धेन किं प्राणैर्युद्धकार्यं न विद्यते ।
यत्रायं निहतः शेते रणमूर्ध्नि लक्ष्मणः ॥ ७ ॥
यथैव मां वनं यान्तमनुयाति महाद्युतिः ।
अहमप्यनुयास्यामि तथैवैनं यमक्षयम्॥ ८ ॥
इष्टबन्धुजनो नित्यं मां स नित्यमनुव्रतः ।
इमामवस्थां गमितो राक्षसैः कूटयोधिभिः ॥९॥
देशेदेशे कलत्राणि देशेदेशे च बान्धावः ।
तं तु देशं न पश्यामि यत्र भ्राता सहोदरः ॥१०॥

अर्थ—मुझे अब युद्ध तथा प्राणों से क्या, अब युद्ध का कुछ फल विदित नहीं होता जबकि मेरा प्रिय भाई लक्ष्मण रण के मस्तक पर हत हुआ पड़ा है, जैसे यह महातेजस्वी बन को चलते समय मेरे साथ आया है वैसे ही मैं भी यम के घर जाते हुए इसके साथ जाउंगा, हाय !! मेरा इष्ट बन्धु जो मेरी आज्ञा में नित्य तत्पर रहता था उस लक्ष्मण को माया से युद्ध करने वाले राक्षसों ने इस अवस्था को पहुंचा दिया है, देश २ में स्त्रियें और देश २ में बन्धु होते हैं परन्तु ऐसा देश मैं नहीं देखता जहां सहोदर भाई हो॥

कथं वक्ष्याम्यहं त्वं वां सुमित्रां पुत्रवत्सलाम् ।
उपालम्भं न शक्ष्यामि सोढुं दत्तं सुमित्रया ॥११॥
किं नु वक्ष्यामि कौसल्यां मातरं किं नु कैकेयीम् ।
भरतं किं नु वक्ष्यामि शत्रुघ्नं च महाबलम् ॥१२॥

सह तेन वनं यातो विना तेनागतः ।
इहैव मरणं श्रेयो न तु बन्धुविगर्हणम् ॥ १३ ॥
किं मया दुष्कृतं कर्म कृतमन्यत्र जन्मनि ।
येन मे धार्मिको भ्राता निहतश्चाग्रतः स्थितः॥१४॥

अर्थ-भला मैं पुत्रवत्सल सुमित्रा से जाकर क्या कहूंगा और उनके दिये हुए उपालम्भ को कैसे सहारुंगा,माता कौसल्या तथा कैकेयी को क्या कहुंगा, और भरत तथा महाबली शत्रुघ्न को जाकर क्या कहुंगा, जब वह कहेंगे कि लक्ष्मण के साथ बन को गया हुआ उसके बिना कैसे आया, अतएव यहां ही मरना श्रेष्ठ है पर बन्धुओं से निन्दा कराना अच्छा नहीं, मैंने अन्य जन्म में क्या दुष्कृत कर्म किया है जिससे मेरा धार्मिक भाई मेरे आगे मरा पड़ा है ॥

हा भ्रातर्मनुजश्रेष्ठ शूराणां प्रवर प्रभो ।
एकाकी किं नुमां त्यक्त्वा परलोकाय गच्छसि॥१५॥
विलपन्तं च मां भ्रातः किमर्थं नावभाषसे ।
उत्तिष्ठ पश्य किं शेते दीनं मां पश्य चक्षुषा ॥१६॥
शोकार्तस्य प्रमत्तस्य पर्वतेषु वनेषु च ।
विषण्णस्य महाबाहो समाश्वासयिता मम ॥१७॥

अर्थ-हा भ्राता !! हा मनुष्य श्रेष्ठ !! हा शूरों में श्रेष्ठ !! तू मुझे छोड़कर अकेला कैसे परलोक को जाता है, मुझ भाई को विलाप करता देखकर क्यों नहीं बोलता, तू उठ क्यों लेट रहा है, तनिक आंख खोलकर मुझ दीन को देख, हे महाबाहो !

पर्वत तथा वनों में शोक से पीड़ित, प्रमत्त और उदास हुए मुझ को तू आश्वासन देता रहा है ॥

रामभेवं ब्रुवाणं तु शोकव्याकुलितेन्द्रियम् ।
आश्वासयन्नुवाचेदं सुषेणः परमं वचः ॥१८॥
त्यजेमां नरशार्दूल बुद्धिं वैक्लव्यकारिणीम् ।
नैव पञ्चत्वमापन्नो लक्ष्मणो लक्ष्मिवर्धनः ॥१९॥
नह्यस्य विकृतं वक्त्रं नच श्यामत्वमागतम् ।
सुप्रभं च प्रसन्नं च मुखमस्य निरीक्ष्यताम् ॥२०॥

अर्थ—शोक से व्याकुल इन्द्रियों वाले राम के उक्त प्रकार विलाप करते हुए सुषेण आश्वासन देता हुआ यह उत्तम वाक्य बोला कि हे नरशार्दूल ! व्याकुलतारूप इस बुद्धि को त्याग, लक्ष्मी के बढ़ाने वाला लक्ष्मण मृत्यु को प्राप्त नहीं हुआ है, इस का मुख न विकृत हुआ और न श्याम हुआ है आप इसका उत्तम कान्ति वाला प्रसन्न मुख देखें ॥

पद्मपत्रतलौ हस्तौ सुप्रसन्ने च लोचने ।
नेदृश्यंदृश्यते रूपं गतासूनां विशांपते ॥२१॥
विशादं मा कृथा वीर सप्राणोयमरिंदमः ।
आख्याति तु प्रसुप्तस्यस्रस्तगात्रस्य भूतले ॥२२॥
सोच्छ्वासं हृदयं वीर कम्पमानं मुहुर्मुहुः ॥२३॥
एममुक्त्वा महाप्राज्ञः सुषेणो राघवं वचः ।
समीपस्थमुवाचेदं हनूमन्तं महाकपिम् ॥२४॥

अर्थ—इसके हस्ततल पद्मपत्र तुल्य रक्त और नेत्र बड़े निर्मल हैं, हे प्रजाओं के स्वामी ! मरे हुए का रूप ऐसा दृष्टिगत नहीं होता, हे बीर ! आप विशाद को प्राप्त न हों लक्ष्मण अभी जीवित है, क्योंकि शिथिल अङ्ग किये पृथिवी पर सोरहा है, अर्थात् इसके अङ्ग अकड़े नहीं हैं, और हे बीर ! इसका हृदय बार २ कांपता हुआ श्वास सहित है, महाप्राज्ञ सुषेण राम से उक्त प्रकार कहकर समीप स्थित हनुमान् से बोला किः—

सौम्य शीघ्रमितो गत्वा पर्वतं हि महोदयम् ।
दक्षिणे शिखरे जातां महौषधिमिहानय ॥२५॥
विशल्यकरणीं नाम्ना सावर्ण्यकरणीं तथा ।
सञ्जीवकरणीं वीर संधानीं च महौषधीम् ॥२६॥
इत्येवमुक्तो हनुमान् गत्वा चौषधिपर्वतम् ।
चिन्तामभ्यगमच्छ्रीमानजानंस्ता महौषधीः ॥२७॥

अर्थ—हे सौम्य ! तुम यहां से शीघ्र ही महोदय पर्वत को जाओ और उसके दक्षिण शिखर पर उत्पन्न हुई विशल्यकरणी= घाव को भरने वाली, सौवर्ण्यकरणी=पहिले जैसा रूप रङ्ग कर देने वाली, सञ्जीवकरणी=जीवन को वापिस लाने वाली और सन्धानी=टूटी हड्डियों को जोड़ने वाली, इन औषधियों को तुरन्त ही यहां लाओ, इस प्रकार कहा हुआ श्रीमान् हनुमान् महाषधि पर्वत पर जाकर उन औषधियों को न जानता हुआ सोच में पड़ गया ॥

तस्य बुद्धि समुत्पन्ना मारुतेरमितौजसः ।
इदमेव गमिष्यामि गृहीत्वा शिखिरं गिरे ॥२८॥

अस्मिंस्तु शिखरे जातामोषधिं तां सुखावहाम् ।
प्रतर्केणावगच्छामि सुषेणो ह्येवमब्रवीत् ॥२९॥

अर्थ—तब उस अमित पराक्रम वाले पवनसुत हनुमान् को यह बुद्धि उत्पन्न हुई कि पर्वत के इस शिखर को ही उठाकर ले चलूं, सुषेण ने जैसा कहा था उसके अनुसार निश्चय है कि वह सुखदायक अर्थात् लक्ष्मण को आराम करने वाली औषधि इसी पर्वत शिखर पर अवश्य होगी ॥

अगृह्य यदि गच्छामि विशल्यकरणीमहम् ।
काल्यात्ययेन दोषः स्याद्वैक्लव्यं च महद्भवेत् ॥३०॥
इतिसंचिन्त्य हनुमान् त्रिःप्रकम्प्य गिरेस्तटम् ।
गृहीत्वा हरिशार्दूलो हस्ताभ्यां समतोलयत् ॥३१॥
समागम्य महावेगः संन्यस्य शिखरं गिरेः ।
विश्रम्य किञ्चिद्धनुमान्सुषेणमिदमब्रवीत् ॥३२॥

अर्थ—और यदि विशल्यकरणी को बिना लिये ही चला जाऊं तो काल के अधिक बीत जाने से दोष होगा और बड़ी घबराहट होगी, यह सोचकर हनुमान् ने तीन वार पर्वत शिखर को हिलाकर दोनों हाथों से तोला, फिर हनुमान् उस शिखर को लेकर बड़े वेग से चला और सुषेण के समीप पहुंचकर उससे बोला कि :—

ओषधीर्नावगच्छामि ता अहं हरिपुंगव ।
तदिदं शिखरं कृत्स्नं गिरेस्तस्याहृतं मया ॥३३॥

एवं कथयमानं तु प्रशस्य पवनात्मजम् ।
सुषेणो वानरश्रेष्ठो जग्राहोत्पाट्य चौषधीः ॥३४॥
विस्मितास्तु बभूवुस्ते सर्वे वानरपुंगवाः ।
दृष्ट्वा तु हनुमत्कर्म सुरैरपि सुदुष्करम् ॥३५॥

अर्थ—हे वानरश्रेष्ठ ! मैं उन औषधियों को नहीं पहचानता इसलिये उस पर्वत का यह सारा शिखर ले आया हूं, हनुमान् के उक्त प्रकार कथन करने पर उसकी प्रशंसा करके सुषेण ने उस शिखर पर से औषधियों को उखाड़ लिया, देवताओं से भी बड़े दुःख से होने योग्य हनुमान् का उक्त कर्म देखकर सब वानरयूथप बड़े विस्मित हुए ॥

ततः संक्षोदयित्वा तामोषधिं वानरोत्तमः ।
लक्ष्मणस्य ददौ नस्तः सुषेणः सुमहाद्युतिः॥३६॥
स शल्यः स समाघ्राय लक्ष्मणः परवीरहा ।
विशल्यो विरजः शीघ्रमुदतिष्ठन्महीतलात् ॥३७॥
तमुत्थितं तु हरयो भूतलात्प्रेक्ष्य लक्ष्मणम् ।
साधु साध्विति सुप्रीता लक्ष्मणं प्रत्यपूजयन् ॥३८॥
एह्येहीत्य ब्रवीद्रामो लक्ष्मणं परवीरहा ।
सस्वजे गाढमालिङ्ग्य बाष्पपर्याकुलेक्षणः ॥३९॥

अर्थ—तदनन्तर उस औषधि को पीसकर महातेजस्वी सुषेण ने लक्ष्मण को नसवार दी, तब वीर शत्रुओं का हनन करने वाला लक्ष्मण उसके सूंघने से शल्य तथा पीड़ा रहित होकर भूमितल से शीघ्र ही उठ खड़ा हुआ, भूमि पर से उठे लक्ष्मण

को देखकर सब बानरों ने अति प्रसन्न हो साधु साधु कहकर लक्ष्मण का आदर किया, और वीर शत्रुओं के हनन वाले राम ने "यहां आ" यह कहकर लक्ष्मण को गले लगाया, तब उनके नेत्रों से आंसुओं की धारा बहने लगी ॥

अब्रवीच्च परिष्वज्य सौमित्रिं राघवस्तदा ।
दिष्ट्या त्वां वीर पश्यामि मरणात्पुनरागतम् ॥४०॥
नहि मे जीवितेनार्थः सीतया च जयेन वा ।
को हि मे जीवितेनार्थस्त्वयि पञ्चत्वमागते ॥४१॥

अर्थ-फिर लक्ष्मण को आलिङ्गन करके राम उससे बोले कि हे वीर ! मैं बड़ा भाग्यवान् हूं जो तुझे मृत्यु से फिरकर आया देखता हूं,मुझे ज़ीवन,सीता अथवा विजय से क्या प्रयोजन, यदि तू मृत्यु को प्राप्त होजाता तो मुझे जीने से क्या अर्थात् तेरे मरने पर मैं कदापि जीवन न रहता ॥

इत्येवं ब्रुवतस्तस्य राघवस्य महात्मनः ।
खिन्नः शिथिलया वाचा लक्ष्मणो वाक्यमब्रवीत् ॥४२॥
तां प्रतिज्ञां प्रतिज्ञाय पुरा सत्यपराक्रम ।
लघुः कश्चिदिवासत्त्वो नैवं त्वं वक्तुमर्हसि ॥४३॥

नहि प्रतिज्ञां कुर्वन्ति वितथां सत्यवादिनः ।
लक्ष्मणं हि महत्त्वस्य प्रतिज्ञापरिपालनम् ॥४४॥
नैराश्यमुपगन्तुं च नालं ते मत्कृतेऽनघ ।
वधेन रावणस्याद्य प्रतिज्ञामनुपालय ॥४५॥

अर्थ—महात्मा राम के उक्त प्रकार कथन करने पर दुर्बल लक्ष्मण शिथिल बाणी से बोला कि हे सत्यपराक्रम वाले राम ! प्रथम उस रावण के वध की प्रतिज्ञा करके अब आप सत्त्वरहित किसी लघु पुरुष के समान ऐसा कहने योग्य नहीं हैं, सत्यवादी पुरुष झूठी प्रतिज्ञा नहीं करते, क्योंकि प्रतिज्ञा का पालन करना ही महत्त्व का लक्षण है, हे निष्पाप ! मेरे अर्थ आपको निराश नहीं होना चाहिये, आज आप रावण के वधरूप अपनी उस प्रतिज्ञा का पालन करें अर्थात् आज आपको युद्ध में रावण का वध करना चाहिये ॥

इति सप्तचत्वारिंशःसर्गः

अथ अष्टचत्वारिंशःसर्गः

सं०—अब राम तथा रावण का युद्ध कथन करते हैं :—

लक्ष्मणेन तु तद्वाक्यमुक्तं श्रुत्वा स राघवः ।
सन्दधे परवीरघ्नो धनुरादाय वीर्यवान् ॥ १ ॥
अथान्यं रथमास्थाय रावणो राक्षसाधिपः ।
अभ्यधावत काकुत्स्थं स्वभानुरिव भास्करम् ॥२॥
दशग्रीवो रथस्थस्तु रामं वज्रोपमैः शरैः ।
आजघान महाशैलं धाराभिरिव तोयदः ॥ ३ ॥
दीप्तपावकसंकाशैः शरैः कांचनभूषणैः ।
अभ्यवर्षद्रणे रामो दशग्रीवं समाहितः ॥ ४ ॥

अर्थ—लक्ष्मण के कहे हुए उक्त वाक्य सुनकर वीर शत्रुओं के हनन करने वाले बलवान् राम ने धनुष पकड़कर उसमें तीर जोड़ा, और उसी समय दूसरे रथ पर चढ़कर राक्षसाधिपति रावण राम की ओर इस प्रकार दौड़ा, जैसे राहु सूर्य्य पर आक्रमण करता है, रावण अपने रथ पर बैठकर वज्रसमान बाणों से राम को इस प्रकार ताड़न करने लगा, जैसे मेघ धाराओं से महापर्वत को ताड़न करते हैं, तब राम भी सावधान होकर सुवर्ण के भूषणों वाले, अग्नितुल्य तीक्ष्ण बाणों की रावण पर वर्षा करने लगे॥

स तु तेन तदा क्रोधात्काकुत्स्थेनार्दितो भृशम् ।
रावणः समरश्लाघी महाक्रोधमुपागमत् ॥ ५ ॥
स दीप्तनयनोऽमर्षाच्चापमुद्यम्य वीर्यवान् ।
अभ्यर्दयत्सुसंक्रुद्धो राघवं परमाहवे ॥ ६ ॥
बाणधारा सहस्रैस्तु सतोयद इवाम्बरात् ।
राघवं रावणो बाणैस्तटाकमिव पूरयन् ॥ ७ ॥
सशोणितसमादिग्धः समरे लक्ष्मणाग्रजः ।
दृष्टः फुल्ल इवारण्ये सुमहान्किंशुकद्रुमः ॥ ८ ॥

अर्थ—उस समय क्रोध में आये हुए राम से अति पीड़ित हुआ रावण युद्ध की श्लाघा वाला महाक्रोध को प्राप्त हुआ, क्रोधित हुए उसके नेत्रों से अग्नि बरसने लगी, तब अतीव क्रुद्ध हुए उस वीर्यवान् रावण ने धनुष उठाकर उस घोर युद्ध में राम को पीड़ित किया, जिसप्रकार मेघ आकाश से जल की धाराओं से तालाव को भरदेते हैं इसीप्रकार रावण ने बाणों की सहस्र धाराओं से राम के शरीर को भरदिया, युद्ध में रुधिर से लिपटे हुए लक्ष्मण के वह बड़े भाई राम वन में फूले हुए बड़े केसु के समान दृष्टिगत होते थे॥

शराभिघातसंरब्धः सोऽभिजग्राह सायकान् ।
काकुत्स्थः सुमहातेजा युगान्तादित्यवर्चसः ॥९॥
ततः क्रोधसमाविष्टो रामो दशरथात्मजः ।
उवाच रावणं वीरः प्रहस्य परुषं वचः ॥१०॥

अर्थ—बाणों की चोट से क्रोधित हुए महातेजस्वी राम ने प्रलयकाल के सूर्य्यतुल्य कांतिवाले बाण पकड़े, और क्रोध से भरे हुए दशरथसुत वीर राम ने हंसकर यह कठोर बचन कहाकिः—

शूरेण धनदभ्रात्रा बलैः समुदितेन च ।
श्लाघनीयं महत्कर्म यशस्यं च कृतं त्वया ॥११॥
शूरोहमिति चात्मानमवगच्छसि दुर्मते ।
नैव लज्जास्ति ते सीतां चौरवद्व्यपकर्षतः ॥१२॥
यदि मत्सान्निधौ सीता धर्षिता स्यात्त्वया बलात् ।
भ्रातरं तु खरं पश्येस्तदा मत्सायकैर्हतः ॥ १३ ॥
दिष्ट्यासि मम मन्दात्मश्चक्षुर्विषयमागतः ।
अद्य त्वां सायकैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥१४॥
इत्येवं स वदन्वीरो रामः शत्रुनिबर्हणः ।
राक्षसेन्द्रं समीपस्थं शरवर्षैरवाकिरत् ॥ १५ ॥

अर्थ—तू कुबेर का भाई शूरवीर और सेनाओं से युक्त होने पर भी तैने बड़ा सराहनीय तथा यश देने वाला भारी काम किया है, हे दुर्मति रावण ! यदि तू अपने को शूरवीर मानता होता

तो चोर के समान सीता को लेकर न भागता, ऐसा दुष्करकर्म करते हुए क्या तुझे लज्जा नहीं आई, यदि तू मेरे सन्मुख बल से सीता को दबाता तो निश्चयपूर्वक मेरे बाणों से हत हुआ तू अपने भाई खर के समीप पहुंचता, हे मन्दात्मन् ! तू भाग्य से मेरे नेत्रों के सन्मुख आया है, आज तुझे तीक्ष्ण बाणों से यम के घर पहुंचाता हूं, इस प्रकार कहते हुए शत्रुओं के हनन करने वाले वीर राम ने निकट पहुंचे हुए रावण पर बाणों की झड़ी बांध दी ॥

बभूव द्विगुणं वीर्यं बलं हर्षश्च संयुगे ।
रामस्यास्त्रबलं चैव शत्रोर्निधनकांक्षिणः ॥ १६ ॥
प्रादुर्बभूवुरस्त्राणि सर्वाणि विदितात्मनः ।
प्रहर्षाच्च महातेजाः शीघ्रहस्ततरोऽभवत् ॥ १७ ॥
शुभान्येतानि चिन्हानि विज्ञायात्मगतानि सः ।
भूय एवार्दयद्रामो रावणं राक्षसान्तकृत् ॥ १८ ॥
हरीणां चाश्मनिकरैः शरवर्षैश्च राघवात् ।
हन्यमानो दशग्रीवो विघूर्ण हृदयोऽभवत् ॥१९॥

अर्थ—और शत्रु का हनन करना चाहते हुए राम का युद्ध में वीर्य्य, बल, हर्ष तथा अस्त्रबल दुगुना होगया, उस विदितात्मा राम को सारे अस्त्र प्रकट होगये अर्थात् उनके हृदय में सबका ज्ञान हो आया और हर्षित हुए उस महातेजस्वी राम का हाथ बड़ा ही शीघ्रकारी होगया, तब राक्षसों का अन्त करने वाले राम ने उक्त शुभ चिन्हों को अपनी आत्मा में देखकर रावण को बहुत ही पीड़ित किया, वानरों की पत्थरों की वर्षा और

राम के बाणों की वर्षा से ताड़न किया हुआ रावण व्याकुल हृदय होगया ॥

यदा च शस्त्रं नारेभे न चकर्ष शरासनम् ।
नास्य प्रत्यकरोद्वीर्यं विक्लवेनान्तरात्मना ॥ २० ॥
क्षिप्ताश्चाशु शरास्तेन शस्त्राणि विविधानि च ।
मरणार्थाय वर्तन्ते मृत्युकालोऽभ्यवर्तत ॥ २१ ॥
सूतस्तु रथनेतास्य तदवस्थं निरीक्ष्यतम् ।
शनैर्युद्धादसंभ्रान्तो रथं तस्यापवाहयत् ॥२२॥

अर्थ—और व्याकुल हृदय रावण न शस्त्र पकड़सका, न धनुष उठासका और न राम के बल का सामना करसका, उसने शीघ्रता से जो विविध शस्त्रास्त्र राम पर चलाये वह उलटे उसी के हनन करने वाले हुए, क्योंकि उसका मरण समय समीप आगया था, इसी अन्तर में रावण के रथ का नेता सारथी उसको मूर्च्छित अवस्था में देखकर बिना घबराया हुआ चुपचाप उसके रथ को युद्ध से निकाल लाया ॥

स तु मोहात्संक्रुद्धः कृतान्तबलचोदितः ।
क्रोधसंरक्तनयनो रावणः सूतमब्रवीत् ॥ २३ ॥
किमर्थं मामवज्ञाय मच्छन्दमनवेक्ष्य च ।
त्वया शत्रुसमक्षं मे रथोऽयमपवाहितः ॥२४॥

अर्थ—तब वह मोह से क्रुद्ध हुआ मृत्यु के बल से प्रेरित रावण क्रोध से नेत्र लाल करके सारथी से बोला कि तू किस

लिये मेरा अपमान करके मेरे अभिप्राय को न जानकर शत्रु के सामने से मेरा रथ ले आया है ॥

त्वयाद्य हि ममानार्य चिरकालमुपार्जितम् ।
यशो वीर्यं च तेजश्च प्रत्ययश्च विनाशितः ॥२५॥
शत्रोः प्रख्यातवीर्यस्य रंजनीयस्य विक्रमैः ।
पश्यतो युद्धलुब्धोऽहं कृतः कापुरुषस्त्वया ॥२६॥
नहि तद्विद्यते कर्म सुहृदो हितकांक्षिणः ।
रिपूणां सदृशं त्वेतद्यत्त्वयैतदनुष्ठितम् ॥ २७ ॥

अर्थ—हे अनार्य ! तैंने आज चिरकाल से उपार्जित किया हुआ मेरा यश, वीर्य, तेज और विश्वास का विनाश करादिया, विख्यात वीर्य वाले तथा अपने पराक्रम से प्रसन्न करने वाले शत्रु के सन्मुख तैंने मुझ युद्ध के लोभी को कायर बना दिया है, हित चाहने वाले सुहृद् का यह कार्य्य नहीं यह तो शत्रुओं के सदृश कार्य्य है जो तैंने किया है ॥

निवर्तय रथं शीघ्रं यावन्नापैति मे रिपुः ।
यदि वाध्युषितोऽसि त्वं स्मर्यते यदि मे गुणः ॥२८॥
एवं परुषमुक्तस्तु हितबुद्धिरबुद्धिना ।
अब्रवीद्रावणं सूतो हितं सानुनयं वचः ॥ २९ ॥
न भीतोऽस्मि न मूढोऽस्मि नोपजप्तोऽस्मि शत्रुभिः ।
न प्रमत्तो न निःस्नेहो विस्मित नच सत्क्रिया ॥३०॥

अर्थ—मेरे समीप चिरकाल से रहने के कारण यदि तुझे

मेरा उपकार स्मरण है तो मेरे रथ को शीघ्र ही लौटा जब तक कि मेरा शत्रु पीछे न हटजाय, इस प्रकार उस अबुद्धि रावण से कठोर कहा हुआ वह हितबुद्धि सारथी उससे नम्रतापूर्वक यह हितकर बचन बोला कि न मैं भयभीत हूं, न मूढ़ हूं, न शत्रुओं से घायल हुआ हूं, न प्रमत्त हूं, न स्नेहरहित हूं और न आपके उपकार मुझे भूले हुए हैं, किन्तु :—

मया तु हितकामेन यशश्च परिरक्षता ।
स्नेहप्रसन्नमनसा हितमित्यप्रियं कृतम् ॥ ३१ ॥
नास्मिन्नर्थेमहाराज त्वं मां प्रियहिते रतम् ।
कश्चिल्लघुरिवानार्यो दोषतो गन्तुमर्हसि ॥ ३२ ॥

अर्थ—मैंने तो हित की कामना से आर्तहृदय होकर यश की रक्षा करते हुए अपने स्नेहपूर्वक हित जानकर यह आपका अप्रिय किया है, हे महाराज ! इस विषय में आपके प्रिय हित में रत मुझको आप किसी नीच अनार्य्य की भांति दोष वाला न समझें ॥

श्रूयतां प्रतिदास्यामि यन्निमित्तं मया रथः ।
नदीवेग इवाम्भोभिः संयुगे विनिवर्तितः ॥३३॥
श्रमं तवावगच्छामि महता रणकर्मणा ।
नहि ते वीर्यसौमुख्यं प्रकर्षेनोपधारये ॥ ३४ ॥

अर्थ—युद्ध से रथ लौटाने का कारण सुनें, जैसे बड़े जलों के वेग से नदी का वेग रोककर उलटा चलाया जाता है इसी प्रकार मैंने रथ लौटाया है, मैंने इस घोर युद्ध में आपको थका

हुआ जाना, और आपके बल की वृद्धि न देखता हुआ यही उचित समझा कि यह समय युद्ध का नहीं है ॥

रथोद्वहनखिन्नाश्च भग्ना मे रथवाजिनः ।
दीनाधर्मपरिश्रान्ता गावो वर्षहता इव ॥ ३५ ॥
तव विश्रामहेतोस्तु तथैषां रथवाजिनाम् ।
रौद्रं वर्जयता खेदं क्षमं कृतमिदं मया ॥ ३६ ॥

अर्थ—और मेरे रथ के घोड़े भी रथ उठाने से थके मांदे तथा गर्मी से व्याकुल हुए वर्षा से दीन हुई गौओं की भांति दुखी होरहे थे, सो आप तथा इन रथ के घोड़ों को विश्राम देने के लिये इस क्रूर थकावट को मिटाते हुए मैंने यह कर्म किया है ॥

आज्ञापय यथा तत्त्वं वक्ष्यस्यरिनिषूदन ।
तत्करिष्यामहं वीर गतानृण्येन चेतसा ॥३७॥
सन्तुष्टस्तेन वाक्येन रावणस्तस्य सारथेः ।
प्रशस्यैनं बहुविधं युद्धलुब्धोऽब्रवीदिदम् ॥३८॥

अर्थ—हे शत्रुओं के हनन करने वाले राजन्! अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा ही मैं अपने कृतज्ञ मन से करूंगा, सारथी के उक्त वाक्य से प्रसन्न हुआ युद्ध का लोभी रावण उसकी बहुविध प्रशंसा करके बोला कि:—

रथं शीघ्रमिमं सूत राघवाभिमुखं नय ।
नाहत्वा समरे शत्रून्निवर्तिष्यति रावणः ॥३९॥

एवमुक्त्वा रथस्थस्य रावणो राक्षसेश्वरः ।
ददौ तस्य शुभं ह्येकं हस्ताभरणमुत्तमम् ॥४०॥

अर्थ—हे सारथे ! इस रथ को शीघ्र ही राम के सन्मुख लेचल, रावण युद्ध में शत्रुओं का हनन किये बिना नहीं लौटेगा, यह कह कर राक्षसेश्वर रावण ने सारथि को एक उत्तम हाथ का भूषण दिया ॥

ततो द्रुतं रावणवाक्यचोदितः प्रचोदयामास
हयान्स सारथिः । स राक्षसेन्द्रस्य ततो महा-
रथः क्षणेन रामस्य रणाग्रतोऽभवत् ॥ ४१ ॥

अर्थ—तदनन्तर रावण के वाक्य से प्रेरित हुए सारथि ने शीघ्र ही घोड़ों को हांका और राक्षसेन्द्र का वह महारथ क्षणभर में राम के सन्मुख आखड़ा हुआ ॥

इति अष्टचत्वारिंशः सर्गः

अथ एकोनपञ्चाशः सर्गः

सं०—अब राम तथा रावण के लगातार घोर युद्ध में अगस्त्य बाण से रावण का बध कथन करते हैं:—

ततः क्रुद्धो दशग्रीवस्ताम्रविस्फारितेक्षणः ।
रथ प्रतिमुखं रामं सायकैरवधूनयत् ॥१॥

धर्षणामर्षितो रामो धैर्यं रोषेणलंभयन ।
जग्राह सुमहावेगमैन्द्रं युधि शरासनम् ॥२॥
तदुपोढं महद्युद्धमन्योन्य वधकांक्षिणोः ।
परस्पराभिमुखयोर्दृप्तयोरिव सिंहयोः ॥३॥

अर्थ—तदनन्तर क्रोध से लाल नेत्रों वाला रावण राम के रथ पर बाणों की वर्षा करने लगा, तब रावण के इस दबाव को न सहारकर क्रोधित हुए राम ने बड़ा वेगवान् ऐन्द्र धनुष उठाया, और एक दूसरे के सन्मुख हुए २ परस्पर बध की इच्छा वाले उन दोनों का अभिमानी सिंहों की भांति महायुद्ध प्रवृत्त होगया ॥

ततो राक्षससैन्यं च हरीणां च महद्बलम् ।
प्रगृहीतप्रहरणं निश्चेष्टं समवर्तत ॥४॥
संप्रयुद्धौ तु तौ दृष्ट्वा बलवन्नर राक्षसौ ।
व्याक्षिप्तहृदयाः सर्वे परं विस्मयमागताः ॥५॥
रक्षसां रावणं चापि वानराणां च राघवम् ।
पश्यतां विस्मिताक्षाणां सैन्यं चित्रमिवाबभौ ॥६॥

अर्थ—और राक्षससेना तथा वानरों की बड़ी सेना शस्त्र पकड़े हुए भी निश्चेष्ट होकर खड़ी रही, उन दोनों बलवान् राम और रावण को घोर युद्ध में जुटे देखकर सब के हृदय उधर खिचगये और वह सब परम विस्मय को प्राप्त हुए, राक्षससेना रावण को और वानरसेना राम को विस्मित आंखों से देखती हुई चित्रवद प्रतीत होती थी ॥

जेतव्यमिति काकुत्स्थो मर्तव्यमिति रावणः ।
धृतौ स्ववीर्यसर्वस्वं युद्धेऽदर्शयतां तदा ॥७॥
रामश्चिक्षेप तेजस्वी केतुमुद्दिश्य सायकम् ।
जगाम स महीं भित्त्वा दशग्रीवध्वजं शरः ॥८॥
ध्वजस्योन्मथनं दृष्ट्वा रावणः स महाबलः ।
संप्रदीप्तोऽभवत्क्रोधादमर्षात्प्रदहन्निव ॥९॥
स रोषवशमापन्नः शरवर्षं ववर्ष ह ।
तद्वर्षमभवद्युद्धे नैकशस्त्रमयं महत् ॥१०॥

अर्थ—जय की इच्छा वाले राम और मरने का निश्चय किये हुए रावण ने युद्ध में अपने पौरुष को भले प्रकार दिखाया, तदनन्तर तेजस्वी राम ने रावण के झण्डे को लक्ष्य में करके ऐसा बाण मारा कि वह बाण रावण की ध्वजा को काटकर पृथिवी पर गिरा, ध्वजा को कटा हुआ देखकर महाबली रावण क्रोध तथा अमर्ष से मानो अपनेको दाह करता हुआ जल उठा, तब क्रोध के वश हुआ बाणों की वर्षा करने लगा और युद्ध में अनेक शस्त्रों से भरी हुई बड़ी भारी वर्षा हुई ॥

प्रहसन्निव काकुत्स्थः संदधे निशिताञ्छरान् ।
स मुमोच ततो बाणाञ्छतशोऽथ सहस्रशः॥११॥
प्रायुध्यैतामविच्छिन्नमस्यन्तौ सव्यदक्षिणम् ।
चक्रतुश्च शरैर्घोरैर्निरुच्छ्वासमिवाम्बरम् ॥१२॥

सागरं चाम्बरप्रख्यमम्बरं सागरोपमम् ।
रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव ॥१३॥
एवं ब्रुवन्तो ददृशुस्तद्युद्धं राम रावणम् ॥१४॥
देवदानवयक्षाणां पिशाचोरगरक्षसाम् ।
पश्यतां तन्महद्युद्धं सप्तरात्रमवर्तत ॥१५॥

अर्थ–हंसते हुए राम ने भी तीक्ष्ण शरों को जोड़ २ कर अनेकानेक बाण छोड़े, और दांये बांये दोनों ओर बाणों को छोड़ते हुए उन दोनों ने बड़ा प्रबल युद्ध किया, अधिक क्या उन दोनों ने अपने घोर बाणों से आकाश को निरवकाश बना दिया, जैसे आकाश आकाश के तुल्य तथा सागर सागर के तुल्य है इसी प्रकार राम, रावण का युद्ध राम और रावण के तुल्य है अर्थात् किसी अन्य से उपमा नहीं दीजासक्ती, ऐसा कहते हुए लोग राम और रावण के युद्ध को देखते थे, देव, दानव, यक्ष, राक्षस, पिशाच, नाग और राक्षसों के देखते हुए वह घोरयुद्ध सात दिन रात वरावर होता रहा ॥

यं तस्मै प्रथमं प्रादादगस्त्यो भगवान्नृषिः ।
ब्रह्मदत्तं महद्बाणममोघं युधिवीर्यवान् ॥१६॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वमिन्द्रार्थममितौजसा ।
दत्तं सुरपतेः पूर्वं त्रिलोकजयकांक्षिणः ॥१७॥
अभिमन्त्र्य ततो रामस्तं महेषुं महाबलः ।
वेदप्रोक्तेन विधिना सन्दधे कार्मुके बली ॥१८॥

स रावणाय संक्रुद्धो भृशमायम्य कार्मुकम् ।
चिक्षेप परमायत्तः शरं मर्मविदारणम् ॥१९॥

अर्थ–तदनन्तर ब्रह्मा से दिया हुआ वह अमोघ महाबाण जिसको अपरिमित पराक्रम वाले ब्रह्मा ने पहले पहल रचकर त्रिलोकी को जीतने की इच्छा वाले इन्द्र को दिया और वही बाण जो भगवान् अगस्त्य ने पहले राम को दिया था, महाबली राम ने उसी बाण का संस्कार करके धनुर्वेद में कथन कीहुई विधि अनुसार उसको धनुष में जोड़ा, और धनुष को बलपूर्वक खींचकर क्रुद्ध हुए राम ने परमप्रयत्न के साथ मर्म बींधने वाला वह बाण रावण पर छोड़ा ॥

स वज्र इव दुर्धर्षो वज्रिबाहुविसर्जितः ।
कृतान्त इव चावार्यो न्यपतद्रावणोरसि ॥२०॥
स विसृष्टो महावेगः शरीरान्तकरः परः ।
बिभेद हृदयं यस्य रावणस्य दुरात्मनः ॥२१॥
रुधिराक्तः स वेगेन शरीरान्तकरः शरः ।
रावणस्य हरन्प्राणान्विवेश धरणीतलम् ॥२२॥

अर्थ–इन्द्र से छोड़े वज्र की न्यांई वह दुर्धर्ष यम की भांति न रोके जाने वाला बाण रावण की छाती में जाकर धस गया, उस महावेग वाले तथा शरीर का अन्त करने वाले उत्तम बाण ने दुरात्मा रावण का हृदय फोड़ दिया, शरीर का अन्त करने वाला रुधिर से लिपटा हुआ वह बाण रावण के प्राणों को हरकर बड़े वेग से पृथिवी तल पर जा गिरा ॥

तस्य हस्ताद्धतस्याशु कार्मुकं चापि सायकम् ।
निपपात सह प्राणैर्भ्रश्यमानस्य जीवितात् ॥२३॥
गतासुर्भीमवेगस्तु नैर्ऋतेन्द्रो महाद्युतिः ।
पपात स्यन्दनाद्भूमौ वृत्रो वज्रहतो यथा ॥२४॥

अर्थ–तब हत हुए रावण के हाथ से प्राणों के साथ ही उसके धनुष बाण नीचे गिरगये और वह जीवन से पृथक् होगया, प्राणों के निकलजाने पर महातेजस्वी रावण वज्र से हत हुए वृत्रासुर की भांति रथ से भूमि पर गिर पड़ा ॥

तं दृष्ट्वा पतितं भूमौ हतशेषा निशाचराः ।
हतनाथा भयत्रस्ताः सर्वतः संप्रदुद्रुवुः ॥२५॥

अर्थ–रावण को गिरा देखकर मृत्यु से बचे हुए राक्षस अपने स्वामी के हत होने पर भयभीत हो सब ओर भाग गये ॥

ततो विनेदुः संहृष्टा वानरा जितकाशिनः ।
वदन्तो राघवजयं रावणस्य च तद्वधम् ॥२६॥

अर्थ–तदनन्तर जय से प्रकाशित करने वाले वानर प्रसन्न वदन हुए राघव का जय और रावण का क्षय कहते हुए गर्जने लगे॥

ततस्तु सुग्रीवविभीषणाङ्गदा सुहृद्विशिष्टा
सहलक्ष्मणास्तदा । समेत्य हृष्टा विजयेन
राघवं रणेऽभिरामं विधिनाभ्यपूजयन् ॥२७॥

अर्थ–तदनन्तर सुहृदों सहित सुग्रीव, विभीषण, अङ्गद और

लक्ष्मण सब आपस में मिलकर प्रसन्न हुए रण में विजय से शोभायमान राम का सब ने विधिवत् सत्कार किया ॥

स तु निहतरिपुः स्थिरप्रतिज्ञः स्वजनब-
लाभिवृतो रणे बभूव । रघुकुलनृपनन्दनो
महौजास्त्रिदशगणैरभिसंवृतो महेन्द्रः ॥२८॥

अर्थ—वह रघुकुल का राजकुमार राम शत्रु का हनन कर दृढ़प्रतिज्ञावाला रण में अपने जनों से घिरा हुआ देवगणों से सत्कृत हुए महेन्द्र की भांति प्रतीत होता था ॥

इति एकोनपञ्चाशः सर्गः

अथ पञ्चाशः सर्गः

सं०—अब विभीषण का शोक और राम का उसको आश्वासन देना कथन करते हैं :—

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा शयानं निर्जितं रणे ।
शोकवेगपरीतात्मा विललाप विभीषणः ॥ १ ॥
गतः सेतुः सुनीतानां गतो धर्मस्य विग्रहः ।
गत सत्त्वस्य संक्षेपः सुहस्तानां गतिर्गता ॥ २ ॥

अर्थ—भाई को रण में पराजित हो मृत्युवश लेटा हुआ

देखकर शोक के वेग से भरे हुए मन वाला विभीषण विलाप करने लगा कि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ तथा वेदवेदाङ्गों के ज्ञाता रावण के मारेजाने पर सुनीति जानने वालों की मर्यादा जाती रही, धर्म उठगया, सत्त्व का प्रचार चलागया और स्तुतियों की गति भी जाती रही ॥

आदित्यः पतितो भूमौ मग्नस्तमसि चन्द्रमाः ।
चित्रभानुः प्रशान्तार्चिर्व्यवसायो निरुद्यमः ॥३॥
अस्मिन्निपतिते वीरे भूमौ शस्त्रभृतांवरे ।
किं शेषमिह लोकस्य गतसत्त्वस्य सम्प्रति ॥ ४ ॥

अर्थ—सूर्य भूमि पर गिरगया, चन्द्रमा अन्धकार में छिपगया, अग्नि की ज्वाला ठण्डी होगई और सब व्यवसाय चला गया है, जबकि शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ यह वीर भूमि पर गिरापड़ा है, अब मारहीन हुए इस लोक में शेष कुछ नहीं रहा ॥

वदन्तं हेतुमद्वाक्यं परिदृष्टार्थ निश्चयम् ।
रामः शोकसमाविष्टमित्युवाच विभीषणम् ॥ ५ ॥
नायं विनष्टो निश्चेष्टः समरे चण्डविक्रमः ।
अत्युन्नतमहोत्साहः पतितोऽयमशङ्कितः ॥ ६ ॥
नैवं विनष्टाः शोच्यन्ते क्षत्रधर्मव्यवस्थिताः ।
वृद्धिमाशंसमाना ये निपतन्ति रणाजिरे ॥ ७ ॥
नैकान्तविजयो युद्धे भूतपूर्वः कदाचन ।
परैर्वा हन्यते वीरः परान्वा हन्ति संयुगे ॥ ८ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार यथार्थ युक्तियुक्त वाक्य कहते हुए शोक से व्याकुल विभीषण को राम ने कहा कि युद्ध में प्रचण्ड विक्रमशाली यह रावण निश्चेष्ट होकर नहीं मारा किन्तु बहुत बड़े उन्नत उत्साह वाला निर्भय लड़ता हुआ दैवयोग से हत हुआ है, सो इस प्रकार हत हुए जो क्षात्रधर्म में स्थित होकर अपना जय चाहते हुए रणभूमि में गिरते हैं वह शोक के योग्य नहीं, युद्ध में नियत विजय किसी का नहीं होता, संग्राम में जुटा हुआ बीर पुरुष या तो शत्रुओं से माराजाता है वा शत्रुओं को मारलेता है ॥

इयं हि पूर्वैः संदिष्टा गतिः क्षत्रियसम्मता ।
क्षत्रियो निहतः संख्ये न शोच्य इति निश्चयः ॥९॥
तदेवं निश्चयं दृष्ट्वा तत्त्वमास्थाय विज्वरः ।
यदिहानन्तरं कार्यं कल्प्यं तदनुचिन्तय ॥१०॥
तमुक्तवाक्यं विक्रान्तं राजपुत्रं विभीषणः ।
उवाच शोकसंतप्तो भ्रातुर्हितमनन्तरम् ॥ ११ ॥

अर्थ–और यह गति जो इसने पाई है बड़ों की कही हुई क्षत्रियों में पूजित है, युद्ध में हत हुआ क्षत्रिय शोक के योग्य नहीं होता, यह निश्चय है, सो इस प्रकार निश्चय जानकर, दृढ़ होकर शोकरहित हो, और भावी कर्तव्य का विचार कर, विक्रमशाली राजपुत्र राम के उक्त प्रकार कथन करने पर शोक से तप्त हुआ विभीषण भाई का आगे करने योग्य हित राम के साथ विचारने लगा कि :—

अनेन दत्तानि वनीपकेषुभुक्ताश्च भोगा

निभृताश्च भृत्या। धनानि मित्रेषु समर्पि-
तानि वैराण्यमित्रेषु निपातितानि ॥१२॥

अर्थ—इसने पात्रों को दान दिये, उत्तम भोग भोगे, पालन करने योग्यों का पालन किया, मित्रों में धन बांटे और शत्रुओं पर वैर किये हैं ॥

एषोऽऽहिताग्निश्च महातपाश्च वेदान्तगः
कर्मसु चाग्र्यशूरः। एतस्य यत्प्रेतगतस्य
कृत्यं तत्कर्तुमिच्छामि तव प्रसादात्॥१३॥

अर्थ—यह आहिताग्नि=सन्ध्या अग्निहोत्र करने वाला, महा-तपस्वी, वेदान्त का जानने वाला और सब कर्मों में निपुण था, सो अब मृत्यु को प्राप्त हुए इस भाई का जो कर्तव्यकर्म है वह आपकी कृपा से करना चाहता हूं ॥

स तस्य वाक्यैः करुणैर्महात्मा संबोधितः
साधुविभीषणेन। आज्ञापयामास नरेन्द्र-
सूनुः स्वर्गीयमाधानमदीनसत्त्वः ॥१४॥

अर्थ—जब विभीषण ने करुणामय वाक्यों द्वारा महात्मा राम को यह जतलाया तब उन अदीन हृदय राजपुत्र राम ने सद्गति के योग्य विधि की आज्ञा दी ॥

मरणान्तानि वैराणि निवृत्तं नः प्रयोजनम्।
क्रियतामस्य संस्कारो ममाप्येष यथा तव ॥१५॥

अर्थ—और कहा कि वैर मरण तक होते हैं, हमारा प्रयोजन हो चुका अब तुम इसका संस्कार करो, यह मेरा भी वैसा ही है जैसा तेरा है ॥

इति पंचाशः सर्गः

अथ एकपञ्चाशः सर्गः

सं०—अब रावण की स्त्रियों का विलाप कथन करते हैंः—

रावणं निहतं दृष्ट्वा राघवेण महात्मना ।
अन्तःपुराद्विनिष्पेतू राक्षस्यः शोककर्शिताः ॥१॥
वार्यमाणाः सुबहुशोवेष्टंत्योरणपांसुषु ।
विमुक्तकेश्यः शोकार्ता गावो वत्सहता यथा ॥२॥
उत्तरेण विनिष्क्रम्य द्वारेण सह राक्षसैः ।
प्रविश्यायोधनं घोरं विचिन्वन्त्यो हतं प्रतिम्॥३॥
ताः पतिं सहसा दृष्ट्वा शयानं रणपांसुषु ।
निपेतुस्तस्य गात्रेषु च्छिन्ना वनलता इव ॥४॥

अर्थ—महात्मा राम से रावण को मरा देखकर शोक से दीन हुई रावण की स्त्रियां अन्तःपुर से निकलीं, यद्यपि बहुत रोकी गई तथापि भूमितल पर लेटतीं, गिरती पड़तीं खुले हुए केशों वालीं, दुःख से पीड़ित और मरे हुए बछड़ा वाली धेनुओं के

समान व्याकुल हुई २ राक्षसों के साथ उत्तर द्वार से निकलकर भयानक रण में प्रवेश करके अपने मृतपति को खोजने लगीं, और वह रण की धूल में शयन किये हुए अपने पति को सहसा देखकर कटी हुई बनलता की भांति उसके अङ्गों पर गिर पड़ीं ॥

बहुमानात्परिष्वज्य काचिदेनं रुरोदह ।
चरणौ काचिदालम्ब्य काचित्कण्ठेऽवलम्ब्य च ॥५॥
उत्क्षिप्य च भुजौ काचिद्भूमौ सुपरिवर्तते ।
हतस्य वदनं दृष्ट्वा काचिन्मोहमुपागमत् ॥ ६ ॥
काचिदङ्के शिरः कृत्वा रुरोद मुखमीक्षती ।
स्नापयन्ती मुखं बाष्पैस्तुषारैरिव पंकजम् ॥ ७ ॥

अर्थ-कोई अपने पति को बड़े प्यार से आलिङ्गन कर रोने लगी, कोई पांओं पकड़कर और किसी ने गले लगकर पति को आलिङ्गन किया, कोई भुजायें फैंककर भूमि पर लोटने लगी, कोई मरे हुए पति के मुख को देखकर मूर्छित होगई, और कोई गोद में उसका सिर करके मुख को देखती हुई ओस से कमल की भांति आंसुओं से उसके मुख को स्नान कराती हुई रुदन करती थी ॥

दशग्रीवं हतं दृष्ट्वा रामेणाचिन्त्यकर्मणा ।
पतिं मन्दोदरी तत्र कृपणा पर्यदेवयत् ॥ ८ ॥
ननु नाम महाबाहो तव वै श्रवणानुज ।
क्रुद्धस्य प्रमुखे स्थातुं त्रस्यत्यपि पुरन्दरः ॥ ९ ॥

ऋषयश्च महान्तोऽपि गन्धर्वाश्च यशस्विनः ।
ननु नाम तवोद्वेगाच्चारणाश्च दिशो गताः ॥१०॥
स त्वं मानुषमात्रेण रामेण युधि निर्जितः ।
न व्यपत्रपसे राजन्किमिदं राक्षसेश्वर ॥ ११ ॥

अर्थ—अचिन्त्य कर्मों वाले राम से रावण को हत हुआ देखकर मन्दोन्दरी वहां विलाप करने लगी कि हे कुबेर के छोटे भाई ! हे महाबाहो ! क्रुद्ध होने पर तुम्हारे सन्मुख खड़े होने में इन्द्र भी भयभीत होता था, बड़े २ ऋषि, यशस्वी गन्धर्व और चारण भी आपके भय से दिशाओं को भाग जाते थे, सो हे राजन् ! आप मानुषमात्र राम से युद्ध में जीते हुए लज्जा के योग्य हैं, हे राक्षसेश्वर ! यह क्या हुआ ॥

विनाशस्तव रामेण संयुगे नोपपद्यते ।
सर्वतः समुपेतस्य तव तेनाभिमर्षणम् ॥ १२ ॥
अप्राप्य तं चैव कामं मैथिलीसंगमे कृतम् ।
पतिव्रतायास्तपसा नूनं दग्धोऽसि मे प्रभो ॥१३॥
तदैव यन्न दग्धस्त्वं धर्षयंस्तनुमध्यमाम् ।
देवा बिभ्यति ते सर्वे सेन्द्राः साग्निपुरोगमाः ॥१४॥
मैथिली सह रामेण विशोका विहरिष्यति ।
अल्पपुण्या त्वहं घोरे पतिता शोकसागरे ॥१५॥

अर्थ—सेना तथा सम्पूर्ण शक्तियों से युक्त होने पर आपको

जय करना मेरे बिचार में राम का कार्य्य नहीं होसक्ता, हे स्वामिन् ! आप सीता के समागम की कामना को प्राप्त किये बिना ही निःसन्देह उस पतिव्रता के तप से दग्ध किये गये हैं, उस सूक्ष्म कटि वाली को दबाते हुए आप जो उसी समय दग्ध नहीं किये गये यह उस महात्म्य का फल है जिससे इन्द्र तथा अग्नि आदि देव आप से भयभीत होते हैं, हाय सीता शोकरहित हुई राम के साथ आनन्द मनायेगी और मैं मन्दभाग्या शोकसागर में डूब गई हूं ॥

कैलासे मन्दरे मेरौ तथा चैत्ररथे वने ।
देवोद्यानेषु सर्वेषु विहृत्य सहिता त्वया ॥१६॥
विमानेनानुरूपेण यायाम्यतुलयाश्रिया ।
पश्यन्ती विविधान्देशांस्तांस्तांश्चित्रस्रगम्बरा॥१७॥
भ्रंशिता कामभोगेभ्यः सास्मि वीर वधात्तव ।
सैवान्येवास्मि संवृत्ताधिग्राज्ञां चंचलां श्रियम्॥१८॥

अर्थ–हाय !! कैलास, मन्दर, मेरु, चैत्ररथ, वन और देवताओं के सब बगीचों में जो मैं अतुल शोभा से युक्त हुई विचित्र माला तथा वस्त्र धारण किये हुए विविध देशों को देखती हुई सुन्दर विमान पर तुम्हारे साथ भ्रमण करती थी, हे वीर ! वही मैं तुम्हारे बध से काम तथा भोगों से च्युत होकर अब मानो और जैसी होगई हूं, हा !! राजाओं की चञ्चल लक्ष्मी को धिक्कार है ॥

पिता दानवराजो मे भर्त्ता मे राक्षसेश्वरः ।
पुत्रो मे शक्रनिर्जेता इत्यहं गर्विता भृशम् ॥१९॥

दृप्तारिमथनाः क्रूराः प्रख्यातबलपौरुषाः ।
अकुतश्चिद्भया नाथा ममेत्यासीन्मतिर्ध्रुवा ॥२०॥
तेषामेवं प्रभावाणां युष्माकं राक्षसर्षभाः ।
कथं भयमसंबद्धं मानुषादिदमागतम् ॥२१॥

अर्थ—यह मुझे बड़ा गर्व था कि मेरा पिता दानवों का राजा, भर्त्ता राक्षसों का स्वामी और पुत्र इन्द्र का जीतने वाला है, मेरी अटल मति थी कि मेरे नाथ दृप्त=अहङ्कारी शत्रुओं के मारने वाले, बड़े उग्र बल पौरुष वाले और किसी से भयभीत न होने वाले हैं, सो हे राक्षस श्रेष्ठ ! ऐसे प्रभावशाली आप लोगों को यह कैसे अचानक भय प्राप्त हुआ है ॥

यास्त्वया विधवा राजन्कृता नैकाः कुलस्त्रियः ।
पतिव्रताधर्मरता गुरुशुश्रूषणे रताः ॥२२॥
ताभिः शोकाभितप्ताभिः शप्तः परवशंगतः ।
त्वया विप्रकृताभिश्च तदा शप्तस्तदागतम् ॥२३॥
प्रवादः सत्यमेवायं त्वां प्रति प्रायशो नृप ।
पतिव्रतानां नाकस्मात्पतन्त्यश्रूणि भूतले ॥२४॥

अर्थ—हे राजन् ! पतिव्रताधर्म में रत तथा बड़ों की सेवामें तत्पर आपने अनेक कुलीन स्त्रियें विधवा की थीं, सो उन शोक से तप्त हुई स्त्रियों ने जो तुम्हें शाप दिया इसी से तुम शत्रु के वश पड़े हो, हे नृप ! यह कहावत जो प्रायः लोक में प्रसिद्ध है सो आपके विषय में सत्य ही निकली कि पतिव्रताओं के आंसु पृथिवी पर बिना अनर्थ लाये नहीं गिरते ॥

नारि चौर्यमिदं क्षुद्रं कृतं शौटीर्यमानिना ।
अपनीयाश्रमाद्रामं यन्मृगच्छद्मनात्वया ॥२५॥
आनीतारामपत्नी सा अपनीय च लक्ष्मणम् ।
कातर्यं च न ते युद्धे कदाचित्संस्मराम्यहम् ॥२६॥

अर्थ—हे स्वामिन् ! आपने शूरता के अभिमान से युक्त होकर परस्त्री का चोरी रूप निन्दित कर्म क्यों किया जो राम को मृग की आड़ द्वारा आश्रम से दूर लेजाकर उनकी पतिव्रता भार्या को हर लाये, यह तुम्हारी कदराई का लक्षण है जो बीरों को अकर्तव्य है, इस कायरता के अतिरिक्त और मैं कोई कायरता आपकी नहीं जानती ॥

नीलजीमूतसंकाशं पीताम्बर शुभांगद ।
स्वगात्राणि विनिक्षिप्य किं शेषे रुधिरावृतः ॥२७॥
यातुधानस्य दौहित्रीं किं मां न प्रतिभाषसे ।
उत्तिष्ठोत्तिष्ठ किं शेषे नवे परिभवे कृते ॥२८॥
धिगस्तु हृदयं यस्या समेदं न सहस्रधा ।
त्वयि पञ्चत्वमापन्ने फलते शोकपीडितम् ॥२९॥

अर्थ—हे नीलमेघ सदृश ! हे पीतवस्त्रों वाले ! हे सुन्दर बाहुबन्दवाले ! क्यों आप अपने अङ्गों को फैंककर रुधिर से लिपटे हुए लेट रहे हैं, मुझ यातुधान=सुमालि की दौहित्री से आप क्यों नहीं बोलते, हे स्वामिन् ! उठो इस नये अनादर के होने पर क्यों शयन कर रहे हो, मेरे हृदय को धिक्कार है जो

तुम्हारे मृत्युवश होने पर शोक से पीड़ित हुआ खण्ड २ नहीं होजाता ॥

इत्येवं विलपन्ती सा वाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
स्नेहोपस्कन्नहृदया तदा मोहमुपागमत् ॥३०॥
तथागतां समुत्थाप्य सपत्न्यस्तां भृशातुराः ।
पर्यवस्थापयामास रुदत्यो रुदतीं भृशम् ॥३१॥
किं तेन विदिता देवि लोकानां स्थितिरध्रुवा ।
दशाविभाग पर्याये राज्ञां वै चञ्चलाः श्रियः ॥३२॥

अर्थ—इस प्रकार विलाप करती हुई आंसुओं से आकुल नेत्रों वाली तथा स्नेह से ढ़के हुए हृदय वाली मन्दोदरी मूर्च्छित होगई, तब इस अवस्था से उठाकर अतीव पीड़ित हुई उसकी सपत्नियें=सौतिन रुदन करती हुई उस असन्त रोती हुई को आश्वासन देने लगीं कि हे देवि! तुम नहीं जानतीं कि पाप पुण्य के विभाग में लोकों की स्थिति और राजाओं की चञ्चल श्री स्थिर नहीं होती, सो आप धैर्य्य धारण करें जो होना था सो हुआ ॥

इति एकपंचाशः सर्गः

अथ द्विपञ्चाशः सर्गः

सं०—अब रावण का अन्त्येष्टिसंस्कार कथन करते हैंः—

एतस्मिन्नन्तरे रामो विभीषणमुवाच ह ।
संस्कारः क्रियतां भ्रातुः स्त्रीगणः परिसांत्व्यताम् ॥१॥

अर्थ—इसी अवसर में राम ने विभीषण से कहा कि तुम अपने भाई का संस्कार करो और सब स्त्रियों को आश्वासन दो॥

राघवस्य वचः श्रुत्वा त्वरमाणो विभीषणः ।
संस्कारयितुमारेभे भ्रातरं रावणं हतम् ॥२॥
स प्रविश्य पुरीं लंकां राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रावणस्याग्निहोत्रं तु निर्यापयति सत्वरम् ॥३॥
शकटान्दारुरूपाणि अग्नीन्वै याजकांस्तथा ।
तथा चन्दनकाष्ठानि काष्ठानि विविधानि च ॥४॥
अगुरूणि सुगन्धीनि गन्धांश्च सुरभींस्तथा ।
ततो माल्यवता सार्धं क्रियामेव चकार सः ॥५॥

अर्थ—राम के उक्त वचन सुनकर शीघ्रता करता हुआ विभीषण अपने मृत भाई रावण के संस्कार की तैयारी करने लगा, राक्षसेन्द्र विभीषण लङ्कापुरी में प्रवेश करके शीघ्र ही रावण के अग्निहोत्र को वाहर लाया, छकड़े, उज्वल समिधायें, अग्नियें, याजक=यज्ञ करने वाले, चन्दन की लकड़ियें और दूसरी लकड़ियें, सुगन्धित अगर तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ लेकर आया और माल्यवान् के साथ दाहकर्म किया॥

सौवर्णीं शिविकां दिव्यामारोप्य क्षौमवाससम् ।
रावणं राक्षसाधीशमश्रुपूर्णमुखा द्विजाः ॥ ६ ॥

उत्क्षिप्य शिविकां तां तु विभीषण पुरोगमाः ।
दक्षिणाभिमुखाः सर्वे गृह्य काष्ठानि भेजिरे ॥ ७ ॥
अग्नयो दीप्यमानास्ते तदाध्वर्युसमीरिताः ।
शरणाभिगताः सर्वे पुरस्तात्तस्य ते ययुः ॥ ८ ॥
अन्तःपुराणि सर्वाणि रुदमानानि सत्वरम् ।
पृष्ठतोऽनुययुस्तानि प्लवमानानि सर्वतः ॥ ९ ॥

अर्थ—सुवर्ण की दिव्य शिविका=पालकी पर रेशमी वस्त्र युक्त राक्षसपति रावण को चढ़ाकर आंसुओं से पूर्ण मुख वाले ब्राह्मण उसको उठाकर लेगये, पालकी को उठवाकर विभीषण आदि सब राक्षस लकड़ियें लेकर दक्षिणाभिमुख गये, अध्वर्यु से देदीप्यमान अग्नियों को कुण्डों सहित रावण की शव के आगे २ लेजारहे थे, और सब स्त्रियें रुदन करती हुई सब ओर से उसके पीछे २ गईं ॥

रावणं प्रयते देशे स्थाप्य ते भृशदुःखिताः ।
चितां चन्दनकाष्ठैश्च पद्मकोशीरचन्दनैः ॥ १० ॥
ब्राह्मया संवर्तयामासू रांकवास्तरणावृताम् ।
प्रचक्रू राक्षसेन्द्रस्य पितृमेधमनुत्तमम् ॥ ११ ॥

अर्थ—रावण को शुद्ध स्थान पर स्थापन करके अतीव दुःखित हुए सभों ने चन्दन की लकड़ियों, पद्मक, उशीर तथा चन्दन से नीचे मृगान विछाकर वैदिकविधि अनुसार चिता बना रावण का उत्तम प्रकार से अन्त्येष्टिसंस्कार करना प्रारम्भ किया ॥

पृषदाज्येन सम्पूर्णं स्रुवं स्कन्धे प्रचिक्षिपुः ।
पादयोः शकटं प्रापुरूर्वोश्चोलूखलं तदा ॥ १२ ॥
दारुपात्राणि सर्वाणि अरणिं चोत्तरारणिम् ।
दत्त्वा तु मुसलं चान्यं यथास्थानं विचक्रमुः ॥१३॥

अर्थ–रावण के शव को चिता पर धर घृत वा दधि भरा हुआ स्रुवा कन्धे पर, शकट पांवों पर, उलूखल जाघों पर रखा, और अरणी, उत्तरारणी तथा मूसल आदि सब काष्ठपात्र शास्त्र की विधि अनुसार यथात्रास्थित रखे ॥

स ददौ पावकं तस्य विधियुक्तं विभीषणः ।
स्नात्वा चैवार्द्रवस्त्रेण तिलान्दर्भविमिश्रितान् ॥१४॥
उदकेन च संमिश्रान्प्रदाय विधिपूर्वकम् ।
ताः स्त्रियोऽनुनयामास सान्त्वयित्वा पुनःपुनः ॥१५॥
गम्यतामिति ताः सर्वा विविशुर्नगरं ततः ॥१६॥
प्रविष्टासु पुरीं स्त्रीषु राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
रामपार्श्वमुपागम्य समतिष्ठद्विनीतवत् ॥ १७ ॥

अर्थ–तब विभीषण ने विधिपूर्वक चिता में अग्नि दी और स्नान करके गीले वस्त्र से विधिपूर्वक जल तथा दर्भ से मिश्रित तिल भूमि पर सिंचन करके स्त्रियों को बार २ आश्वासन देकर कहा कि अब तुम लोग जाओ, विभीषण के आश्वासन देने पर वह सब स्त्रियां नगर में प्रविष्ट हुई, स्त्रियों के नगर में प्रविष्ट होने पर विभीषण राम के समीप जाकर विनीतभाव से बैठगये ॥

इति द्विपंचाशःसर्गः

अथ त्रिपञ्चाशःसर्गः

सं०—अब विभीषण के राज्याभिषेक विषयक वर्णन करते हैं:—

अथोवाच स काकुत्स्थः समीपपरिवर्तिनम् ।
सौमित्रिं सत्त्वसम्पन्नं लक्ष्मणं शुभ लक्षणम् ॥ १ ॥
विभीषणमिमं सौम्य लङ्कायामभिषेचय ।
अनुरक्तं च भक्तं च तथा पूर्वोपकारिणम् ॥ २ ॥
एष मे परमः कामो यदिमं रावणानुजम् ।
लङ्कायां सौम्य पश्येयमभिषिक्तं विभीषणम् ॥ ३ ॥
एवमुक्तस्तु सौमित्री राघवेण महात्मना ।
तथेत्युक्त्वा सुसंहृष्टः सौवर्णं घटमाददे ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर राम समीपवर्ती, सत्वसम्पन्न तथा शुभलक्षणों वाले सुमित्रा के पुत्र लक्ष्मण से बोले कि हे सौम्य ! मेरे इस अनुरक्त भक्त तथा पूर्वोपकारी विभीषण को लङ्का में जाकर अभिषेक दे, यह मेरी परम कामना है कि रावण के छोटे भाई विभीषण को लङ्का का राजा हुआ देखूं, महात्मा राम की आज्ञा पाये हुए लक्ष्मण ने तथास्तु कहकर प्रसन्न हो सुवर्ण का घट लिया ॥

तं घटं वानरेन्द्राणां हस्ते दत्त्वा मनोजवान् ।
व्यादिदेश महासत्त्वः समुद्रसलिलं तदा ॥ ५ ॥

अतिशीघ्रं ततो गत्वा वानरास्ते मनोजवाः ।
आगतास्तु जलं गृह्य समुद्राद्वानरोत्तमाः ॥ ६ ॥
ततस्त्वेकं घटं गृह्य संस्थाप्य परमासने ।
घटेन तेन सौमित्रिरभ्यषिंचद्विभीषणम् ॥ ७ ॥

अर्थ—और उस घट को महान् हृदय लक्ष्मण ने वानरेन्द्र के हाथ देकर उन मन तुल्य वेगवाले वानरों को समुद्र का जल लाने की आज्ञा दी, तब वह मन समान वेगवाले वानरोत्तम अति शीघ्र जाकर समुद्र का जल ले आये, तदनन्तर लक्ष्मण ने एक घट लेकर विभीषण को सिंहासन पर विठला उस घट से विभीषण को अभिषिक्त किया ॥

अभ्यषिंचस्तदा सर्वे राक्षसा वानरास्तदा ।
प्रहर्षमतुलं गत्वा तुष्टुवू राममेव हि ॥ ८ ॥
दृष्ट्वाभिषिक्तं लङ्कायां राक्षसेन्द्रं विभीषणम् ।
राघवः परमां प्रीतिं जगाम सहलक्ष्मणः ॥ ९ ॥
सान्त्वयित्वा प्रकृतयस्ततो राममुपागमत् ॥१०॥
ततः शैलोपमं वीरं प्राञ्जलिं प्रणतं स्थितम् ।
उवाचेदं वचो रामो हनूमन्तं प्लवङ्गमम् ॥ ११ ॥

अर्थ—और फिर सब राक्षसों तथा वानरों ने भी विभीषण को अभिषेक दिया और सब अतुल हर्ष को प्राप्त होकर राम की प्रशंसा करने लगे, राक्षसेन्द्र विभीषण को लङ्का में अभिषिक्त देखकर राम लक्ष्मण सहित सब परमप्रीति को प्राप्त हुए, और विभीषण सब कुटुम्बियों को आश्वासन देकर फिर राम के

समीप आया, तब हाथ जोड़ झुककर पर्वततुल्य खड़े हुए वीर हनुमान् को राम यह वचन बोले कि :—

अनुज्ञाप्य महाराजमिमं सौम्य विभीषणम् ।
प्रविश्य नगरीं लङ्कां कौशलं ब्रूहि मैथिलीम्॥१२॥
वैदेह्या मां च कुशलं सुग्रीवं च सहलक्ष्मणम् ।
आचक्ष्व वदतां श्रेष्ठ रावणं च हतं रणे ॥ १३ ॥
प्रियमेतदिहाख्याहि वैदेह्यास्त्वं हरीश्वर ।
प्रतिगृह्य तु सन्देशमुपावर्तितुमर्हसि ॥ १४ ॥

अर्थ—हे सौम्य ! महाराज विभीषण से आज्ञा लेकर लङ्कापुरी में प्रवेश करके सीता को कुशल कहो, हे कहने वालों में श्रेष्ठ हनुमान् ! प्रथम सीता का कुशल पूछकर फिर मेरा, लक्ष्मण तथा सुग्रीव का कुशल और रावण की मृत्यु कहना, हे वानरेश्वर ! यह प्रिय जाकर सीता को कहो और उसका सन्देश लेकर शीघ्र ही आओ ॥

इति त्रिपचाशः सर्गः

अथ चतुष्पंचाशः सर्गः

सं०—अब हनुमान् का सीता को विजय का सन्देश देना कथन करते हैं :—

इति प्रतिसमादिष्टो हनूमान्मारुतात्मजः ।
प्रविवेश पुरीं लङ्कामनुज्ञाप्य विभीषणम् ॥ १ ॥
ततस्तेनाभ्यनुज्ञातो हनूमान्वृक्षवाटिकाम् ।
संप्रविश्य यथान्यायं सीताया विदितो हरिः ॥ २ ॥
ददर्श नृजया हीनां राक्षसीभिः परीवृताम् ।
निभृतः प्रणतः प्रह्वः सौभिगम्याभिवाद्य च ॥ ३ ॥
दृष्ट्वा समागतं देवी हनूमन्तं महाबलम् ।
तूष्णीमास्त तदा दृष्ट्वा स्मृत्वा हृष्टाभवत्तदा ॥४॥

अर्थ–उक्त प्रकार राम से आज्ञा दिया हुआ हनुमान् विभीषण से अनुज्ञा लेकर लंका में प्रविष्ट हुआ, और उनकी आज्ञानुसार सीता का पूर्व परिचित हनुमान् नम्रतापूर्वक वृक्षवाटिका में प्रविष्ट होकर शृंगार से हीन, राक्षसियों से घिरी हुई सीता को देख विनयपूर्वक प्रणाम कर हाथ जोड़ सन्मुख खड़ा होगया, महाबली हनुमान् को आया देखकर वह देवी चुप रही परन्तु देख और स्मरण करके अति प्रसन्न हुई ॥

सौम्यं तस्या मुखं दृष्ट्वा हनूमान्प्लवगोत्तमः ।
रामस्य वचनं सर्वमाख्यातुमुपचक्रमे ॥५॥
वैदेहि कुशली रामः सुग्रीवः सहलक्ष्मणः ।
कुशलं त्वाह सिद्धार्थो हतशत्रुरमित्रजित् ॥६॥
विभीषण सहायेन रामेण हरिभिः सह ।
निहतो रावणो देवि लक्ष्मणेन च वीर्यवान् ॥७॥

प्रियमाख्यामि ते देवि भूयश्च त्वां सभाजये ।
तव प्रभावाद्धर्मज्ञे महान् रामेण संयुगे ॥८॥
लब्धोऽयं विजयः सीते स्वस्था भव गतज्वरा ।
रावणश्च हतः शत्रुर्लंका चैव वशीकृता ॥९॥

अर्थ–तब सीता का सौम्य मुख देखकर वानरोत्तम हनुमान् ने राम का कहा हुआ सब वृत्त कहा कि हे सीते ! राम लक्ष्मण तथा सुग्रीव कुशलपूर्वक हैं, शत्रुओं के जीतने वाले राम ने अपने शत्रुओं का हनन कर कृतकार्य्य हो तुम्हें कुशल कहला भेजा है, हे देवि ! विभीषण की सहायता और वानरों तथा लक्ष्मण के साथ मिलकर राम ने बलवान् रावण का हनन कर डाला है, हे देवि ! तुम्हारा सत्कार करता हुआ मैं तुम्हें यह प्रिय कहता हूं, हे धर्म के जानने वाली ! तुम्हारे ही प्रभाव से राम ने इस युद्ध में विजय पाई है, अब तुम सन्ताप त्यागकर स्वस्थ होओ, शत्रु रावण मारा गया और अब लङ्का सब प्रकार से वश में कीगई है ॥

मया ह्यलब्धनिद्रेण धृतेन तव निर्जये ।
प्रतिज्ञैषा विनिस्तीर्णा बद्ध्वा सेतुं महोदधौ ॥१०॥
संभ्रमश्च न कर्तव्यो वर्तन्त्या रावणालये ।
विभीषणविधेयं हि लङ्कैश्वर्यमिदं कृतम् ॥११॥
तदाश्वसिहि विस्रब्धं स्वगृहे परिवर्तसे ।
अयं चाभ्येति संहृष्टस्त्वद्दर्शनसमुत्सुकः ॥१२॥

अर्थ–तुम्हें वापिस लेजाने की प्रतिज्ञा किये हुए मैंने बिना निद्रा पाये रातों रात जाग महासागर पर पुल बांध कर यह प्रतिज्ञा पूर्ण की है, रावण के घर रहते हुए अब तुम्हें घबराना नहीं चाहिये, क्योंकि इस लङ्का का ऐश्वर्य्य अब विभीषण के अधीन कियागया है, सो अब तुम विश्वस्त होकर स्वस्थ होओ अब तुम अपने घर में हो, यह प्रसन्न हुए विभीषण तुम्हारे दर्शनों को आरहे हैं ॥

एवमुक्त्वा तु सा देवी सीता शशिनिभानना ।
प्रहर्षेणावरुद्धा सा व्याहर्तुं न शशाक ह ॥१३॥
ततोऽब्रवीद्धरिवरः सीतामप्रतिजल्पतीम् ।
किं त्वं चिन्तयसे देवि किं च मां नाभिभाषसे॥१४॥
एवमुक्त्वा हनुमता सीता धर्मपथे स्थिता ।
अब्रवीत्परमप्रीता बाष्पगद्गदया गिरा ॥१५॥

अर्थ–हनुमान् के उक्त प्रकार कथन करने पर चन्द्रमुखी सीता देवी प्रहर्ष से रुकी हुई कुछ न कहसकी, तब वह श्रेष्ठ हनुमान् कुछ न कहती हुई सीता से बोला कि हे देवि ! अब तुम किस सोच में हो जो मुझ से भाषण नहीं करतीं, धर्मपथ में स्थित सीता से जब हनुमान् ने इस प्रकार कहा तब वह परम हर्ष को प्राप्त हुई प्रेम के आंसुओं से गद्गद वाणी द्वारा बोलीकिः–

प्रियमेतदुपश्रुत्य भर्तुर्विजयसंश्रितम् ।
प्रहर्षवशमापन्ना निर्वाक्यास्मि क्षणान्तरम् ॥१६॥

नहि पश्यामि सदृशं पृथिव्यां तव किंचन ।
सदृशं यत्प्रियाख्याने तव दत्त्वा भवेत्सुखम् ॥१७॥
हिरण्यं वा सुवर्णं वा रत्नानि विविधानि च ।
राज्यं वा त्रिषुलोकेषु एतन्नार्हति भाषितम् ॥१८॥

अर्थ–अपने भर्त्ता के विजयरूप प्रिय को सुनकर प्रहर्ष के वश हुई २ थोड़ी देर तक नहीं बोली हूं और न मैं सारी पृथिवी में इस प्रिय कहने के तुल्य कोई पदार्थ देखती हूं जो तुझ प्रिय सुनाने वाले को देकर प्रसन्न होऊं, सुवर्ण, भूषण, विविधरत्न अथवा तीनों लोकों का राज्य भी तेरे इस कथन के योग्य नहीं॥

एवमुक्तस्तु वैदेह्या प्रत्युवाच प्लवंगमः ।
प्रग्रहीताञ्जलिहर्षात्सीतायाः प्रमुखे स्थितः ॥१९॥
भर्तुः प्रियहिते युक्ते भर्तुर्विजयकांक्षिणि ।
स्निग्धमेवंविधं वाक्यं त्वमेवार्हस्यानन्दिते ॥२०॥
अथोवाच पुनः सीतामसंभ्रान्तो विनीतवत् ।
प्रगृहीतांजलिर्हर्षात्सीतायाः प्रमुखेस्थितः ॥२१॥

अर्थ–सीता के उक्त प्रकार कथन करने पर हनुमान् हाथ जोड़कर सीता के सन्मुख खड़ा हुआ हर्षपूर्वक बोला कि हे भर्त्ता के प्रियहित में युक्त ! हे भर्त्ता का प्रिय चाहने वाली ! हे अनिन्दिते ! ऐसा स्नेह से भरा हुआ वाक्य आपही कहने योग्य हैं, यह कहकर सीता के सन्मुख स्थित सावधानचित्त हो हाथ जोड़ हर्ष से नम्र हुआ हनुमान् पुनः बोला कि:—

इमास्तु खलु राक्षस्यो यदि त्वमनुमन्यसे ।
हन्तुमिच्छामि ता सर्वा याभिस्त्वं तर्जिता पुरा॥२२॥
इत्युक्ता सा हनुमता कृपणा दीनवत्सला ।
हनुमन्तमुवाचेदं चिन्तयित्वा विमृश्य च ॥२३॥
राजसंश्रयवश्यानां कुर्वतीनां पराज्ञया ।
विधेयानां च दासीनां कः कुप्येद्वानरोत्तम ॥२४॥

अर्थ—यदि आप स्वीकार करें तो इन राक्षसियों को जो तुम्हें झिड़का करती थीं ताड़न करना चाहता हूं, हनुमान् के इस प्रकार कथन करने पर कृपणा, दीनों की प्यारी सीता सोच विचार कर हनुमान् से बोली कि हे वानरोत्तम हनुमान् ! राजा के आश्रित तथा उसी के वश में हुई राक्षसियें राजा की आज्ञा से सब कुछ करती रही हैं, इसलिये यह क्रोध के योग्य नहीं अर्थात् इनको दण्ड नहीं देना चाहिये ॥

भाग्यवैषम्यदोषेण पुरस्ताद्दुष्कृतेन च ।
मयैतत्प्राप्यते सर्वं स्वकृतं ह्युपभुज्यते ॥२५॥
प्राप्तव्यं तु दशायोगान्मयैतदिति निश्चितम् ।
दासीनां रावणस्याहं मर्षयामीह दुर्बला ॥२६॥

अर्थ—भाग्य की विषमता द्वारा अपने किसी पूर्वकृत पाप से मैंने यह सब दुःख भोगा है, क्योंकि अपना किया ही भोगा जाता है. सो पूर्वकर्मों के योग से मैंने यह सब कुछ भोगना

ही था यह निश्चित है, सो दुर्बल अवस्था को प्राप्त मैं रावण की दासियों को क्षमा करती हूं॥

आज्ञप्ता राक्षसेनेह राक्षस्यस्तर्जयन्ति माम्।
हते तस्मिन्न कुर्वन्ति तर्जनं मारुतात्मज ॥२७॥

अर्थ-हे पवनपुत्र! रावण से आज्ञा दीहुई राक्षसियें मुझे झिड़कती थीं और अब उसके मरने पर नहीं झिड़कती हैं॥

अयं व्याघ्र समीपेतु पुराणो धर्मसंहितः।
ऋक्षेण गीतः श्लोकोस्ति तं निबोध प्लवंगम ॥२८॥

अर्थ-हे बानरोत्तम! यह बड़ी प्राचीन कथा है जो एक ऋक्ष ने एक व्याघ्र के समीप कही है उसका कहा हुआ श्लोक तुमको सुनाती हूं, प्रथम उस गाथा को सुनः—

एक वन में व्याघ्र एक व्याध के पीछे दौड़ा तब वह व्याध एक वृक्ष पर चढ़ गया जिस पर ऋक्ष=रीक्ष बैठा था, तब व्याघ्र उस वृक्ष के नीचे आकर वृक्ष के ऊपर बैठे हुए ऋक्ष से कहने लगा कि यह व्याध सब वनवासी जीवों को मारा करता है इसलिये इसको इस वृक्ष से नीचे गिरादे, यह सुनकर ऋक्ष ने कहा कि अपने स्थान पर आये हुए को मैं नहीं गिराऊंगा, क्योंकि गिराने से बड़ा दोष होगा, यह कह उस व्याध को आश्वासन देकर ऋक्ष सोगया, तब नीचे से व्याघ्र ने व्याध से कहा कि इस सोते हुए ऋक्ष को नीचे गिरादे तो मैं तुझे नहीं खाऊंगा, तब व्याघ्र के कहने से व्याध ने उस ऋक्ष को वृक्ष से नीचे ढकेला परन्तु ऋक्ष अपने अभ्यास के बल से

डाली को पकड़कर अड़गया नीचे न गिरा, तब व्याघ्र ने फिर ऋक्ष से कहा कि इस व्याध ने तुमको गिराना चाहा था इस कारण तुम इसको नीचे गिरादो, तब व्याघ्र के बचन सुनकर ऋक्ष ने कहा कि चाहे इसने तुम्हारे कहने से अपराध किया परन्तु मैं इस की रक्षा ही करुंगा, यह कहकर ऋक्ष ने व्याध की रक्षा की, इसी प्रकार इन राक्षसियों की हमें रक्षा कर्तव्य है, वह श्लोक यह हैं कि :—

न परः पापमादत्ते परेषां पापकर्मणाम् ।
समयो रक्षितव्यस्तु सन्तश्चारित्रभूषणः ॥ २९ ॥
पापानां वा शुभानां वा बधार्हाणामथापि वा ।
कार्यं कारुण्यमार्गेण न कश्चिन्नापराध्यति॥३०॥
लोकहिंसा विहाराणां क्रूराणां पापकर्मणाम् ।
कुर्वतामपि पापानि नैवकार्यमशोभनम् ॥ ३१ ॥
एवमुक्तस्तु हनुमान्सीतया वाक्यकोविदः ।
प्रत्युवाच ततः सीतां रामपत्नीमनिन्दिताम् ॥३२॥

अर्थ–किसी पापी के पाप को दूसरा नहीं लेता उसको ही भोगना पड़ता है, इसलिये अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिये, क्योंकि सदाचार ही पुरुष का भूषण होता है, पुरुष भला हो बुरा हो अथवा वध के योग्य भी हो, सब पर दया करनी चाहिये, ऐसा कोई नहीं जो कभी अपराध न करता हो, सो लोक की हिंसा में रत हुए कामरूप राक्षस जो सदा पाप ही किया करते हैं उनके लिये इतना पाप अनुचित नहीं, सीता के

उक्त प्रकार कथन करने पर वाक्य के जानने वाला हनुमान् निन्दा के अयोग्य रामपत्नी सीता से बोला कि :—

युक्ता रामस्य भवती धर्मपत्नी गुणान्विता ।
प्रतिसंदिश मां देवि गमिष्ये यत्र राघवः ॥३३॥
एवमुक्ता हनुमता वैदेही जनकात्मजा ।
साब्रवीद्द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं भक्तवत्सलम् ॥३४॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा हनुमान्मारुतात्मजः ।
हर्षयन्मैथिलीं वाक्यमुवाचेदं महामतिः ॥ ३५ ॥

अर्थ–हे देवि ! आप ऐसे २ शुभ गुणों से युक्त राम की योग्य धर्मपत्नी हैं, मुझे सन्देश दें मैं राम के समीप जाता हूं, हनुमान् के ऐसा कहने पर जनकसुता सीता बोली कि मैं भक्तवत्सल अपने भर्ता को देखना चाहती हूं, सीता के इस वचन को सुनकर बुद्धिमान् हनुमान् सीता को हर्षित करता हुआ यह वाक्य बोलाकिः—

पूर्णचन्द्रमुखं रामं द्रक्षस्यद्य सलक्ष्मणम् ।
स्थितमित्रं हतामित्रं शचीवेन्द्रं सुरेश्वरम् ॥ ३६ ॥
तामेवमुक्त्वा भ्राजन्तीं सीतां साक्षादिव श्रियम् ।
आजगाम महातेजा हनूमान् यत्र राघव ॥३७॥

अर्थ–हे सीता ! पूर्णचन्द्रतुल्य मुख वाले, स्थित मित्रों वाले तथा नाश को प्राप्त हुए शत्रुओं वाले राम को लक्ष्मण सहित आज देखोगी, जैसे इन्द्राणि इन्द्र को देखती है, साक्षात्

लक्ष्मी की भांति देदीप्यमान् सीता को इस प्रकार कहकर महातेजस्वी हनुमान् राम के समीप आया ॥

सपदि हरिवरस्ततो हनूमान्प्रतिवचनं
जनकेश्वरात्मजायाः । कथितमकथयद्यथा-
क्रमेण त्रिदशवरप्रतिमाय राघवाय ॥३६॥

अर्थ—और आकर वानरश्रेष्ठ हनुमान् ने जनककुमारी का कहा हुआ सब सन्देश क्रमपूर्वक इन्द्रसमान राम से कहा ॥

इति चतुष्पञ्चाशः सर्गः

अथ पंचपञ्चाशः सर्गः

सं०—अब विभीषण का सीता को राम के समीप लाना कथन करते हैं :—

तमुवाच महाप्राज्ञः सोऽभिवाद्य प्लवङ्गमः ।
रामं कमलपत्राक्षं वरं सर्वधनुष्मताम् ॥ १ ॥
यन्निमित्तोऽयमारम्भः कर्मणां यः फलोदयः ।
तां देवीं शोकसंतप्तांद्रष्टुमर्हसि मैथिलीम् ॥ २ ॥
सा हि शोकसमाविष्टा वाष्पपर्याकुलेक्षणा ।
मैथिली विजयं श्रुत्वा द्रष्टुं त्वामभिकांक्षति ॥ ३ ॥

पूर्वकात्प्रत्ययाच्चाहमुक्तो विश्वस्तया तया ।
द्रष्टुमिच्छामि भर्तारमिति पर्याकुलेक्षणा ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर महाप्राज्ञ हनुमान् अभिवादन करके कमल पत्र तुल्य नेत्रों वाले तथा सब धनुषधारियों में श्रेष्ठ राम स बोला कि जिसके निमित्त यह सारा प्रयत्न किया और जो आपके उद्योग का फल है उस शोकसंतप्त देवी सीता को आप देखने योग्य हैं, वह शोक से आकुल तथा आंसुओं से भरे हुए नेत्रों वाली मैथिली आपको देखना चाहती है, पहले विश्वास से मुझे देखते ही सीता ने आंसु भरकर कहा कि मैं अपने भर्त्ता को देखना चाहती हूं ॥

एवमुक्तो हनुमता रामो धर्मभृतांवरः ।
आगच्छत्सहसाध्यानमीषद्बाष्पपरिप्लुतः ॥ ५ ॥
स दीर्घमभिनिःश्वस्य जगतीमवलोकयन् ।
उवाच मेघसंकाशं विभीषणमुपस्थितम् ॥ ६ ॥
दिव्यांग रागां वैदेहीं दिव्याभरण भूषिताम् ।
इह सीतां शिरः स्नातामुपस्थापय माचिरम् ॥७॥

अर्थ—हनुमान् के उक्त वाक्य सुनकर धनुर्धारियों में श्रेष्ठ राम आंखों में आंसु भरकर सहसा सोच में पड़गये, फिर लम्बा सांस भरकर पृथिवी की ओर देखते हुए समीप स्थित मेघसदृश विभीषण से बोले कि दिव्य अङ्गराग लगाये हुए, उत्तम भूषणों से भूषित और सिर से स्नान कराकर सीता को शीघ्र ही यहां ले आओ ॥

एवमुक्तस्तु रामेण त्वरमाणो विभीषणः ।
प्रविश्यान्तःपुरं सीतां स्त्रीभिः स्वाभिरचोदयत्॥८॥
ततः सीतां महाभागां दृष्ट्वोवाचविभीषणः ।
मूर्ध्नि बद्धांजलिः श्रीमान्विनीतो राक्षसेश्वरः ॥९॥
दिव्यांगरागा वैदेहि दिव्याभरण भूषिता ।
यानमारोह भद्रं ते भर्ता त्वां द्रष्टुमिच्छति ॥१०॥

अर्थ—राम से उक्त प्रकार कहा हुआ विभीषण शीघ्र ही अन्तःपुर में गया और वहां अपनी स्त्रियों द्वारा सीता को प्रेरित किया, तदनन्तर उस महाभागा सीता को देखकर श्रीमान् विभीषण हाथ जोड़ सिर झुकाकर उससे बोलाकि हे सीता ! दिव्य अङ्गराग लगा तथा दिव्य भूषणों से भूषित होकर यान पर चढ़, तेरा कल्याण हो, तेरे भर्ता तुझे देखना चाहते हैं ॥

एवमुक्त्वा तु वैदेहि प्रत्युवाच विभीषणम् ।
अस्नात्वा द्रष्टुमिच्छामि भर्तारं राक्षसेश्वर ॥ ११ ॥
तस्यास्तद्वचनं श्रुत्वा प्रत्युवाच विभीषणः ।
यथाह रामो भर्ता ते तत्तथा कर्तुमर्हसि ॥ १२ ॥

अर्थ—जब सीता से इस प्रकार कहागया तब वह विभीषण से बोली कि हे राक्षसेश्वर ! मैं बिना स्नान किये हुए ही भर्ता को देखना चाहती हूं, तब सीता के इस बचन को सुनकर विभीषण ने कहा कि जैसे तुम्हारे भर्ता राम ने कहा है वैसा ही तुम्हें करना चाहिये ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा मैथिली पतिदेवता ।
भर्तृभक्त्या वृता साध्वी तथेति प्रत्यभाषत ॥१३॥
ततः सीतां शिरः स्नातां संयुक्तां प्रतिकर्मणा ।
महार्हाभरणोपेतां महार्हम्बर धारिणीम् ॥ १४ ॥
आरोप्य शिविकां सीतां राक्षसैर्वहनोचितः ।
राक्षसैर्बहुभिर्गुप्तामाजहार विभीषणः ॥ ॥ १५ ॥
तामागतामुपश्रुत्य रक्षोगृह चिरोषिताम् ।
रोषं हर्षं च दैन्यं च राघवः प्राप शत्रुहा ॥१६॥
ततो यानगतां सीतां सविमर्शं विचारयन् ।
विभीषणमिदं वाक्यमहृष्टो राघवोऽब्रवीत् ॥१७॥

अर्थ—तब विभीषण के बचन सुनकर पतिव्रता तथा देवतुल्य पति की भक्ति से युक्त हुई सीता ने तथास्तु कहकर शिर से स्नान किया,पुनः शिर से न्हाई हुई, दिव्य अङ्गराग तथा बहुमूल्य वस्त्राभूषणों से युक्त सीता को विभीषण पालकी पर चढ़ाकर अनेक राक्षसों से सुरक्षित राम के समीप लाया, चिरकाल तक राक्षस के घर रही हुई सीता को आया सुनकर शत्रुओं के हनन करने वाले राम रोष, हर्ष तथा दीनता को प्राप्त हुए, तब सीता के पालकी पर बैंठे हुए ही सोच विचार कर हर्ष को प्राप्त न हुए राम ने विभीषण से कहा कि :—

राक्षसाधिपते सौम्य नित्यं मद्विजयं रत ।
वैदेही सन्निकर्षं मे क्षिप्रं समभिगच्छतु ॥ १८ ॥

तस्य तद्वचनं श्रुत्वा राघवस्य विभीषणः ।
तूर्णमुत्सारणं तत्र कारयामास धर्मवित् ॥ १९ ॥
कंचुकोष्णीषिणस्तत्र वेत्रझर्झरपाणयः ।
उत्सारयन्तस्तान्योधान्समन्तात्परिचक्रमुः ॥२०॥

अर्थ—हे राक्षसाधिपते ! हे मेरे विजय में रत ! हे सौम्य विभीषण ! सीता शीघ्र ही मेरे पास आवे, राम के इस वचन को सुनकर मर्यादा का जानने वाला विभीषण शीघ्र ही लोगों को हटाने लगा, और झर्झर ध्वनि वाली छड़ियें हाथ में लिये, पगड़िये पहने हुए कंचुकी=खोजे उन योधाओं को हटाते हुए चारो ओर घूमने लगे ॥

उत्सार्यमाणान्दृष्ट्वाथ जगत्यां जातसंभ्रमान् ।
दाक्षिण्यात्तदमर्षाच्च वारयामास राघवः ॥२१॥
किमर्थं मामनादृत्य क्लिश्यतेऽयं त्वया जनः ।
निवर्तयैनमुद्वेगं जनोऽयं स्वजनो मम ॥२२॥

अर्थ—तब उनको हटाया जाता देखकर जिनमें बड़ा कोलाहल उत्पन्न होरहा था राम ने अपने उदारभाव से इस घटना को न सहारते हुए उसको रोक दिया, और कहा कि मेरा अनादर करते हुए इन लोगों को क्यों दुःखित करते हो, इस उद्वेग को शान्त करो, यह सब जन मेरे अपने ही हैं ॥

न गृहाणि न वस्त्राणि न प्राकारस्तिरस्क्रिया ।
नेदृशा राजसत्कारा वृत्तमावरणं स्त्रियः ॥२३॥

व्यसनेषु न कृच्छ्रेषु न युद्धेषु स्वयम्वरे ।
न क्रतौ नो विवाहे वा दर्शनं दूष्यते स्त्रियः ॥२४॥
सैषा विपद्गता चैव कृच्छ्रेण च समन्विता ।
दर्शने नास्ति दोषोऽस्या मत्समीपे विशेषतः ॥२५॥

अर्थ—स्त्री का परदा न घर, न वस्त्र, न दीवार है, और न "लोगों को हटा देना" आदि ऐसे कार्य्य स्त्री का परदा हैं, यह "लोगों की भीड़भाड़ होना" राजसत्कार है, स्त्री का परदा केवल उसका आचार है, न विपत्ति में, न दुःख में, न युद्ध में, न स्वयम्वर में, न यज्ञ में और न विवाह में स्त्री का दर्शन दोष वाला है, सो इस समय सीता विपत्ति में होने के कारण कष्ट से युक्त है, और विशेषतः मेरे समीप होने से इसके देखने में कोई दोष नहीं ॥

विसृज्य शिविकां तस्मात्पद्भ्यामेवापसर्पतु ।
समीपे मम वैदेही पश्यन्त्वेते वनौकसः ॥२६॥

अर्थ—इसलिये पालकी को छोड़कर इन वानरों के देखते हुए पैदल ही सीता मेरे पास आवे ॥

एवमुक्तस्तु रामेण सविमर्शो विभीषणः ।
रामस्योपानयत्सीतां सन्निकर्षं विनीतवत् ॥२७॥
लज्जया त्ववलीयन्ती स्वेषु गात्रेषु मैथिली ।
विभीषणेनानुगतो भर्तारं साभ्यवर्तत ॥२८॥

विस्मयाच्च प्रहर्षाच्च स्नेहाच्च पतिदेवता ।
उदैक्षत मुखं भर्तुः सौम्यं सौम्यतरानना ॥२९॥

अर्थ–राम के उक्त प्रकार कथन करने पर सोच में पड़ा हुआ विभीषण सीता को नम्रतापूर्वक राम के समीप लाया, लज्जा से अपने अंगों में लीन होती हुई अर्थात् अंगों को सिकोड़े हुए सीता विभीषण के साथ भर्ता के निकट आई, और विस्मय, हर्ष तथा स्नेह से युक्त सौम्यतर मुखवाली सीता ने अपने देवता पति के सौम्य मुख का दर्शन किया ॥

इति पञ्चपंचाशः सर्गः

अथ षट्पञ्चाशः सर्गः

सं०–अब राम का सीता को अस्वीकार करना कथन करते हैं:–

तां तु पार्श्वेस्थितां प्रह्वां रामः संप्रेक्ष मैथिलीम् ।
हृदयान्तर्गतं भावं व्याहर्तुमुपचक्रमे ॥१॥

एषासि निर्जिता भद्रे शत्रुं जित्वा रणाजिरे ।
पौरुषाद्यदनुष्ठेयं मयैतदुपपादितम् ॥२॥

गतोऽस्म्यन्तममर्षस्य धर्षणा सम्प्रमार्जिता ।
अवमानश्च शत्रुश्च युगपन्निहतौ मया॥३॥

अर्थ—तदनन्तर समीप बैठी हुई उस विनीता सीता को देख कर राम अपने हृदय के भीतरी भाव कहने लगे कि हे भद्रे ! तू रण में शत्रु को मारकर जीती गई है जो पौरुष से करने योग्य था वह मैंने किया, अब मेरा क्रोध शान्त होगया, जो शत्रु मुझे दबाना चाहता था वह भय भी न रहा और जो मेरा अपमान हुआ था वह तथा शत्रु दोनों मैंने एक साथ जय कर लिये हैं ॥

अद्य मे पौरुषं दृष्टमद्य मे सफलः श्रमः ।
अद्य तीर्णप्रतिज्ञोऽयं प्रभवाम्यद्य चात्मनः ॥४॥
या त्वं विरहिता नीता चलचित्तेन रक्षसा ।
दैवसम्पादितो दोषो मानुषेण मया जितः ॥५॥
संप्राप्तमवमानं यस्तेजसा न प्रमार्जति ।
कस्तस्य पौरुषेणार्थो महताप्यल्पचेतसः ॥६॥
लंघनं च समुद्रस्य लङ्कायाश्चापि मर्दनम् ।
सफलं तस्य च श्लाघ्यमद्य कर्म हनूमतः ॥७॥

अर्थ—आज मेरा पौरुष दृष्टिगत हुआ, आज मेरा श्रम सफल हुआ, आज मैं प्रतिज्ञा पूर्ण करके अपने को बड़ा प्रभाव शाली मानता हूं, जो तू मुझसे रहित हुई चञ्चलचित्त वाले राक्षस से हरी गई थी सो यह दैवकृत दोष भी मैंने स्वपराक्रम से जीत लिया है, जो पुरुष प्राप्त हुए अपमान को अपने तेज से नहीं हटाता उस लघु चित्तवाले के बड़े पौरुष से भी कुछ लाभ

नहीं होता, समुद्र को लङ्घकर आना और लङ्का का मर्दन करना यह हनुमान् का सराहनीय कर्म आज सफल हुआ है ॥

युद्धे विक्रमतश्चैव हितं मन्त्रयतस्तथा ।
सुग्रीवस्य स सैन्यस्य सफलोऽद्य परिश्रमः ॥८॥
विभीषणस्य च तथा सफलोऽद्य परिश्रमः ।
विगुणं भ्रातरं त्यक्त्वा यो मां स्वयमुपास्थितः ॥९॥
इत्येवं वदतः श्रुत्वा सीता रामस्य तद्वचः ।
मृगीवोत्फुल्लनयना बभूवाश्रुपरिप्लुता ॥१०॥

अर्थ—और युद्ध में विक्रम दिखलाते तथा हित सोचते हुए सुग्रीव का परिश्रम आज सफल हुआ है, विभीषण का परिश्रम भी आज मफल हुआ जो विगुण=गुण से रहित भाई को त्याग कर मुझे प्राप्त हुआ था, इस प्रकार कहते हुए राम के बचन सुनकर मृगी की न्यांई खिले हुए नेत्रों वाली सीता अपने आंसुओं से भीग गई ॥

पश्यतस्तां तु रामस्य समीपे हृदयप्रियाम् ।
जनवादभयाद्राज्ञो बभूव हृदयं द्विधा ॥११॥
सीतामुत्पलपत्राक्षीं नीलकुंचितमूर्धजाम् ।
अवदद्वै वरारोहां मध्ये वानर रक्षसाम् ॥१२॥
यत्कर्तव्यं मनुष्येण धर्षणां प्रतिमार्जता ।
तत्कृतं रावणं हत्वा मयेदं मानकांक्षिणा ॥१३॥

निर्जिता जीवलोकस्य तपसा भावितात्मना ।
अगस्त्येन दुराधर्षा मुनिना दक्षिणेव दिक् ॥१४॥

अर्थ–हृदय की परमप्यारी उस सीता को अपने समीप देखकर लोकनिन्दा के भय से राम का हृदय संदिग्ध होगया, तब उस कमलतुल्य नेत्रों वाली तथा काले घुंघुवारे केशों वाली वरारोहा सीता को वानर तथा राक्षसों के बीच राम ने कहा कि अपमान को दूर करने के लिये जो मनुष्य का कर्तव्य होना चाहिये वह मान की रक्षा करते हुए रावण को मारकर मैंने पूर्ण कर दिया है, सब मनुष्यों की पहुंच से परे दक्षिण दिशा जैसे शुद्धात्मा अगस्त्यमुनि ने तप से जीती थी वैसी ही मुझ से जीती गई है ॥

विदितश्चास्तु भद्रं ते योऽयं रणपरिश्रमः ।
सुतीर्णः सुहृदां वीर्यान्न त्वदर्थं मया कृतः ॥१५॥
रक्षता तु मया वृत्तमपवादं च सर्वतः ।
प्रख्यातस्यात्मवंशस्य न्यंगं च परिमार्जिता ॥१६॥
प्राप्तचारित्र सन्देहा मम प्रतिमुखेस्थिता ।
दीपो नेत्रातुरस्येव प्रतिकूलासि मे दृढा ॥१७॥

अर्थ–हे सीता ! तेरा कल्याण हो, तुझे विदित हो कि यह रण का परिश्रम सुहृदों की शक्ति से जो मैंने पार किया है अर्थात् इस युद्ध में जो मैं कृतकार्य्य हुआ हूं वह तेरे अर्थ नहीं किन्तु अपने आचार की रक्षा, अपवाद का नाश और अपने

विख्यात वंश के कलङ्क को दूर करने के लिये मैंने यह सब कुछ किया है, सो जिसके चरित्र में सन्देह करने का अवसर प्राप्त है वह मेरे सन्मुख स्थित हुई तू नेत्ररोगी को दीपक की भांति निःसन्देह प्रतिकूल है अर्थात् तेरे आचार पर मुझे सन्देह होने से तू मुझे ग्राह्य नहीं ॥

कः पुमांस्तु कुले जातः स्त्रियं परगृहोषिताम् ।
तेजस्वी पुनरादद्यात्सुहल्लोभेन चेतसा ॥ १८ ॥
रावणाङ्कपरिक्लिष्टां दृष्टां दुष्टेन चक्षुषा ।
कथं त्वां पुनरादद्यां कुलं व्यपदिशन्महत् ॥ १९ ॥

अर्थ—ऐसा कौन तेजस्वी पुरुष है जो बड़े कुल में उत्पन्न होकर सुहृद् के लोभ से दूसरे के घर रही हुई स्त्री को फिर ग्रहण करे, रावण की गोद में बैठी हुई तथा दुष्ट दृष्टि से देखी हुई तुझको अपना बड़ा कुल कहाता हुआ मैं फिर कैसे ग्रहण करूं॥

ततः प्रियार्ह श्रवणातदप्रियं प्रियादुपश्रुत्य-
चिरस्यमानिनी । मुमोच बाष्पं रुदती
तदाभृशं गजेन्द्र हस्ताभि हतेवबल्लरी॥२०॥

अर्थ—प्रियबाणी सुनने योग्य, चिरकाल से मान पाने वाली राम की प्यारी जानकी उक्त अप्रिय वचन सुनकर रुदन करती हुई आंसु बहाने लगी और हाथी की सूंड़ से विध्वंस कीहुई फूली लता के समान व्यथित होगई ॥

इति षट्पञ्चाशः सर्गः

अथ सप्तपञ्चाशः सर्गः

सं०-अब राम का अग्नि की साक्षी द्वारा सीता को ग्रहण करना कथन करते हैं :—

एवमुक्त्वा तु वैदेही परुषं रोमहर्षणम् ।
राघवेण सरोषेण श्रुत्वा प्रव्यथिताभवत् ॥ १ ॥
प्रविशन्तीव गात्राणि स्वानि सा जनकात्मजा ।
वाक्शरैस्तैः सशल्येव भृशमश्रूण्यवर्तयत् ॥ २ ॥
ततो बाष्पपरिक्लिन्नं प्रमार्जन्ती स्वमाननम् ।
शनैर्गद्गदया वाचा भर्तारमिदमब्रवीत् ॥ ३ ॥

अर्थ-उक्त प्रकार क्रुद्ध हुए राम से रोंगटे खड़े करनेवाले कठोर वाक्य सुनकर सीता बहुत दुःखी हुई और लज्जा से मानो अपने अङ्गों में लीन होती हुई अर्थात् संकोच करती हुई जनकसुता राम की उग्र बाणतुल्य बाणी से विंधी हुई आंसु बहाने लगी, और आंसुओं से भीगे हुए अपने मुख को पोंछती हुई गद्गदबाणी द्वारा धीरे २ अपने भर्ता से बोली कि :—

किं मामसदृशं वाक्यमीदृशं श्रोत्रदारुणम् ।
रूक्षं श्रावयसे वीर प्राकृतः प्राकृतामिव ॥ ४ ॥
न तथास्मि महाबाहो यथा मामवगच्छसि ।
प्रत्ययं गच्छ मे स्वेन चारित्रेणैव ते शपे ॥ ५ ॥

यदहं गात्रसंस्पर्शं गतास्मि विवशा प्रभो ।
कामकारो न मे तत्र दैवं तत्रापराध्यति ॥ ६ ॥
मदधीनं तु यत्तन्मे हृदयं त्वयि वर्तते ।
पराधीनेषु गात्रेषु किं करिष्याम्यनीश्वरी ॥ ७ ॥

अर्थ–हे प्रिय ! आप मुझे ऐसा शुष्क वाक्य कैसे सुनाते हैं जो मेरे कानों को कठोर प्रतीत होता है, यह वाक्य ऐसा है जैसे कोई प्राकृत पुरुष किसी प्राकृत स्त्री को कहता है, हे महाबाहो ! मैं वैसी नहीं हूं जैसी मुझे आप जानते हैं, आप मुझ पर विश्वास करें मैं अपने चरित्र से तुम्हारी शपथ करती हूं, मैं बेवस हुई जो परपुरुष के अङ्गस्पर्श को प्राप्त हुई हूं, सो हे प्रभो ! इसमें मेरी इच्छापूर्वक होना नहीं पाया जाता, इसमें दैव का अपराध है, मेरे अधीन जो मेरा हृदय है वह आपमें वर्तता है अर्थात् सदा तुम्हारे पास है, और इन पराधीन अङ्गों में असमर्थ हुई मैं क्या करूं अर्थात् मेरे कुछ वस की बात नहीं ॥

सह संवृद्धभावेन संसर्गेण च मानद ।
यदि तेऽहं न विज्ञाता हता तेनास्मि शाश्वतम्॥८॥
न प्रमाणीकृतः पाणिर्बाल्ये मम निपीडितः ।
मम भक्तिश्च शीलं च सर्वं ते पृष्ठतः कृतम् ॥ ९ ॥
इति ब्रुवन्ती रुदती बाष्पगद्गदभाषिणी ।
उवाच लक्ष्मणं सीता दीनंध्यानपरायणम् ॥१०॥

अर्थ–हे मान के देने वाले ! एक साथ दोनों का परस्पर प्रेम बढ़ने तथा इकट्ठा रहने से यदि आपने मुझे नहीं जाना अर्थात्

विश्वास नहीं किया तो मैं सदा के लिये हत होगई, बाल्यावस्था में पकड़े हुए मेरे हाथ को भी आपने प्रमाण नहीं किया और मेरी भक्ति तथा शील आदि सब कुछ पीछे कर दिये, इस प्रकार कहती, रोती तथा आंसुओं से गद्गदवाणी द्वारा बोलती हुई सीता ध्यानपरायण=चुप बैठे हुए दीन लक्ष्मण से बोली कि :—

चितां मे कुरु सौमित्रे व्यसनस्यास्य भेषजम् ।
मिथ्यापवादोपहता नाहं जीवितुमुत्सहे ॥ ११ ॥
अप्रीतेन गुणैर्भर्त्रा त्यक्ताया जनसंसदि ।
या क्षमा मे गतिर्गन्तुं प्रवेक्ष्ये हव्यवाहनम् ॥१२॥
एवमुक्तस्तु वैदेह्या लक्ष्मणः परवीरहा ।
अमर्षवशमापन्नो राघवं समुदैक्षत ॥ १३ ॥
स विज्ञाय मनश्छन्दं रामस्याकारसूचितम् ।
चितां चकार सौमित्रिर्मते रामस्य वीर्यवान् ॥१४॥

अर्थ—हे लक्ष्मण ! मेरे लिये चिता बना जो इस विपद् के लिये औषध है, क्योंकि मिथ्या अपवाद से दूषित हुई मैं जीना नहीं चाहती, मेरे गुणों से अप्रसन्न हुए भर्ता से इस सभा में त्यागी हुई की जो उचित गति होसक्ती है वह यही है कि मैं अग्नि में प्रवेश करूं, सीता के इस प्रकार कथन करने पर वीरशत्रुओं का हनन करने वाला लक्ष्मण आवेश में आया हुआ राम की ओर देखने लगा, और आकार से जतलाये हुए राम के अन्तरीय भाव को जानकर वीर्यवान् लक्ष्मण ने राम की सम्मति से सीता की चिता बनाई ॥

नहि रामं तदा कश्चित्कालान्तकयमोपमम् ।
अनुनेतुमथो वक्तुं द्रष्टुं वाप्यशकत्सुहृत् ॥ १५ ॥
अधोमुखं स्थितं रामं ततः कृत्वा प्रदक्षिणम् ।
उपावर्तत वैदेही दीप्यमानं हुताशनम् ॥ १६ ॥
प्रणम्य दैवतेभ्यश्च ब्राह्मणेभ्यश्च मैथिली ।
बद्धाञ्जलिपुटा चेदमुवाचाग्निसमीपतः ॥ १७ ॥

अर्थ—उस समय राम ने अपना रूप कालान्तक यम के समान ऐसा भयानक बना लिया कि राम को कोई सुहृद् न आश्वासन देसका, न कुछ कहसका और न देखसका, तब नीचे मुख किये हुए सीता बैठे हुए राम की प्रदक्षिणा करके प्रदीप्त अग्नि के समीप आई, और देवताओं तथा ब्राह्मणों को प्रणाम करके सीता हाथ जोड़कर अग्नि के समीप यह बोली कि:—

यथा मे हृदयं नित्यं नापसर्पति राघवात् ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥१८॥
यथा मां शुद्धचारित्रां दुष्टां जानाति राघवः ।
तथा लोकस्य साक्षी मां सर्वतः पातु पावकः ॥१९॥

अर्थ—जैसे मेरा हृदय राघव से कभी पृथक् नहीं होता वैसी मुझे लोक के साक्षी अग्नि सब ओर से पवित्र करके दिखला, यदि मुझ शुद्धचरित्रवाली को राम दुष्ट जानते हैं तो लोक का साक्षी अग्नि मुझ सब ओर से पवित्र करे ॥

अब्रवीत्तु तदा रामं साक्षी लोकस्य पावकः ।
एषा ते राम वैदेही पापमस्यां न विद्यते ॥ २० ॥
नैव वाचा न मनसा नैव बुद्ध्या न चक्षुषा ।
सुवृत्ता वृत्तशौटीर्यं न त्वामत्यचरच्छुभा ॥ २१ ॥
प्रलोभ्यमाना विविधं तर्ज्यमाना च मैथिली ।
नाचिन्तयत तद्रक्षस्त्वद्गतेनान्तरात्मना ॥ २२ ॥
विशुद्धभावां निष्पातां प्रतिगृह्णीष्व मैथिलीम् ।
न किंचिदभिधातव्या अहमाज्ञापयामि ते ॥२३॥

अर्थ—तब वह लोक का साक्षी अग्नि राम से बोला कि हे राम ! यह तेरी वैदेही पवित्र है इसमें कोई पाप नहीं, यह उत्तम आचरणों वाली देवी बड़ी शुभ है और यह आचरण के अभिमान वाली न वाणी, न मन, न बुद्धि और न नेत्रों से तेरा कभी उल्लङ्घन करती है, भांति २ के प्रलोभन तथा धमकियें दीहुई मैथिली ने तुझ में लगे अन्तरात्मा से उस राक्षस की ओर कभी दृष्टि नहीं दी, मैं तुम्हें आज्ञा देता हूं कि तुम इस शुद्ध भाव वाली निष्पाप जानकी को स्वीकार करो, यह कुछ कहने योग्य नहीं ॥

ततः प्रीतमना रामः श्रुत्वैवं वदतांवरः ।
दध्यौ मुहूर्तं धर्मात्मा हर्षव्याकुल लोचनः ॥२४॥
एवमुक्तो महातेजा धृतिमानुरुविक्रमः ।
उवाच त्रिदशश्रेष्ठं रामो धर्मभृतांवरः ॥ २५ ॥

अर्थ-तदनन्तर बोलने में श्रेष्ठ धर्मात्मा राम अग्नि के उक्त कथन को सुनकर प्रसन्न मन हुए हर्ष से व्याकुल नेत्रों वाले कुछ काल के लिये ध्यानावस्थित हो सोचने लगे, अग्नि के उक्त प्रकार कथन करने पर महातेजस्वी, धैर्य्य वाले, पराक्रमशाली और धर्मधारियों में श्रेष्ठ राम देवश्रेष्ठ अग्नि से बोले कि :—

नेयमर्हति वैक्लव्यं रावणान्तःपुरे सती ।
अनन्या हि मया सीता भास्करस्य प्रभा यथा ॥२६॥
विशुद्धा त्रिषु लोकेषु मैथिली जनकात्मजा ।
न विहातुं मया शक्या कीर्तिरात्मवता यथा॥२७॥

अर्थ-यह सती सीता रावण के अन्तःपुर में घबराने योग्य न थी, क्योंकि सूर्य्यप्रभा की भांति सीता मुझसे भिन्न नहीं है, तीनों लोकों में शुद्ध जनकसुता मैथिली का मैं त्याग नहीं सक्ता, जैसे जितेन्द्रिय पुरुष कीर्ति को नहीं त्यागता है ॥

इत्येवमुक्त्वा विजयी महाबलः प्रशस्य
मानः स्वकृतेन कर्मणा । समेत्य रामः प्रियया
महायशाः सुखं सुखार्होऽनुबभूव राघवः॥२८॥

अर्थ-इस प्रकार कहकर विजयी, महाबली तथा महायशस्वी सुख के योग्य राम अपने कर्मों से प्रशंसित हुए २ अपनी प्रिया के साथ सुख अनुभव करने लगे ॥

भाष्य-प्रिय पाठकवृन्द! इस स्थल में यह लिखा है कि लक्ष्मण की बनाई हुई चिता को प्रदीप्त कर उसकी परिक्रमा करके

सीता अग्नि में प्रविष्ट हुई और जलती हुई अग्नि में प्रवेश करते हुए वहां सब जनसमूह ने देखा, तदनन्तर उस चिता के ठण्डे होने पर ज्यों की त्यों उस निन्दा के अयोग्य वैदेही को गोद में लेकर अग्नि ने राम के अर्पण किया ॥

हमारे विचार में जैसे सीता की उत्पत्ति विषयक लेख असम्भव है इसी प्रकार यह लेख भी असम्भव प्रतीत होता है कि मनुष्य प्रदीप्त अग्नि में प्रवेश करे और फिर न जले, अग्नि के दाहशक्ति रूप गुण के सन्मुख संसार का कौन पदार्थ है जो बिना भस्म हुए स्थिर रहसक्ता है, और न कोई ऐसा पदार्थ है जो अग्नि के तेज को सहार सके, हां इतना अंश ठीक प्रतीत होता है कि अग्नि प्रज्वलित करके उसके समक्ष सीता ने यह शपथ उठाई कि मैं निर्दोष हूं, जैसा कि आजकल लोक में भी देखाजाता है कि अपने २ धर्मबोधक पदार्थों की लोग शपथ उठाते हैं, इस प्रकार सीता ने अग्नि की साक्षी दी और वह पतिव्रता सिद्ध हुई, इसी भाव को रोचिक बनाने के लिये कवि ने सीता के सम्पूर्ण शरीर का दाह वर्णन किया है, और यहां अग्नि तथा राम का परस्पर वार्तालाप अलङ्कार से है यथार्थ नहीं, क्योंकि जड़ अग्नि में भाषणशक्ति नहीं होसकती ॥

इति सप्तपञ्चाशः सर्गः

अथ अष्टपञ्चाशः सर्गः

सं०-अब राम का अयोध्या को लौटने के लिये विभीषण से आज्ञा मांगना कथन करते हैं:—

तां रात्रिमुषितं रामं सुखोदितमरिन्दमम् ।
अब्रवीत्प्राञ्जलिर्वाक्यं जयं पृष्ट्वा विभीषणः ॥१॥
स्नानानि चांगरागाणिवस्त्राण्याभरणानि च ।
चन्दनानि च माल्यानि दिव्यानि विविधानिच॥२॥
अलङ्कारविश्चैता नार्यः पद्मनिभेक्षणाः ।
उपस्थितास्त्वां विधिवत्स्नापयिष्यन्ति राघवः॥३॥
एवमुक्तस्तु काकुत्स्थः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
हरीन्सुग्रीवमुख्यांस्त्वं स्नानेनोपनिमन्त्रय ॥४॥

अर्थ—वह रात व्यतीत कर सुख से जागे हुए शत्रुओं को दमन करने वाले राम से विभीषण "जय हो" इस प्रकार कहकर हाथ जोड़ यह वाक्य बोला कि स्नान की सामग्री तैलादि अंगराग, वसन, भूषण, चन्दन तथा विविध दिव्य मालायें, और अलंकार के जानने वालीं, पद्मपत्र तुल्य नेत्रों वालीं यह स्त्रियें उपस्थित हैं जो आपको विधिवत् स्नान करावेंगी, विभीषण के इस प्रकार कथन करने पर राम ने उनको यह उत्तर दिया कि आप सुग्रीव आदि वानरों को स्नान का निमन्त्रण दें ॥

स तु ताम्यति धर्मात्मा मम हेतोः सुखोचितः ।
सुकुमारो महाबाहुर्भरतः सत्यसंश्रयः ॥५॥
तं विना कैकेयीपुत्रं भरतं धर्मचारिणम् ।
न मे स्नानं बहुमतं वस्त्राण्याभरणानि च ॥६॥

एतत्पश्य यथाक्षिप्रं प्रतिगच्छाम तां पुरीम् ।
अयोध्यां गच्छतो ह्येष पन्थाः परमदुर्गमः ॥७॥

अर्थ—मेरे कारण वह सुखों के योग्य, सुकुमार, महाबाहु, सत्यप्रतिज्ञ तथा धर्मात्मा भरत दुःखित होरहा है सो उस कैकेयी-पुत्र के बिना मुझे स्नान, वस्त्र और भूषण धारण करना अच्छा नहीं लगता, अब यह विचार करना चाहिये जिससे शीघ्र अयोध्यापुरी पहुंच जावें, क्योंकि यहां से जाने वाले के लिये मार्ग बड़ा विषम है ॥

एवमुक्तस्तु काकुत्स्थं प्रत्युवाच विभीषणः ।
अह्ना त्वां प्रापयिष्यामि तां पुरीं पार्थिवात्मज ॥८॥
पुष्पकं नाम भद्रं ते विमानं सूर्यसन्निभम् ।
मम भ्रातुः कुवेरस्य रावणेन बलीयसा ॥९॥
हृतं निर्जित्य संग्रामे कामगं दिव्यमुत्तमम् ।
त्वदर्थंपालितं चेदं तिष्ठत्यतुलविक्रम ॥१०॥
तदिदं मेघसंकाशं विमानमिह तिष्ठति ।
येन यास्यसि यानेन त्वमयोध्यां गतज्वरः ॥११॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर विभीषण उनसे बोला कि हे राजपुत्र ! तुम्हें एक दिन में अयोध्या पहुंचाउंगा, आपका कल्याण हो, हे राम ! सूर्य तुल्य पुष्पक नाम विमान जो मेरे भाई बलवान् रावण ने कुवेर को संग्राम में जीतकर उससे छीना था, जो इच्छानुसार चलने वाला तथा बड़ा दिव्य है, हे अतुलपराक्रम वाले राम ! वह आपके लिये तैयार खड़ा है, सो यह

मेघतुल्य विमान जो यहां स्थित है उसी पर चढ़कर आप सुखपूर्वक अयोध्यापुरी को गमन करेंगे, पर प्रार्थना यह है कि:—

अहं ते यद्यनुग्राह्यो यदि स्मरसि मे गुणान् ।
वस तावदिह प्राज्ञ यद्यस्ति मयि सौहृदम् ॥१२॥
प्रीतियुक्तस्य विहितां ससैन्यः ससुहृद्गणः ।
सत्क्रियां राम मे तावद्गृहाण त्वं मयोद्यताम्॥१३॥
एवमुक्तस्ततो रामः प्रत्युवाच विभीषणम् ।
रक्षसां वानराणां च सर्वेषामेव शृण्वताम् ॥१४॥

अर्थ—यदि मैं आपका अनुग्राह्य=कृपा करने योग्य हूं, यदि मेरे गुणों को आप स्मरण करते हैं, यदि मुझ में आपका सौहार्द है तो आप कृपाकरके यहीं रहें, हे राम ! प्रीतिपूर्वक किये हुए मेरे इस सत्कार को सेना तथा सुहृद्गण के सहित स्वीकार करें ? विभीषण के इस प्रकार कथन करने पर सब राक्षस तथा वानरों के सुनते हुए राम ने उत्तर दिया कि:—

पूजितोऽस्मि त्वया वीर साचिव्येन परेण च ।
सर्वात्मना च चेष्टाभिः सौहार्देन परेण च ॥१५॥
न खल्वेतन्न कुर्यां ते वचनं राक्षसेश्वर ।
तं तु मे भ्रातरं द्रष्टुं भरतं त्वरते मनः ॥१६॥
मां निवर्तयितुं योऽसौ चित्रकूटमुपागतः ।
शिरसा याचतो यस्य वचनं न कृतं मया ॥१७॥

अर्थ—हे वीर ! तेरे परममित्रत्व तथा तैने जो दिल से युद्ध में काम किया है उससे और तैने जो परम सौहार्द से मेरा सत्कार किया है उससे मैं परम प्रसन्न हूं, हे राक्षसेश्वर ! मैं तेरे बचन को न मानूं यह नहीं होसक्ता, परन्तु भाई भरत को देखने के लिये मेरा मन बहुत आतुर होरहा है, जो मुझे लौटाने के लिये चित्रकूट में आया और सिर झुकाकर याचना करते हुए जिसके बचन को मैंने नहीं माना ॥

कौसल्यां च सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
गुरुं च सुहृदं पौरान् जानपदैः सह ॥१८॥
अनुजानीहि मां सौम्य पूजितोस्मि विभीषण ।
मन्युर्न खलु कर्तव्यः सखे त्वां चानुमानये ॥१९॥

अर्थ—और कौसल्या, सुमित्रा तथा यशस्विनी कैकेयी, गुरु लोगों तथा परिवार सहित पुरवासियों को देखने के लिये मेरा चित्त बड़ा आकुल होरहा है, सो कृपाकरके अब हमें आज्ञा दीजिये, आपने हमारा बड़ा सत्कार किया है, हे सखे ! आपके इस बचन को पूर्ण न करता हुआ क्षमा मांगता हूं ॥

उपस्थापय मे शीघ्रं विमानं राक्षसेश्वर ।
कृतकार्यस्य मे वासः कथं स्यादिह सम्मतः ॥२०॥
एवमुक्तस्तु रामेण राक्षसेन्द्रो विभीषणः ।
विमानं सूर्यसंकाशमाजुहाव त्वरान्वितः ॥२१॥

अर्थ—हे राक्षसेन्द्र ! आप मेरे लिये शीघ्र ही पुष्पक विमान

लावें, कृतकार्य्य हुए मेरा यहां रहना कैसे सम्मत होसक्ता है अर्थात् मुझे अब जाने की ही आज्ञा दें, तब राम के इस प्रकार कथन करने पर राक्षसेन्द्र विभीषण ने शीघ्र ही सूर्य्य तुल्य विमान मंगाया ॥

इति अष्टपंचाशः सर्गः

अथ एकोनषष्टितमःसर्गः

सं०–अब राम का सीता, लक्ष्मण तथा अन्य साथियों सहित विमान पर चढ़कर अयोध्या को प्रस्थान करना कथन करते हैं:—

उपस्थितं तु तं कृत्वा पुष्पकं पुष्पभूषितम् ।
अविदूरे स्थितो राममित्युवाच विभीषणः ॥१॥
स तु बद्धांजलिपुटो विनीतो राक्षसेश्वरः ।
तमब्रवीन्महातेजा इदं स्नेहपुरस्कृतम् ॥२॥
कृतप्रयत्नकर्माणः सर्व एव वनौकसः ।
रत्नैरर्थैश्च विविधैः संपूज्यन्तां विभीषण ॥३॥

अर्थ–तदनन्तर पुष्पों से भूषित उस पुष्पकविमान को उपस्थित करके दोनों हाथ जोड़ विनीतभाव=नम्रतापूर्वक शीघ्रता करता हुआ विभीषण राम से बोला कि अब मेरा क्या कर्तव्य है अर्थात् मुझे अब क्या करना चाहिये ? तब उसको महातेजस्वी

राम ने स्नेहपूर्वक उत्तर दिया कि हे विभीषण ! इन सब वानरों का विविधि रत्नों और धनों से तुम्हें सत्कार करना चाहिये जिन्होंने बड़े प्रयत्न से युद्ध किया है ॥

सहामीभिस्त्वया लङ्का निर्जिता राक्षसेश्वरः ।
हृष्टैः प्राणभयं त्यक्त्वा संग्रामेष्वनिवर्तिभिः ॥४॥

अर्थ—और प्राणों का भय त्यागकर युद्ध में उत्साह वाले तथा संग्रामों में पीठ न दिखाने वाले जो यह वानर हैं जिनके साथ तैने लङ्का जीती है इनका सत्कार कर ॥

त इमे कृतकर्माणः सर्वएव वनौकसः ।
धनरत्नप्रदानैश्च कर्मैषां सफलं कुरु ॥ ५ ॥
हीनरतिगुणैः सर्वैरभिहन्तारमाहवे ।
सेनात्यजति संविग्ना नृपतिं तं नरेश्वर ॥ ६ ॥

अर्थ—इन बड़े कर्मों वाले कृतकार्य्य हुए सब वानरों का धन तथा रत्नादि से सत्कार कर जिससे इनके किये कर्म सफल हों, हे राजन् ! रति=प्रीति उत्पन्न करने वाले दानमानादि गुणों से हीन तथा अनुचित वचन कहकर ताड़न करने वाले राजा को उद्विग्न हुई सेना समर के बीच त्याग देती है ॥

एवमुक्तस्तु रामेण वानरास्तान्विभीषणः ।
रत्नार्थसंविभागेन सर्वानेवाभ्यपूजयत् ॥ ७ ॥
ततस्तान्पूजितान्दृष्ट्वारत्नार्थैर्हरियूथपान् ।
आरुरोह तदा रामस्तद्विमानमनुत्तमम् ॥ ८ ॥

अंकेनादाय वैदेहीं लज्जमानां मनस्विनीम्।
लक्ष्मणेन सह भ्रात्रा विक्रान्तेन धनुष्मता ॥९॥
अब्रवीत्स विमानस्थः पूजयन्सर्ववानरान्।
सुग्रीवं च महावीर्यं काकुत्स्थः स विभीषणम् ॥१०॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर विभीषण ने उन सब वानरों का धन तथा रत्न बांटकर यथाविधि पूजन=सत्कार किया, तब रत्न और धनों से उन वानरसेनापतियों का सत्कार होता देखकर राम उस लजाती हुई मनस्विनी सीता को गोद में लेकर पराक्रमी धनुषधारी भाई लक्ष्मण के साथ उस अत्युत्तम विमान पर चढ़े, विमान पर स्थित हुए राम ने सब वानरों का सत्कार किया और महावीर्य सुग्रीव तथा विभीषण से बोले कि:—

मित्रकार्य्यं कृतमिदं भवद्भिर्वानरर्षभाः।
अनुज्ञाता मया सर्वे यथेष्टं प्रतिगच्छत ॥ ११ ॥
यत्तुकार्यं वयस्येन स्निग्धेन च हितेन च।
कृतं सुग्रीव तत्सर्वं भवताऽधर्मभीरुणा ॥ १२ ॥
किष्किन्धां प्रति याह्याशु स्वसैन्येनाभि संवृतः।
स्वराज्ये वस लङ्कायां मया दत्ते विभीषण ॥१३॥
अयोध्यां प्रति यास्यामि राजधानीं पितुर्मम।
अभ्यनुज्ञातुमिच्छामि सर्वानामन्त्रयामि वः ॥१४॥

अर्थ हे वानरश्रेष्ठ आपने यह बड़ा मित्रकार्य्य किया है अब मैं तुम्हें आज्ञा दता हूं कि आप सब अपनी २ इच्छानुसार

जायं, हे सुग्रीव! जो एक प्यारे स्नेही मित्र का काम है वह धर्म के भय से आपने पूर्ण किया है, अब आप अपनी सेना से युक्त होकर शीघ्र ही किष्किन्धा को जायं, और हे विभीषण! आप मुझसे दिये हुए अपने राज्य लङ्का में वास करें, और मैं अपने पिता की राजधानी अयोध्या को लौटूंगा, सो मैं आप सब से पूछकर आज्ञा चाहता हूं॥

एवमुक्तस्तु रामेण हरीन्द्रा हरयस्तथा।
ऊचुः प्राञ्जलयः सर्वे राक्षसश्च विभीषणः॥ १५॥
अयोध्यां गन्तुमिच्छामः सर्वान्नयतु नो भवान्।
मद्युक्ता विचरिष्यामो वनान्युपवनानि च॥१६॥
दृष्ट्वा त्वामभिषेकार्हं कौसल्यामभिवाद्य च।
अचिरादागमिष्यामः स्वगृहान्नृपसत्तम॥ १७॥
एवमुक्तस्तु धर्मात्मा वानरैः सविभीषणैः।
अब्रवीद्वानरान्रामः ससुग्रीवविभीषणान्॥ १८॥

अर्थ—राम के उक्त प्रकार कथन करने पर वह सब वानर, वानरपति और राक्षस विभीषण हाथ जोड़कर बोले कि हम सब आपके साथ अयोध्या को जाना चाहते हैं, सो आप हम सब को अपने साथ लेचलें, वहीं हम लोग आनन्दपूर्वक वन उपवनों में विचरेंगे, और हे नृपवर! आपका अभिषेक देखकर तथा माता कौसल्या को अभिवादन करके शीघ्र ही अपने घरों को लौट आवेंगे, विभीषण और सुग्रीवादि वानरों के इस प्रकार कथन करने पर वह धर्मात्मा राम सुग्रीव, विभीषण और सब वानरों से मुसकरा कर बोले कि:—

प्रियात्प्रियतरं लब्धं यदहं ससुहृज्जनः ।
सर्वैर्भवद्भिः सहितः प्रीतिं लप्स्ये पुरीं गतः ॥१९॥
क्षिप्रमारोह सुग्रीव विमानं सह वानरैः ।
त्वमप्यारोह सामात्यो राक्षसेन्द्र विभीषणः ॥२०॥
ततः स पुष्पकं दिव्यं सुग्रीवः सह वानरैः ।
आरुरोह मुदा युक्तः सामात्यश्च विभीषणः ॥२१॥
तेष्वारूढेषु सर्वेषु कौबेरंपरमासनम् ।
राघवेणाभ्यनुज्ञातमुत्पपात विहायसम् ॥ २२ ॥
खगतेन विमानेन हंसयुक्तेन भास्वता ।
प्रहृष्टश्च प्रतीतश्च बभौ रामः कुबेरवत् ॥ २३ ॥

अर्थ–एक प्रिय से यह दूसरा अधिक प्रिय मुझे प्राप्त हुआ है जो मैं आप सबके सहित अयोध्या में पहुंच अपने भरत आदि सुहृदों से मिलकर परमप्रीति को लाभ करुंगा, हे सुग्रीव ! शीघ्र ही वानरों सहित विमान पर आरूढ़ हो, और हे राक्षसेन्द्र विभीषण ! आप भी मंत्रियों सहित शीघ्र चढ़ें, तब आनन्द से युक्त हुआ वानरों सहित सुग्रीव और मंत्रियों सहित विभीषण उस दिव्य यान पर चढ़ गये, उन सब के बैठ जाने पर वह कुबेर का उत्तम आसन राम से आज्ञा दिया हुआ आकाश की ओर उड़ा, आकाश में चलते हुए उस हंस की आकृति के मुख वाले विमान पर प्रसन्न वदन तथा प्रसन्नचित्त बैठे हुए राम कुबेर के तुल्य शोभायमान प्रतीत होते थे ॥

इति एकोनषष्ठितमः सर्गः

अथ षष्ठितमः सर्गः

सं०—अब राम का विमान पर से सीता को मार्ग के दृश्य दिखलाना कथन करते हैं :—

पातयित्वाततश्चक्षुः सर्वतो रघुनन्दनः ।
अब्रवीन्मैथिलीं सीतां रामः शशिनिभाननाम् ॥१॥
कैलास शिखराकारे त्रिकूटशिखिरे स्थिताम् ।
लङ्कामीक्षस्व वैदेहि निर्मितां विश्वकर्मणा ॥ २ ॥
एतदायोधनं पश्य मांसशोणितकर्दमम् ।
हरीणां राक्षसानां च सीते विशसनं महत् ॥ ३ ॥
एष दत्तवरः शेते प्रमाथी राक्षसेश्वरः ।
कुम्भकर्णोऽथ निहतः प्रहस्तश्च निशाचरः ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर रघुकुलनन्दन राम सब ओर दृष्टि फैलाकर चन्द्रतुल्य मुखवाली मैथिली सीता से बोले कि हे वैदेहि ! कैलास शिखर समान इस त्रिकूट पर्वत के शिखर पर स्थित विश्वकर्मा द्वारा निर्मित हुई इस लङ्का को देख, और इस युद्ध स्थान को देख जहां वानर और राक्षसों का बड़ा बध होने से मांस और लोहू का कीचड़ बहा है, यहां वह कष्ट देने वाला रावण सोया हुआ है, यहां कुम्भकर्ण और यहां प्रहस्त राक्षस मरा है ॥

धूम्राक्षश्चात्रनिहतो वानरेण हनूमता ।
लक्ष्मणेनेन्द्रजिच्चात्र रावणिर्निहतो रणे ॥ ५ ॥

अङ्गदेनात्र निहतो विकटो नाम राक्षसः ।
विरूपाक्षश्च दुष्प्रेक्षो महापार्श्व महोदरौ ॥ ६ ॥
अकम्पनश्च निहतो बलिनोऽन्ये च राक्षसाः ।
त्रिशिराश्चाति कायश्च देवान्तकनरान्तकौ ॥७॥
युद्धोन्मत्तश्चमत्तश्च राक्षसप्रवरावुभौ ।
निकुम्भश्चैव कुम्भश्च कुम्भकर्णात्मजौ बली ॥ ८ ॥
वज्रदंष्ट्रश्चदंष्ट्रश्च बहवो राक्षसा हताः ।
मकराक्षश्चदुर्धर्षो मया युधि निपातितः ॥ ९ ॥
अत्र मन्दोदरी नाम भार्या तं पर्यदेवयत् ॥१०॥

अर्थ–यहां हनुमान् वानर ने धूम्राक्ष राक्षस का हनन किया और यहां लक्ष्मण ने रण में रावण के पुत्र इन्द्रजित् को मारा है, यहां अङ्गद ने विकट नाम राक्षस को मारा और यहां विरूपाक्ष, दुःप्रेक्ष, महापार्श्व, महोदर, अकम्पन मारे गये हैं, इसी प्रकार और भी अनेक राक्षस त्रिशिरा, अतिकाय, देवान्तक, नरान्तक यहां मारे हैं, और यहां युद्धोन्मत्त, मत्त यह दोनों तथा कुम्भकर्ण के पुत्र बड़े बली कुम्भ, निकुम्भ मरे हैं, वज्रदंष्ट्र, दंष्ट्र आदि बहुत राक्षसों का यहां हनन हुआ, और महादुर्धर्ष मकराक्ष का मैंने इस स्थान पर बध किया था और इस स्थान पर रावण की मन्दोदरी नाम भार्या ने रावण के लिये बड़ा विलाप किया ॥

एतत्तु दृश्यते तीर्थं समुद्रस्य वरानने ।
यत्र सागरमुत्तीर्य तां रात्रिमुषिता वयम् ॥ ११ ॥

एष सेतुर्मया बद्धः सागरे लवणार्णवे ।
तव हेतोर्विशालाक्षि नलसेतुः सुदुष्करः ॥ १२ ॥
पश्यसागरमक्षोभ्य वैदेहि वरुणालयम् ।
अपारमिव गर्जन्तं शंखशुक्तिसमाकुलम् ॥ १३ ॥

अर्थ—हे वरानने ! यह समुद्र का वह घाट दीखता है जहां हम समुद्र से पार उतरकर रात रहे थे, हे विशालाक्षि ! यह खारी समुद्र पर तेरे कारण मैंने पुल बंधवाया है जो बड़ा दुष्कर नलसेतु है,हे वैदेहि ! वरुण=जल के आलय इस अक्षोभ्य समुद्र को देख जो अपारसा प्रतीत होता और जो शङ्ख तथा सीपियों से भरा हुआ गर्ज रहा है ॥

हिरण्यनाभं शैलेन्द्रकांचनं पश्य मैथिलि ।
एतत्कुक्षौ समुद्रस्य स्कन्धावारनिवेशनम् ॥१४॥
अत्र पूर्वं महादेवः प्रसादमकरोद्विभुः ।
एतत्तु दृश्यते तीर्थं सागरस्य महात्मनः ॥१५॥
सेतुबन्ध इति ख्यातं त्रैलोक्येन च पूजितम् ।
अत्र राक्षसराजोऽयमाजगाम विभीषणः ॥१६॥

अर्थ—हे मैथिलि ! समुद्र की कुक्षि में इस चमकते हुए मैनाक पर्वत को देख, और यह समुद्र के इस ओर सेना की छावनी का स्थान है ? यहां पहले विभु महादेव=परमात्मा की बड़ी कृपा हुई उसी की कृपा से यह सब कुछ हुआ, यह इस बड़े सागर का वह बड़ा घाट है जो सेतुबन्ध नाम से विख्यात त्रिलोकी में आदृत होगा और यहां यह राक्षसराज विभीषण आकर मिला था ॥

एषा सा दृश्यते सीते किष्किन्धा चित्रकानना ।
सुग्रीवस्य पुरी रम्या यत्र बाली मया हतः ॥१७॥
अथ दृष्ट्वा पुरीं सीता किष्किन्धां बालिपालिताम् ।
अब्रवीत्प्रश्रितं वाक्यं रामं प्रणयसाध्वसा ॥१८॥

अर्थ—हे सीते ! यह विचित्र वनों वाली किष्किन्धा दीखती है जो बड़ी रमणीय सुग्रीव की पुरी है, यहां ही मैंने बाली को मारा था, तब बाली से पालित किष्किन्धांपुरी को देखकर सीता प्रेम तथा भयसहित राम से नम्रतापूर्वक बोली किः—

सुग्रीवंप्रियभार्याभिस्ताराप्रमुखतो नृप ।
गन्तुमिच्छे सहायोध्यांराजधानीं त्वया सह ॥१९॥
एवमुक्तोऽथ वैदेह्या प्राप्य संस्थाप्य राघवः ।
विमानं प्रेक्ष्य सुग्रीवं वाक्यमेतदुवाच ह ॥२०॥

अर्थ—हे नृप ! तारा आदि सुग्रीव की स्त्रियों को साथ लेकर आपके साथ राजधानी अयोध्यापुरी को जाना चाहती हूं, तब राम ने कहा एसा ही होगा, यह कहकर किष्किन्धा में पहुंच विमान को ठहरा राम सुग्रीव को देखकर बोले किः—

स्त्रीभिः परिवृताः सर्वे ह्ययोध्यां यान्तु सीतया ।
प्रविश्यान्तःपुरं शीघ्रं तारामुद्वीक्ष्य सोऽब्रवीत् ॥२१॥
तारया चाभ्यनुज्ञाता सर्वा वानरयोषितः ।
अध्यारोहन्विमानं तत्सीतादर्शन कांक्षया ॥२२॥

ताभिः सहोत्थितं शीघ्रं विमानं प्रेक्ष्य राघवः।
ऋष्यमूक समीपे तु वैदेहीं पुनरब्रवीत् ॥२३॥

अर्थ—आप सब स्त्रियों सहित सीता के साथ अयोध्या को चलें, राम का यह वाक्य सुनकर सुग्रीव शीघ्र ही अन्तःपुर में गया और तारा को देखकर सब वृत्त कहा, तब तारा की आज्ञानुसार सब वानरपत्नियें वस्त्राभूषण पहनकर सीता के दर्शन की इच्छा से विमान पर चढ़ गईं, उनके बैठने पर विमान शीघ्र उठा, उस उठे विमान को देखकर ऋष्यमूक के समीप पंहुच सीता से फिर राम बोले किः—

दृश्यतेऽसौ महान्सीते सविद्युदिव तोयदः।
ऋष्यमूको गिरिवरः कांचनैर्धातुभिर्वृतः ॥२४॥
अत्राहं वानरेन्द्रेण सुग्रीवेण समागतः।
समयश्च कृतः सीते वधार्थं बालिनो मया ॥२५॥
एषा सा दृश्यते पम्पा नलिनी चित्रकानना।
त्वया विहीनो यत्राहं विललाप सुदुःखितः ॥२६॥

अर्थ—हे सीते ! यह जो सुनहरी धातुओं से युक्त बिजुली वाले मेघ की भांति महानपर्वत ऋष्यमूक दिखाई देता है, यहां मैं वानर सुग्रीव से मिला और यहीं बाली के मारने का सङ्केत किया था, यह वह विचित्र वनों वाला पम्पासर है जहां तुझसे हीन हुआ मैं अतिदुःखित हो विलाप करता रहा था॥

अस्यास्तीरे मया दृष्टा शवरी धर्मचारिणी।
अत्र योजनबाहुश्च कबन्धो निहतो मया ॥२७॥

दृश्यतेऽसौ जनस्थाने श्रीमान्सीते वनस्पतिः ।
जटायुश्च महातेजास्तव हेतोर्विलासिनि ॥२८॥
रावणेन हतो यत्र पक्षिणां प्रवरो बली ॥२९॥
एतत्तदाश्रमपदमस्माकं वरवर्णिनि ।
पर्णशाला तथा चित्रा दृश्यते शुभदर्शने ॥३०॥

अर्थ—इसी के किनारे पर मैंने धर्मचारिणि भीलनी देखी, और यहां मैंने महाबाहु कबन्ध का हनन किया, हे सीते ! वह जो जनस्थान में बड़ा शोभायमान बनस्पति दृष्टिगत होता है, हे बिलासिनि ! यह वह स्थान है जहां तेरे कारण महातेजस्वी जटायु का रावण ने बध किया था, और हे वरवर्णिनि ! हे शुभदर्शने ! यह हमारा आश्रम है जहां बह बिचित्र पर्ण शाला दिखाई देती है ॥

यत्र त्वं राक्षसेन्द्रेण रावणेन हृता बलात् ।
एषा गोदावरी रम्या प्रसन्नसलिला शुभा ॥३१॥
अगस्त्यस्याश्रमश्चैव दृश्यते कदलीवृतः ।
दृश्यते चैव वैदेहि शरभंगाश्रमो महान् ॥३२॥

अर्थ—यह वह स्थान है जहां राक्षसेन्द्र रावण ने तुम्हें बल से हरा था, और यह सुहावनी निर्मल जलवाली सुन्दर गोदावरी है, यह केलों के वृक्षों से ढका हुआ अगस्त्य का आश्रम दीखता है, और हे वैदेहि ! यह शरभङ्ग ऋषि का महान् आश्रम है॥

एते ते तापसा देवि दृश्यन्ते तनुमध्यमे ।
अत्रिः कुलपतिर्यत्र सूर्यवैश्वानरोपमः ॥३३॥

अस्मिन्देशे महाकायो विराधो निहतो मया ।
अत्र सीते त्वया दृष्टा तापसी धर्मचारिणी ॥३४॥
असौ सुतनु शैलेन्द्रश्चित्रकूटः प्रकाशते ।
अत्र मां कैकेयीपुत्रः प्रसादयतुमागतः ॥३५॥

अर्थ—हे तनुमध्यमे देवि ! यह वह तपस्वी दीखते हैं जहां सूर्य्य तथा अग्नितुल्य तेजस्वी अत्रि ऋषि कुलपति हैं, इस स्थान पर मैंने महाकाय विराध का हनन किया था, और हे सीते ! यहां तैंने धर्मचारिणी तपस्विनी अत्रिऋषि की पत्नी अनसूया के दर्शन किये थे. हे सुतनु ! इस पर्वत पर यह चित्रकूट दीख रहा है, यहीं मुझे प्रसन्न करने के लिये कैकेयी का पुत्र भरत आया था॥

एषा सा यमुना रम्या दृश्यते चित्रकानना ।
भरद्वाजाश्रमः श्रीमान्दृश्यते चैव मैथिलि ॥३६॥
इयं च दृश्यते गंगा पुण्या त्रिपथगा नदी ।
शृंगवेरपुरं चैतद्गुहो यत्र सखा मम ॥३७॥
एषा सा दृश्यते सीते राजधानी पितुर्मम ॥३८॥
ततस्ते वानराः सर्वे राक्षसा सविभीषणाः ।
उत्पत्योत्पत्यसंहृष्टास्तां पुरीं ददृशुस्तदा ॥३९॥

अर्थ—यह विचित्र वनों वाली रमणीय यमुना दीखती है, और हे वैदेहि ! यह श्रीमान् भरद्वाज का आश्रम है, यह तीन मार्गों वाली पवित्र गङ्गा नदी और यह शृङ्गवेरपुर है जहां मेरा सखा गुह रहता है, और हे सीते ! यह मेरे पिता की राजधानी

अयोध्यापुरी दीखती है, यह सुनकर वह सब वानर और विभीषण साहित सब राक्षस प्रसन्न हो उठ २ कर उस पुरी को देखने लगे ॥

इति षष्ठितमः सर्गः

अथ एकषष्ठितमःसर्गः

सं०—अब हनुमान् का भरत के समीप संदेश लेकर जाना कथन करते हैं :—

अयोध्यां तु समालोक्य चिन्तयामास राघवः ।
उवाच धीमांस्तेजस्वी हनूमन्तं प्लवंगमम् ॥१॥
अयोध्यां त्वरितो गत्वा शीघ्रं प्लवगसत्तम ।
जानीहि कच्चित्कुशली जनो नृपतिमन्दिरे ॥२॥
भरतस्तु त्वया वाच्यः कुशलं वचनान्मम ।
सिद्धार्थं शंस मां तस्मै सभार्यं सहलक्ष्मणम् ॥३॥
जित्वा शत्रुगणान्रामः प्राप्य चानुत्तमं यशः ।
उपायाति समृद्धार्थः सहमित्रैर्महाबलैः ॥४॥

अर्थ—अयोध्या को देखकर राम सोचते हुए बुद्धिमान हनुमान से बोले कि हे वानरश्रेष्ठ ! तू शीघ्र अयोध्या में जाकर यह ज्ञातकर कि राजा के गृह में सब प्रकार कुशल है, और

भरत को मेरी ओर से कुशल कहकर लक्ष्मण तथा सीता सहित कृतकार्य्य होकर मेरा आना कह कि शत्रुगणों को जीत बड़े उत्तम यश को प्राप्त होकर कृतकृत्य हुए राम महाबली मित्रों के साथ समीप आगये हैं ॥

एतच्छ्रुत्वा यमाकारं भजते भरतस्ततः ।
सच ते वेदितव्यः स्यात्सर्वं यच्चापि मां प्रति ॥५॥
ज्ञेयाः सर्वे च वृत्तांता भरतस्येगिंतानि च ।
तत्त्वेन मुखवर्णेन दृष्टया व्यभाषितेन च ॥ ६ ॥
सर्वकामसमृद्धं हि हस्त्यश्वरथसंकुलम् ।
पितृपैतामहं राज्यं कस्य नावर्तयेन्मनः ॥ ७ ॥
संगत्याभरतः श्रीमान् राज्येनार्थी स्वयं भवेत् ।
प्रशास्तु वसुधां सर्वामखिलां रघुनन्दनः ॥ ८ ॥
तस्य बुद्धिं च विज्ञाय व्यवसायं च वानर ।
यावन्नदूरंयाताः स्मः क्षिप्रमागन्तुमर्हसि ॥ ९ ॥

अर्थ—यह सुनकर भरत का चित्त हर्षित, दुःखित तथा उदासीन जैसा हो सब जान लेना, इसके अतिरिक्त हमारे विषयक जो २ बातें हों वह सब ज्ञात करना, और मुख, रङ्ग, दृष्टि तथा बचनों से भरत के मन की सब बातें जानना, क्योंकि इस संसार में हाथी, घोड़े, रथ आदि सब सामग्रीयुक्त पिता पितामह का राज्य पाय किसका मन नहीं लुभाता, कदाचित चिरकाल से राज्य भोगते हुए श्रीमान् भरत के राज्यशासन करने की इच्छा हो तो

वह सम्पूर्ण पृथिवी का राज्यशासन करें मैं अति प्रसन्न हूं, सो हे वानर! तुम उसकी बुद्धि तथा व्यवसाय को जानकर शीघ्र ही लौट आओ तबतक हम यहीं ठहरे हुए हैं ॥

स गत्वा दूरमध्वानं त्वरितः कपिकुंजरः ।
आससाद द्रुमान्फुल्लान्नन्दिग्रामसमीपगान् ॥१०॥
क्रोशमात्रे त्वयोध्यायाश्चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
ददर्श भरतं दीनं कृशमाश्रमवासिनम् ॥ ११ ॥
जटिलं मलदिग्धांगं भ्रातृव्यसनकर्शितम् ।
फलमूलाशिनं दान्तं तापसं धर्मचारिणम् ॥ १२ ॥
समुन्नतजटाभारं वल्कलाजिनवाससम् ।
नियतं भावितात्मानं ब्रह्मर्षि सम तेजसम् ॥१३॥
पादुके ते पुरस्कृत्य प्रशासन्तं वसुन्धराम् ।
चातुर्वर्ण्यस्य लोकस्य त्रातारं सर्वतो भयात् ॥१४॥

अर्थ—तदनन्तर वह तेजस्वी हनुमान् दूर मार्ग जाकर नन्दिग्राम के समीप फूले हुए वृक्षों में पहुंचा, अयोध्या से एक कोस पर चीर तथा काला मृगान धारण किये हुए आश्रमवासी दीन दुर्बल भरत को देखा, जटा धारण किये हुए, मैल से भरे हुए अङ्गों वाले, भाई की विपद् से दुर्बल, फल मूल खाने वाला, दांत ब्रह्मचारी, तपस्वी, ऊंचे जटा भार वाला, बल्कल तथा मृगान के वस्त्रों वाला, शुद्धात्मा ब्रह्मर्षि के तुल्य तेज वाला, राम की उन पादुकाओं को आगे करके पृथिवी का शासन करते हुए चारो वर्णों के सब भयों का रक्षक, और :—

उपस्थितममात्यैश्च शुचिभिश्च पुरोहितैः ।
बलमुख्यैश्च युक्तैश्च काषायाम्बरधारिभिः ॥१५॥
नहि ते राजपुत्रं तं चीरकृष्णाजिनाम्बरम् ।
परिभोक्तुं व्यवस्यन्ति पौरा वै धर्मवत्सलाः ॥१६॥
तं धर्ममिव धर्मज्ञं देहबन्धमिवापरम् ।
उवाच प्राञ्जलिर्वाक्यं हनूमान्मारुतात्मजः ॥१७॥

अर्थ—श्रेष्ठ मन्त्री, श्रेष्ठ पुरोहितों तथा सावधान सेनापतियों से युक्त था जो सब काषाय वस्त्र धारण किये हुए थे, क्योंकि चीर तथा काले मृगान के वस्त्रों से युक्त उस राजपुत्र भरत की उपेक्षा करके धर्मप्रिय पुरवासी उत्तम भोगों को भोगना नहीं चाहते थे, वह धर्म का ज्ञाता मानो धर्म ही दूसरा मानुष देह धारण किये हुए है, ऐसे भरत को देखकर हाथ जोड़ पवनपुत्र हनुमान् बोला कि :—

वसन्तं दण्डकारण्ये यं त्वं चीरजटाधरम् ।
अनुशोचसि काकुत्स्थ स त्वां कौशलमब्रवीत् ॥१८॥

अर्थ—दण्डकवन में रहते हुए चीर तथा जटाधारी जिस राम के पीछे आप शोक में निमग्न हैं उन्होंने आपको कुशल कहा है ॥

प्रियमाख्यामि ते देव शोकं त्यज सुदारुणम् ।
अस्मिन्मुहूर्ते भ्रात्रा त्वं रामेण सहसंगतः ॥१९॥
निहत्य रावणं रामः प्रतिलभ्य च मैथिलीम् ।
उपायाति समृद्धार्थः सह मित्रैर्महाबलैः ॥ २० ॥

लक्ष्मणश्च महातेजा वैदेही च यशस्विनी ।
सीता समग्रा रामेण महेन्द्रेण शची यथा ॥ २१ ॥

अर्थ—हे देव ! मैं आपको प्रिय कहता हूं अब आप सुदारुण शोक को त्याग दें, अभी अल्पकाल में ही आप भाई राम से मिलेंगे, राम रावण को मार सीता को प्राप्त कर कृतकार्य्य हुए महाबली मित्रों के साथ निकट ही आरहे हैं, महातेजस्वी लक्ष्मण भी साथ हैं और यशस्विनी सीता राम के साथ इन्द्र के साथ इन्द्राणि के समान सुशोभित हुई आरही है ॥

एवमुक्तो हनुमता भरतः कैकयीसुतः ।
पपात सहसा हृष्टो हर्षान्मोहमुपागमत् ॥ २२ ॥
ततो मुहूर्तादुत्थाय प्रत्याश्वस्य च राघवः ।
हनूमन्तमुवाचेदं भरतः प्रियवादिनम् ॥ २३ ॥

अर्थ—हनुमान् के उक्त बचन सुनकर कैकेयीसुत भरत अति प्रसन्न हुआ सहसा भूमि पर गिर पड़ा और हर्ष से मूर्च्छित होगया, फिर शीघ्र ही उठ सावधान होकर प्रियवादी हनुमान् से बोला ॥

अशोकजैः प्रीतिमयैः कपिमालिंग्यै संभ्रमात् ।
सिषेच भरतः श्रीमान्विपुलैरश्रुविन्दुभिः ॥ २४ ॥
देवो वा मानुषो वा त्वमनुक्रोशादिहागतः ।
प्रियाख्यानस्य ते सौम्य ददामि ब्रुवतः प्रियम्॥२५॥

अर्थ—श्रीमान् भरत संभ्रमपूर्वक हनुमान् को आलिङ्गन कर हर्ष से निकल हुए प्रीतिमय बहुत आंसुओं के बिन्दुओं से हनुमान् को भिगोता हुआ बोला कि हे सौम्य! आप देव हैं वा मनुष्य हैं? मेरे ऊपर बड़ी कृपा की जो यहां पधारे हैं, इस प्रिय कहने वाले को क्या प्रिय अर्पण करूं अर्थात् इस प्रिय बात सुनाने के तुल्य मैं कुछ नहीं देखता हूं ॥

बहूनि नाम वर्षाणि गतस्य सुमहद्वनम् ।
शृणोम्यहं प्रीतिकरं मम नाथस्य कीर्तनम् ॥२६॥
कल्याणी बत गाथेयं लौकिकी प्रतिभातिमाम् ।
एति जीवन्तमानन्दो नरं वर्षशतादपि ॥ २७ ॥

अर्थ—उस बड़े वन में गये हुए मेरे नाथ को बहुत वर्ष व्यतीत होने पर आज मैं अपने नाथ का प्रीति उत्पन्न करने वाला नाम कीर्तन सुनता हूं, आज मुझे यह लौकिक कहावत बड़ी कल्याण-दायक प्रतीत होती है कि जीवित पुरुष को सौवर्ष पीछे भी आनन्द प्राप्त होता है ॥

इति एकषष्ठितमः सर्गः

अथ द्विषष्ठितमःसर्गः

सं०—अब राम से भरत का मिलाप कथन करते हैं:—

श्रुत्वा तु परमानन्दं भरतः सत्यविक्रम ।
हृष्टमाज्ञापयामास शत्रुघ्नं परवीरहा ॥ १ ॥

अर्थ—इस परमानन्ददायक समाचार को सुनकर सत्यपराक्रम वाले तथा वीर शत्रुओं के हनन करने वाले भरत ने प्रसन्न हुए शत्रुघ्न को आज्ञा दी कि :—

राजदारास्तथामात्याः सैन्याः सेनांगनागणाः ।
ब्राह्मणाश्च सराजन्याः श्रेणीमुख्यास्तथा गणाः॥२॥
अभिनिर्यान्तु रामस्य द्रष्टुं शशिनिभं मुखम् ।
ततो यानान्युपारूढा सर्वा दशरथस्त्रियः ॥ ३ ॥
द्विजाति मुख्यैर्धर्मात्मा श्रेणी मुख्यैः सनैगमैः ।
माल्यमोदकहस्तैश्च मन्त्रिभिर्भरतो वृतः ॥ ४ ॥

अर्थ—राजस्त्रियें, मन्त्री, सैनिक, सैनिकों का स्त्रिगण, ब्राह्मण, राजकुमार और सब श्रेणियों=जातियों के मुखिया लोग, राम का चन्द्रतुल्य मुख देखने के लिये सब चलें, तब दशरथ की सब स्त्रियां यानों पर सवार हुईं, और धर्मात्मा भरत मुख्य ब्राह्मण, श्रेणियों के मुखिया, देशदेशान्तरों के व्यापारी और माल्यमोदक हाथ में लिये हुए मन्त्रियों से युक्त हो :—

शंखभेरीनिनादैश्च वन्दिभिश्चाभिनन्दितः ।
आर्यपादौ गृहीत्वा तु शिरसा धर्मकोविदः ॥२॥
पाण्डुरं छत्रमादाय शुक्लमाल्योपशोभितम् ।
शुक्ले च बालव्यजने राजार्हे हेमभूषिते ॥ ६ ॥
उपवासकृशो दीनश्चीरकृष्णाजिनाम्बरः ।
प्रत्युद्ययौ तदारामं महात्मा सचिवैः सह ॥ ७ ॥

अर्थ–शङ्ख, भेरी तथा वन्दिजनों से अभिनन्दित=प्रशंसित हुआ, आर्य्य राम के खड़ामू सिर पर धारण किये हुए वह धर्म में निपुण, श्वेतमालाओं से सुशोभित, श्वेतछत्र तथा सुवर्ण से भूषित राजा के योग्य दो चंवर लेकर, उपवासों से दुर्बल दीन चीर और काला मृगान धारण किये हुए वह महात्मा भरत मन्त्रियों सहित राम के समीप गया ॥

ततो हर्षसमुद्भूतो निःस्वनो दिवमस्पृशत् ।
स्त्रीबालयुववृद्धानां रामोऽयमिति कीर्तिते ॥८॥
रथकुंजरवाजिभ्यस्तेऽवतीर्य महींगताः ।
ददृशुस्तं विमानस्थं नराः सोमामिवाम्बरे ॥९॥
ततो विमानाग्रगतं भरतो भ्रातरं तदाः ।
ववन्दे प्रणतो रामं मेरुस्थमिव भास्करम् ॥१०॥

अर्थ–तदनन्तर राम के निकट पहुंच स्त्री, बाल युवा और वृद्धों के हर्ष से उठी हुई ध्वनि द्यौ लोक को स्पर्श करती हुई गूंज उठी "यह राम हैं" जब इस प्रकार कहागया तब वह सब रथ, हाथी तथा घोड़ों से उतरकर पृथिवी पर होगये और विमान में बैठे हुए राम को आकाश में चन्द्रमा के समान देखने लगे, तब सुमेरु पर स्थित सूर्य्य की भांति विमान पर बैठे हुए भाई राम को भरत ने शिर झुकाकर प्रणाम किया ॥

ततो रामाभ्यनुज्ञातं तद्विमानमनुत्तमम् ।
हंसयुक्तं महावेगं निपपात महीतलम् ॥११॥

आरोपितो विमानं तद्भरतः सत्यविक्रमः ।
राममासाद्य मुदितः पुनरेवाभ्यवादयत् ॥१२॥
तं समुत्थाय काकुत्स्थश्चिरस्याक्षिपथं गतम् ।
अङ्के भरतमारोप्य मुदितः परिषस्वजे ॥१३॥
ततो लक्ष्मणमासाद्य वैदेहीं च परंतपः ।
अथाभ्यवादयत्प्रीतो भरतो नाम चाब्रवीत् ॥१४॥

अर्थ–तब उसी समय राम से आज्ञा दिया हुआ वह हंस के मुख वाला तथा बड़े वेगवाला विमान महीतल पर उतर आया और राम ने विमान पर भरत को चढ़ा लिया, विमान पर चढ़ाया हुआ सत्यपराक्रम वाला भरत राम को प्राप्त कर अति प्रसन्न हो पुनः प्रणाम किया, चिरकालपश्चात् देखे हुए भरत को उठा गोद में लेकर मुदित हुए राम ने बड़े प्यार से आलिङ्गन किया, और फिर शत्रुओं के तपाने वाले भरत ने लक्ष्मण तथा सीता के समीप अपना नाम उच्चारण करके उनको प्रणाम किया ॥

सुग्रीवं कैकयीपुत्रो जाम्बवन्तमथांगदम् ।
मैन्दं च द्विविदं नीलमृषभं चैव सस्वजे ॥१५॥
सुषेणं च नलं चैव गवाक्षं गन्धमादनम् ।
शरभं पनसं चैव परितः परिषस्वजे ॥१६॥

अर्थ–तदनन्तर भरत ने सुग्रीव, जाम्बवान्, अङ्गद, मैन्द, द्विविद, नील तथा ऋषभ को गले लगाया, और सुषेण नील, गवाक्ष, गन्धमादन, शरभ तथा पनस कोभी आलिङ्गन किया ॥

अथाब्रवीद्राजपुत्रः सुग्रीवं वानरर्षभम् ।
परिष्वज्य महातेजा भरतो धर्मिणां वरः ॥१७॥
त्वमस्माकं चतुर्णां वै भ्राता सुग्रीवपंचमः ।
सौहृदाज्जायते मित्रमपकारोऽरि लक्ष्मणम् ॥२८॥
विभीषणं च भरतः सान्त्ववाक्यमथाब्रवीत् ।
दिष्ट्या त्वया सहायेन कृतं कर्म सुदुष्करम् ॥१९॥

अर्थ–फिर वह महातेजस्वी धर्मात्मा भरत वानरश्रेष्ठ सुग्रीव को आलिङ्गन करके बोला कि हे सुग्रीव ! आप हमारे पांचवें भाई हैं, सौहार्द=उपकार से मित्र होता है और अपकार शत्रु का लक्षण है, पुनः विभीषण को भरत यह सन्तोषजनक वाक्य बोले कि आप जैसा साथी भाग्य से मिलता है जिसकी सहायता से बड़ा दुष्करकर्म कियागया है ॥

शत्रुघ्नश्च तदा राममभिवाद्य सलक्ष्मणम् ।
सीतायाश्चरणौ वीरो विनयादभ्यवादयत् ॥२०॥
रामो मातरमासाद्य विवर्णां शोककर्शिताम् ।
जग्राह प्रणतः पादौ मनो मातुः प्रहर्षयन् ॥२१॥
अभिवाद्य सुमित्रां च कैकेयीं च यशस्विनीम् ।
स मातृश्च ततः सर्वाः पुरोहितमुपागमत् ॥२२॥
स्वागतं ते महाबाहो कौसल्यानन्दवर्धन ।
इति प्रांजलयः सर्वे नागरा राममब्रुवन् ॥२३॥

अर्थ–तदनन्तर शत्रुघ्न ने राम तथा लक्ष्मण को अभिवादन कर विनयपूर्वक सीता के चरणों को प्रणाम किया, और शोक से मुरझाये हुए अङ्गों वाली दुर्बल हुई माता के समीप आकर उनके मन को प्रसन्न करते हुए झुककर उनके चरणों का स्पर्श किया, फिर सुमित्रा तथा यशस्विनी कैकेयी और सब स्त्रियों को प्रणाम करके पुरोहित के समीप पहुंच उनको अभिवादन किया, तदनन्तर नगर के सब लोगों ने हाथ जोड़कर "हे महाबाहो कौसल्या के आनन्द को बढ़ाने वाले आपका आगमन शुभ हो" इस प्रकार कहते हुए आशीर्वाद दिये॥

पादुके ते तु रामस्य गृहीत्वा भरतः स्वयम् ।
चरणाभ्यां नरेन्द्रस्य योजयामास धर्मवित् ॥२४॥
अब्रवीच्च तदा रामं भरतः स कृताञ्जलिः ।
एतत्ते सकलं राज्यं न्यासं निर्यातितं मया ॥२५॥
अद्य जन्म कृतार्थं मे संवृत्तश्च मनोरथः ।
यत्त्वां पश्यामि राजानमयोध्यां पुनरागतम् ॥२६॥

अर्थ–अब धर्म के ज्ञाता भरत ने स्वयं वह खड़ाओं लेकर नरेन्द्र राम के चरणों से युक्त कीं अर्थात् पहराईं, और हाथ जोड़कर राम से बोला कि यह आपका सारा राज्य जो अमानत मेरे पास था आपके अर्पण करता हूं, आज मेरा जन्म कृतार्थ और मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ जो राजा को फिर अयोध्या में आया हुआ देखता हूं॥

अवेक्षतां भवान्कोशं कोष्ठागारं गृहं बलम् ।
भवतस्तेजसा सर्वं कृतं दशगुणं मया ॥२७॥
तथा ब्रुवाणं भरतं दृष्ट्वा तं भ्रातृवत्सलम् ।
मुमुचुर्वानरा वाष्पं राक्षसश्च विभीषणः ॥२८॥

अर्थ—अब आप कोश=खजाना, भण्डार, घर और बल=सेना का निरीक्षण करलें, आपके तेज से मैंने सब दशगुणा कर दिया है, ऐसा कहते हुए उस भ्रातृवत्सल भरत को देखकर सब वानर और राक्षस विभीषण के प्रेमाश्रु बह निकले ॥

ततः प्रहर्षाद्भरतमङ्कमारोप्य राघवः ।
ययौ तेन विमानेन स सैन्यो भरताश्रमम् ॥२९॥
भरताश्रममासाद्य स सैन्यो राघवस्तदा ।
अवतीर्य विमानाग्रादवतस्थे महीतले ॥३०॥

अर्थ—तब राम बड़े प्रहर्ष से भरत को गोद में उठा सेना के साथ उसके आश्रम को गये, और वहां आश्रम में पहुंचकर सेनासहित राम विमान के आगे से उतरकर पृथिवी तल पर स्थित हुए ॥

इति द्विषष्ठितमः सर्गः

अथ त्रिषष्ठितमःसर्गः

सं०—अब राम आदि सबका स्नानादि कर्म करके अयोध्या में प्रवेश करना कथन करते हैंः—

शिरस्यञ्जलिमाधाय कैकेयीनन्दिवर्धनः ।
बभाषे भरतो ज्येष्ठं रामं सत्यपराक्रमम् ॥१॥
पूजिता मामिका माता दत्तं राज्यमिदं मम ।
तद्ददामि पुनस्तुभ्यं यथात्वमददा मम ॥२॥
धुरमेकाकिनान्यस्तां वृषभेण बलीयसा ।
किशोरवद्गुरुंभारं न वोढुमहमुत्सहे ॥३॥
वारिवेगेन महता भिन्नः सेतुरिवक्षरन् ।
दुर्बन्धनमिदं मन्ये राज्यच्छिद्रमसंवृतम् ॥४॥
जगदद्याभिषिक्तं त्वामनुपश्यतु राघव ।
प्रतपन्तमिवादित्यं मध्याह्ने दीप्ततेजसम् ॥५॥
भरतस्य वचः श्रुत्वा रामः परपुरञ्जयः ।
तथेति प्रतिजग्राह निषसादासने शुभे ॥६॥

अर्थ–तदनन्तर दोनों हाथ जोड़ सिर पर धर कैकेयी के आनन्द को बढ़ाने वाला भरत सत्यपराक्रमवाले अपने ज्येष्ठ भाई राम से बोला कि आपने मेरी माता की आज्ञा मान उसका सत्कार किया और उन्होंने जो राज्य मुझे दिया था अब मैं उसी राज्य को आपकी सेवा में अर्पण करता हूं, क्योंकि जिस प्रकार बलवान् बैल की धुरी के बड़े भार को छोटा बछड़ा नहीं उठा सक्ता. और जैसे जल के बड़े प्रवाह से टूटा हुआ पुल सहसा नहीं बंध सक्ता, इसी प्रकार आपके उठाने योग्य इस विस्तृत राज्यभार को मैं नहीं उठा सक्ता, सो हे राघव !

यह सब प्रजा आज आपको अभिषिक्त हुआ मध्याह्न के दीप्त तेज वाले सूर्य्य की भांति तेजस्वी हुआ देखे अर्थात् आज ही आप युवराज बनें, भरत के उक्त वचन सुनकर शत्रुओं के किलों को जीतने वाले राम ने "तथास्तु" कहकर स्वीकार किया और शुभ आसन पर बैठ गये ॥

ततः शत्रुघ्नवचनान्निपुणाः श्मश्रुवर्धनाः ।
सुखहस्ताः सुशीघ्राश्च राघवं पर्यवारयन् ॥ ७ ॥
पूर्वं तु भरते स्नाते लक्ष्मणे च महाबले ।
सुग्रीवे वानरेन्द्रे च राक्षसेन्द्रे विभीषणे ॥ ८ ॥
विशोधित जटः स्नातश्चित्रमाल्यानुलेपनः ।
महार्हवसनोपेतस्तस्थौ तत्र श्रिया ज्वलन् ॥ ९ ॥
प्रतिकर्म च रामस्य कारयामास वीर्यवान् ।
लक्ष्मणस्य च लक्ष्मीवानिक्ष्वाकुकुलवर्धनः ॥१०॥

अर्थ–तदनन्तर शत्रुघ्न के कथनानुसार सुखदायक हाथों वाले निपुण नापित=नाई बाल बनाने तथा न्हिलाने के लिये राम के चारो ओर बैठ गये, प्रथम भरत, महाबली लक्ष्मण, वानरेन्द्र सुग्रीव और राक्षसेन्द्र विभीषण ने स्नान किया, तदनन्तर राम ने जटाओं को शोध=कटा स्नानकर विचित्र माला धारण करके अनुलेपन लगाया, फिर बहुमूल्य वस्त्र पहन शोभा से देदीप्यमान हो स्थित हुए, वीर्य्यवान् तथा लक्ष्मीवान् शत्रुघ्न ने राम और लक्ष्मण को वस्त्राभूषणों से सुशोभित किया ॥

प्रतिकर्म च सीतायाः सर्वा दशरथस्त्रियः ।
आत्मनैव तदा चक्रुर्मनस्विन्यो मनोहरम् ॥११॥
ततो वानरपत्नीनां सर्वासामेव शोभनम् ।
चकार यत्नात्कौसल्या प्रहृष्टा पुत्रवत्सला ॥ १२ ॥

अर्थ–सीता के सब स्नानादि कर्म महाराज दशरथ की स्त्रियों ने स्वयं स्नेहपूर्वक अपने हाथों से किये, तदनन्तर पुत्रवत्सल कौसल्या ने सब वानरपत्नियों को प्रयत्न से स्नानादि कराया ॥

ततः शत्रुघ्नवचनात्सुमन्त्रो नाम सारथिः ।
योजयित्वाभिचक्राम रथं सर्वांगशोभनम् ॥१३॥
अग्न्यर्कामलसंकाशं दिव्यं दृष्ट्वा रथं स्थितम् ।
आरुरोह महाबाहू रामः परपुरञ्जयः ॥ १४ ॥

अर्थ–तदनन्तर शत्रुघ्न की आज्ञानुसार सारथी सुमन्त्र सर्वाङ्ग सुशोभित रथ जोड़कर लेआये, तब अग्नि तथा सूर्य्य के तुल्य निर्मल उस दिव्य रथ को खड़ा देखकर शत्रुओं के किलों को जीतने वाले महाबाहु राम उस पर आरूढ़ हुए ॥

सुग्रीवो हनूमांश्चैव महेन्द्रसदृशद्युती ।
स्नातौ दिव्यनिभैर्वस्त्रैर्जग्मतुः शुभकुण्डलौः ॥१५॥
सर्वाभरणजुष्टाश्च ययुस्ताः शुभकुण्डलाः ।
सुग्रीव पत्न्यः सीता च द्रष्टुं नगरमुत्सुकाः ॥१६॥

अर्थ–और महेन्द्र तुल्य तेजस्वी सुग्रीव तथा हनुमान् स्नान किये दिव्य वस्त्रों से युक्त शुभ कुण्डल धारण किये हुए साथ

चले, सब भूषणों से भूषित, शुभ कुण्डल धारण किये हुए सुग्रीव की पत्नियां और सीता भी नगर देखने की उत्कण्ठा से साथ २ चली ॥

अयोध्यां च सचिवा राज्ञो दशरथस्य च ।
पुरोहितं पुरस्कृत्य मन्त्रयामासुरर्थवत् ॥ १७ ॥
सर्वमेवाभिषेकार्थं महार्हस्य महात्मनः ।
कर्तुमर्हथ रामस्य यद्यन्मंगलपूर्वकम् ॥ १८ ॥

अर्थ–और इधर अयोध्या में राजा दशरथ के मन्त्री पुरोहित वसिष्ठ की आज्ञानुसार सब आवश्यक विचार करने लगे कि जय के योग्य महात्मा राम के अभिषेकार्थ मङ्गलपूर्वक सब सामान तैयार करो ॥

इति ते मन्त्रिणः सर्वं सन्दिश्य च पुरोहितः ।
नगरान्निर्ययुस्तीर्णं रामदर्शनबुद्धयः ॥ १९ ॥
हरियुक्तं सहस्राक्षो रथमिन्द्र इवानघः ।
प्रययौ रथमास्थाय रामो नगरमुत्तमम् ॥ २० ॥
जग्राह भरतो रश्मीञ्शत्रुघ्नश्छत्रमाददे ।
लक्ष्मणो व्यजनं तस्य मूर्ध्नि संवीजयंस्तदा ॥२१॥
श्वेतं च बालव्यजनं जगृहे परितः स्थितः ।
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥ २२ ॥

अर्थ–उक्त प्रकार विचार करते हुए मन्त्री तथा पुरोहित भृत्यों को आज्ञा देकर राम के दर्शन की आकांक्षा से शीघ्र ही

नगर से बाहर निकले, उधर इन्द्रतुल्य निष्पाप राम रथ पर चढ़कर सुग्रीवादि वानरों सहित नन्दिग्राम से नगर की ओर गये, भरत ने घोड़ों की बागें पकड़ीं, शत्रुघ्न ने छत्र पकड़ा और लक्ष्मण उनके मस्तक पर चंवर करता था, एक चन्द्रतुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने अपने हाथ में पकड़ा ॥

शंख शब्द प्रणादैश्च दुन्दुभीनां च निःस्वनैः ।
प्रययौ पुरुषव्याघ्रस्तां पुरीं हर्म्य मालिनीम् ॥२३॥
ददृशुस्ते समायान्तं राघवं सपुरःसरम् ।
विराजमानं वपुषा रथेनातिरथं तदा ॥ २४ ॥

अर्थ—और शंख तथा दुन्दुभियों की चारों ओर बड़ी तुमुल ध्वनि होने लगी, इन सब ध्वनियों के बीच पुरुषव्याघ्र राम ने अनेक महलों वाली अयोध्यापुरी को प्रस्थान किया, अपने शरीर की शोभा से सुशोभित अतिरथ राम को रथ पर चढ़ा हुआ सब नगर निवासी लोगों ने देखा जिसके आगे सैनिक चल रहे थे ॥

ते वर्धयित्वा काकुत्स्थं रामेण प्रतिनन्दिताः ।
अनुजग्मुर्महात्मानं भ्रातृभिः परिवारितम् ॥२५॥
अमात्यैर्ब्राह्मणैश्च तथा प्रकृतिभिर्वृतः ।
श्रिया विरुरुचे रामो नक्षत्रैरिव चन्द्रमा ॥ २६ ॥
सख्यं च रामः सुग्रीवे प्रभावं चानिलात्मजे ।
वानराणां च तत्कर्म ह्याचचक्षेऽथ मन्त्रिणाम् ॥२७॥

अर्थ-तदनन्तर वह मन्त्री तथा पुरोहित राम को बधाई देते और उनसे सत्कृत हो भाइयों से घिरे हुए महात्मा राम के पीछे २ गये, मन्त्रियों ब्राह्मणों और नगर निवासियों से युक्त हुए राम नक्षत्रों से चन्द्रमा की भांति शोभायमान प्रतीत होते थे, तदनन्तर राम ने मन्त्रियों से सुग्रीव की मित्रता, हनुमान् का प्रभाव और वानरों के दुष्करकर्म कहे ॥

श्रुत्वा च विस्मयं जग्मुरयोध्यापुरवासिनः ।
वानराणां च तत्कर्म राक्षसानां च तद्बलम् ॥२८॥

अर्थ-सब वानरों के दुष्करकर्म तथा राक्षसों का अद्भुत बल सुनकर सब अयोध्यावासी बड़े विस्मय को प्राप्त हुए ॥

द्युतिमाने तदाख्यायं रामो वानरसंयुतः ।
हृष्टपुष्टजनाकीर्णामयोध्यां प्रविवेश सः ॥ २९ ॥
ततो ह्यभ्युच्छ्रयन्पौराः पताकाश्च गृहे गृहे ।
ऐक्ष्वाकाध्युषितं रम्यमाससाद पितुर्गृहम् ॥ ३० ॥

अर्थ-तेजस्वी राम उक्त प्रकार कहते हुए हृष्ट पुष्ट जनों से भरी हुई अयोध्यापुरी में प्रविष्ट हुए, सब पुरवासी लोगों के घरों को ध्वजा पताकाओं से सुशोभित देखता हुआ वह राजपुत्र अपने रमणीय पितृगृह में प्रविष्ट हुआ ॥

इति त्रिषष्ठितमः सर्गः

अथ चतुष्षष्ठितमः सर्गः

सं०—अब राम का राज्याभिषेक कथन करते हैं :—

ततः स प्रयतो वृद्धो वसिष्ठो ब्राह्मणैः सह ।
रामं रत्नमये पीठे ससीतं संन्यवेशयत् ॥ १ ॥
वसिष्ठो विजयैश्चैव जाबालिरथ काश्यपः ।
कात्यायनो गौतमश्च वामदेवस्तथैव च ॥ २ ॥
अभ्यषिञ्चन्नरव्याघ्रं प्रसन्नेन सुगन्धिना ।
सलिलेन सहस्राक्षं वसवो वासवं यथा ॥ ३ ॥
ऋत्विग्भिर्ब्राह्मणैः पूर्वं कन्याभिमन्त्रिभिस्तथा ।
योधैश्चैवाभ्यषिंचस्ते संप्रहृष्टैः सनैगमैः ॥ ४ ॥

अर्थ—तदनन्तर ब्राह्मणों को साथ लिये हुए महात्मा वृद्ध वसिष्ठ ने सीता सहित राम को रत्नजटित चौकी पर बिठलाया, और वसिष्ठ, विजय, जाबालि, काश्यप, कात्यायन, गौतम तथा वामदेव ने निर्मल सुगन्धित जल से नरश्रेष्ठ राम का अभिषेक किया, जैसे वसु ने इन्द्र का किया था, पहले ऋत्विज ब्राह्मणों, फिर कन्याओं, फिर मन्त्रियों, योद्धाओं और फिर प्रसन्न मन व्यापारियों से अभिषेक कराया ॥

ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं किरीटं रत्नशोभितम् ।
तस्यान्ववाये राजानः क्रमाद्येनाभिषेचिताः ॥ ५ ॥

किरीटेन ततः पश्चाद्वसिष्ठेन महात्मना ।
ऋत्विग्भिर्भूषणैश्चैव समयोक्ष्यत राघवः ॥ ६ ॥

अर्थ—तदनन्तर वह रत्नों से सुशोभित मुकुट जो पूर्वकाल में ब्रह्मा ने रचा और रघुवंश के राजा जिससे क्रमशः अभिषिक्त होते रहे थे उसी मुकुट से महात्मा वासिष्ठ ने राम का अभिषेक करके ऋत्विजों ने भूषणों से युक्त किया ॥

छत्रं तस्य च जग्राह शत्रुघ्नः पाण्डुरं शुभम् ।
श्वेतं च बालव्यजनं सुग्रीवो वानरेश्वरः ॥७॥
अपरं चन्द्रसंकाशं राक्षसेन्द्रो विभीषणः ॥८॥
प्रजगुर्देवगन्धर्वा ननृतुश्चाप्सरोगणाः ।
अभिषेके तदर्हस्य तदा रामस्य धीमतः ॥९॥
सहस्रशतमश्वानां धेनूनां च गवां तथा ।
ददौ शतवृषान्पूर्वं द्विजेभ्यो मनुजर्षभः ॥१०॥
त्रिंशत्कोटीर्हिरण्यस्य ब्राह्मणेभ्यो ददौ पुनः ।
नानाभरणवस्त्राणि महार्हाणि च राघवः ॥११॥

अर्थ—शत्रुघ्न ने श्वेत शुभछत्र पकड़ा तथा वानरेश्वर सुग्रीव ने कोमल चंवर लिया और एक चन्द्रतुल्य चंवर राक्षसेन्द्र विभीषण ने लिया, अभिषेक के योग्य उस बुद्धिमान् राम के अभिषेक में देव गन्धर्वों का गान और अप्सराओं का नृत्य हुआ, और एक लाख अश्व, एक लाख धेनु तथा गौ और सौ सांड उस मानुषश्रेष्ठ राम ने ब्राह्मणों को दान दिये तीस

करोड़ सुवर्ण का सिक्का और नाना प्रकार के बहुमूल्य भूषण तथा वस्त्र ब्राह्मणों को दिये ॥

अर्करश्मिप्रतीकाशां कांचनीं मणिविग्रहाम् ।
सुग्रीवाय स्रजं दिव्यां प्रायच्छन्मनुजाधिपः ॥१२॥
वैदूर्यमयचित्रे च चन्द्ररश्मिविभूषिते ।
बालिपुत्राय धृतिमानंगदायांगदे ददौ ॥१३॥
मणिप्रवरजुष्टं तं मुक्ताहारमनुत्तमम् ।
सीतायै प्रददौ रामश्चन्द्ररश्मिसमप्रभम् ॥१४॥
अवमुच्यात्मनः कण्ठाद्धारं जनकनन्दिनी ।
अवैक्षत हरीन्सर्वान्भर्तारं च मुहुर्मुहुः ॥१५॥

अर्थ—सूर्य्य की रश्मितुल्य देदीप्यमान, मणियों से जटित सुवर्ण की दिव्य माला उस नरपति ने सुग्रीव को दी, वैदूर्यमणि से चित्रित चन्द्र की रश्मि समान भूषित दो बाहुबन्द उस धृतिमान् राम ने बालिपुत्र अङ्गद को दिये, फिर उत्तम मणियों से जटित चन्द्रकिरण तुल्य शोभायमान अत्युत्तम मोतियों का हार राम ने सीता को पहनाया, उस हार को जनकनन्दिनी कण्ठ से उतार कर बार २ सब वानरों और भर्ता की ओर देखने लगी ॥

तामिंगितज्ञः संप्रेक्ष बभाषे जनकात्मजाम् ।
प्रदेहि सुभगे हारं यस्य तुष्टासि भामिनि ॥१६॥

अथ सा वायुपुत्राय तं हारमसितेक्षणा ॥१७॥
हनूमांस्तेन हारेण शुशुभे वानरर्षभः ।
चन्द्रांशुचयगौरेण श्वेताभ्रेण यथाचलः ॥१८॥
सर्वे वानरवृद्धाश्च ये चान्ये वानरोत्तमाः ।
वासोभिर्भूषणैश्चैव यथार्हं प्रतिपूजिताः ॥१९॥

अर्थ—तब मन का अभिप्राय जानने वाले राम उस जनक सुता से बोले कि हे सुभगे ! यह हार तुम उसे दो जिस पर परमप्रसन्न हो, तब उस श्याम नेत्रों वाली सीता ने वह हार पवनपुत्र हनुमान् को दिया, उस हार को धारण करके श्रेष्ठ हनुमान् इस प्रकार सुशोभित हुआ, जैसे चन्द्रकिरणसमूह तथा श्वेत वादलों से पर्वत शोभायमान प्रतीत होता है, तदनन्तर वृद्ध तथा दूसरे श्रेष्ठ वानरों का वस्त्र और भूषणों से यथायोग्य सत्कार किया गया ॥

विभीषणोऽथ सुग्रीवो हनूमाञ्जाम्बवांस्तथा ।
सर्वे वानरमुख्याश्च रामेणाक्लिष्टकर्मणा ॥२०॥
यथार्हं पूजिताः सर्वे कामैरत्नैश्च पुष्कलैः ।
प्रहृष्टमनसः सर्वे जग्मुरेव यथागतम् ॥२१॥

अर्थ—विभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान् तथा अन्य सब मुख्य वानर शुभकर्मों वाले राम द्वारा यथायोग्य प्रिय पदार्थों और पुष्कल रत्नों से सत्कृत हो सब प्रसन्न मन हुए २ अपने स्थान को गये ॥

सुग्रीवो वानरश्रेष्ठो दृष्ट्वा रामाभिषेचनम् ।
पूजितश्चैव रामेण किष्किन्धां प्राविशत्पुरीम् ॥२२॥
विभीषणोऽपि धर्मात्मा सहतैर्नैर्ऋतर्षभैः ।
लब्ध्वा कुलधनं राजा लंकां प्रायान्महायशाः॥२३॥

अर्थ—वानरश्रेष्ठ सुग्रीव राम का अभिषेक देखकर उनसे पूजित हुआ किष्किन्धापुरी में प्रविष्ट हुआ, और धर्मात्मा विभीषण भी उन श्रेष्ठ राक्षसों के सहित अपने कुलधन=लङ्का के राज्य का स्वामी अपनी राजधानी को चला गया ॥

इति चतुष्षष्ठितमः सर्गः

अथ पञ्चषष्ठितमः सर्गः

अर्थ—अब राम के राज्य समय का वर्णन करते हैं:—

स राज्यमखिलं शासन्निहतारिर्महायशाः ।
राघवःपरमोदारः शशास परयामुदा ॥ १ ॥
उवाच लक्ष्मणो रामं धर्मज्ञं धर्मवत्सलः ॥२॥

अर्थ—तदनन्तर वह महायशस्वी, परम उदार अतिहर्षित हो सम्पूर्ण राज्य का शासन करते हुए धर्मप्रिय राम धर्मात्मा लक्ष्मण से बोले कि :—

आतिष्ठ धर्मज्ञ मया सहेमां गां पूर्वराजा-
ध्युषितां बलेन । तुल्यं यथा त्वं पितृभिः
पुरस्तात्तैर्यौवराज्ये धुरमुद्वहस्व ॥ ३ ॥

अर्थ–हे धर्मज्ञ ! हमारे पूर्वजों से बलद्वारा जीती हुई इस पृथिवी का मेरे साथ शासन कर अर्थात् पूर्वकालीन अपने पितरों के समान इस यौवराज्य रूप धुरा को उठा ॥

सर्वात्मना पर्यनुनीयमानो यदा न सौमित्रि-
रुपैति योगम् । वियुज्यमानो भुवि यौव-
राज्ये ततोऽभ्यषिञ्चद्भरतं महात्मा ॥ ४ ॥

अर्थ–सब प्रकार से बलपूर्वक प्रेरणा करने पर भी जब लक्ष्मण ने यौवराज्य स्वीकार न किया तब महात्मा राम ने भरत को अभिषिक्त किया अर्थात् राज्य का सब कारोवार उसी के हाथ में दिया ॥

राघवश्चापि धर्मात्मा प्राप्य राज्यमुत्तमम् ।
ईजे बहुविधैर्यज्ञैः ससुतभ्रातृबान्धवः ॥५॥
न पर्यदेवयन्विधवा नच व्यालकृतं भयम् ।
न व्याधिजं भयं चासीद्रामे राज्यं प्रशासति ॥६॥
निर्दस्युरभवल्लोकोनानर्थं कश्चिदस्पृशत् ।
नच स्म वृद्धा बालानां प्रेतकार्याणि कुर्वते ॥७॥

अर्थ–और धर्मात्मा राम भी इस अत्युत्तम विस्तृत राज्य को प्राप्त होकर सुत, भाई तथा बान्धवों समेत विविध प्रकार के

यज्ञ करने लगे, राम के राज्यशासन काल में न कहीं विधवाओं का रोना सुनाई दिया, न सांपों का भय हुआ और न उस समय प्रजा रोग से भयभीत हुई, उस समय सब लोक दस्युओं से शून्य था, लोग अनर्थग्राही न थे और न उस समय वृद्ध लोग बालों के मरण संस्कार करते थे ॥

सर्वं मुदितमेवासीत्सर्वोधर्मपरोऽभवत् ।
राममेवानुपश्यन्तो नाभ्यहिंसन्परस्परम् ॥ ८ ॥
नित्यमूला नित्यफलास्तरवस्तत्र पुष्पिताः ।
कामवर्षी च पर्जन्यः सुखस्पर्शश्च मारुतः ॥ ९ ॥
स्वकर्मसु प्रवर्तन्ते तुष्टाः स्वैरेव कर्मभिः ।
आसन्प्रजा धर्मपरा रामे शासति नानृता ॥ १० ॥

अर्थ–उस समय सब प्रसन्न तथा सभी धर्मपरायण थे, और राम को लक्ष्य रखकर आपस के सब बैर विरोध मिट गये थे, बड़ी दृढ़ जड़ों वाले वृक्ष सदा फूले फले रहते थे, मेघ समय पर बरसता था और पवन सुखदायी चलता था, सब लोग अपने २ कामों से सन्तुष्ट हुए अपने २ कामों में लगे रहते थे, राम के शासन काल में सब प्रजायें धर्मपरायण थीं कोई झूठा व्यवहार नहीं करता था ॥

इति पञ्चषष्ठितमः सर्गः

अथ षट्षष्ठितमःसर्गः

सं०–अब अन्त में रामायण का महात्म्य वर्णन करते हैं :—

धर्म्यं यशस्यमायुष्यं राज्ञां च विजयावहम् ।
आदिकाव्यमिदंचार्षं पुरा बाल्मीकिना कृतम् ॥१॥

अर्थ—धर्म, यश तथा आयु के बढ़ाने वाला और राजाओं को विजय प्राप्त कराने वाला यह आर्षकाव्य पहले पहल बाल्मीकि ने लिखा है ॥

यः शृणोति सदा लोके नरः पापात्प्रमुच्यते ।
पुत्रकामश्च पुत्रान्वै धनकामो धनानि च ॥ २ ॥
लभते मनुजो लोके श्रुत्वा रामाभिषेचनम् ।
महीं विजयते राजा रिपूंश्चाप्यधितिष्ठति ॥ ३ ॥
राघवेण यथा माता सुमित्रा लक्ष्मणेन च ।
भरतेन च कैकेयी जीवपुत्रास्तथा स्त्रियः ॥ ४ ॥

अर्थ—जो पुरुष इस लोक में सदा रामायण की कथा सुनते हैं वह पाप से छूट जाते हैं, रामाभिषेक को सुनकर पुत्र की कामना वाले पुत्र को और धन की कामना वाले धन को प्राप्त होते हैं, राजा पृथिवी को जीतकर शत्रुओं पर विजयी होता है, जैसे राम से कौसल्या, लक्ष्मण से सुमित्रा और भरत से कैकेयी जीवित पुत्रों वाली हैं इसी प्रकार सब स्त्रियें जीवित पुत्रों वाली होती हैं अर्थात उक्त सुचरित्र से सदाचारी होकर पुरुष पूर्वोक्त मनोरथों को उपलब्ध करते हैं ॥

श्रुत्वा रामायणमिदं दीर्घमायुश्च विन्दति ।
रामस्य विजयं चेमं सर्वमक्लिष्टकर्मणः ॥ ५ ॥

शृणोति य इदं काव्यं पुरा वाल्मीकिनाकृतम् ।
श्रद्दधानो जितक्रोधो दुर्गाण्यतितरत्यसौ ॥ ६ ॥

अर्थ–पवित्र कर्मों वाले राम के इस सम्पूर्ण विजयरूप रामायण को सुनकर पुरुष दीर्घायु को प्राप्त होता है, और जो क्रोध को त्यागकर श्रद्धावान् हुआ वाल्मीकि रचित इस काव्य को सुनता है वह सब दुष्कर कामों को सहज ही में करलेता है ॥

विजयेत महीं राजा प्रवासी स्वस्तिमान् भवेत् ।
स्त्रियो रजस्वलाः श्रुत्वा पुत्रान्सूयुरनुत्तमान् ॥७॥
पूजयंश्च पठंश्चैनमितिहासं पुरातनम् ।
सर्वपापैः प्रमुच्येत दीर्घायुरवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

अर्थ–इस रामायण के श्रवण से राजा पृथिवी को जीतता, प्रवासी कल्याणयुक्त होता और रजस्वला स्त्रियों के उत्तम पुत्र उत्पन्न होते हैं, इस प्राचीन इतिहास को आदरपूर्वक सुनता तथा पढ़ता हुआ पुरुष सब पापों से छूटकर दीर्घायु को प्राप्त होता है ॥

प्रणम्य शिरसा नित्यं श्रोतव्यं क्षत्रियैर्द्विजात् ।
ऐश्वर्य्यं पुत्रलाभश्च भविष्यति न संशयः ॥ ९ ॥

अर्थ–यह रामायण क्षत्रियों को सदा सिर झुकाकर ब्राह्मण से सुनना चाहिये, इसके श्रवण से ऐश्वर्य्य तथा पुत्र का लाभ होगा, इसमें संशय नहीं ॥

आयुष्यमारोग्यकरं यशस्यं सौभ्रातृकं
बुद्धिकरं शुभं च । श्रोतव्यमेतन्नियमेन
सद्भिराख्यानमोजस्करमृद्धिकामैः ॥१०॥

अर्थ—आयु, आरोग्य तथा यश का देने वाला, भ्रातृभाव का बढ़ाने वाला, बुद्धिवर्धक तथा यश को विस्तृत करने वाला यह शुभ आख्यान ऋद्धि सिद्धि की कामना वाले पुरुषों को नियमपूर्वक सुनना चाहिये ॥

इति षट्षष्ठितमः सर्गः

समाप्तश्चेदं युद्धकाण्डम्

इति श्रीमदार्य्यमुनिनोपनिबद्धे
बाल्मीकीये रामायणे
उत्तरार्द्धं समाप्तम्

समाप्तश्चायं
ग्रन्थः

श्री पण्डित आर्य्यमुनि जी महामहोपाध्याय
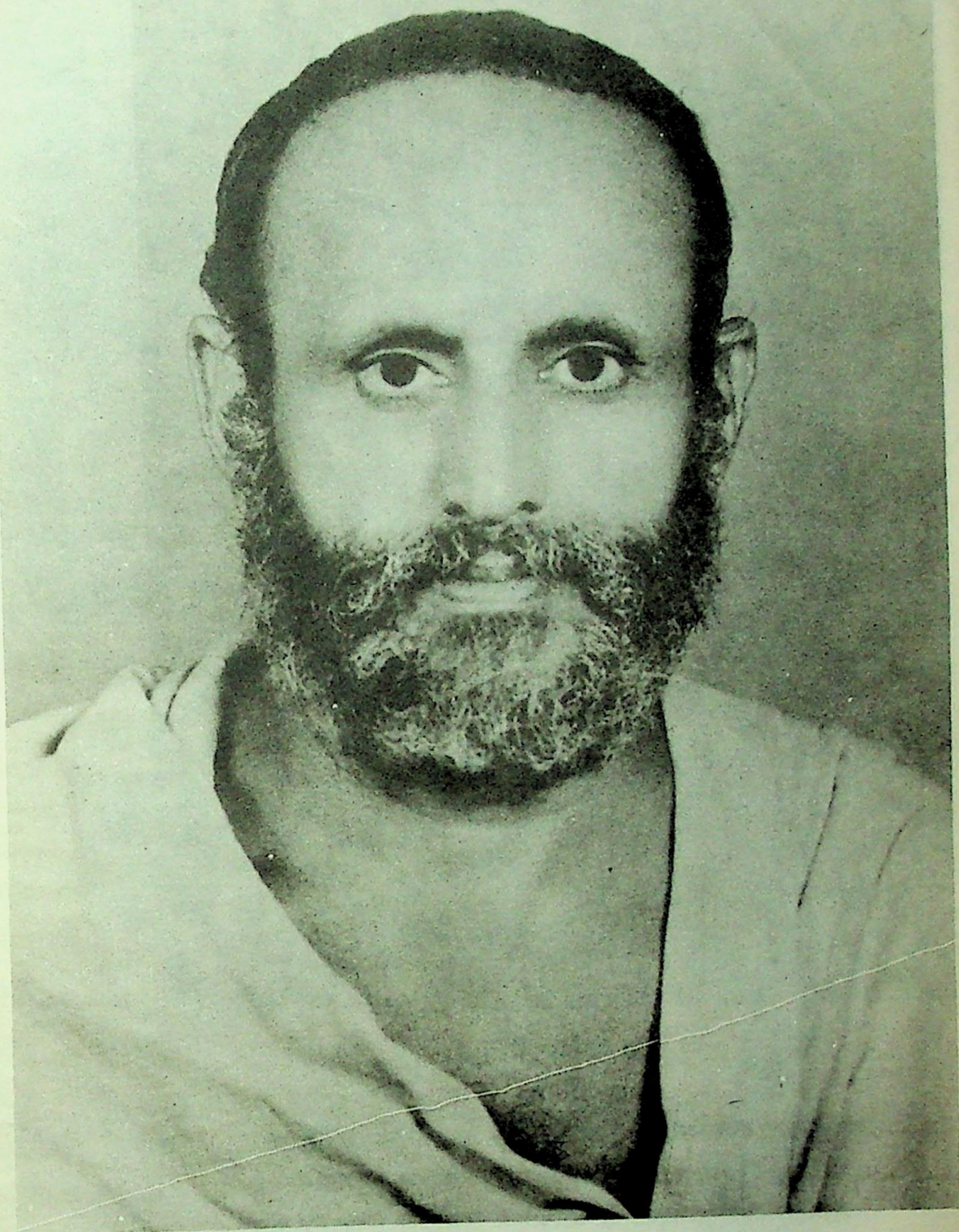
स्वामी ओमानन्द सरस्वती
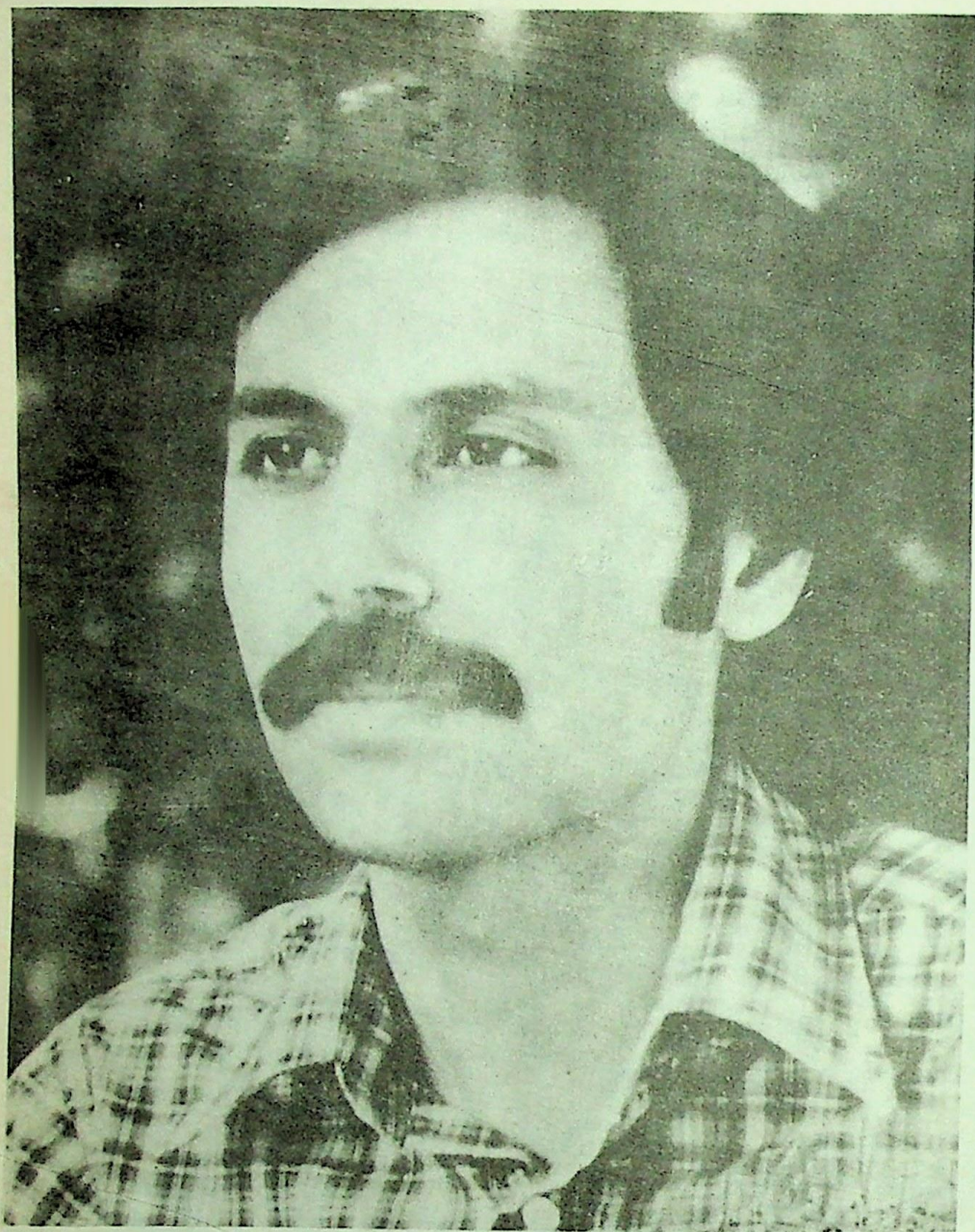
डॉ० सुधीर आनन्द

श्री जीयालाल आनन्द तथा माता सुशीला आनन्द, ए-1 ग्रेटर, कैलाश **II** नई दिल्ली-**48** के सुपुत्र डॉ० सुधीर आनन्द लास एंजेल्स अमेरिका से वाल्मीकि रामायण प्रकाशनार्थ **50,000/-** (पचास हजार) रुपये दान प्राप्त हुआ।

अशोकारिष्ट
स्त्रियों को सदा स्वस्थ सुन्दर
रखने वाली प्रसिद्ध महौषधि
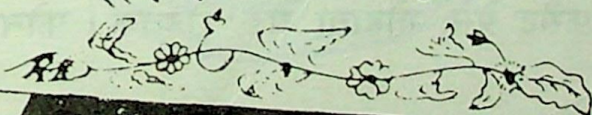
आर्यसमाज के नियम

१—सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

२—ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्ता है, उसी की उपासना करनी योग्य है।

३—वेद सब सत्य विद्याओं का पुस्तक है। वेद का पढ़ना-पढ़ाना और सुनना-सुनाना सब आर्यों का परम धर्म है।

४—सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए।

५—सब काम धर्मानुसार अर्थात् सत्य और असत्य को विचार करके करने चाहिये।

६—संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है—अर्थात् शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक उन्नति करना।

७—सबसे प्रीतिपूर्वक धर्मानुसार यथायोग्य वर्तना चाहिए।

८—अविद्या का नाश और विद्या की वृद्धि करनी चाहिए।

९—प्रत्येक को अपनी ही उन्नति से सन्तुष्ट न रहना चाहिए, किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए।

१०—सब मनुष्य को सामाजिक सर्वहितकारी नियम पालने में परतन्त्र रहना चाहिए और प्रत्येक हितकारी नियम में सब स्वतन्त्र रहें।

आचार्य ऑफसैट प्रेस, गोहाना रोड, रोहतक। फोन : 72874